हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य

[पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

डॉ० प्रेम भटनागर

प्रथम संस्करण	जुलाई १९६८
मूल्य	रु० ३०.००
प्रकाशक	अर्चना प्रकाशन १०-सी जालूपुरा जयपुर
शाखाएं	६०७, तीमारपुर दिल्ली २८० सिविल लाइन्स कोटा
आवरण	सुखदेव दुग्गल
मुद्रक	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस क्वींस रोड दिल्ली

श्रद्धेय डॉ० इन्द्रनाथ मदान को

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उपन्यास शिल्प से सम्बद्ध कुछ प्रश्नों पर मनन किया गया है। प्रश्न नवीन भी हैं और पुरातन भी। उपन्यास का स्वरूप उसका लक्ष्य, उसकी शैली क्या है? औपन्यासिक तत्त्वों से शिल्प का क्या सम्बन्ध है? ये तत्त्व शिल्प को कितना प्रभावित करते है, इनके गौण या अधिक मात्रा में रहने पर शिल्प में क्या परिवर्तन होता है, नए शिल्प को उपन्यासकारों की रचनाओं ने नई-नई दिशाएँ प्रदान कर किस रूप में प्रभावित किया है, इनके द्वारा उत्कीर्ण शिल्प किस दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है। जीवन की जटिलताओं के मध्य पनप रहे उपन्यास साहित्य के लिए नवीन प्रतीकों की योजना क्या हितकर प्रमाणित हुई है। शिल्प और वस्तु के द्वैधीकरण से क्या कुछ नयी भ्रान्तियाँ या भ्रम गतियाँ उत्पन्न हुई हैं।

मेरा दृढ मत है कि शिल्प सम्बन्धी परिवर्तनों में नितान्त असंगति नहीं अपितु विकासधारा है। नया शिल्प उपन्यास के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ या हानिप्रद इस ओर न जाकर हम यह देखना है कि इससे उपन्यास को नया रूप दिया या नहीं। प्रेमचन्द से लेकर आज तक जिन उपन्यासकारों ने इसे सभाला और सवारा वे किसी प्रशंसा के पात्र हैं या नहीं। उत्तर नकारात्मक नहीं है। प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम उपन्यास सर्जन की विधि की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने जन-जीवन के साथ इसका सम्बन्ध स्थापित करते हुए इसे मनोरंजन के साधन से ऊपर उठाकर जीवनगत समस्याओं से समृद्ध किया।

मानव की अन्तश्चेतना के चितेरे उपन्यासकार जोशी और जैनेन्द्र की अपेक्षा उनका औपन्यासिक शिल्प भिन्न है। इन उपन्यासकारों ने समाज और व्यक्ति को विभिन्न दृष्टिकोणों से आंका है। हिन्दी उपन्यास का विकास वर्णनात्मक से विश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक से प्रतीकात्मक शिल्प विधि की ओर अभिमुख है। इस बीच यत्र-तत्र नाटकीय या समन्वित शिल्प विधि के प्रयोग भी होते रहे हैं किन्तु मूल रूप से उसकी गति विधि व्यापकता गहनता और सकेतात्मकता का आश्रय लेकर अग्रसर हुई है। हिन्दी उपन्यास के शिल्प पर पड़ने वाले प्रभावों के क्रमबद्ध अध्ययन तथा विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किन कारणों से उपन्यास का आधारभूत रूप वर्णनात्मक से प्रतीकात्मक में स्थापित हुआ है तथा किन परिस्थितियों में होकर उसे यह यात्रा तै करना पड़ी है।

प्रबन्ध के पहले अध्याय में विषय प्रवेश के अन्तर्गत उपन्यास साहित्य और शिल्प का सम्बन्ध निर्धारित किया गया है। उपन्यास के मुख्य तत्त्वों के साथ शिल्प का सम्बन्ध नियोजित करते हुए इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि उपन्यासकार की रुचि तथा लोक रुचि के समन्वय द्वारा ही किसी शिल्प का गठन हुआ करता है। समस्या एवं

उद्देश्य प्रधान उपन्यास लिखने की चाह रखने वाले प्रेमचन्द ने शिल्प पर मनन और अध्ययन करके वर्णनात्मक शिल्प विधि का प्रश्रय लिया। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के प्रति आकृष्ट जोशी अज्ञेय और जैनेन्द्र ने विश्लेषणात्मक शिल्प विधि को अपनाया। लोक मंगल और व्यक्ति स्वातन्त्र्य के इच्छुक उपन्यासकार शिल्प के क्षेत्र में नये नये प्रयोग करने लगे। उपन्यास में विस्तार गम्भीरता या संकेतात्मकता के आधार पर शिल्पगत प्रयोगों के प्रश्न भी इसी अध्याय में स्पष्ट किए गए हैं। कथावस्तु की अनिवार्यता माननेवाले तथा भर्त्सना करनेवाले आलोचकों की मान्यताओं पर खुलकर प्रकाश डाला गया है। चेतना प्रवाहवादी शिल्पियों द्वारा आयोजित विचारों के परिवेश में घूमने तथा प्रतीकात्मक कथाधारा द्वारा प्रतिपादित स्वप्नों एवं संकेतों के महत्त्व को शिल्प रूप में रूपायित करने की चर्चा इस अध्याय के उल्लेखनीय तथ्य हैं।

प्रबन्ध के दूसरे अध्याय में शिल्प विधि के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों पर प्रश्न चिह्न लगाए गए हैं। इस दिशा में मुझे अपने निरीक्षक से विशेष प्रेरणा तथा दृष्टिकोण मिला है। उन्होंने आरम्भ में ही कह दिया था कि किसी भी आलोचक की मान्यता को केवल दुर्दमनीय नहीं मान लेना चाहिए कि उसे तथाकथित बड़प्पन का प्रश्रय मिला है अपितु उसे वैज्ञानिक अनुसंधान की कसौटी पर परखना चाहिए और तथ्यपरक होने पर ही अपनाना चाहिए। डा० शिवनारायण श्रीवास्तव डा० त्रिभुवन सिंह डा० प्रतापनारायण टण्डन डा० सुषमा धवन आदि विद्वानों द्वारा कहे गए उपन्यास सम्बन्धी तथ्यों और प्रवचनों को मैंने अध्ययन मनन और विश्लेषण की प्रक्रिया के पश्चात् नए रूप प्रदान किये हैं। शिल्प के सम्बन्ध में इन विद्वानों का दृष्टिकोण मुझे अस्पष्ट तथा अनिश्चयात्मक प्रतीत हुआ है। डा० टण्डन ने इस विषय पर प्रथम और मौलिक कार्य किया है किन्तु उनके द्वारा प्रतिपादित निष्पत्तियों का वर्गीकरण मुझे संदिग्ध अस्पष्ट एवं अवैज्ञानिक आभासित हुआ है। इस विषय पर उपलब्ध सामग्री का अन्वेषण करके जो विवेचना प्रस्तुत की गई है उसे मैं तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक समझता हूँ। डा० टण्डन ने प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास साहित्य में शिल्प प्रयोग का आधिक्य दर्शाया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक के मतानुसार प्रेमचन्द पूर्ववर्ती उपन्यास साहित्य मनोरंजन प्रधान है। उसमें घटनाओं आकर्षण और कथा कौतूहल की सामग्री का बाहुल्य है तथा शिल्प मात्रा अति गौण है। वस्तुतः प्रेमचन्द ही पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने शिल्प को शिल्प के रूप में मान्यता दी। अतः उनसे पूर्व उपन्यास साहित्य शिल्प की दृष्टि से समृद्ध रहा प्रस्तुत करने में समर्थ सिद्ध नहीं हो सकता। उस आधार मानकर शिल्प रूपों की चर्चा करना असंगत तथा भ्रामक है विद्वान आलोचक शिल्प और शैली के अन्तर को भी स्पष्ट करने में समर्थ रहे हैं। अतः उनके मत और मान्यताओं को भ्रान्तिमूलक समझ कर उनका निराकरण करना ही इस अध्याय के नवीनीकरण का परिचायक है। इसी अध्याय में मैंने शिल्प विधि के चार रूपों— वर्णनात्मक विश्लेषणात्मक प्रतीकात्मक नाटकीय और समन्वित शिल्प विधि को विशिष्ट रूप में रखकर उनकी विस्तृत विवेचना की है।

प्रबन्ध के तृतीय अध्याय शिल्प विधि के विविध रूपों में सम्बन्धित उपन्यासकारों तथा उनकी रचनाओं का स्पष्टीकरण करने में ही सहायक हुए हैं। उपन्यासों का उद्धरण करने

में यह ध्यान रखा गया है कि वे विशेष शिल्प परिचायक बनकर ही सामने आएँ। वर्णनात्मक शिल्प विधि के उपन्यासों का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए तीसरे अध्याय में यह स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है कि उनमें जन-जीवन अपने समग्र और व्यापक रूप में चमत्कृत हो उठा है। औपन्यासिक तत्वों की दृष्टि से कथावस्तु प्रधान 'सेवासदन', चरित्र प्रधान 'देवदास', वातावरण प्रधान [illegible] तथा अंचल प्रधान 'मैला आँचल' अपनी भिन्नता रखते हुए भी शिल्पगत एकता रखते हैं। वैयक्तिक प्रवृत्तियों में परिपूर्ण दार्शनिक प्रसंगों से अवगत, उपन्यास साहित्य विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के अन्तर्गत रखा गया है। मानवीय चेतना की विकृति लिए 'संन्यासी' और 'प्रेत और छाया', मानवीय भावुकता की तरलता एवं अनुकम्पना का आधिक्य लिए 'सुनीता', 'कल्याणी' तथा 'शेखर : एक जीवनी' इसके उदाहरण रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। प्रतीकात्मक शिल्प विधि के संकेतों, बिम्बप्रतिबिम्बों, स्वप्नों आदि का अन्वेषण पाँचवें अध्याय की विशेषता है। छठे अध्याय में कतिपय उपलब्ध नाटकीय शिल्प विधि के उपन्यासों का विवेचन किया गया है। सातवाँ अध्याय समन्वित शिल्प विधि के उपन्यासों को लेकर रचा गया है।

आठवें तथा अन्तिम अध्याय में उपसंहार रूप में यह बताया गया है कि उपन्यास शिल्प विधि का क्या उपयोग है तथा इसने उपन्यास को किस दिशा में अग्रसर किया है। हिन्दी उपन्यास के भूत, भविष्य और वर्तमान को शिल्प के आधार पर निर्धारित करने की एक चेष्टा भी इसी अध्याय में संयोजित हुई है।

अन्त में आभार प्रदर्शन का प्रमुख, महत्त्वपूर्ण तथा शिष्ट कार्य सम्पन्न करने के निमित्त मैं पंजाब विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष तथा अपने निरीक्षक डा० इन्द्रनाथ मदान के प्रति हृदय से श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा सहयोगात्मक निरीक्षण विधि द्वारा ही यह कठिन कार्य सहज एवं रुचिकर बन सका और मैं प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रणयन में जुट गया। लेखक उन आलोचकों, उपन्यासकारों तथा विद्वानों के प्रति भी आभारी है जिनकी रचनाओं को पढ़कर वह लाभान्वित हुआ है।

प्रबन्ध के प्रकाशन में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य आईं। मेरा यह अनुभव है कि प्रबन्ध लेखन जितना सरल है उसका प्रकाशन उतना ही विकट है। इसी कारण मेरे दृष्टिकोण और निजी रुचि में एक परिवर्तन आया और मैंने अपना प्रकाशन का सहयोग पाकर इसे स्वयं प्रकाशित कराने का निश्चय किया। अतः प्रस्तुत प्रबन्ध को शीघ्र मनचाहे समय की अल्प अवधि में प्रकाशित करने के लिए उमेश भटनागर व सुभाष भटनागर (अर्चना प्रकाशन, जयपुर) तथा सुन्दर हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली के व्यवस्थापकों का धन्यवाद देता हूँ। यह शोध प्रबन्ध प्रबुद्ध पाठकों को भा पाती है अतएव वे इस पर अपनी प्रतिक्रिया से अवश्य मुझे अवगत करा कष्ट करें जिससे मेरी जिज्ञासा शान्त हो और मैं उनके सुझावों से लाभान्वित हो हिन्दी उपन्यास के वृहद् इतिहास का चिन्तन के कार्य में उनका प्रयोग कर सकूँ।

हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर कालिज कोटा

—प्रेम भटनागर

अनुक्रम

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

साहित्य एक ललित कला है अतः साहित्यिक रचनाओं का स्थान अन्य सभी प्रकार की रचनाओं से भिन्न है। किसी भी भावना विचार या सिद्धान्त को भाषाबद्ध कर देने के पश्चात उसे साहित्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता। साहित्य वह तभी बनता है जब उसमें स्थायित्व तथा रागात्मक तत्त्व आते हैं। साहित्यकार भावना और विचार का प्रदर्शन ही नहीं करता वह उसे कलात्मक रूप भी देता है। एक विशेष शिल्प भी प्रदान करता है। रोचकता आकर्षण और चिर प्रभाव उत्पन्न हेतु साहित्यकार शिल्प की सृष्टि करता है। शिल्प साहित्य की विभिन्न विधाओं में विविध रूपों में प्रस्फुटित हुआ है। शिल्प सबन्धी विभिन्न रूपों का विकास कोई आकस्मिक घटना या संयोग नहीं है। साहित्यिक रचनाओं में साहित्य के विभिन्न अंगों के साथ-साथ साहित्य शिल्प का शनैः शनैः विकास हुआ। यह विकास प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकारों द्वारा समय समय पर अपने सतत श्रम और प्रयोग द्वारा प्रस्तुत हुआ है। साहित्य के आरम्भिक रूप का अवलोकन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आदि काल में शिल्प की कोई निर्धारित रूप रेखा नहीं थी। साहित्यकार अपने पराश्रम अन्वेषण और विभिन्न प्रयोगों के द्वारा शिल्प संबंधित मान्यताओं को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करते गए और उनमें से कतिपय समय और वातावरण द्वारा स्वीकृत होते गए।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का संबंध हिन्दी उपन्यास है अतएव कुछ शब्द उसपर लिख देना भी सामयिक होगा। उपन्यास हिन्दी साहित्य की अभिनव एवं महत्त्वपूर्ण विधा है। इसके विकास और गतिविधि ने साहित्य के अन्य अंगों के विकास क्रम को बहुत कम समय में बहुत अधिक पीछे छोड़ दिया है। यह शब्द उप समीप तथा न्यास थाती के योग से बना है। जिसका तात्पर्य है—निकट रखी हुई वस्तु अर्थात वह चीज जिसे पढ़कर लगे कि यह तो हमारी या हमारे किसी पड़ोसी मित्र या रिश्तेदार की जीवनी जीवनगाथा या जीवन प्रतिबिम्ब ही तो है। उपन्यास साहित्य की सबसे अधिक लचीली चमकीली और नुकीली विधा है जो कभी भी कोई भी रूप धारण कर पाठक के मनोभावों को आन्दोलित करती है। इसमें एक युग की कथा भी हो सकती है एक क्षण विशेष की भी एक पूरे समाज की जीवनी भी संभव है एक अकेले व्यक्ति की ऊब भी चित्रित की जा सकती है। कथानक की प्रधानता भी मोहित कर सकती है कथा विहीन प्रयोग भी चले हैं। इतिहास भी वर्णित होता है अचल भी मुखरित हुआ है व्यक्ति भी विश्लेषित हुआ है और जड़ चेतन

दाता को वाणी मिली है। कथा हो तो भी ठीक मात्र शिल्प ही हो तो भी गुजारा चल जाता है और वस्तु तथा शिल्प म सतुलन हुआ तो कहना ही क्या ?

हिन्दी म श्रीनिवास दास, देवकी नन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, किशोरीलाल गोस्वामी आदि उपन्यासकारो की रचनाओ ने अपने समय के शिल्प का प्रयोग कर पाठकीय आकर्षण को बनाये रखा है। इन आरम्भिक कलाकारो की रचनाओ म वस्तु तत्त्व का ही प्रवाह है शिल्प का कोई निश्चित रूप रखा तब तक तयार नही हुआ थी। इसका मुख्य कारण इन कथाकारो का जीवन की जटिलताओ वज्ञानिक दृष्टि अनुरूप अनुसधान एव साहित्यिक प्रभावो के प्रति उदासीन रहना और मात्र उपदेश या मनोरजन का ही उद्देश्य मानकर घटना वचित्र्य या टोका टिप्पणी आर उपदेश को प्रश्रय देना है। प्रमचन्द स पूर्व के कथाकारो की कथा साहित्य और प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द समकालीन एव प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारो की कथा रचनाओ म एक स्पष्ट रूपाकार (form) का अन्तर दृष्टव्य है। वस्तु स्थिति तो यह है कि प्रेमचन्द ही पहले कथाकार हैं जिन्होंने प्रथम बार नवीन, मौलिक व्यवस्थित रूप म शिल्प प्रयोग काय का आरम्भ किया। प्रेमचन्दोत्तरयुग म द्रुत गति स शिल्प दृष्टि का प्रचार और प्रसार अनेक उपन्यासकारो के अध्ययन मनन अन्वेषण सामाजिक परिवेश, तथा वयक्तिक परिप्रेक्ष्य का परिणाम है। आज जो शिल्प सर्वथा मानदण्ड प्रस्तुत हो रहा है उसका सर्वेक्षण करने स पूर्व यह जान लेना परम आवश्यक है कि शिल्प क्या है ?

शिल्प अग्रेजी के प्रसिद्ध शब्द टक्नीक (Technique) का हिन्दी अनुवाद है। इसकी परिभाषा अग्रेजी शब्दकोश म इन शब्दो म दी गई है— कलात्मक कार्यवाही की वह रीति जो सगीत अथवा चित्रकला म प्राप्य है तथा कलात्मक कारीगरी।[1] इससे मिलती जुलती परिभाषा ज्ञान मडल लिमिटेड, बनारस द्वारा सम्पादित बृहद् हिन्दी कोश म दी गई है। यथा— शिल्प स अभिप्राय हाथ स कोई वस्तु तयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है।[2]

टक्नीक के पर्यायवाची शब्दो की भी कोई कमी नही है। क्राफ्ट (Craft) स्ट्रक्चर (Structure) तथा फार्म (Form) अग्रेजी के ये नाना शब्द टेक्नीक के ही पर्यायवाची हैं। इनम स सर्वाधिक प्रयोग फार्म (Form) का होता है जिसका शब्दार्थ है—रूप। शिप्ले महाशय ने अपने सम्पादित कोष म इसकी व्याख्या इन शब्दो म प्रस्तुत की— कथावस्तु वह है जिसके द्वारा एक वस्तु तयार होती है रूप वह है जो इसको वसा बनाता है जसी वह है। अरस्तु के मतानुसार रूप केवल आकार ही नहीं है, अपितु आकार देने वाली विधा है। विधान अथवा चरित्र ही नहीं है अपितु विधान का वह सिद्धान्त है जो चरित्र को बनाता है।[3]

1 Mode of Artistic execution in Music painting & technical skill in Art

Oxford Dictionary of Current English P 1258

२ बृहद् हिन्दी कोश—पृष्ठ १३३४।

3 The Matter is that of which a thing is made, the form that

इसका तात्पय यह हुआ कि रूप ही टकनीक नहीं है शिल्प विधि का असली पर्यायवाची रूपाकार है जो किसी भी साहित्यिक कृति को एक विशिष्ट आकार देता है शक्ल देता है। और फिर यह रूपाकार (Form) साहित्य की रूढि या परम्परा भी नहीं है जो साहित्यकार के मनोभावो आवेगो तथा सवेदनाओ को एक स्थिर रूप से रूपायित करके रख दे। यह तो सतत प्रवाहित जीवन क्रम की भाति नित प्रतिदिन परिवर्तित होने वाली कला की वह सतान है जो समस्त रूढियो के प्रति विद्रोह करके अपने स्वतन्त्र दृष्टि कोण के अस्तित्व के प्रति सजग रहने मे ही अपना हित समझता है। रूपाकार (Form) की माता कला का बाप अभय है क्योकि इसकी सामग्री कोई भौतिक पदार्थ न होकर मनोवेग एव अनुभूतिया है। कलाकार की अनुभूति जितनी तीव्र व्यापक और युगान्त कारी होती है उतनी ही उसकी दृष्टि और रूप विधा सचेत विश्लेषणात्मक और मौलिक होती है। मनोभावो के प्रेषण हित वह भाषा शैली और रूपाकार (Language Style and Form) का आश्रय लेता है। इन तीनो मे भी रूपाकार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योकि रचना की प्रभावान्विति अधिकतर बाहरी रूप पर ही निर्भर रहती है। रूपा कार की रूढि विद्रोहिता स्वय सिद्ध है। इस सम्बन्ध मे अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक श्री इ० एम० फास्टर लिखते है—

"रूपाकार साहित्य परम्परा अथवा रूढ कला सिद्धान्त नही है यह तो युग-युग को पीछे रख ताकि लाघन पीढी दर पीढी परिवर्तित होता रहता है।"[4]

अपनी कला अपनी शिल्प विधि तथा रूपाकार के प्रति प्रत्येक स्वतन्त्रचेता कला कार सचेत रहता है। तभी तो साहित्य के इस बाह्य परिधान की महत्ता स्वीकारते हुए एक पश्चिमी आलोचक श्री विलियम वान ओ'कानर कहते हैं— 'रूप तो विचार का बाहरी परिधान है इसलिए यह रूप जितना ही विचारानुकूल होगा, उतना ही उत्कृष्ट माना जायेगा।'[5]

वस्तुत रूपाकार या शिल्प विधि की आवश्यकता किसी भी रचना मे भीतरी और बाहरी सतुलन स्थापना हित होती है। कतिपय पश्चिमी और भारतीय आलोचक उप न्यासकार उपन्यास मे रूपाकार को वस्तु तत्त्व की अपेक्षा कम महत्त्वपूर्ण मानते है जैसे स्कॉट जेम्स कहते हैं—'यह (रूपाकार) तो कलाकार के मन द्वारा विषय वस्तु पर

---

which makes it what it is For Aristotle therefore form is not simply shape but that which shapes not structure or character simply but the principle of structure which gives character

The Dictionary of world literary terms

4 Form is not tradition It alters from generation to generation

'Art for Arts sake Two cheers for Democracy P 103

5 "Form is the objectifying of idea and its excellence it would seem, depends upon its appropriateness to the idea '

Forms of Fiction P 1

आरोपित वाह्याकार है।[६]

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे इसे अनावश्यक मानते हों। उनकी स्थापना है कि मनोयोगिता से लिखित प्रत्येक उपन्यास विधि और प्रविधि में अपनी पृथक समस्या प्रस्तुत करता है।[७]

हिन्दी के सुधी कथाकार जैनेन्द्र के भी कला और शिल्प के सम्बन्ध में अपने स्वतन्त्र विचार हैं। अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'मैं और मेरी कला' में एक स्थान पर वे लिखते हैं— शिल्प अनावश्यक नहीं है। कारीगरी को किसी तरह हल्की चीज नहीं समझा जा सकता। लेकिन उससे विकार उपजते हैं। नहीं तो पाप नहीं उपजता।[८] उन्होंने लिखा कि शिल्प अनावश्यक नहीं है। पर यह नहीं लिखा कि वह आवश्यक है। अर्थ यह हुआ कि जैनेन्द्र भी शिल्प की अपेक्षा वस्तु तत्व पर बल देने वाले कथाकार हैं तभी तो वे कहते हैं कि शिल्प द्वारा कला का निर्माण होता है प्राण प्रदान करनेवाले जी का नहीं। उनके मतानुसार शिल्प का कार्य तो साहित्य को गति देना है। उन्होंने अपने स्थायी और उच्च साहित्य शीर्षक लेख में कहा भी है— टेकनीक उस नाच के नियमों का नाम है। पर नाच की जानकारी की उपयोगिता इसी में है कि वह सजीव मनुष्य के जीवन में काम आवे। वैसे ही टेकनीक साहित्य सृजन में योग देने के लिए है। शृंगार-शास्त्र किन्हें पढ़े बिना भी जैसे प्रेम के बल से माता पिता बनकर शिशु सृष्टि की जा सकती है वैसे ही बिना टेकनीक की मदद के साहित्य सिरजा जा सकता है।[९]

जैनेन्द्र की विरोधी धारणा के उन्नायक हैं श्री मेंडिलाव। ये मानते हैं कि शिल्प ही सर्वस्व है बिना इसके विषय वस्तु एवं चरित्र चित्रण में रंग आ ही नहीं सकता। मेन्डिलाव से भी अधिक शिल्प की सराहना करनेवाले हैं पश्चिम के सशक्त उपन्यासकार हेनरी जेम्स। वे टेकनीक को साधन न मानकर साध्य तक की सीमा तक खींच कर ले गये। टाइम एण्ड नावेल में इस प्रकार के कथन प्राप्य हैं— वह समय बीत गया जब शिल्प को मात्र साधन माना जाता था जिसके द्वारा अनुभूत सत्य को गठित कर अपने हित में लाभ लिया जाता था।[१०] जिनके आधार पर हेनरी जेम्स शिल्प को अतिरिक्त महत्ता के विन्य

6 It is objective order that has been imposed on matter by the mind

The making of literature P 305

7 Every carefully written novel presents its own separate problem in method and technique

Do P 37

८ साहित्य का श्रेय और प्रेय—पृष्ठ ३५५

९ वही—पृष्ठ ३७०

10 The time has long passed when technique could be taken simply to mean the ways in which a given body of experience may be organised and manipulated to the best advantage

Time and the Novel P 234

म कह गये हैं—'रूप उस दर्जे तक विषय-वस्तु है कि उसके बिना विषय वस्तु सर्वथा नहीं है।'[11]

न केवल हेनरी जेम्स अपितु मार्क शारर ने भी टेकनीक को सबसे अधिक महत्व देते हुए लिखा है—'जब हम शिल्प के विषय में बात करते हैं तब हम लगभग सभी कुछ मान लेते हैं।'[12]

तात्पर्य यह कि शिल्प विधि को ही सब कुछ समझ लेते हैं।

रूपाकार एवं शिल्प विधि का यह तात्विक विवेचन स्पष्ट कर देता है कि शिल्प का महत्त्व मनोवेगों और भावों को स्पष्ट आकार देने में सहायक सिद्ध होता है। अच्छी रूप विधा या शिल्प विधि वही है जो सभी वस्तु को सही समय, सही परिप्रेक्ष्य में उचित ढंग से प्रस्तुत कर दे। इसके लिये उचित विषय का चुनाव एक अनिवार्य शर्त है। वह विषय जो कथाकार के जीवन में सबंधित नहीं या उसकी दृष्टि की पैठ के बाहर की वस्तु है उसके हाथों में पड़कर सज धजकर सामने आने की बजाय बिगड़ जायगा। वह कथाकार जो न मनोवैज्ञानिक है न मनोविज्ञान में जिसकी रुचि है विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का उपन्यास नहीं लिख सकता और यदि वह ऐसा करने की भूल कर बैठेगा तो वह अपने कथ्य को मार्मिक रूप में अपने पाठकों तक पहुँचाने की कला में बुरी तरह असफल रहेगा।

यहाँ पर एक मौलिक प्रश्न उठ खड़ा होता है। वह है कि कथाकार कौन से ढंग को अपनाये? किस शिल्प विधि को प्रश्रय दे? तथा उपन्यास के तत्वों के साथ उसका क्या सबंध है? और निजी दृष्टिकोण में क्या?

निजी दृष्टिकोण (Point of view) की स्वतन्त्रता का उद्घोष उपन्यासकारों ने समय-समय पर बड़े जोर शोर के साथ किया है। अंग्रेजी उपन्यास की आरम्भिक अवस्था में प्रसिद्ध उपन्यासकार विलियम फील्डिंग ने अपनी सुप्रसिद्ध रचना टॉमजोन्स में लिखा —'मैं पूर्ण स्वतन्त्र हूँ कि कोई नियम बनाऊँ जो इसके उपयुक्त हो।'[13]

सारांश यह कि आवश्यकता अनुसार उपन्यासकार नई-नई शिल्पविधियों का विनियोग कर सकता है जो उसके भिन्न भिन्न कोणों से देखने की दृष्टि को स्पष्ट करने में सहायक होती हैं। वस्तुतः उपन्यास की शिल्प विधि का निर्धारण मुख्यतः उपन्यासकार की दृष्टि अथवा दृष्टिकोण (Point of view) पर ही अवलम्बित होता है। इस संबंध में प्रसिद्ध समालोचक श्री पर्सी लुबक का कथन विचारणीय है। उन्होंने लिखा है— 'उपन्यास कला की शिल्प विधि अथवा कारीगरी की जटिलता का निर्धारण मूलतः कथाकार के दृष्टिकोण पर निर्भर है। कथाकार का कथा के साथ जो दृष्टिकोणात्मक संबंध होता है वही आखिर

11 Henry James letter to Walpole (19 5 1912) selacted Letters 1956

12 When we speak of technique then we speak of nearly everything

' Technique as Discovery, Forms of Modern Fiction P 9

13 'I am at liberty to make what laws I please therin P 69

म उपन्यास का शिल्प निर्धारण करता है। [14]

पर्सी लुबक महोदय के साथ मिलता जुलता मत श्री आर० एल० ग्रवा का भी है। वे दृष्टिकोण पर अत्यधिक बल देते हैं और इसे शिल्प विधि से पृथक विषय नहीं मानते उनके मतानुसार औपन्यासिक विन्यास में दृष्टिकोण ही टकनीक का मूलभूत सिद्धान्त है। एक या दूसरे दृष्टिकोण को अपनाने से कथावस्तु, चरित्र चित्रण, वातावरण, वर्णन सभी कुछ अपने तरह नियत या निर्णीत होते हैं।

तो मूल तत्त्व की बात यह हुई कि निजी दृष्टिकोण या उद्देश्य द्वारा किसी भी कथाकार की शिल्प विधि का निर्धारण और संचालन होना स्वयं सिद्ध है। पर दृष्टिकोण की सार्वभौमिकता के आधार पर वस्तु तत्त्व या उपन्यास के किसी अन्य तत्त्व की पूर्ण अवहेलना नहीं की जा सकती। विषयवस्तु को भी शिल्प के समतुल्य रखा जा सकता है। वस्तु तत्त्व का महत्त्व नकारना किसी भी कथा शिल्पी के लिए एक अपने तरह आत्मघातक भी सिद्ध हो सकता है। वस्तु तत्त्व के अन्तर्गत कथासूत्र, मुख्यकथानक, प्रासंगिक कथा, अन्तकथा तथा विभिन्न घटनाएँ आते हैं। पर शिल्प वस्तु तत्त्व से कहीं अधिक शक्तिमान एवं समृद्ध विधा है क्योंकि इसके अन्तर्गत वस्तुगठन योजना, चरित्रांकन विधि, संवाद परिकल्पना, वातावरण नियोजन, विचार संचालन तथा भाषा और शैली तत्त्व नियोजित होते हैं। रुचि का भी शिल्प में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। रुचि एवं संस्कार अनुरूप उपन्यासकार कथा रचना है

भिन्नरुचिर्हि लोकः सर्वविदित लोकोक्ति है। रुचि की पकड़ एक जटिल समस्या है। उपन्यासकार के सामने दो प्रश्न रहते हैं—आत्मरुचि का प्रश्न और पाठक की रुचि का ध्यान प्रेमचन्दपूर्ववर्ती उपन्यासकारों का नारा रुचि का अधिक ध्यान रहता था अत उनके उपन्यासों में लोकरुचि अनुरूप शिल्प का गठन हुआ। इनकी रचनाओं में शिल्प का प्रयोग न मानना अनुचित है क्योंकि यदि उनमें शिल्प विधि की पकड़ न होती तो वे रचनाएँ केवल गद्य में छपनेवाले अखबार विज्ञापनों का स्थान ग्रहण कर लेतीं उन्हें साहित्य की कोटि में स्थान न मिलता उनकी लोकप्रियता रोचकता और पाठकीय आकर्षण ने ही यह सिद्ध कर दिया है कि उनके अन्दर निश्चित न सही अव्यवस्थित ही कह लीजिए शिल्प का समावेश रहा है। जासूसी कथा का मार्ग तिलिस्म के स्वप्न ऐयारी संसार की सैर सभी पाठकों की रुचि का केन्द्र रही हैं उनके अनुरूप उपन्यास शिल्प का निर्माण हुआ। जिसमें केवल घटना वैचित्र्य आकर्षक संवाद घुमावदार वातावरण ही प्रधान रहे। इन कथाकारों की रुचि भी ऐसी ही थी।

प्रेमचन्द ने इस शिल्प को संकुचित मानकर मनोरंजन से ऊपर चारित्रिक महत्त्व की बात की। वे उपन्यास को मानव मनोरंजन का साधन मात्र न मानकर मानव चरित्र का उद्घाटक मानकर चले इसके अनुरूप उनके औपन्यासिक शिल्प में एक बड़ा परिवर्तन

14 The whole intricate question of method in the craft of fiction I take to be governed by the question of point of view the queston of the relation in which the narrator stands to story

The Craft of Fiction P 251

आया। वे उपन्यास को अनगढ तिलस्म जासूसी उछल कूद और भाव लोक की रंगीली दुनिया से खींचकर यथार्थ परिस्थितियों और चेतन मन की व्यापक भावनाओं के धरातल पर लाए। इस परिवर्तन को आचार्य नन्द दुलारे इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—"उपन्यासों के निर्माण और अनुवाद के आरम्भिक युग को पार करते ही हम हिन्दी के उस युग में प्रवेश करते हैं जिसका शिलान्यास प्रेमचन्द जी ने किया और जिसमें आकर हिन्दी उपन्यास एक सुनिश्चित कला स्वरूप की पहचान सका तथा अपने उद्देश्य से परिचित होकर उसकी पूर्ति में लग गया।"[15] प्रेमचन्द ने सामाजिक समस्याओं और पात्रों के चित्रण में अपने औपन्यासिक शिल्प का परिवेश बाधा तो उनके परवर्ती मनोवैज्ञानिक रुचि के कथाकारों ने वैयक्तिक विश्लेषण पर जोर दिया। कतिपय उपन्यासकार स्वप्नद्रष्टा बनकर प्रतीकात्मक शिल्प के संयोजक बने। हम देखते हैं कि कोई प्राचीन मान्यताओं को पढ़कर नाक भौं सिकोड़ने लगता है तो कोई नवीन प्रयोगों के पीछे ही लाठी लेकर दौड़ता है। रुचि वैभिन्न के इस युग में क्या ग्रहणीय है क्या त्याज्य इसका उत्तर तो शिल्प नहीं दे सकता हां किस में किस परिणाम में क्या उपादेय है यह वह अवश्य बताता है। शिल्प ही वह साधन है जिसके द्वारा उपन्यासकार अपने विजय की खोज जांच पड़ताल और विकास करता है। जीवन और जगत बहुत व्यापक है। इनकी तुलना में कथाकार का मानव सत्य और मान्यताओं का अनुभव है बहुत छोटा होता है। उसकी अपनी सीमाएं होती हैं, संस्कार होते हैं और होता है—स्वतन्त्र दृष्टिकोण जिनके सहारे वह अपने औपन्यासिक शिल्प की रचना करता है। शिल्प की रचना उपन्यास की प्रथम रचना के साथ साधारणतः कम प्रस्फुटित होती है। वस अपवाद हो सकते हैं जैसे नरेश मेहता रचित डूबते मस्तूल का शिल्प प्रयोग। शिल्प उपन्यासकार की रुचि पाठक की मांग समय की पुकार में सन्तुलन स्थापित करने का माध्यम है—शिल्पगत परिपक्वता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि लेखक अन्धविश्वासों, थोथी मान्यताओं जटिल संभावनाओं अविकसित और हानिप्रद रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करे और उस माध्यम को प्रश्रय दे जो लोक मंगल और व्यक्ति चेतना का उन्नायक हो कोई भी। शिल्पविधान केवल इसलिए अभिनन्दनीय नहीं कहा जा सकता कि उसे बड़े बड़े कथाकारों की रुचि का प्रश्रय मिला है। उनके द्वारा खींच दी गई कुछ विशिष्ट शिल्प रेखायें भले ही प्रशस्त हों किन्तु अपने समग्र रूप में पूर्ण एवं उपादेय नहीं बनी जा सकती, हर शिल्पविधि की अपनी सीमायें हैं यह मानकर चलना होगा तभी प्रचलित शिल्प प्रयोगों की वैज्ञानिक गवेषणा की जा सकती है। हिन्दी उपन्यासकारों ने शिल्पगत प्रौढ़ता तो प्राप्त कर ली किन्तु अंग्रेजी रूसी और फ्रेंच कथाकारों के समक्ष वे नहीं रखे जा सकते, एक भ्रान्त धारणा है। यह कहना हिन्दी उपन्यास साहित्य के अपूर्ण अध्ययन और अधूरे ज्ञान का द्योतक होगा। हिन्दी उपन्यास शिल्प के लिए यह क्या कम महत्वपूर्ण बात है कि जिस स्थिति को विदेशी उपन्यास साहित्य और शिल्प शताब्दियों की यात्रा तै करके पहुंचा है हिन्दी में कथाकारों ने वह अपेक्षाकृत बहुत कम वर्षों में प्राप्त कर लिया है। इस संबंध में डा० रामरतन भटनागर लिखते हैं—'हिन्दी उपन्यास ने पराधीन गुरु' से परे तक ८० वर्षों में ही पश्चिमी उपन्यास के विकास

१५ आधुनिक साहित्य—पृष्ठ १४०

की तीन शाब्दियां पार कर ली और नये उपन्यास का उदय इंगलैंड की इस श्रेणी की रचनाओं के बहुत बाद नहीं हुआ।'[१६]

कथावस्तु और शिल्प

उपन्यास के तत्वों के अन्तर्गत कथावस्तु को प्रथम और अनिवार्य तत्त्व के रूप में प्रायः सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है। प्रमुख विचारक इसे कहानी अथवा उपन्यास में वही स्थान देते रहते हैं जो शरीर में अस्थियों को मिलता रहा है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास के क्षेत्र में जब पहले पहले शिल्पगत प्रयोग हुए उस समय तक कथावस्तु और शिल्प का सम्बन्ध अटूट एवं असंदिग्ध माना गया किन्तु इस क्षेत्र में ज्यों ज्यों नये शिल्पगत प्रयोग हुए वस्तु तत्त्व भीना निर्बल एवं संदिग्ध होता चला गया। कतिपय शिल्प प्रयोगों के पिछलग्गू उपन्यासकार कथा विधान की उपेक्षा करने लगे अतएव कथावस्तु में संगठन व्यवस्था आदि की तो बात ही छोड़ दीजिए वस्तु पक्ष की उपादेयता पर ही प्रश्न मत हो चले। जहां पर रिचार्ड्स आदि विचारकों ने कहानी उपन्यास आदि सर्जनात्मक साहित्य में वस्तु-तत्त्व को प्रधानता दी वहां विज्ञान आदि विद्वानों ने इस तत्त्व के प्रति घोर घृणा प्रकट की। प्रेमचन्द और प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासकार इकहरी कथावस्तु से तो कभी तृप्त ही नहीं होते थे विस्तार और वर्णनात्मक विधि ने उन्हें दोहरे और तीहरे कथावस्तु वाले उपन्यास लिखने पर विवश किया किन्तु जैनेन्द्र तथा इलाचन्द्र जोशी ने अनेक इकहरी कथावस्तु वाले उपन्यास लिखे।

नये उपन्यासकारों ने विस्तार की अपेक्षा गहराई परिमाण (घटनाओं की संख्या) की अपेक्षा गुण और स्थूलता की अपेक्षा सूक्ष्मता को प्रश्रय दिया है। समय और स्थान भी अब सीमित होते जा रहे हैं। कथानकों में कथा केवल एक दिन तक और कहीं कहीं एक घंटे तक सीमित हो गई है। स्थान के लिए भी उपन्यासकार को प्रेमचन्द की भांति काशी से उदयपुर तक (रंगभूमि में) और जोशी की भांति मसूरी से कलकत्ता तक (जिप्सी में) दौड़ लगाने की आवश्यकता नहीं रह गई। चांदनी के खण्डहर में गिरिधर गोपाल ने केवल इलाहाबाद की सिविल लाइन के घर में अपनी कथावस्तु को आबद्ध रखा है। यज्ञदत्त शर्मा के स्वप्न खिल उठा में केवल एक घंटे के कथानक में सौ वर्ष की पूरी लम्बी पृष्ठभूमि को संयोजित किया गया है। आधुनिक उपन्यासों में जहां शिल्प ही शिल्प है वहां घटनाएं ढूंढ़ता पथ है वहां तो केवल मानसिक घटकों (Psychic *Contents*) का फुट-पुट दिग्दर्शन होता। कथावस्तु एवं घटनाओं के जाल की अनिवार्यता स्वीकार न करने वाले विचारकों को निरा महत्त्वहीन नहीं कहा जा सकता। कथा तत्त्व की भर्त्सना करने वाले ये विद्वान तक रखकर बात करते हैं। शेरवुड एण्डरसन (Sherwood Anderson) ने कथानक को कहानी का विष कहा है।

प्रसिद्ध आलोचक कथा विधान ने तो पूर्व नियोजित व्यवस्थित कथावस्तु में पूर्ण अनास्था प्रकट की है। उनका कथन है— आपको यह बात चाहे अच्छी लगे या बुरी मैं-कथावस्तु—इस शब्द का यह भाग करके कि यह डूब जाएगा और फिर नहीं उभरेगा

१६ जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा—पृष्ठ २२१

सीधे सागर म फेंक देना चाहूगा। अनगत कला या विधान के अतगत यह एक भारी भ्रामक शब्द है। सना क रूप म यह साधारणतया, न कम न अधिक मात्रा म कहानी समझा जाता है या रूप रेखा माना जाता है। इसका क्रिया रूप म प्रयोग आकार या विधि के अथ म होता है। अनिश्चितता से मुझे घृणा है। अत म प्लाट शब्द का सना वाचक रूप के लिए और क्रियावाचक के लिए रचना शब्द का प्रयोग कर रहा हू।"[17]

इन आलोचकों के मतानुसार कथानक के आदि मध्य और अन्त की कोई निश्चित, पूव नियोजित योजना की आवश्यकता ही नही है। यह भी आवश्यक नही कि किसी विषय का चरमोन्नत अवस्था तक पहुचाया जाए और उसके निमित्त समस्त अत दशाए, गौण घटनाए एव विभिन्न भूमिकाए क्रमपूवक नियोजित की जाए। य पीठिका पर नहा, सिद्धि पर घटना पर नही पात्र या विचार पर सारा ध्यान केद्रित रखते हैं। अब तक उपयास शिल्प के विचारक के सम्मुख व्यवस्थित और अव्यवस्थित कथा शृखला की बात रही थी, किन्तु कथावस्तु वर्जित मानन वाला का सिद्धान्त एकदम चकाचौंध उत्पन्न कर देन वाली बात है। चेतना प्रवाहवादी शिल्पिया ने घटनाओं की बाह्यात्मकता का विदारण ही नहा किया अतजगत के घटका का भी निराकृत कर दिया है। व केवल विचारा के परिवेश म घूमते हुए पात्रा के चारित्रिक विकास पर ही अपनी शक्ति केद्रित रखते हैं। इसी प्रकार प्रतीकात्मक शिल्प विधि की कतिपय रचनाओं म वस्तु तत्त्व का सीमित आकार देकर स्वप्ना सकेता और रूपका का प्रश्रय मिला है। चान्नी के खण्डहर म दिवा स्वप्ना यथाथ स्वप्ना और सकेता के साथ-साथ रूपका का भी सफल नियाजन मिलता है। किसी भी प्रधान कथा का महत्त्व न देकर गौण कथाओं का तारतम्य और एक म से दूसरी कथा का निकास भी उपयास शिल्प की वतमान गति विधि की ओर स्पष्ट सकेत है। धमवीर भारती रचित 'सूरज का सातवा घोडा' इसका उदाहरण ह। शिव प्रसाद मिश्र की बहती गगा म सत्रह कहानिया स्वतन्त्र रूप म बही ह।

प्रेमचन्द युग म ही कथा तत्त्व का ह्रास आरम्भ हा गया था। प्रेमचन्द के समकालीन प्रसिद्ध उपयासकार जनेन्द्र न उनकी श्रेष्ठ रचना गोदान पढकर अपना मत दिया कि इसम आवश्यकता से अधिक विस्तार है। अपन एक लेख "प्रेमचन्द का गोदान, यदि मैं लिखता" म वे लिखते हैं—"गाव का कथा पर शहर कुछ थोपा हुआ सा है। वह अनिवाय नहीं है, पस्तक की कथा के साथ एक नहीं है। हा सकता था कि होरी का कथा के केन्द्र म रहन क लिय और ऐस कि सब प्रकाश उसी पर पडे दूसर ओर ध्यान को खीच

17 With or without your kind permission I will kick the word plot right into the sea hoping that it will sink and never reappear It is the most deceptive word in the jargon of the art craft, or what would you As a noun it uselly means nothing more or less than story outline or simply As a verb it means to shape or plan

I had ambiguities and so I am substituting story outline for the noun, and devise for verb

—Creative Technique in Fiction, P 424

कर अपनी ओर न ले जाये शहर की पुस्तक से मैं अनुपस्थित हो जाना रहता।[१८]

जैनेन्द्र भारी भरकम कथानक के विरोधी रहे हैं तभी तो शहरी कथा के प्रति अपनी अनास्था प्रकट करते हैं। जो कथा तथा घटनायें उन्हें असंगत और अनुपयुक्त जान पड़ती हैं वही प्रेमचन्द के लिये अर्थपूर्ण हैं और उनके द्वारा अपनायी शिल्प विधि की प्राण तत्त्व हैं। क्योंकि प्रेमचन्द वर्णनात्मक शिल्प विधि के प्रणेता हैं अतएव उनकी सामग्री की चयनक्रिया पर आक्षेप उचित प्रतीत नहीं होता। जिस सामग्री का उपयोग जैनेन्द्र को भारी अनुपयुक्त और संदिग्ध प्रतीत हुआ उसे ही प्रेमचन्द अपनी वर्णनात्मक शिल्प विधि द्वारा महत्त्वपूर्ण और प्रभावोत्पादक बना गये। उनके वर्णनों में प्रथम तो नीरसता है ही नहीं और यदि कहीं है भी तो वह अति गौण और नगण्य है।

एक कारण कथानक के ह्रास का जैनेन्द्र जैसे उपन्यासकारों का जीवन दृष्टि है तो दूसरा मनोविज्ञान का उदय है। मनोविज्ञान ने उपन्यासकारों को वर्णनात्मकता की परिधि से खींच कर विश्लेषणात्मकता की ओर अग्रसर किया। कथा जीवन सरिता से हट कर मनोगति के सरोवर की ओर खिसक आयी। पात्र की अन्तर्यात्रा कथा का प्रतिपाद्य बनी। बहिर्मुखी प्रवृत्ति का त्याग कर कथा अन्तर्लोक की सूक्ष्म मानसिक घटकों (*Psychic content*) पर आ टिकी। इसीलिये कथा आरम्भ का जीवनी से प्रारम्भ न होकर विच्छिन्न विपर्यस्त होकर कभी मध्य और कभी अन्त से आरम्भ हुई। जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' में नायक जीवन व्यतीत कर अपनी कथा कहता है। 'शेखर एक जीवनी' में अज्ञेय शेखर के जीवन की मध्यावस्था में उसकी कथा आरम्भ करते हैं।

आधुनिक काल में उपन्यासकार ने कथानक का सूत्र भी स्वयं के हाथ से निकाल कर पात्र के हाथ में सौंप दिया है। श्री इलाचन्द्र जोशी की 'लज्जा' 'पर्दे की रानी' श्री अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' और श्री लक्ष्मी नारायण लाल के 'काले फूल का पौदा' में एक या एक से अधिक पात्र बारी बारी अपनी कथा पाठक को सुनाते हैं। हेनरी जेम्स इस कथा उद्घाटन विधि को दृष्टि विशेष की संज्ञा देते हैं। इस तथ्य की पुष्टि जैनेन्द्र जी ने भी की है। वे लिखते हैं— जेम्स इस विशिष्ठ विधि को जिसके द्वारा कथा कही न जाकर एक या विभिन्न पात्रों द्वारा स्थिति को प्रकाश में लाती है—दृष्टिकोण की संज्ञा देते हैं।[१९]

अपना ही सर्जित कथा में लेखक की तटस्थता कथा के प्रति अनासक्ति और पात्रों की अतिरिक्त महत्ता देने की प्रवृत्ति देने की प्रवृत्ति प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास की शिल्प परिवर्तन की उद्घाटक है।

कथा को अल्पसूत्री बनाने का एक और कारण भी है। वह है शिल्प के प्रति उपन्यासकार का परिवर्तित दृष्टिकोण। प्रेमचन्द युगीन और प्रेमचन्द परम्परा के आगे के कथाकार जीवन की विविधता की बात तफसील (ब्यौरा) तथा प्रचा

१८ साहित्य का श्रेय और प्रेय—पृष्ठ २३१

19 ' James Called this particular method of revelation of story that is illumination of the situation and characters through one or several minds the point of view Ibid Page 36

रात्मा ता म विश्वाम रखते थे या रखते है जबकि नय शिल्प के प्रणता बडी बडी तफसीला (व्याख्याओ) म मानव चरित्र की मात्र ऊपरी स्तर की बातें ही पाते हैं व छोटी म छोटी और सूक्ष्म से सूक्ष्म बात की गहराई म जाकर उनका विश्लेषण एव परीक्षण कर उसके यथार्थ मर्म तक पहुचने का बीडा उठाने लगे है। प्रेमचन्दोत्तर काल के कतिपय उपन्यासकारो ने तत्त्वान्वेषण और प्रतीक परीक्षण कर युग की चेतना और मानव मन के मूल की खोज का कार्य किया है। यह ठीक है कि इस कार्य द्वारा न केवल कथानक का ह्रास ही हुआ अपितु कभी-कभी तो कथा रस ही सूखता दृष्टिगत हुआ है। जसे डा० प्रभाकर माचवे के परन्तु तथा डॉ० रघुवश के तन्तुजाल म चेतना प्रवाहवादी विश्लेषणात्मक शिल्प विधि तथा प्रतीकात्मक शिल्प विधि का चमत्कार क्रमश अभिवृद्ध हुआ परन्तु कथातत्त्व शिथिल पगु और नीरस होता चला गया।

शिल्प के अत्यधिक मोह के साथ साथ जब उपन्यासकार अपनी ही दृष्टि तथा वस्तु तत्त्व म असतुलन उत्पन्न कर देता है तब स्थिति और भी अधिक भयानक हो उठती है। जसे हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री भगवतीचरण वर्मा ने अपने खिलौने म किया। उन्होंने 'अपने खिलौने म एक ओर तो नया शिल्प प्रयोग करना चाहा दूसरी ओर अपने लक्ष्य पर वे केन्द्रित न रह पाये और वस्तु तत्त्व का कहीं भाना, कहीं असगत कहीं काल्पनिक कहीं अस्वाभाविक कहीं अति यथार्थपरक ता कहीं परायथार्थवादी बनाने के चक्र म वे शिल्प दृष्टिकोण और वस्तु तत्त्व का असतुलित करने चले गये और उपन्यास मात्र उनके मन का खिलौना बन कर रह गया। 'चित्रलेखा जसी कथानकगत रोचकता और शिल्पगत तात्त्विक उत्कृष्टता इसम न आ पाई।

प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यास साहित्य म नवीन शिल्प प्रयोगो के कारण कतिपय उपन्यासो के वस्तु तत्त्व म मानवीय सवेदना का प्रश्न भी विचारणीय है। एक ओर 'सन्यासी त्याग पत्र शेखर एक जीवनी चादनी के खडहर गुनाहो का देवता आदि उपन्यास है जिनके कथानक मानवीय सवेदना म भरपूर है तो दूसरी ओर अपने खिलौने सितारो का खेल गिरती दीवारें बडी-बडी आखें' पतवार 'भूदान यथार्थ से आगे प्रेम की भेंट उदयास्त आभा जन प्रवाह विश्वास की वेदी पर आदि य रचनाय हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित कथाकारो सर्वश्री भगवतीचरण वर्मा उपेन्द्रनाथ अश्क भगवती प्रसाद वाजपेयी वृन्दावनलाल वर्मा चतुरसेन शास्त्री गुरुदत्त, प्रताप नारायण श्रीवास्तव द्वारा रचित होने पर भी मानवीय सवेदना स बहुत दूर है। यदि कतिपय आलोचक इन रचनाओ म मानवीय सवेदना देखते हैं तो यह एक अप्रासगिक आरोपण मात्र है। इन सभी उपन्यासो के कथानक की सूत्रबद्धता सन्दिग्ध है। इन कथाकारो की उन्देश्य प्रियता ने अपनी अपनी वचारिक बोझिलता के कारण एक ओर वस्तु तत्त्व को भीना बना दिया दूसरी ओर मानवीय सवेदना को इनम आबद्ध होने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

इधर कतिपय उपन्यास ऐसे भी उपलब्ध हुए जिनका न केवल शीर्षक ही प्रतीकात्मक है अपितु वस्तु तत्त्व भी सांकेतिकता लिये है। जसे श्री अमृतलाल नागर रचित बूद और समुद्र' अज्ञेय कृत नदी के द्वीप आदि।

इलाचन्द्र जोशी के नायक और प्रेमानन्द भी उन्हीं की मनोग्रन्थियों के कारण भाग गए हैं। वाना युवक शान्ति के प्रेम पाश में भी बंधा और निवास की परिकल्पना से भाग गया। होने वाला यह पात्र जयन्ती के साथ विवाह का सवाल सुनते ही प्रतिहिंसा पुरानी की भावना से तिरोहित हो उठा। दिन दिन अपने को विस्थापित करते जाते पात्रों में कभी श्रीकान्त के समान स्वस्थ जागत हो जाता है कभी दशा पर पश्चात्तापी हो जाते हैं और दीवान हरिप्रसन्न में सुनीता को नग्न रूप में देखने की पाशविक भूख जागृत हो जाती है। इन विरोधी आचरणों की सगति को विश्लेषण विधि द्वारा स्पष्ट किया गया है।

वर्णनात्मक शिल्प विधि के पात्र अधिकतर सामाजिक सुधार और प्रचारक दृष्टि के होते हैं जबकि विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के नायक नायिकाएँ व्यक्तिनिष्ठ मानसिक विश्लेषक हो पाए गए हैं। यह अजीब संयोग की बात है कि हिन्दी के अधिकतर मनो विश्लेषक पात्र विकृत मनःस्थिति के परिचायक हैं। लगता है हिन्दी के कथाकारों ने उनके मनोविकारों या मनोग्रंथियों के अन्वेषण हित ही लेखनी चलाई है। यह भी निष्कर्ष निकलता है कि पारसनाथ रत्नकिशोर महीप शंकर भुवन नन्दा शान्ति नन्दिता निरञ्जना जयन्ती नलिनी सुनीता रंगा आदि पात्र या तो कामग्रंथियों के शिकार हैं या फिर अहं की परम सीमा पर पहुंच स्वयं अपने ही अहं की गर्म राख में भुलस रहे हैं। अनेक पात्र हीनता की ग्रंथियों के शिकार भी हुए हैं। बाह्य परिस्थितियाँ घटनाएँ परिवेश तो मानो रह छूट ही नहीं मात्र एक दो निकटवर्ती पात्र ही इन अन्तर्द्वन्द्व में अकेले रह अन्तर्द्वन्द्व में जकड देते हैं और फिर ये अन्तर्विश्लेषण के लिए ही जीवित रहते हैं। संन्यासी सुनीता लज्जा त्यागपत्र आदि विश्लेषणात्मक चरित्रांकन प्रधान रचनाओं की एक विशेषता यह भी है कि वे पात्र नजुल नहीं हैं। और कुछ दार्शनिक पात्रों की रचनाएँ तो रोचक ही इसलिए बन पाई हैं कि उनके दार्शनिक पात्रों पर उपन्यासकार की दृष्टि जमकर केंद्रित हुई है। ये पात्र अपने चेतन अचेतन के द्वन्द्व को स्वयं या कथाकार द्वारा विश्लेषित पाकर पाठक की आकर्षण विधा का माध्यम बन गए हैं। ऐसे अनेक विशिष्ट पात्रों का विश्लेषण पढ़ पाठक विचारने पर मजबूर हो जाता है कि कहीं वह तो पारसनाथ नहीं है। शेखर तो नहीं है क्या? अथवा यदि जीवन में कहीं कोई प्रेमिका मिले तो ऐसी जैसी मिले शशि जैसी मिले या फिर न मिले। अस्वस्थमना होने पर भी वह आकर्षक है।

विश्लेषणात्मक चरित्रांकन विधि अनेक घटकों में प्रस्तुत हुई है। कहीं उपन्यासकार द्वारा पूर्व वृत्तात्मक विधि द्वारा—त्यागपत्र में कहीं सहस्मृति परीक्षण विधि द्वारा—जहाज का पंछी में कहीं स्वप्न विश्लेषण विधि द्वारा शेखर एक जीवनी में उपन्यासकारों ने विभिन्न और विचित्र साधनों का आश्रय लेकर इसे उद्घाटित किया है।

इन दो चरित्रांकन विधियों के साथ-साथ नाटकीय और प्रतीकात्मक विधियों द्वारा भी चरित्र प्रकाश में लाए गए हैं। बूंद और समुद्र बया का घोंसला और साँप, मधु जाल वासना के खण्डहर आदि रचनाओं में पात्रों का अन्तर्निहित अगाध आस्था, प्रेम वात्सल्य और करुणा को कथाकार उभारकर सांकेतिक रूप में सामने लाए हैं। 'मृगनयनी' दिव्या आदि रचनाओं के पात्रों में मर्मस्पर्शी नाटकीयता आ गई है। इन उपन्यासों के

पात्र नाटकीय रूप मे पाठकों के सामने आते है और हमारे मनोभावों को स्पन्दित करते है।

उपन्यास मे चित्रण कला उपन्यासकार की सृजन शक्ति पर निर्भर या सृजन शक्ति विशिष्ट प्रतिभा तथा कल्पना की अनिवार्यता पर बल देते हुए उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द लिखते है—

'अगर उपन्यासकार मे यह शक्ति मौजूद है, तो वह ऐसे कितने ही दृश्यों, दशाओं और मनोभावों का चित्रण कर सकता है जिनका उसे प्रत्यक्ष अनुभव नही है। अगर इस शक्ति की कमी है, (तो) उसकी रचना मे सरसता नही आ सकती। ऐसे कितने ही लेखक हैं जिनमे मानव चरित्र के रहस्यों का बहुत मनोरंजक सूक्ष्म और प्रभाव डालने वाली शैली मे बयान करने की शक्ति मौजूद है लेकिन कल्पना की कमी के कारण वे अपने चरित्रों मे जीवन का सचार नही कर सकते।'[२१]

सारांश यह कि उत्कृष्ट चरित्र चित्रण के लिए चाहे वह किसी भी शिल्प विधि का हो मौलिक उदभावना और उदात्त कोटि की कल्पना का होना एक अनिवार्य शर्त है।

उपन्यास के तत्वों के अन्तर्गत वस्तुतत्व और चरित्र चित्रण के सशक्त महत्त्व को स्वीकारते हुए पश्चिम के प्रसिद्ध विद्वान श्री एडविन मयूर महोदय ने समस्त उपन्यास साहित्य को दो भागों मे विभक्त किया और एक को वस्तु प्रधान उपन्यास तथा दूसरे को चरित्र प्रधान उपन्यास की संज्ञा देते हुए दोनों के मध्य रेखा खींचते हुए लिखा— 'चरित्र चित्रण प्रधान उपन्यास गद्य साहित्य की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विभाजन रेखा है इसका शुद्धतम रूप वेनीटीफेयर है। इसमे पात्र वस्तु के अधीनस्थ सर्जित नही होते, इसके विरीत उनका स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और समस्त कार्य उनके अधीन होता है।

'क्रियारत उपन्यास (Novel of Action) की प्रधान चाहना एक पूर्ण चुस्त एव विकसित कथानक है।'[२२]

चरित्र की सफलता असफलता किसी भी शिल्प विधि पर निर्भर न होकर उपन्यासकार की दृष्टि पकड और प्रवाह पर निर्भर करती है। जब किसी भी चरित्र को पढते ही पाठक बोल उठे— क्या खूब पात्र गठित किया है तभी मानना उत्तम चरित्र चित्रण हुआ है। प्रेमचन्द चरित्र चित्रण की सफलता का मापदण्ड पाठक के भावों मे उत्कर्ष की अनुभूति मानते हैं। पर यह आदर्शवादी दृष्टिकोण है। यथार्थपरक चरित्रों मे उत्कर्ष आस्था प्रेरणा शिक्षा और सिद्धान्त ढूढना बेकार की बात है। यथार्थपरक पात्र या तो जन जीवन के वास्तविक रूप के प्रतिनिधि होगे या फिर व्यक्ति विशेष की घुटन,

२१ कुछ विचार—५६।

२२ The novel of character is one of the most important divisions in prose fiction Its purest example is 'Vanity Fair The characters are not Conceived as part of the plot , on the Contarary they exist independently and the action is subservient to them

Novel of Action demands a strictly developed plot

—Aspects of novel P 23 and P 38

कुण्ठा, संत्रास, निराशा और घोर ऊब के परिचायक। उनमें किसी प्रकार के सार्थक जीवन बोध को चाहना व्यर्थ है। वे जीवन के अन्धकार पक्ष के उद्घाटक मात्र हैं और उन्हें पढ़कर हमें इतना तो पता चलता ही है कि जीवन में यह रूप भी है ऐसे पात्र भी हैं जिसमें कुराह, आरोपित पाप और विकलता भी है। यदि जीवन में यह सब घटित हो सकता है तो जीवन के चित्रक उपन्यास में यदि वह अपना भीतर से प्रतिच्छाया देता तो नाक भौं सिकोड़ने की आवश्यकता नहीं है। चरित्र की सफलता का मापक मात्र हमारा कोमल मन है। यदि वह संवेदना में भीग जाता है तो उसे संवेदित करने वाला पात्र और उस पात्र का स्रष्टा कथाकार दोनों सफल मान जाएँगे फिर चाहे वे पात्र आत्मकथात्मक रूप में चित्रित हों या प्रथम पुरुष शैली में अभिव्यक्त हों। आदर्शवादी हों या यथार्थवादी हों।

शिल्प और विचार

अनेक आलोचक शिल्प के अन्तर्गत उपन्यास के छः तत्त्वों का नियोजन कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। यह ठीक है कि लगभग सभी तत्त्वों का उपन्यास की शिल्प विधि से गहरा सम्बन्ध है। परन्तु वस्तुतत्त्व तथा चरित्र चित्रण के पश्चात् मैं विचार या जीवन दर्शन पक्ष को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। मेरे मतानुसार हर साहित्यिक उपन्यास का एक लक्ष्य होता है। उसमें चित्रित समाज, इतिहास, व्यक्ति, परिवार, धर्म या राष्ट्र कुछ निश्चित विधियों द्वारा उद्घाटित होता है। हर श्रेष्ठ उपन्यासकार मात्र कतिपय घटनाओं का संकलन कर कुछ पात्रों की उछल-कूद दिखाना ही अपना कर्तव्य नहीं समझता अपितु वह अनुभूत भावनाओं, क्रिया कलापों, विचारों तथा अध्ययन अर्जित दृष्टिकोण को किसी न किसी रूप में अपनी रचना में उँडेलने का प्रयास भी करता है।

उपन्यासकार अपने कथ्य में विचार मिश्रित करके आगे बढ़ता है। हर कथा

की रिश्वतखोरी व स्वच्छन्दता) की विचारणा को मुखरित किया।

जन जन में राजनैतिक दासता के फलस्वरूप जो असंतोष था, उसे अभिव्यक्ति देने वाले कथाकार हैं श्री प्रेमचन्द, श्री मन्मथनाथ गुप्त तथा डा० रांगेय राघव व श्री गुरुदत्त। इन्होंने ग्रामीण जीवन, अंग्रेज द्वारा उत्पन्न जमीदार वर्ग, जमीदारों के अधीनस्थ किसान, नागरिक जीवन में पूंजीपति व उनके अधीनस्थ मजदूर, दूकानदार, अध्यापक, डाक्टर, क्रान्तिकारी वर्ग की बौद्धिक मानसिक विचारणाओं को वाणी दी है। भारतीय ग्रामीण समाज जो शताब्दियों से रूढ़िवादी, अन्धविश्वासी और त्रस्त होने के कारण मूक दर्शक मात्र थे, प्रेमचन्द ने उसके मौन को तोड़कर 'कर्मभूमि' 'रंगभूमि' और 'गोदान' में उसे वाचाल बना दिया। सर्वहारा वर्ग का जन्म तो युग युगान्तर पूर्व हो चुका था मगर उसका द्रुतगति से विकास औद्योगीकरण द्वारा हुआ। मठों में मठाधीशों के अत्याचार तो पहले भी हो रहे थे परन्तु उनकी धर्म पर एकाधिकार सत्ता का विरोध 'कंकाल' में पहले पहल जयशंकर प्रसाद ने किया। हिन्दू जन मन मुसलमानों द्वारा त्रस्त तो एक हजार वर्ष से था पर इसका उद्घाटन श्री गुरुदत्त ने ही किया। आज विचार को न रखना उपन्यास को श्रेष्ठता की सीढ़ी से गिरा देना है। विश्वविद्यालय के छात्र और प्राध्यापक तो उस उपन्यास को उपन्यास ही नहीं समझते जो 'चित्रलेखा' की तरह पाप और पुण्य या 'सुनीता' की तरह हिंसा और अहिंसा तथा घरे-बाहर पर अपनी चिन्तना और प्रतिक्रिया अभिव्यक्त न करे। ये विचार समस्याएं प्रश्नचिह्न ही उन्हें मनन विश्लेषण के लिए अवसर देते हैं।

विचार प्रतिपादन भी दो प्रकार से संयोजित होता है। प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो विधियां इस क्षेत्र में अपनाई गई हैं। प्रत्यक्ष विधि द्वारा उपन्यासकार जीवन अनुभूत क्रिया एवं सत्य को स्वयं कहकर पाठक तक पहुंचाता है। इस विधि के प्रणेता उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द हैं। प्रेमचन्द अपने पात्रों को अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने की छूट बहुत ही कम मात्रा में देते हैं। अपने उपन्यासों में वे अपने विचारों को आग्रहपूर्वक व्यक्त करने का स्थान खोजते रहते हैं। अन्याय, शोषण, दुराचार के विरुद्ध उन्होंने तीव्र रोष अभिव्यक्त किया है। जैसे— "शान्ता ने देखा कि उसके देशवासी सिर पर बड़े-बड़े गट्ठर लादे एक सकरे द्वार पर खड़े हैं और बाहर निकलने के लिए एक-दूसरे पर गिर पड़ते हैं। एक दूसरे तंग दरवाजे पर हजारों आदमी खड़े अन्दर जाने के लिए धक्कमधक्का कर रहे हैं। लेकिन दूसरी ओर एक चौड़े दरवाजे से अंग्रेज लोग छड़ी घुमाते कुत्तों को लिये आते जाते हैं। कोई उन्हें नहीं रोकता कोई उनसे नहीं बोलता।"[23]

और यह रोष मात्रा में कम गया कि वे नास्तिक विचारधारा के समर्थक बन एक स्थान पर ईश्वर पर भी व्यंग्य कर गए—

प्राणियों के जन्म-मरण, सुख-दुख, पाप-पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है—मनुष्य ने अपने अहंकार में अपने को इतना महान बना लिया है कि उसके हरेक काम की प्रेरणा ईश्वर की ओर से होती है। अगर ईश्वर के विधान इतने अन्याय हैं कि मनुष्य की

---

२३ सेवासदन—पृष्ठ २६१

समझ में नहीं आते तो उन्हें मानने से ही मनुष्य को क्या संताप मिल सकता है।'

प्रेमचन्द की लक्ष्यप्रियता और विचार निष्ठा पर टिप्पणी करते हुए हिन्दी साहित्य के प्रमुख आलोचक डा० इन्द्रनाथ मदान ने ठीक ही लिखा है—'प्रेमचन्द की कला का मूल उद्देश्य न तो चरित्र चित्रण है और न वस्तु संगठन वरन् सुधार है। साहित्य के दो काम हैं एक जीवन की व्याख्या करना दूसरा जीवन को परिवर्तित करना। प्रेमचन्द पिछले पर अधिक जोर देते हैं।'

वस्तुतः प्रेमचन्द उपन्यास शिल्प की सभी सीमाओं को लांघकर अपनी उद्देश्यप्रियता और विचारणा का परिचय लम्बी लम्बी टिप्पणियों भाषणों और संवादों में देने लगते हैं। मानो वे अपने युग और समाज को झकझोड़ देने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हों। तभी तो वे औपन्यासिक कलात्मकता तथा शिल्प संतुलन खो बैठते हैं। यह सही है कि अधिकतर उनके कथांश बड़े मर्मभेदी होते हैं परन्तु अधिकांश में वे वस्तु संगठन तथा चरित्र चित्रण कला की सहज प्रवाहगति में बाधा पहुंचा गए हैं। वे विचार प्रदर्शक होने के कारण कुशल शिल्पी नहीं बन पाए हैं। इसीलिए हिन्दी के अनेक आलोचकों ने उन्हें द्वितीय श्रेणी का कथाकार माना है। जहां मानवीय संवेदना का चित्रण पाठक को द्रवीभूत करने वाला होता है वहीं उनका उपदेशक और प्रचारक जाग उठता है और पाठक के मर्म में मार्मिकता प्रवाहित होने की अपेक्षा विचारणा की चुनौती उसे कचोटने लगती है। सेवासदन प्रेमाश्रम 'रंगभूमि' और गोदान आदि उपन्यासों में प्रेमचन्द सुधारक बोल रहे हैं।

विचार प्रतिपादन की दूसरी विधि (परोक्ष विधि) अधिक सफल मानी गई है। इसमें कथाकार तटस्थ हो जाता है। सामाजिक वैयक्तिक नैतिक रीति-नीति और प्रवृत्ति का विश्लेषण पात्र द्वारा होता है। हिन्दी उपन्यास के विकास काल में सब श्री जैनेन्द्र और अज्ञेय ने अधिकतर इसी विधि का आश्रय लिया है। इन्होंने विचार-सूत्र कथा सूत्र की भांति विभिन्न पात्रों के हाथ में सौंपकर अपनी मनोमंथन का परिचय दिया है। विचार यहाँ भी पाया जाता है पर परोक्ष रूप में। कभी कभी वह प्रत्यक्ष रूप में विज्ञापित हुआ कि प्रतीत होता है।

शिल्प और लक्ष्य के संतुलन पर जो विचार करें। वास्तव में उपन्यास की परिभाषा ही यह सिद्ध करती है कि उसमें मानव चरित्र के किसी न किसी पक्ष पर प्रकाश डालना उपन्यासकार का लक्ष्य होता है। लक्ष्यहीन उपन्यास नहीं हुआ करते। एक आलोचक ने तो अनुभूति और लक्ष्य को ही कथा-साहित्य के शिल्पगत उपकरणों का मापदण्ड स्वीकार किया है। उनके मतानुसार इन्हीं के प्रकाश में कहानी के विधान में कथावस्तु की योजना चरित्र सृष्टि और भाषा का निर्माण हुआ करता है।' किन्तु मात्र लक्ष्यप्रियता और अनुभूति प्रकाशन ही सब कुछ नहीं है। लक्ष्यप्रियता की मार प्रेमचन्द और प्रेमचन्द युग के कथा लेखकों से अधिक सताती रही है। उन्हें अवसर मिलता है ये कथाकार अपने

२४ प्रेमाश्रम—पृष्ठ ८७१
२५ प्रेमचन्द एक विवेचन—पृष्ठ १२३
२६ हिन्दी उपन्यास और हिन्दी कहानी का शिल्प विधि का विकास।
— लेखक डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल

मूल प्रसग से हटकर उपदेश देने लगते है। समाज की किसी भी कुरीति पर, धर्म की किसी भी कुप्रथा पर, किसी सम्प्रदाय विशेष की समस्या पर अवसर मिलते ही ये लेखक कहीं न कहीं अवश्य ही खुलकर भाषण देते है। वर्णनात्मक शिल्प विधि के उपन्यासों में सामाजिक प्रवृत्तियों की व्याख्या रहती है तो विश्लेषणात्मक विधि रचनाओं में मनोविश्लेषण या चेतना प्रवाह की ऊहापोह होती है। इस प्रकार की व्याख्या या विश्लेषण के कारण उपन्यास साहित्य में सतुलन की मात्रा घट गई है। प्रेमचद को प्रचारात्मक और इलाचन्द्र जोशी को मनोविज्ञानवेत्ता मात्र कह दिया गया है। जोशी के उपन्यास साहित्य में मनोवैज्ञानिकता के आधिक्य पर टिप्पणी करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं— इसी तरह इलाचन्द्र जोशी क्रमश समाज की व्यापक स्थितियों के चित्रण से अलग होकर अधिकाधिक सीमित भूमि पर आते जा रहे है और आश्चर्य तो यह है कि यह सब यथार्थवाद और वैज्ञानिक सत्य के नाम पर किया जा रहा है यह सभावना है कि साहित्यिक मूल्यों को छोडकर वैज्ञानिक मूल्यों को प्रधानता देने लगेंगे, विज्ञान के नाम पर हीन और रुग्ण भावनाओं का चित्रण ही श्रेष्ठ साहित्य के नाम पर खपने लगेगा। क्या इस प्रक्रिया द्वारा श्रेष्ठ साहित्यिक निर्माण की सम्भावना है?[27] आचार्य जी ने यह एक गम्भीर प्रश्न प्रस्तुत किया है।

प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि इस युग के कतिपय उपन्यासकार लक्ष्य और शिल्प में सन्तुलन नहीं रख पाये और लक्ष्य के प्रति अधिक आकृष्ट रहे। शिल्प का सबध भाव विचार लक्ष्य और अनुभूति पक्ष की अपेक्षा भाषा शैली और विधा पक्ष से अधिक जुडता है। शिल्प किसी कलाकार की कला द्वारा अभिव्यक्त भाव एव चिन्तनधारा को स्पष्ट करने का साधन या विधा है। प्रस्तुत प्रबन्ध का उद्देश्य विभिन्न उपन्यासकारों द्वारा अपनाये इस साधन या विधा पर प्रकाश डालना है। शिल्प के चुनाव का प्रश्न देखने में जितना सरल है प्रयोग में उतना ही जटिल है। शिल्प का वर्गीकरण इस तथ्य का उद्घाटक है कि प्रत्येक शिल्प की अपनी सीमाए है। प्रयोग द्वारा शिल्प के क्षेत्र में प्रौढत्व आता है। एक बात का स्पष्ट हो जाना नितान्त आवश्यक है। वह है कला और शिल्प में अन्तर। स्थूल रूप से दोनों पर्यायवाची लगते हैं किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से परखने पर पता चलता है कि दोनों में अन्तर है। इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक श्री लुब्बोक कहते है—

'कला एक उडान लेने वाला शब्द है न पकड़े जाने के लिए न बन्धन में जकड़े जाने को। यह तो सदैव भाग उड़ने को तैयार रहता है ताकि अपने स्थान पर लिपटा सा रहे तथा काम पर लगा सके। शिल्प विधि इस प्रकार से पर नहीं हटाती—वह तो प्रस्तुत वस्तु की ओर उन्मुख करती है। उससे बोध देता है बनी हुई वस्तु की ओर भुका देती है। हम यह भी नहीं भूलने देती कि समस्त वस्तु एक सीमित आकार में समाप्त हुई है और यह आकार शिल्प द्वारा गठित है।'[28]

---

२७ नया साहित्य नया प्रश्न—पृष्ठ १७८ ७६

28 Art is a winged word neither to hold nor to bind ever ready to fly away with a discussion that would faster it to its

कला की विरलता और पकड़ में न आने की कठिनाई का अनुभव करते हुए इसके विषय में हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित कथाकार श्री जैनेन्द्र अपने एक प्रसिद्ध निबन्ध 'मैं और मेरी कला' में लिखते हैं—'कला यदि कुछ होती है तो मेरे लेखे लगभग वह एक सूत्र में समा जाती है कि अपने प्रति कलाकार सच्चा रहे। इस प्रयत्न में बाहर के प्रति सच्चा रहना असम्भव और सहज अनावश्यक होता जाएगा। अतः उसे बाहर के प्रति विनयशील और स्नेहशील रहकर ही कलाकार का धर्म पूरा हो जाना चाहिए। संसार पकड़ में नहीं आता, इससे उसको पकड़ने का मोह वृथा है। कला उस मोह में पड़कर केवल फैशन और आडम्बर में भटकती है। अपनी सार्थकता उसमें वह प्राप्त नहीं कर सकती।'[२९]

वस्तुतः कला का क्षेत्र अधिक व्यापक है जिसमें लेखक का दृष्टिकोण, भाव सौन्दर्य, वस्तुविस्तार चरित्रगठन संवाद वातावरण शैली सभी तत्त्व नियोजित होते हैं। शिल्प का कार्य और क्षेत्र दोनों सीमित हैं। उससे किनारे बनते हैं। सीमाएं बनती हैं। स्वरूप निर्धारित होता है। इन सीमाओं के बन्धनों को तोड़ने से स्वयं स्वरूप के नष्ट भ्रष्ट होने का भय बना रहता है।

और शिल्प भी स्वाभाविक हो तो श्रेयस्कर है। सायास गठित शिल्प उपन्यास के स्वरूप को बिगाड़ भी सकता है। इस सम्बन्ध में भी जैनेन्द्र लिखते हैं— टेकनीक तो होती भी है और नहीं भी होती। वह तो अपने आप ही जन्म लेती है। उसके लिए खास प्रयत्न नहीं करना पड़ता।[३०]

स्वरूप क्या है। यह तो बाद की बात है। पहले तो यह स्वीकार करना होगा कि हर उपन्यास का एक स्वरूप होता है। वह अच्छा भी हो सकता है बुरा भी हो सकता है। बिना स्वरूप के न तो पहचान हो सकती है और न कलात्मक मूल्यांकन ही। यदि किसी सुन्दर शीलवान और वीर पुरुष के शरीर पर आघात कर छिन्न भिन्न कर डाल दिया जाए तो फिर उसपर टिप्पणी की जाए कि कितनी विशाल बाहु हैं कितनी नुकीली नाक कितने सुन्दर कपाल और कितना सुन्दर शरीर तो यह बात भी किसी को अच्छी न लगेगी, छिन्न भिन्न शरीर को देखकर तो घृणा और जुगुप्सा ही उत्पन्न होगी। उस पुरुष का महत्त्व तो तभी आंका जाएगा जब उसमें आत्मा और कार्य करने की सामर्थ्य हो। इसी प्रकार वही उपन्यास सुगठित आकर्षक और सुन्दर शिल्प का माना जाएगा जिसमें वर्णन

ground to the work that bears its name The homely note of the craft allows no such distractions it holds you fast to the matter in hand to the thing that has been made and the manner of its making nor lets you forget that the whole of the matter is contained within the finished form of the thing and that form was fashioned by the craft"

'The Craft of Fiction P V
(From Preface)

२९ साहित्य का श्रेय और प्रेय—पृष्ठ ३५८ ५९
३० वही—पृष्ठ ३७८

विश्लेषण, प्रतीक या नाटकीयता किसी एक शिल्प विधि द्वारा उपन्यासकार की अनुभूति, भावना और लक्ष्य को आत्मसात करके पाठक के सम्मुख प्रस्तुत किया गया हो और वह उपन्यासकार की मनोप्रवृत्ति को पाठक के हृदयंगम में उडेलकर उसे सार्वकालिक बनाने की क्षमता दिखाए। स्वरूपहीन उपन्यास की कल्पना करना ही मूर्खता है। यह मान लेने के उपरान्त कि प्रत्येक उपन्यास का स्वरूप होता है हम देख परख सकते है कि स्वरूप कैसा है, और यही हमारा प्रमुख ध्येय भी है। विकृत स्वरूप कही छिप नही सकता। पढ़ते समय वह अवश्यमेव कही न कही आख को स्वयमेव खटकेगा। जहा इस प्रकार का संशय उठे वही पता चलाना होगा कि अभाव कहा है। विषय निर्वाचन मे है, अथवा विषय प्रतिपादन मे, चरित्र निर्माण मे है अथवा लम्बे संभाषणो मे या ऊबड खाबड वातावरण प्रस्तुत कर खडा किया गया है। कथा की पकड ही गलत ढग से की गई है या उसमे प्रस्तुत आवश्यक मोड नही दिए गए। कथानक मे पडे हुए उपकथानक कार्य व्यापार की एकता बनाये चलते है या नही। चरित्राकन मोह मे फसकर कही कथाकार कथानक व उपकथानक पर कुठाराघात तो नही कर गया अथवा घटनाओ के चक्कर मे पाठक को घुमाता हुआ वह चरित्रो को भुला ही तो नही बैठा। कथा, चरित्र और जीवन दर्शन को सन्तुलित आकार न देकर लिखने वाले उपन्यासकार ही विकृत स्वरूप के उपन्यास लिखा करते हैं।

सर्वोत्तम स्वरूप वाले उपन्यास वे हैं जिनमे वस्तु और शिल्प एकात्म हो जावे और शिल्प द्वारा वस्तु सुस्पष्ट रूप मे अभिव्यक्त होवे। ऐसे उपन्यासो की खोज करने की उत्कट चाह से यह प्रबन्ध लिखा जा रहा है। उपन्यास मे मानव जीवन सवेग प्रवाहित होता है और कहीं-कहीं यह भय बना ही रहता है कि शिल्पगत सीमाओ के बन्धन अब टूटे कि अब टूटे, किन्तु आवश्यकता ऐसी परिस्थिति देखकर घबरा उठने की कदापि नहीं है। ये सीमा रेखाए तो नये-नये नियमो की भाति नित प्रतिदिन बनती बिगडती रहती है। लोग नियमो को तोडते है क्या इसलिए कानून बनाये ही न जावे? यदि ऐसा हुआ तब तो और भी अधिक उच्छृखलता तथा अराजकता फैलेगी। ऐसी बातो को रोकने के लिए ही तो नियम और शिल्प बनाने की आवश्यकता है। उन्ही की सीमाओ मे तो औपन्यासिक कला को परखना है। हिन्दी उपन्यास की शिल्पगत प्रवृत्तियो का अन्तर्दृश्य रूप शिल्प की दृष्टि से उपन्यासो की बनावट का परखा गया है। उनके आकार और प्रकार का विश्लेषण किया गया है। नवीन प्रयोगो के महत्त्व को भी शिल्प की सीमा मे बाधकर तोला गया है। साराश यह कि शिल्प के उत्तरोत्तर प्रौढत्व प्राप्त कर लेने के कारण उपन्यास की शिल्प विधि के अन्तर्गत विषय निर्वाचन कथा विधान चरित्र विधि, विचार प्रतिपादन आदि शीर्षको के अन्तर्गत विद्यमान परिवर्तनो का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत निबन्ध मे सन्निविष्ट करने का पूरा पूरा यत्न किया गया है। इस प्रयास मे मुझे समय समय पर प्रबन्ध निरीक्षक से अमूल्य सुझाव मिलते रहे है जिसके परिणाम स्वरूप अब तक के उपलब्ध निष्कर्ष इस रूप मे सामने आ सके हैं।

साहित्य जीवन्त कला है, अतएव अपनी चेतना के कारण किसी निश्चित स्वरूप अथवा सीमा मे आबद्ध नही हो सकती। इसमे एक सीमा तक शिथिलता अनिवार्य है।

साहित्य अन्य कलाओं जैसे वास्तुकला तथा मूर्तिकला की भांति स्थिर नहीं है, यह संगीत तथा वाद्यत्रम की भांति गत्यात्मक है। कला की गत्यात्मकता को श्री लुबोक महोदय की भांति श्री लियोन इडल ने भी सिद्ध की है—'कला कभी स्थिर नहीं रहती। इस रूढ़ियों का अनुसरण करना या बार बार दुहराये जाना कभी स्वीकार नहीं है। कला तो जीवन की विविधता तथा नये नये साहित्यिक रूपों तथा शिल्प विधियों की खोज के कारण ही फलती फूलती है।'[31]

इस तरह हम देखते हैं कि कला अपनी गत्यात्मकता के कारण साहित्य विशिष्ट रूप में उपन्यास को नित नवीन स्वरूप प्रदान करने की क्षमता रखती है। जब एक ओर याभिक स्वरूप एक विशेष काल में अपना निसार खो बैठता है तब नये स्वरूप का आविष्कार नये पटल पर अनिवार्य हो जाता है। इस नये पटल के आविष्कार में सबसे बड़ा उपयोग शैली का होता है। अतः शिल्प एवं शैली के संबंध पर विचार करना भी सामयिक प्रतीत होता है।

शिल्प एवं शैली

हिन्दी उपन्यास में जितनी बहुरूपता विषयों के क्षेत्र में है, उससे कहीं अधिक मात्रा में शैलीगत विविधता दृष्टिगत होती है। शिल्प और शैली दोनों का गूढ़ संबंध अभिव्यक्ति से है अतएव दोनों में पर्याप्त साम्य और विभिन्नता है। इसके पहले कि हम इस विषय पर विचार करें शैली के लक्षण पर विचार कर लेना सामयिक है।

शैली को संस्कृत के आचार्य वामन ने 'रीति' की संज्ञा देते हुए इसे काव्य की आत्मा माना था। और रीति की परिभाषा इन शब्दों में प्रस्तुत की—

विशिष्ट पद रचना रीतिः।[32]

अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचकों ने शैली की परिभाषा इन शब्दों में दी है—

'शैली अभिव्यक्ति का विशिष्ट अंग है।'[33]

शैली तो शरीर है और विचार इसकी आत्मा है इसके माध्यम से ही यह अभिव्यक्त होता है।[34]

यह उसके शरीर के भांति ही उसका एक सम्पूर्ण भाग है। शैली मनुष्य की वाह्यात्मक दृष्टिगत होने वाली प्रतीक योजना है। इसके अतिरिक्त यह कुछ हो ही नहीं

---

31 Art is never static It neither accepts Confirmity nor does it like repitition Art thrives best on variousness of life and on a search for new forms and new techinques

The Psychological Novel P 213

३२ काव्यालङ्कार सूत्र, १।२।७ ८

33 *Style is the technique of expression*

'The Problem of Style' P 5

34 Style is the body to which thought is the soul and through which it expresses itself

'A Premier of Literary Criticism' P 3

सकती। सक्षेप म कह सकते ह कि शैली मनुष्य की भावनाओ से पर न जाने वाली वस्तु जिनका निवास मन म होता है। यदि वे स्पष्ट है तो शैली भी स्पष्ट होगी। [35]

'शैली से अभिप्राय उस विशिष्ट एव वैयक्तिक अभिव्यक्ति विधि से है जिसके द्वारा हम किसी लेखक को पहचानते हैं। [36]

इसी प्रकार शैली को कतिपय साहित्यकार और आलोचक व्यर्थ की सज्जा मानते है जिसके द्वारा शैलीकार की मन तुष्टि तो हो सकती है किन्तु साधारण पाठक का कोई लाभ नही होता। फिर भी शैली लगभग सभी कथाकारो को अपनानी पडती है। शैली शिल्प के अधीनस्थ मानी जाएगी। वस्तुत यही वह तत्त्व है जिसके द्वारा कोई लेखक पहचाना जाता है। कथाकार और उसकी रचना म आलोचको ने जो शरीर आत्मा का सबध बताया है वह सही है। यह मात्र बाह्य परिधान मात्र ही नही है। अपितु शब्द की वह शक्ति है जो परिधान को रगकर प्रस्तुत करती है। किसी भी कथ्य को जिस शिल्प म प्रस्तुत किया जाता है वह शैली रूपी कारीगर द्वारा ही किया जाता है। इस दृष्टि से शिल्प और शैली का निकटस्थ और अटूट सबध स्वत ही सिद्ध हो जाता है। दोनो एक दूसरे के पूरक है। शैली भाषा का रूप चमत्कार है। इसी कारण भारतीय चिन्तको ने अभिव्यक्ति की विशिष्टता तथा भाषा के रूप चमत्कार का मेल होने के कारण शैली को साहित्य रचना के चौथे तत्त्व की सज्ञा दी है।

अत स्पष्ट हुआ कि शैली का सबध कथाकार के व्यक्तित्व के साथ साथ भावाभिव्यक्ति एव भाषा के विशेष परिधान से है। प्रत्येक कथाकार का अपना स्वतत्र व्यक्तित्व होता है या होना चाहिए। इसी प्रकार उसकी एक स्वतत्र शैली होती है अथवा होनी अनिवार्य है। यह शैली उसके विचार भाव कल्पना सस्कार स्वभाव प्रतिभा और जीवन दृष्टि के अनुरूप अभिव्यक्ति पाती है। शिल्प इस शैली का दिशान्यास करता है, आवश्यकता अनुसार इस सीमित विश्लेषित वर्णनात्मक मानसिक या नाटकीय विधि द्वारा सयोजित करते हुए इसका मार्गदर्शन करता है। क्योकि शिल्पविधि का सबध रूप रचना की समस्त प्रक्रियाओ से है अतएव किसी भी रचना की शिल्प विधि की खोज करने के लिए हम उस रचना म काम आने वाली विधियो रीतियो तथा अन्य ढगो की ओर विशेष ध्यान देना पडता है। शिल्प विधा का सम्पूर्ण ढाचा (structure) है तो शैली (style) उस ढाचे की अभिव्यक्ति की रीति। इसलिए शैली की जानकारी के लिए शिल्प की भाति पूर्ण ढाचे पर ध्यान न देकर इसके कथ्य पात्र वातावरण जीवन दर्शन (Philosophy

35 It is an integral part of him as that skin is a style is always the outword and it cannot be anything else To sum up style cannot go beyond the ideas which is at the heart of it If they are clear it too will be clear

'Selected Prejudices' P 167

36 Style means that personal idiosrcracy of expression by which we recognise a writer

The Problem of Style P 4

or Point of view) आदि अन्य तत्त्वों पर दृष्टि केन्द्रित न करके इसकी भाषा, भाषा प्रवाह की रीति (मन्द, द्रुत, व्याख्यात्मक, समासात्मक) आदि पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करनी पड़ती है। शिल्प शैली का स्वामी है। वह इसका दिशान्यास किया करता है। शिल्प का लक्ष्य यह नहीं होता कि कथा क्या है, पात्र क्या है ? अपितु यह है कि कथा किस भाँति संयोजित हो, पात्र किस प्रकार नियोजित हों, जीवन दर्शन कैसे उड़ेला जाए आदि आदि। इस लक्ष्य की सबसे बड़ी सहायक शैली होती है। वर्णनात्मक शिल्पी के लिए व्याख्यात्मक अथवा इतिवृत्तात्मक शैली उपयुक्त रहती है। प्रतीकात्मक शिल्प विधि के प्रणेता को सांकेतिक भाषा और शैली का प्रयोग ही श्रेयस्कर रहता है। विश्लेषणात्मक कथा शिल्पी के लिए विश्लेषणपूर्ण शैली अनिवार्य है।

शिल्प विधि का क्षेत्र व्यापक है क्योंकि इसका संबंध अभिव्यक्ति की सभी प्रक्रियाओं से है। शैली का क्षेत्र संकुचित है। मुख्य रूप से शैली दो प्रकार की होती है—व्याख्यात्मक और समास। शैली व्यक्तिपरक होती है, शिल्प वस्तुपरक। साहित्यकार की रुचि उसके शिल्प को प्रभावित तो करती है परन्तु इसके अनुरूप ही शिल्प का निर्माण नहीं हुआ करता है, अनुकरण होता है जबकि शैली तो कथाकार की रुचि अनुरूप ही नियोजित होती है। समाज, इतिहास या अंचल का प्रबन्धात्मक चित्रण मात्र वर्णनात्मक शिल्प विधि द्वारा ही संयोजित हो सकता है अतएव यह वस्तुपरक हुआ, विषयपरक हुआ जबकि समाज, व्यक्ति, इतिहास या मनोविज्ञान, राजनीति आदि किसी भी विषय वस्तु के चित्रण के लिए अनिवार्य रूप से किसी एक शैली को अपनाना उपन्यासकार के लिए आवश्यक नहीं है। परख, सुनीता, गबन, गोदान, लज्जा, संन्यासी, 'शेखर एक जीवनी', नदी के द्वीप—जैनेन्द्र, प्रेमचन्द, जोशी और अज्ञेय की श्रेष्ठतम रचनाएँ शिल्प की दृष्टि से वस्तु अनुरूप शिल्प द्वारा नियोजित हुई रचनाएँ हैं जबकि इनमें तदनुकूल शैली विशिष्ट वस्तुपरक न होकर विषयी प्रधान है। मनोवैज्ञानिक धारा के उपन्यासकारों की अधिकतम रचनाएँ व्यक्तिवादी विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की रचनाएँ हैं किन्तु इनके अग्रणी तीनों उपन्यासकारों इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र तथा अज्ञेय की अपनी अपनी व्यक्तिगत है और अपनी अपनी स्वतन्त्र शैली है जो इन्हें एक-दूसरे से भिन्न करती है। यही बात सामाजिक या बहिर्मुखी समाजवादी उपन्यास के विषय में भी कहा जा सकता है। प्रेमचन्द, यशपाल, नागार्जुन, रेणु, उग्र आदि उपन्यासकार वर्णनात्मक शिल्प विधि के रचनाकार हैं किन्तु इनकी [illegible] भी एक-दूसरे से पृथक है। प्रेमचन्द [illegible]

कर दबदव से कहलाने ह, ता जनेद्र अपन एक-एक वाक्य म वक्ता और दार्शनिकता ने आते ह। और अज्ञेय ? व अपनी भाषा का काव्यमयी भी बना देन है और अंग्रेजीनिष्ठ भी। श्री अमृतलाल नागर म भाषा के भीतर व्यग्यात्मकता और छीटाकसी करन की कला है ता यशपाल म समाजद्रोह तथा निम्नवग का पक्षपात एव उन्ही लागा की गाली गलाच तथा अदायगी। श्री हजारी प्रसाद द्विवदी की भाषा संस्कृत निष्ठ और शैली कवित्वमय है। इस काव्यमयता की दृष्टि प्राकृतिक चित्रण तथा विभिन्न स्थला के भौगोलिक वणना म प्राप्य है। द्विवेदी के साथ जोशी म भी यह शली अपनी उन्नत अवस्था म मिलती है। कही-कही तो वाक्य समास सधियुक्त शब्द स्फीतता के साथ सामन आते हैं। परतु द्विवेदी तथा जाशी का उपन्यासशिल्प भिन्न है। द्विवेदी जी वणनात्मक शिल्प विधि के कलाकार है जाशी जी विश्लेपण प्रधान शिल्प क प्रणता। परन्तु दाना की शली आम कथात्मक है कवित्वप्रधान है, उपमा बहुल है। दाना न उपमाए भिन्न भिन्न स्थला स जुटाई हैं, द्विवदा जी ने इतिहास और संस्कृत साहित्य से, जोशी जी न विज्ञान और पश्चिमी साहित्य स।

हिन्दी उपन्यास साहित्य म एक ओर सवश्री प्रमचन्द, भरवप्रसाद गुप्त, मन्मथ नाथ गुप्त, यनदत्त शमा और रागेय राघव तथा यशपाल जनसाधारण की बोलचाल का अपने अपन उपन्यास की भाषा बनाकर चन ह वहा श्री इलाचन्द्र जाशी, श्री अज्ञेय, डा० धमवीर भारती, डा० देवराज, डा० रघुवश श्री नरेश महता आदि कथाकार अभिजात भाषा के समथक दृष्टिगोचर हात हैं। इमे ये कथाकार कलात्मक स्तर का मापक मानकर चले है। कतिपय उपन्यासकारा की भाषा और शली म स्थानीय रग आ गया है, जसे रेणु की भाषा शली म बिहार के पूर्वी जगत की शैली की स्पष्ट छाप है वैस ही श्री उपेन्द्रनाथ अश्क की भाषा व शली पजाबी रगत लिए है, ठीक एस ही श्री यनदत्त शमा की भाषा एव शली म मेरठ दिल्ली की परम्परा का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगाचर हाता ह। लोक उपकरणा का सबसे अधिक उपयोग रणु और नागाजुन न किया है। यशपाल की भाषा शली म पुरुष वग की कठोरता एव बबरता परिलक्षित हुई है ता उपादवा मिश्रा क वाक्य विन्यास म नारी हृदय की कामलता और पद लालित्य मिलता है।

हिन्दी म मकत शली का प्रचलन मन्द गति स हुआ है। वस श्री गिरिधर गापाल क चादनी क खण्डहर' और डा० रघुवश क तन्तुजाल म अभिव्यक्ति स्थूल वाच्याथ क साथ-साथ सूक्ष्म सकेताथ का लिए हुए है।

इधर कुछ वर्षों से सवाद शली का प्रचलन भी द्रुतगति स हुआ है। श्री वृन्दावन लाल वर्मा की मृगनयनी, यशपाल की दिव्या सवाद शली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। एव उदाहरण श्री भगवतीचरण वर्मा की चित्रलेखा' और डा० धमवीर भारती का 'गुनाहा के देवता भी है। इसम चन्द्र-सुधा सवाद ही समस्त कथा का वाहक है। यह सवाद शली ही इस उपन्यास के शिल्प का प्रधान साधन बना है। इस शली का अपनाने का एक लाभ यह भी हा जाता है कि कथाकार परोक्ष म चला जाता है और पात्र हा सब कुछ कह डालन हैं वे ही कथ्य के वाहक और साधक हात हैं। व कभा परिस्थिति का वणन कभी स्थिति का विश्लेपण और कभी कथाकार क जीवन दशन की व्याख्या प्रस्तुत करन चलत हैं।

श्री यनन्त शर्मा ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास महल और मकान में इस शैली को अपनाया है।

शिल्प और शैली के उपयुक्त विवेचन द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शिल्प और शैली में किसी विशेष जोड़ का सबंध चिरस्थायी नहीं रहा। इसका अर्थ यह नहीं कि अमुक शिल्प की कृति के लिए अमुक शैली की अनिवार्यता ही व्यर्थ हुई। जब अन्य पुरुष शैली और वर्णनात्मक शिल्प दोनों का दामन चोली का साथ रहा है फिर भी बाणभट्ट की आत्मकथा वर्णनात्मक शिल्प और आत्मकथात्मक शैली का उदाहरण है। जैनेन्द्र रचित 'परख' विश्लेषणात्मक शिल्प की रचना है फिर भी इसमें अन्य पुरुष शैली का ही चमत्कार उपलब्ध होता है जबकि विश्लेषणात्मक शिल्प के अधिकतर उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में रचे गए हैं। इतना अवश्य हुआ है कि अधिकतर नाटकीय शिल्प के उपन्यासों में संवाद शैली और प्रतीकात्मक शिल्प के उपन्यासों में संकेत शैली का उपयोग हुआ है परन्तु इनमें यह घटनाओं और पात्रों में नाटकीय स्थिति के वेग को गति देने या इनमें प्रतीकात्मकता के सफल निर्वाह के लिए हुआ है साथ ही इनमें अन्य शैलियाँ भी उपलब्ध होती हैं जैसे डा० धर्मवीर भारती के गुनाहों के देवता तथा निराला में अन्तर कथा तथा अन्तर्वेदना की दीप्ति के लिए आत्मविवाद की शैली का भी कथाकारों ने अपना लिया है। मृगनयनी तथा चित्रलेखा में अन्य पुरुष शैली का चमत्कार प्रेमचन्द कौशिक और प्रतापनारायण श्रीवास्तव से कम नहीं है।

अब तो नवीन शिल्प का विकास होने पर शैली में भी प्रौढत्व आ गया है। क्लिष्टता के स्थान पर सरलता जटिलता के स्थान पर सुगमता वक्रता के स्थान पर सहजता, अवरोध का स्थानान्तर गतिमयता शैली के प्रौढत्व के परिचायक हैं। नवीन शिल्प की कुछ रचनाओं जैसे चांदनी के खण्डहर सोया हुआ जल 'तंतुजाल' को पढ़कर यह आभासित होता है कि भाषा और भावों में गुम्फन बढ़ गया है। सूरज का सातवां घोड़ा की सब कहानियाँ नवीन शैली के साथ भावों का तादात्म्य स्थापित करती हुई हिन्दी उपन्यास के शिल्प एवं शैलीगत परिवर्तन एवं प्रारम्भ का परिचय दे रही हैं। क्योंकि एक ओर ये मनोगत स्वाभाविकता लिए हैं दूसरी ओर शिल्प का नया प्रयोग तीखा व्यंग्यात्मकता का सहज माध्यम। ये समाज पर कटाक्ष तो हैं परन्तु प्रच्छन्न मार्मिक कटाक्ष है जो पाठक को प्रभावित अधिक करता है और पहले ही पाठक की पकड़ में आ जाता है। हम शीघ्र ही उपन्यासकार की शैली को पकड़कर उसके विचारों के समार में खो जाते हैं। अत सरलता और प्रवाह के साथ-साथ एक अमिट प्रभाव नवीन शैली का अंतिम गुण बन चुका है जिसकी खोज में हिन्दी उपन्यास पिछले पचास वर्षों में (प्रेमचन्द युग से) गतिमान था। नये शिल्प की रचनाओं में कथाकार की छाया रचना से दूर होती चली गई है। अब कथा स्वयं चलने लगी, कहीं पात्रों के संवाद द्वारा कहीं स्वगत भाषण द्वारा कहीं पात्र स्वयं संवाद द्वारा जैसे चांदनी के खण्डहर में — मैं मिस्टर कमरे हाऊ हूं। कहीं आत्मविश्लेषण द्वारा कहीं प्रतीक निर्वाह द्वारा—ये सब गुण जहाँ परिवर्तित शिल्प के सहायक हैं वहाँ नवीन शैली के परिचायक भी हैं। शैली के क्षेत्र में यह विशिष्ट उपलब्धि है जिसने शिल्प विधि के विकास प्रांगण में नित नवीन रूप में प्रवेश कर पाठक के मन में स्थान बना लिया है।

दूसरा अध्याय

शिल्प-विधि के विविध प्रकार

शिल्प प्रकार के सबध म अधिकाश आलोचक निश्चयात्मक रूप से कुछ कहने म सकोच करते रहे हैं। इस सबध म हिन्दी उपन्यास के प्रसिद्ध आलोचक डा० त्रिभुवन सिंह लिखते है—'ऐसे ही न जाने कितने प्रयोग आधुनिक उपन्यास साहित्य म किए जा रहे है। यह उसका विकास काल है। अत शिल्प प्रकार के सबध म निश्चित रूप से कुछ भी कहना न तो सम्भव है और न तो उचित है।'[1] हिन्दी उपन्यास का शिल्पगत अध्ययन करने मे पूव यह आवश्यक हो जाता है कि शिल्प विधि के विविध प्रकार और उनके विकास क्रम पर एक विहगम दृष्टि डाली जाए। इसके बिना हिन्दी उपन्यास का शिल्प गत अध्ययन अधूरा और अवज्ञानिक माना जाएगा।

उपन्यास साहित्य का शिल्पगत मूल्याकन करना प्रस्तुत प्रबन्ध का मूल विषय है अतएव शिल्प प्रकार का भेदीकरण और भी अधिक आवश्यक हो जाता है। दुर्भाग्यवश अभी तक हिन्दी उपन्यास शिल्प का कोई प्रौढ और प्रतिमानित रूप निर्धारित नही हो सका। गत वष हिन्दी उपन्यास म कथा शिल्प का विकास (१९५९) शीर्षक एक शोध प्रबन्ध हिन्दी साहित्य भण्डार लखनऊ स प्रकाशित हुआ जो उपन्यास शिल्प का परिचयात्मक इतिहास प्रस्तुत कर सका। इसके लेखक डा० प्रतापनारायण टण्डन ने इसम कथा विकास की विविध पद्धतियो का अन्वेषण किया है। नीचे दी गई तालिका म इन पद्धतियो की एक रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है—[2]

---
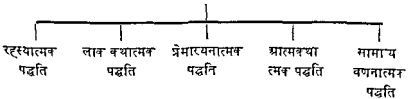
१ हिन्दी उपन्यास और यथाथवाद—पृष्ठ ८०

२ हिन्दी उपन्यास मे कथाशिल्प का विकास—पृष्ठ २०५ २०६
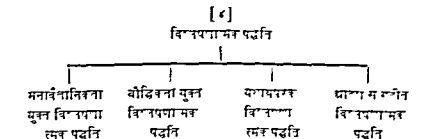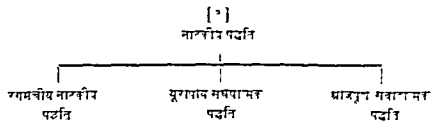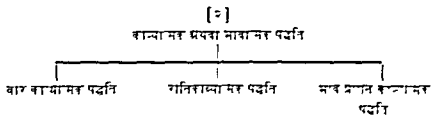
डा० टडन ने कथात्मक शिल्प का पाच भागो म विभाजित किया है। यह विभाजन भी वज्ञानिक नही कहा जा सकता। रहस्यात्मक, लोककथात्मक और प्रेमाख्यानात्मक तीन पद्धतिया कथानक के लिए विषय रूप म तो स्वीकृत हा सकती है किन्तु इन्हे विधान मानना कहा तक सगत है ? हिन्दी उपन्यास साहित्य का अभ्युदय जासूसी कथाओ के साथ हुआ। इनमे रहस्यात्मकता, कौतूहल सहज जिज्ञासा आदि प्रवत्तिया पाठकीय आकषण की विषय-वस्तु मात्र है, समग्र विधान नही। उपन्यास साहित्य म शिल्प का शिल्प के रूप म मान्यता देने वाले और उपन्यास लेखन विधि के महत्त्व को स्वीकार करने वाले प्रथम प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रमचन्द है। इनके विषय म डॉ० इन्द्रनाथ मदान के ये विचार सत्यपरक है— प्रमचन्द को कोई परम्परा विरासत म नही मिली उनको अपना शिल्प विधान स्वय गढना पडा वे अपने शिक्षक स्वय ही थे। उन्होने अपने शिल्प विधान और कला की समस्याओ पर विशेषकर उपन्यास और कहानी के ढाचे पर स्वय विचार किया।'[४] प्रेमचन्द पूववर्ती उपन्यास साहित्य शिल्पगत मान्यताओ की कोई सुस्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत नही करता।

कथात्मक पद्धति के अन्य दो रूप आत्मकथात्मक पद्धति और वणनात्मक पद्धति बताए गए है। इनमे स आत्मकथात्मक पद्धति को म उपन्यास की शली मात्र समझता हू। अपने शोध प्रबध म डा० टडन न भी इसे एक स्थल पर शली रूप म स्वीकार किया है। वे लिखत है— 'आधुनिक युग मे यह शली सवप्रथम प्रौढरूप मे जनेन्द्रकुमार के 'त्याग पत्र म मिलती है इसम यह शली आत्म सस्मरणात्मक तत्त्व का आधार लेकर प्रस्फुटित हुई है'[५] एसा प्रतीत हाता है कि डा० टडन शिल्प और शली मे पर्याप्त अन्तर नही कर पाए हैं तभी उन्होने आत्मकथात्मकता का पहले पद्धति रूप म और फिर शली रूप म स्वीकार किया। दूसरे इस शली का प्रथम प्रयोग जनेन्द्र की रचना 'त्यागपत्र म नही हुआ अपितु इलाचन्द्र जोशी रचित लज्जा म हुआ है जो सन १९२९ म प्रकाशित हुई। 'त्याग पत्र का प्रकाशन इसके तीन चार वष बाद हुआ। पाचवा भेद वणनात्मक पद्धति ही मुझे वज्ञानिक जान पडा है और इसे मैं साभार स्वीकार करता हू। मैंने इसे केवल एक अन्तर के साथ आगे प्रस्तुत किया है वह यह कि इसे उपभेद न मानकर शिल्प विधि का प्रथम प्रमुख प्रकार माना है।

काव्यात्मक अथवा भावात्मक शिल्प पद्धति की कल्पना भी दुलभ है। काव्यात्मकता भाषा और शैली का एक विशेष प्रवाह होता है। भावात्मक हो जाने से ही उपन्यास की शिल्प विधि म कोई अन्तर नही पडता। वीरात्मक या रीतिात्मक कविताए तो सुनने म आई हैं उपन्यास नही कविता म भी वीरात्मकता या शृगारिकता प्रवत्ति का चितवत्ति के रूप में लिया गया है शिल्प रूप म नही। ये चितवत्तिया शिल्प विधि के स्वरूप निर्धारण म सहायक भले ही हो स्वय शिल्प की परिचायक नही कहला सकती। डॉ० टडन न अपन शोध प्रबन्ध म झासी की रानी का वीरात्मक और तारा को रीति

---

४ प्रेमचन्द एक विवेचना—पृष्ठ १२१ १२२

५ हिन्दी उपन्यास मे कथा शिल्प का विकास—पृष्ठ २१२

त्मक शिल्प की रचना कहा है।[1] ये उपन्यास विषय की दृष्टि से वीर और शृंगार सूत्र को लेकर चलते हैं किन्तु इनका शिल्प वर्णनात्मक है। अतः सिद्ध होता है कि वीरात्मक गद्य अथवा रीतात्मक गद्य कोई शिल्प विधि नहीं कहे जा सकते। डा० टंडन का यह विभाजन एवं वर्गीकरण शिल्पगत न होकर विषय और वस्तुगत हो गया है। इस वर्गीकरण द्वारा उपन्यास साहित्य का अध्ययन करने से भ्रामकता की वृद्धि हुई है। विद्वान लेखक ने क्यों विषय और शिल्प का पृथक्-पृथक् करके विचार नहीं किया यह एक गम्भीर प्रश्न है। इसके परिणाम स्वरूप शिल्प के अध्ययन में बड़ी बाधा प्रस्तुत हो सकती है। लेखक को अपने वर्गीकरण के अन्तर्गत उपन्यास रचना के केवल उसी रूप को विभिन्न भागों में विभाजित करना चाहिए था जिसका सीधा सम्बन्ध शिल्प विधि से है। इनके द्वारा निर्धारित पत्रात्मक पद्धति भी कोई स्वतन्त्र शिल्प विधि नहीं है यह केवल विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का एक उपभेद मात्र है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने हिन्दी उपन्यास शिल्प के क्षेत्र में वर्तमान असंगतियों एवं भ्रान्तियों के निवारण हेतु इस प्रश्नात्मक दृष्टि से आंकने का भरसक प्रयत्न किया है। इसके परिणामस्वरूप उसे निम्नलिखित शिल्प विधियाँ उपलब्ध हुई हैं—

१ वर्णनात्मक शिल्प विधि (Descriptive Technique)
२ विश्लेषणात्मक शिल्प विधि (Analytical Technique)
३ प्रतीकात्मक शिल्प विधि (Symbolical Technique)
४ नाटकीय शिल्प विधि (Dramatic Technique)
५ समन्वित शिल्प विधि (Mixed Technique)

वर्णनात्मक शिल्प विधि

वर्णनात्मक शिल्प विधि वह है जिसके द्वारा उपन्यास में जीवन के विस्तृत क्षेत्र का चित्रण विवरणपूर्ण ढंग से बढ़ा चढ़ा कर व्याख्या सहित प्रस्तुत किया जाता है। इस विधि को अपनाने वाले उपन्यासकार के पास इतिहासकार जितनी सुविधाएं विद्यमान रहती हैं। वह जीवन के किसी भी क्षेत्र को अपनी कथा का माध्यम बना सकता है। घटना बाहुल्य पात्र आधिक्य लम्बे संवाद तथा भाषण यातना अनेक समस्याएं इसी विधि द्वारा सरलता पूर्वक चित्रित हो सकती हैं। वातावरण के प्रसार और दार्शनिक विवेचन की पूर्ण सुविधा इस विधि को अपनाने वाले कथाकार को मिल जाती है। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व चित्रण की आवश्यकता इस विधि के कथाकारों को अनुभव हो नहीं हुई यत्र-तत्र यदि कहीं अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण हो भी गया है तो वह वर्णनात्मक शिल्प विधि को अपनाने के कारण नहीं जीवन की द्वन्द्वात्मक स्थिति की अनुभूति के कारण प्रदर्शित हुआ है क्योंकि इस विधि के अन्तर्गत अन्तर्मन की नाना स्थितियों का विश्लेषण सम्भव नहीं है केवल बाह्य रूप का विस्तृत चर्चा हुआ करती है। हिन्दी में उपन्यास कला की इस विधि का प्रयोग सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने किया है।

---

१ वही ... पृष्ठ ३०४

वणनात्मक शिल्प विधि के उपन्यासो का कथानक इतिवृत्तात्मक होता है। इसम घटनाओ का एक जाल सा बिछ जाता है। कथावस्तु अधिकतर दुहरी या तीहरी होती है। कथा भाग सुन्दर सगठित भले ही न हो किन्तु इस विधि की रचना म एक विशेष विचार या समस्या अवश्य ही उठाई जाती है और प्रेमचद सरीखे उपन्यासकार तो उसका हल भी साथ ही जुटा देते ह। ये समस्याए अधिकतर सामाजिक होती है किन्तु कतिपय रचनाओ म राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक प्रश्न भी उठाए गए हैं। प्रखरता गहनता दृढता तथा सूक्ष्मता की अपेक्षा व्यापकता ही इस विधि के उपन्यासो म दृष्टिगोचर होती है। प्रखरता गहनता और सूक्ष्मता आदि के लिए गहन आन्तरिक द्वन्द्व अपेक्षित है जो केवल विश्लेषणा त्मक या नाटकीय विधि के उपन्यासो म उपलब्ध है। व्यापकता के कारण अस्वाभाविक घटनाओ का समावेश भी रहता है।

वणनात्मक विधि के चरित्र चित्रण म पात्रो की भरमार रहती है। य पात्र अधिक तर किसी न किसी वग विशेष का प्रतिनिधित्व करत हैं। इस विधि के अनुसार कवल चरित्र का चित्रण ही सभव है इसम उसका विश्लेषण करने का प्रश्न ही नही उठता। अत चरित्रो को सुनिश्चित और अखडित इकाई के रूप म चित्रित किया जाता है जबकि विश्लेषणवादी उपन्यासकार चरित्र को कइ खण्डो म विभाजित करके देखा परखा करता है। पात्र अधिकतर समाजोन्मुखी होत है और उनके बाह्य पक्ष का चित्रण ही प्रमुख रूप स किया जाता है। सभी चरित्रो पर समाज के बाह्य रूपो का प्रभाव सीधे रूप म दिखाया जाया करता है। इस विधि को अपनाने वाला कथाकार घटना और चरित्र पर पूण अधि कार रखता है वणनात्मक शिल्प विधि के चरित्र चित्रण म कभी-कभी कथाकार समूह की प्रवत्तियो का चित्रण व्याख्यापूवक प्रस्तुत कर दिया करता है। 'सवासदन म हम भोली का ही नहीं, वश्या मात्र का चित्र देखते हैं। 'गबन म जालपा का ही नही स्त्री जाति का आभूषण प्रेम उद्घाटित किया गया है। 'बकार म पुरुष मात्र की काम लिप्सा और यश लिप्सा का चित्रण प्रस्तुत हुआ है। 'दवदवा' और मधु म वश्या समाज का प्रवत्तियो और समस्याओ पर लेखक न व्यापक रूप स प्रकाश डाला है।

वणनात्मक विधि क उपन्यासो म कथाकार का ध्यान कथा और चरित्र के साथ साथ विचार और समस्या की ओर भी केन्द्रित रहता है। कभी-कभी तो उपन्यासकार का ध्यान सबस अधिक अपने लक्ष्य की ओर ही भुक जाता है, वह अपनी कथा और पात्रो को अपने सुधारवादी विचारो के अनुसार तोड मरोड देता है। प्रमचन्द अपन उपन्यासो म मूलत एक समस्या का चयन है फिर उसका व्यापक वणन करके सुधार के उपाय बताते चलत हैं। आदश सिद्धान्त और सुधार की ओर उनका ध्यान केन्द्रित रहता है। अपने युग के व सफल चित्रकार बन जाना चाहत ह और इस लक्ष्य को प्राप्त भी कर चुके है। उनके उपन्यास सहित्य म सामाजिक समस्याए ही चित्रित नही हुई अपितु राजनैतिक हलचल, धार्मिक और साम्प्रदायिक आन्दोलन आर्थिक प्रश्न नतिक विचार भी प्रतिपादित हुए ह। यह उनकी ही नही वणनात्मक शिल्प की विशेषता, जिसम इतनी व्यापकता और असामता सभव है।

वणनात्मक शिल्पविधि म लिखा गया उपन्यास **साहित्य** चार शैलियो म उपलब्ध

है। अत शैली की दृष्टि से इसे चार रूपों में देखा जा सकता है—

(१) अन्य पुरुष शैली,
(२) आत्म कथात्मक शैली
(३) पत्र शैली
(४) डायरी शैली।

अन्य पुरुष शैली

अन्य पुरुष शैली अथवा ततीय पुरुष शैली ही सर्वाधिक प्रचलित शैली है। प्रेमचन्द जयशंकरप्रसाद विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक व दावनलाल वर्मा प्रभति उपन्यासकारों ने अपनी अधिकांश रचनाए इसी शैली में लिखी है। इसमें उपन्यासकार एक इतिहासकार की भाति कथा का वर्णन करता है। कथा का सूत्र उसके अपने हाथ में होता है अतः उसे धर्मवेत्ता समाजवक्ता अथवा राजनैतिक नायक के समान बोलने और उपदेश देने की पूरी सुविधा होती है। इस शैली में लिखने वाला उपन्यासकार लक्ष्य से चिपट जाया करता है। यदि वह कोरा आदर्शवादी है तो अपनी सुधार प्रवृत्ति के कारण समाज की यथार्थ परिस्थिति का वर्णन नहीं करेगा और यदि घोर यथार्थवादी है तो समाज के कुत्सित रूप दिखा कर ही चन लेगा। यही कारण है कि अधिकांश वर्णनात्मक उपन्यासों में सतुलन का अभाव है वह कथाकार के निजी बोझिल विचारों तले दबे रहते हैं। इस शैली को अपनाने के कारण वर्णनात्मक शिल्पी अपनी ओर से सब कुछ कहने की छूट रखता है। वर्णनात्मक उपन्यासों में कथाकार की लक्ष्य प्रियता की ओर संकेत करते हुए आचार्य नन्दुलारे प्रेमचन्द के विषय में लिखते हैं— उन्होंने प्रत्येक स्थान में जो सामाजिक या राजनीतिक प्रश्न उठाए है उनका निर्णय भी हमारे सम्मुख उपस्थित किया है। निर्णय का निरूपण करने के कारण प्रेमचन्द जी लक्ष्यवादी है। निर्णयात्मक प्रवृत्ति के कारण प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में कुछ घटनाए तोड़ मरोड़ दी है कुछ पात्रों के चरित्रों को परिवर्तित कर दिया है। सेवासदन में कथाकार का प्रथम और अन्तिम उद्देश्य यही रहा है कि एक ऐसे आश्रम की स्थापना की जाए जिसमें पग रखते ही वेश्याए देवी बन जाए और आदर्श जीवन यापन करें। इस उद्देश्य की पूर्ति हित देव तुल्य चरित्र सदन और सुमन का चयन किया गया ताकि वह सुभाता से सेवासदन की स्थापना कर सके। विचार प्रतिपादन हित कई प्रगल्भ भाषण जुटाए जाते हैं जो केवल उपन्यास के आकार को ही बढ़ाते हैं या प्रचार का साधन बनते है।

आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत वर्णनात्मक उपन्यास

वर्णनात्मक शिल्प विधि का एक अन्य उदाहरण डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी रचित बाण भट्ट की आत्म-कथा है। इसकी रचना आत्मकथात्मक शैली में हुई है। इसमें स्वयं बाण भट्ट कथा-सूत्र को पकड़ कर अपनी कथा कहता है। उपन्यास का प्रत्येक भाग

७ आलोचना-उपन्यास विशेषांक—पष्ठ ५६

प्रार सूक्ष्म अग यथायोग्य अलकरणा स सम्पन्न ह। जिस भाति एक भवन म अलिन्द कक्षाए स्तम्भ, वापिया आहार विहार स्थल, व्यायाम गह आदि सब भाग सूक्ष्मातिसूक्ष्म अलकारो तथा रत्ना स सजाये जात हैं ठीक उसी प्रकार इस रचना म स्थल रूपा को शब्दा द्वारा पूण सौन्दय के साथ अभिव्यक्त किया गया है।

'वाण भट्ट की आत्म-कथा गुप्त-युगीन भारतीय इतिहास की कहानी है। यह युग भारतीय इतिहास म स्वणयुग के नाम स प्रसिद्ध ह। डा० हजारी प्रसाद ने अपन सशक्त वणना द्वारा स्वण युग के इतिहास के औपन्यासिक रूप का पूरा पालिश कर चमत्कृत कर दिया ह। रम्य भील भय भवन मन मोहक प्रकृति का साक्षात दशन सदव के लिए सुलभ कर दिया है। इन वणना म जा चित्र उपलब्ध हात है व तत्कालीन मानवी सष्टि का अतरग परिचय ता दत है साथ ही उपन्यास की चित्रग्राहिणी बुद्धि तथा अदभुत वणन की क्षमता की बात भी कह रह है।

प्रस्तुत उपन्यास के वणन रस म लिप्त मिष्ठान की भाति ह। इनम एक प्रकार का लालित्य ह। शिल्प विधान का सौ दय यहा उत्कष पर ह। एसा लगता है कि कथा कार न समाधिजन्य तन्मयता की स्थिति म लालित्य सागर म डुबकी लगाकर वाण द्वारा वणना की लहरें उठाई हैं। जहा कही दाशनिक प्रसगा की अवतरणा करना पडी है वही धार्मिक पात्र सयाजित करक उनके भाषण दिलाए गए है। इन भाषणा म सरल माधुय और स्वाभाविक प्रवाह है। नारी तत्त्व पर विचार प्रकट करन के लिए वाण भट्ट महा माया आदि पात्रा का समय और स्थल दिए गए है। इनम म दो प्रकरण पठनीय है—'राज्य गठन सन्य-सचालन मठ सथापन और निजन वास पुरुष की समताहीन मर्यादाहीन शृखलाहीन महत्त्वाकाक्षा के परिणाम है। इनको नियन्त्रित कर सकन की एक मात्र शक्ति नारी है। कालिदास न इस रहस्य का पहचाना था। इतिहास साक्षी है कि इस महिमामयी शक्ति की उपेक्षा करने वाले साम्राज्य नष्ट हा गए है मठ विध्वस्त हा गए हैं ज्ञान और वराग्य के जजाल फन बुदबुद की भाति क्षण भर म विलुप्त हो गए हैं।[८]

परम शिव से दो तत्त्व एक साथ प्रकट हुए थ—शिव और शक्ति। शिव विधि रूप है और शक्ति निषधा रूप। इन्ही दा तत्त्वा प्रस्पन्द विस्पन्द से यह ससार आभासित हा रहा है। पिण्ड म शिव का प्राधान्य ही पुरुष है और शक्ति का प्राधान्य नारी है। जहा कही अपने आपको सपा दन की भावना प्रधान है वही नारी है। जहा कही दुख-सुख की लाख-लाख धाराओ म अपन का दलित द्राक्षा क समान निचोडकर दूसरे को तप्त करन की भावना प्रबल है वही नारी तत्त्व है या शास्त्रीय भाषा म कहना हो तो शक्ति तत्त्व है। हा, र नारी निषधरूपा है। वह आनन्द भाग के लिए नही आती आनन्द लुटान क लिए आती है ।[९]

वाण भट्ट की आत्म-कथा म स्थिति और गति क मिल हुए विधान से कथा के

८ वाणभट्ट की आत्म-कथा—पष्ठ ११४ १५
९ वही—पृष्ठ १५४ १५५

वर्णना में अद्भुत रसवत्ता की अभिव्यक्ति मिलती है। प्रेम और यौवन से सबंधित वर्णना में तो प्राजलता, रस प्रवाहिता, क्षमता तथा सौन्दर्य इतने दर्शनीय हो गए हैं। बाण भट्ट ने भट होने पर मुचरिता अपना कथा कहता है। इस कथा का एक विशेष स्थिति और गति के बीच की अवस्था के वर्णन में जो रसात्मक प्रवाह है उसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

'जिस प्रकार वसन्त काल में मधुमास, मधुमास में पल्लवराजि, पल्लवराजि में पुष्प सभार, पुष्प सभार में भ्रमरावली और भ्रमरावली में मदावस्था दिखा सुनाई पड़ जाती है उसी प्रकार मेरे शरीर में यौवन का पदार्पण हुआ।'[10]

पत्र शैली में प्रस्तुत वर्णनात्मक उपन्यास

पत्र शैली में प्रस्तुत 'चन्द हसीनों के खतूत' नामक उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण कृति है। शिल्प के क्षेत्र में यह एक नया प्रयोग है जिसके लिए 'उग्र' का नाम चिर स्मरणीय रहेगा। प्रेमचन्द द्वारा प्रतिष्ठित प्रथम पुरुष शैली वर्णनात्मक शिल्प विधि के प्रति यह एक विद्रोह सूचक रचना है। स्कूल तथा कालिज के विद्यार्थियों की प्रणयलीला को अभिव्यक्त करने के लिए पत्र शैली को अपनाया गया है। कुछ समालोचकों की मान्यता है कि पत्रों में प्रेमात्मक वर्णन अपनी चरम सीमा को प्राप्त करते हैं। उग्र ने इस कियदन्ती को सार्थक कर दिखाया है।

प्रथम पत्र में ही उपन्यास की नायिका नरगिस अपनी भाभी को प्रेम-पीड़ा की लिखित स्वीकृति भेजती है। इस पत्र में प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना की गई है। दूसरे पत्र में नायक मुरारी कृष्ण अपने साथी गोविन्द हरि शर्मा को अपनी प्रेम जनित अवस्था से परिचित कराता है। इसके पश्चात लिखे गए पत्रों में प्रेमपथ की कठिनाइयों और मुरारी कृष्ण के साहसिक बलिदानों का वर्णन है। वर्णन इतने बड़े गए हैं कि कथा की शृंखला टूट गई है। असगरी द्वारा अपने पति अनिरुद्ध को लिखे गए पत्र में पति द्वारा लिखित पत्र की कुछ पंक्तियाँ ही उद्धृत की गई हैं, इससे कथा स्पष्ट नहीं होती। यदि इस पत्र से पूर्व अलाहुसेन का पूरा पत्र दे दिया जाता तो कथानक में सुसंगठितता आ जाती।

हिन्दू मुस्लिम समस्या को लेकर उपन्यासकार ने रोमांचकारी वर्णन प्रस्तुत किए हैं। कहीं-कहीं तो हास्य रस का स्रोत फूट पड़ा है जैसे— 'चारों ओर डंडाशाही, ईंटाशाही, छुराशाही, तलवारशाही, औरंगशाही और नादिरशाही का बोलबाला था। धूर्त नौकरशाही और इन सब खुराफातों की जड़ नौकरशाही उस समय घूँघट में मुँह छिपाए है।'[11] किन्तु ये वर्णन हास्य रस उत्पादक होने पर भी शब्द दोष से रहित नहीं हैं। शाही शब्द का प्रयोग अतिशयपूर्ण है और कानों को खटकने लगता है। समाज के घृणित अवयवों का विस्तृत चित्रण तो इसमें हुआ ही है नारी की विवशता का व्यापक चित्र भी खिंच गया है।

---

१० वही—पृष्ठ २१४

११ चन्द हसीनों के खतूत पृष्ठ

असगरी के पत्र द्वारा उत्पादित नारी विषयक विचारधारा मनन योग्य है। बुतखाने के परदे म काबा का नजर आना पद्य का गद्य म उसी प्रकार समा जाना है जैसे पानी का दूध म मिलकर दुग्धमय हो जाना। कुछ दोषो के रहते हुए भी इस रचना का शिल्प के क्षेत्र म एतिहासिक महत्व तो अक्षुण्ण रहेगा ही। पत्र शली के उपन्यासो म स्वाभाविकता लाने के लिए आवत्तियो की अत्यन्त आवश्यकता रहती है जिसका अभाव इस रचना का बडा दोष है।

डायरी शैली म रचित वणनात्मक शिल्प विधि का जयवधन

'जयवधन' के प्रकाशन के साथ ही जनेन्द्र ने एक वक्तव्य द्वारा इस उपन्यास की सार्थकता म सन्देह प्रकट कर दिया— जयवधन पाठक के पास आ तो रहा है, पर कह नही सकता कितना वह उपन्यास सिद्ध होगा।[12] समस्त उपन्यास पढ लेने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह रचना उपन्यास अवश्य है किन्तु इसकी कथा अन्य पुरुष शली म वर्णित न होकर डायरी शैली म प्रस्तुत हुई है जिसम पात्र दैनन्दिनीपरक विवरणो को विचार की नोच खचोट का आवरण देकर प्रस्तुत करते है तभी तो यह रचना उपन्यास स अधिक एक विचारात्मक जीवनी है जिसम जनेन्द्र का लक्ष्य त्याग और निस्पृहता स उच्चादर्श की प्रतिष्ठा करना है। उन्होने स्वतन्त्रोत्तर भारत म राजनीतिक छीना झपटी का मार्मिक चित्र इस डायरी शली की रचना म प्रस्तुत किया है।

जनेन्द्र के अधिक उपन्यास विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के है। व 'यति' के अन्त मन के विश्लेषक कलाकार है किन्तु जयवधन एक अपवाद है। डायरी के पृष्ठो म सकलित विदेशी पत्रकार श्री विलबर हूस्टन के सस्मरण आत्मकथात्मक विवरणो सहित प्रस्तुत किए जाने के कारण यह उपन्यास वणनात्मक शिल्प विधि के अन्तगत आता है। डायरी द्वारा पात्र अपनी बात तो कहते ही हैं निराक्षक के रूप म दूसरे पात्रो के विषय म भी हम जानकारी कराते है। जसे हूस्टन लिखते है— जयवधन के बारे म सुना ही है दो रोज और कि मैं पास मे और सामने स उन्ह मिलूगा। अब जो सुना है उस पर ध्यान जाने की जरूरत नही है। जरूर उसम कुछ गपियारा है।[13] अमरीकन जिज्ञासु हूस्टन भारत म आए और यहा जिन लोगो के सम्पर्क म आए उनके जीवन का तिल तिल कर जानना चाहा। उपन्यास म उन्होने १ फरवरी २००७ से लेकर १० अप्रल २००७ तक की घटनाओ का वणन किया है।

इस उपन्यास म जीवन का यथा तथ्यता है अनुरूपता नही। पात्रो के लम्बे-लम्बे भाषणो तथा वक्तव्यो की योजना ही प्रधान रूप स सामने आता है। राजनीति स सबधित वक्तव्यो के स्पष्टीकरण के लिए लम्बे लम्बे तक भी प्रस्तुत किए गए है। दार्शनिक प्रश्नो का पात्रो के सवादो द्वारा सुलझाने की चेष्टा की गई है। प्रम विवाह ईश्वर युद्ध राज्य, अहिंसा सत्य जसे गम्भीर और ज्वलन्त प्रश्नो पर खुलकर विचार किया गया है। इसी

---

१२ जयवधन—पृष्ठ प्रथम (वक्तव्य)

१३ वही—पृष्ठ १०

हुआ करते है। साधारणत वणनात्मक उपन्यासो म उनका सविस्तार वणन हुआ करता है और विश्लेषणात्मक म गहन विश्लेषण किन्तु फिर भी विशेष विशेष अवसरो पर वणनात्मक उपन्यासो म विश्लेषण प्रस्तुत कर दिया जाता है और विश्लेषणात्मक उपन्यासो म व्याख्या जुटा दी जाया करती है। प्रेमचन्द के समस्त उपन्यास वणनात्मक है किन्तु सेवा सदन, निमला और रगभूमि म अनेक स्थलो पर विश्लेषणात्मक प्रसग दिए गए हैं। ऐसे ही सुनीता, लज्जा और सन्यासी विश्लेषणात्मक उपन्यास है किन्तु इनम कई अवसरो पर कतिपय विषयो की व्याख्या कर दी गई है। अतएव उपन्यास का वणनात्मक शिल्प विधि या विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के अन्तगत उसम वतमान सामग्री और उस सामग्री की प्रस्तुतीकरण विधि द्वारा निर्णीत होने पर रखा जाता है।

'जयवधन' म जनेन्द्र ने पात्रो का चयन व उनका चरित्र चित्रण बहुत सतकता के साथ किया है। जयवधन हूस्टन इला नाथ स्वामी जसे पात्र वतमान भारतीय राजनीति म सबधित दिखाए गए है। इस दृष्टि स उनके पूववर्ती विश्लेषणात्मक पात्रो और जयवधन के वणनात्मक पात्रो म एक स्पष्ट विभाजन रेखा है। जयवधन' म हम चरित्र विषयक नवीन उपलब्धिया प्राप्त है। समस्त कथा इला और जयवधन को केन्द्रस्थ रख कर घूमती है। जनेन्द्र को पात्रो की भीड पसन्द नही। वे चरित्र को स्वल्प रूप म उदघाटित करते हैं शेष पाठक की कल्पना पर छोड देते हैं। जयवधन के चरित्र का ही लीजिए। हूस्टन इस पात्र का इन शब्दो म वर्णित करते है— जयवधन का देखा। मिला, बात हुई। व्यक्ति नही, वह घटना है। पर छुआ कही तो बिजली का जीता तार जसे छू गया। धक्के और अचम्भे से आदमी भनभना जाता है। धक्का और भी प्रबल शायद इस लिए होता हो कि तुम उसकी तनिक भी आशा नही रखते। बढते हो कि करुणा कराेगे। पर कुछ आता है कि तुम स्तब्ध बने रह जाते हो। तुच्छता समझकर जहा हाथ डाला वहा ज्वाला दमक आए तो कसा लगे—कुछ वैसा ही अनुभव हुआ।' डायरी शली म ही जय के चरित्र पर आगे प्रकाश डालते हुए व लिखते गए— जय निश्चय ही व्यस्त होगे। अचरज नही खिन्न भी हो, लेकिन मेरा सोच व्यथ निकला। कारण, अभी वहा से आ रहा हू। इतना मैंने उन्हें पहिले नहो पाया। मालूम होता है इस व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरा है। सकट म वह स्वस्थ है अन्यथा चिंतित। और भी— जय कल्पना लोक म नही रहते। पर रहने को सबके पास अपना कल्पना लोक ही तो है नही तो क्या है? लोक स्वय जो कल्पना है।'[१५] चरित्र चित्रण की यह प्रत्यक्ष विधि इसके वणनात्मक शिल्प का अकाट्य प्रमाण है। लेखक ने न केवल जयवधन के अपितु इला के व्यक्तित्व पर भी स्वय हूस्टन द्वारा लिखवाया है— मैंने इला को देखा। अपनी कसी घनिष्ठ कथाए सुनाने यह नारी आ गई है। पर यह सब होने के बाद भी कही असमजस नही है प्रभावशालीनता और शालीनता म कही त्रुटि नही। एकदम लगभग उसी समय की कल की एलिजाबेथ का ध्यान आया। बहुत ही विलक्षण प्रतीत हुआ। निश्चय ही सामने बठी नारी म नारीत्व किसी और से कम न था पर वह तनिक भी मुझ पुरुष म उद्वेग का कारण न बना। प्रत्युत

१५ जयवधन—पष्ठ १७, १४६, २७६

एक समाहित शुचिता और सन्ताप का अनुभव हुआ। व्यक्ति न सारा और उस साम्य का परिमण्डल था, पर उससे भाव की भव्यता ही मिला।'¹⁶

जयवर्धन की कथा डायरी के पृष्ठो म उपलब्ध होती है और ये पृष्ठ दार्शनिकता की एक स्पष्ट झलक देते है। इसम अनेक पात्र डायरी के अनेक पृष्ठो म तक वितर्क करते हुए स्वय उठाए प्रश्नो का उत्तर भी प्रस्तुत कर देते है। जयवर्धन हिन्दी का ही नही प्रत्युत भारतीय साहित्य का प्रथम उपन्यास है जो डायरी शैली म वर्णनात्मक शिल्प विधि मे कलात्मक कौशल ला सका। उपन्यास दार्शनिक, राजनीतिक प्रश्नो की ऊहापोह म साधारण पाठक की पहुच के बाहर भले ही हो पर बौद्धिक वग के लिए एक चुनौती लिए है—वह इस डायरी कहे उपन्यास कहे या फिर दोनो का समाहार। अवश्य ही इसम गहीत विचारो तर्कों सिद्धान्तो और नाना राजनीतिक प्रश्नो की बौछार हिन्दी के सामान्य पाठक को बौना बनाकर बठा देती है और प्रबुद्ध पाठक को विचारने की क्षमता और सामग्री प्रदान करती है।

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि हिन्दी उपन्यास शिल्प के विकास म एक बडा मोड है। इस शिल्प विधि को अपनाने वाला उपन्यासकार विषय वस्तु पात्र विचार तथा वातावरण को नये ढग से प्रस्तुत करता है। विषय वस्तु की दृष्टि से उपन्यासकार अखण्ड जीवन के विस्तत क्षेत्र को त्यागकर उसके किसी एक पहलू को लेकर विशेषतापूर्वक उस पर प्रकाश डालता है। कथा सक्षिप्त होने लगी और कथाकार कथावस्तु के स्थान पर भाव एव विचारवहन के काय म सलग्न हुआ। प्लाट प्रधान विषय वस्तु का ह्रास विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के विकास के साथ ही आरम्भ हुआ। उपन्यास की कथा म बाह्य क्रियाकलापो की कमी होने लगी। अन्तमुखी प्रवत्तियो और आन्तरिक कारणो से ही कथा सबध जोडने लगी। धीरे धीरे कथा बाह्यात्मकता स मुक्त हो अनुभूति के आत्मनिष्ठ रूप पर आधारित हुई। मानव के बाह्य जीवन की लीला का वणन न कर उसके अन्तमन के आलोडन पर उपन्यासकार की दष्टि केन्द्रित हुई। उसके अन्तमन म परस्पर विरोधी विचारो घूणन प्रतिघूणन सघष तनाव कुण्ठा सत्रास चिन्ता आशका को अभिव्यक्ति मिलने लगी।

वणनात्मक शिल्पियो ने समाज इतिहास अचल परिवार या राजनीति को उपन्यास का प्रतिपाद्य बनाया, विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के प्रणताओ ने व्यक्ति के वयक्तिक जीवन को विषय-वस्तु रूप म स्वीकार किया। एक बार व्यक्ति के वयक्तिक जीवन को लेकर ही इस शिल्प विधि का कथाकार अपनी इतिश्री नही समझ लेता, वह व्यक्ति का इतिहास नही देता उसका अचेतन मन प्रस्तुत करता है और यदि उसका इतिहास देता भी है तो उसका चेतन लीला अचेतन के परिप्रेक्ष्य म विश्लेषित होती है। उपन्यास की अन्तप्रयाण वत्ति ही मूल रूप स विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के नियामक तत्त्वो म स एक

---

१६ जयवर्धन—पष्ठ २८६

है। दूसरा प्रमुख तत्त्व मनोविज्ञान शास्त्र का द्रुत गति से उभरा विकास है जिसने विश्व के आधे से अधिक कथा साहित्य को अपने अचल में ले लिया है। इसी शास्त्र के अन्तर्गत अचेतन मन का अन्वेषण और उसके अध्ययन की विश्लेषणात्मक प्रणाली ने विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के स्रोत का राजमार्ग तैयार किया है। मनुष्य की अन्तश्चेतना में वर्तमान नाना ग्रन्थियां, विविध कुण्ठाएं अनेक वासनाएं और प्रश्नों का बोध सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा सहज हो जाता है। इस शिल्प विधि के उपन्यासों में मूल केन्द्र कथा, घटना या सामाजिक समस्या न होकर वैयक्तिक अन्तश्चेतना में वर्तमान कोई ग्रन्थि या स्थिति होती है जिसका संबंध अधिकतर हीनता या काम ग्रन्थि से होता है जो व्यक्ति विशेष के जीवन में विषयस्तता ला देती है और उससे असामाजिक, अवाञ्छित कार्य कराती है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार जटिल, विचित्र और अकल्पनीय लगता है।

मनोविज्ञान इस शिल्प विधि का मूलाधार भी कहा जाता है। वैसे दर्शन शास्त्र भी इसका उत्स माना जा सकता है क्योंकि इस विधि के उपन्यासों में जहां एक ओर मनोविश्लेषणात्मक प्रसंगों की अवतारणा मिलती हैं, वहां दार्शनिक ऊहा पोह से परिपूर्ण कथानक भी उपलब्ध होते हैं। इस विधि के कतिपय कथाकारों की रचनाएं तो केस हिस्टरी अथवा साइको थरेपी मात्र कही जा सकती हैं। विशेष रूप से इलाचन्द्र जोशी पर यह आरोप है कि उनके उपन्यासों की कथा व पात्र अपने अन्तरंगी वैचित्र्य तथा केस हिस्टरी बन जाने के कारण उपन्यास से अधिक मनोविज्ञान शास्त्र बन गए हैं। मैं इस मत से पूर्ण रूप से सहमत नहीं हूं। वस्तु स्थिति तो यह है कि श्री इलाचन्द्र जोशी इस शिल्प विधि के प्रणेता हैं। उन्होंने मनोविज्ञान शास्त्र का अध्ययन हिन्दी के अन्य कथाकारों की तुलना में अधिक लगन के साथ करके इसे आत्मसात भी किया है। इसके कतिपय सिद्धान्तों की इन्होंने खुलकर आलोचना भी की है।

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि द्वारा उपन्यास की घटनाएं बाह्य संसार से हटकर मनस्तत्व में प्रवेश कर लेती है। अतः उनमें सूक्ष्मता आ जाना अनिवार्य है। इस संबंध में डॉ० देवराज का यह कथन ठीक है कि इसमें मानवीय चेतना की निवृत्ति, उसकी तरलता अनुरूपता किसी रूप रेखा को अपने प्रवेग से मटियामेट कर देने वाली आन्तरिकता तथा प्राणवत्ता के स्वरूप को चित्रित करना उपन्यासकार का ध्येय होता है।[१७] इस विधि के उपन्यासों में कथा तत्त्व गौण होता है और जो होता है वह भी संगठित नहीं रहता। कार्य कारण की शृंखला नियमित रूप से नहीं रहती। नये शल्पिक ने घटनाओं में तारतम्य को नहीं स्वीकारा। विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के चरित्र चित्रण में पात्रों के वैयक्तिक तत्त्व का पोषण हुआ करता है। यहां तक कि समाज और समस्या का विश्लेषण भी व्यक्ति के माध्यम से प्रस्तुत किया जाया करता है। परख 'लज्जा', 'संन्यासी', शेखर एक जीवनी आदि उपन्यासों में हम वैयक्तिक पात्र योजना के दर्शन करते हैं। इन उपन्यासों के पात्रों को जब भी दो क्षण का अवकाश मिलता है। ये अन्तर्मन की अवस्था पर मनन करने है। 'संन्यासी' का ही लीजिए। शान्ति गमन पर

---

१७ आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान—पृष्ठ ३१४

इस उपन्यास का नायक कल्लिनार मनोविश्लेषण द्वारा अपनी मानसिक अवस्था का विश्लेषण करता है। 'रह रहकर केवल एक बात मेरे मन को अत्यन्त निर्ममता से आघात पहुंचा रही थी। वह यह कि नास्ति रूप विशाल सागर में अकेली, एकदम अकेली एक गर्म और निःसम्बल अवस्था में अनन्त काल तक निरुद्देश्य भटकने के लिए निकल पड़ी है। कल तक वह मरी थी, आज वह किसी की भी नहीं है। जीवन भर वह अथाह सागर में डूबती उतरती रही। जब किसी तरह तीर पर पहुंची तो एक एक तिनका चुन चुनकर वह कितने प्रयत्न और कितनी कठिनाइयों के बाद अपने लिए एक नीड़ का निर्माण कर पाई थी। आज आंधी के एक प्रबल झोंके से वह नीड़ नष्ट भ्रष्ट हो गया है। उसका एक एक तिनका शून्य में बिखर गया है और उसमें वास करने वाली विहगी अपने छिन्न पंखों से फिर अपार सागर पार करने की असम्भव चेष्टा में उन्मत्त भरकर चल पड़ी है। साथ साथ कर अन्तस्तल से एक आकुल क्रन्दन रह रहकर मर्म को चीरता हुआ ऊपर उठ रहा था।'[१८]

विश्लेषणात्मक कथा विधान

मनोविज्ञान को प्रश्रय देने के कारण विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यास का कथा विधान भी परिवर्तित हो गया। सर्वप्रथम तो कथा में से इतिवृत्त तत्त्व का निकास आरम्भ हुआ और इसका स्थान मनोविज्ञान पर आधारित घटनाओं ने लिया। फिर ये घटनाएं भी उपलक्षण मात्र रह गई। प्रमुख स्थान आंतरिक वृत्तियों को मिलता चला गया। इसीलिए दूसरी प्रधान प्रवृत्ति इस विधि के उपन्यासों की अंतर्मुखी कथा योजना है। अब उपन्यास में अनुभूति के आत्मनिष्ठ रूप (Subjective aspect of experience) को अधिक महत्त्व मिलने लगा है। लेखक द्वारा वर्णित घटनाएं अपनी प्रधानता त्यागकर अब पात्रों की मानसिकता में प्रवेश करके नाना द्वन्द्व और लीलाएं दिखाने लगी है। अतः उसमें एक लोच आ गया है। इस विधि के कथाकार की मान्यता है कि भीतरी जगत अधिक विशाल व महत्त्वपूर्ण है। तभी तो वर्णनात्मक शिल्प विधि के कथानकों में उत्सुकता रोचकता संगठन आदि गुणों पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। इधर विश्लेषणात्मक विधि के उपन्यासों में सुसंगठित कथा वस्तु के प्रति उदासीनता ही दृष्टिगोचर होती है। इस तथ्य का उद्घाटन डा० देवराज ने अपने थीसिस की इन पंक्तियों में किया है—'सुसंगठित कथा वस्तु के प्रति उदासीनता होती है इसमें इस बात की इतनी परवाह नहीं होती कि कथा की कड़ियां इतनी बारीकी से मिलाई जाए कि कहीं भी जोड़ मालूम न पड़े। इसमें घटनाएं गौण होंगी उपलक्षण मात्र होंगी। उनके सहारे पात्रों के भावचक्र को खोलकर रखना ही उद्देश्य होगा। आंग्ल साहित्य में तो कथा की सुव्यवस्था (Orderly unfolding of plot) को छिन्न भिन्न करके देखने वाले औपन्यासिकों का एक सम्प्रदाय ही है। पर हिन्दी में भी इसकी प्रतिक्रिया जैनेन्द्र अज्ञेय शिवचन्द्र तथा अंचल जी के कुछ उपन्यासों में स्पष्ट दीख पड़ती है।'[१९]

---

१८ संन्यासी—पृष्ठ २३१

१९ आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान—पृष्ठ २९

कथा की अवधि और सामग्री में भी अन्तर आ गया है। अब कथा में जीवन की सामग्री व्यापक क्षेत्र से नहीं जुटाई जाती अपितु वह सीमित क्षेत्र से उपलब्ध हो जाती है। समाज, इतिहास और राजनीति के स्थान पर वैयक्तिक कुण्ठा अनेक प्रकार की सामग्री प्रस्तुत करने के योग्य सिद्ध हो चुकी है। महाकाव्यों की सी विशाल कथाएं न सही वीरों के से साहसिक चमत्कार न सही, खण्ड काव्यों की सी ससीम कथाएं अपने दुर्बल चरित्र व्यक्तियों की जीवनी में नाना मनोग्रन्थियों, दमित वासनाओं, उन्मादों आदि की कथा जुटा पाई है। अवधिगत परिवर्तन भी द्रष्टव्य है। अब यूलिसिस के रूप में चौबीस घंटे की घटनाओं को ७०० पृष्ठों का वृहदाकार दिया जा चुका है। 'चांदनी के खण्डहर' में एक दिन और एक रात की कथा है। 'शेखर : एक जीवनी' में केवल एक रात को देखे गए विजन का प्रक्षेपण है।

विश्लेषणात्मक कथा विधान में विस्तार का स्थान गहनता और वर्णन का स्थान विश्लेषण ने ले लिया है। घटना विधान इस प्रकार शृंखलित रहता है कि उसमें अन्तश्चेतना का मुक्त प्रवाह निर्बाध रूप में गतिमान रहे। इसमें कार्य कारण परम्परा का पालन भी कम हो जाता है। आदि, मध्य और अन्त का प्रतिबन्ध भी नहीं रहता क्योंकि इनका प्रभाव क्षेत्र बाह्य-जगत है आन्तरिक जगत का इन नियमों की चिन्ता नहीं रहती। आन्तरिक जगत को पीठिका में रखने के कारण इस विधि का कृतिकार विश्लेषण के पर्दे के पीछे बहुत कुछ अनर्गल कह जाता है। इससे न केवल कथा की गति ही रुकती है अपितु नैतिक मान्यताओं पर कुठाराघात भी होता है। सार्थक तारतम्य न केवल इतिवृत्त कथा तक के लिए शोभायमान है अपितु विश्लेषणात्मक कथावस्तु के सौंदर्य की भी श्रीवृद्धि करता है। इसका इस विधि के उपन्यासों में अभाव रहा है।

कतिपय आलोचक कहेंगे 'अवचेतन के लिए तो कुछ भी अनर्गल नहीं है। सार्थकता का निषेध किसी को मान्य नहीं हो सकता। थोड़ी सावधानी बरतने पर अवचेतन की अनर्गल स्थिति पर भी सन्तुलित और कलात्मक ढंग से प्रकाश डाला जा सकता है। मनोविश्लेषण द्वारा कुत्सित से कुत्सित घटना में भी सन्तुलन रखकर उस विश्लेषण प्रसंग को सीमित रूप में रखा जा सकता है। विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के प्रणेताओं ने स्पष्ट रूप से यह अनुभव किया है कि घटनाएं मोती नहीं हैं जिन्हें पिरो कर हर हालत में एक हार तैयार करना ही चाहिए। आज जब कि जन जीवन हो विशृंखलित है मानव मन ही तार-तार हुआ जा रहा है और एक एक तार अनेक गहराइयों में डूबा है तब उन गहराइयों के विश्लेषण की ओर दृष्टि क्यों न डाली जाए। प्रेमचन्द और उनके स्कूल के लेखक बाह्य जीवन की सीधी-सपाट सड़क के पथिक रहे हैं विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के लेखक अन्तर्जीवन की संकरी सड़क के राही हैं जिनकी राह में अनेक अस्पष्ट पगडंडियां भी हैं जिनका अन्वेषण ही इन शिल्पियों को अभीष्ट है। ये आन्तरिक व्यथा की वर्फ पर लेटे नायक और नायिकाओं की अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों के विश्लेषक हैं। बदलते युग में बदलती परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में जीवन को देखने चिह्ना है।

वयक्तिक पात्र उदभावना

वयक्तिक पात्रो की उदभावना विश्लेपणात्मक शिल्प विधि की मौलिक दन है। वणनात्मक शिल्प विधि सामाजिक चरित्रो, विशेषकर वगगत पात्रो के लिए उपयुक्त सिद्ध हुई किन्तु इधर परिवर्तित शिल्प के लिए परिवर्तित उपादानो की आवश्यकता अनुभव हुई। इसीलिए वयक्तिक चरित्रो को प्रस्तुत किया जाने लगा। व्यक्ति के प्रमुख हो जाने के कारण इस शिल्प विधि के सभी उपन्यास चरित्र प्रधान हो गए है किन्तु फिर भी चरित्र प्रधानता विश्लेपणात्मक शिल्प विधि की मात्र विशेषता नही है क्योकि वणनात्मक उपन्यास भी चरित्र प्रधान हो सकता है—जसे यनदत्त शर्मा रचित दवदबा शुद्ध चरित्र प्रधान उपन्यास है किन्तु फिर भी वणनात्मक शिल्प विधि का ही उदाहरण है। अतएव विश्लपणात्मक शिल्प विधि का प्रधान गुण उसम वयक्तिक तत्त्व का मिश्रण है। हमारी दृष्टि व्यक्ति पर टिकती है न कि उसकी चारित्रिकता पर।

वयक्तिक तत्त्व का सन्निवेश हो जाने के उपरान्त व्यक्ति को उसकी समस्त कमजोरियो के साथ देखा परखा गया है। अधिकतर यह अन्वेषण आत्म विश्लेपण द्वारा प्रस्तुत होता है। इस तरह व्यक्ति के द्वारा उसके ही अन्त करण का अथवा उसकी अज्ञात चेतना म विद्यमान प्रवत्तियो का ही अध्ययन नही होता अपितु समाज म वतमान वसे ही लाखो प्राणियो की विषमताओ का पर्दा फाश हो जाता है। य उपन्यास व्यक्ति के अहभाव को नाना स्थितियो म प्रस्तुत करत है उसकी एकात्मिकता को अनावत करते हैं। एकागी अहभाव न केवल व्यक्ति का विनाश करता है अपितु समाज के लिए भी खतरे की घण्टी सिद्ध होता है। इस ओर सकेत करत हुए जोशी न लिखा है—'आधुनिक समाज म पुरुष की बौद्धिकता ज्यो ज्यो बढती चली जा रही है त्यो-त्यो उसका अहभाव तीव्र से तीव्रतर व्यापक स व्यापकतर रूप ग्रहण करता चलता है। अपने तप्त न होन वाल अहभाव की अस्वाभाविक मूर्ति की चष्टा म जब उसे पग पग पर स्वाभाविक सफलता मिलती है तो वह बौखला उठता है और उस बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वह आत्म विनाश के पहल अपन आसपास के विनाश की योजना म जुट जाता है।'[२०]

इस प्रकार इन वयक्तिक पात्रो की शक्ति दखी जा सकती है, दुबलता भी पहचानी जा सकती है। य केवल अपनी मानसिकता का परिचय ही नही देत अपितु सामाजिक रोगो का भडा भी फोड देत है। असाधारण और अपसाधारण पात्र योजना इस विधि म ही प्रयुक्त हुई है। नन्दकिशोर (सन्यासी से) और शेखर (शेखर एक जीवनी स) लज्जा (लज्जा से) आदि। अधिकतर पात्र या तो अपसाधारण है या असाधारण। इन उपन्यासो म व्यक्ति की असाधारण अथवा अपसाधारण स्थिति का अकनपण विश्लेपणात्मक विधि द्वारा करके यह सिद्ध कर दिया जाता है कि चेतन अवस्था की समस्त विकृतियो का मूल अवचेतनगत कुण्ठाए अथवा ग्रन्थियो होती हैं। आधुनिक सभ्यता के नय विकास न केवल समाज के बाह्य जीवन म ही दुरूहता नहा भरी है अपितु व्यक्ति

२० विवेचना—पष्ठ १२४

के अवचेतन म नाना कुण्ठाग्रा का सजन भी कर दिया है। प्रखर अन्तद ष्टि रखने वाला वैश्लेषिक उपन्यासकार अन्तश्चेतना म सतत चलने वाले द्वन्द्व को सहज रूप म पकड लेने के लिए वयक्तिक कुण्ठा की खोज करता है। फिर व्यक्ति की कुण्ठित मनोवत्ति की गाठे खोलन म ही उसका ध्यान केंद्रित रहता है और बाह्य ससार म होन वाली घटनाग्रा और पात्रा की विशेषताग्रा को वह भूल जाता है।

वैयक्तिक कुण्ठा की प्रतिक्रिया का विश्लेषण जोशीजी ने अपन एक लख साहित्य म वयक्तिक कुण्ठा म किया है। उसी निबन्ध म वे एक स्थल पर लिखते ह—"वयक्तिक कुण्ठा की प्रतिक्रिया मोटे तौर पर दो रूपा म होती है। एक ता यह कि कुठित व्यक्ति जीवन से हारकर भीतर की ओर बाहर के सघष से कतराकर इस हद तक जड बन जाए कि उस स्थिति स उबरने की कोई प्रवत्ति ही उसम शेष न रहे। दूसरा यह कि कुठित भावनाए विद्रोह का रूप धारण कर ल। यह विद्रोह भी दो रूपा म अपन को व्यक्त कर सकता है—एक तो भीतर की ओर बाहर की परिस्थितिया के प्रति सचेष्ट विद्रोह और कुठित मन स्थिति स उबरन और ऊपर उठने का सक्रिय प्रयत्न, दूसरा आत्म विद्रोह जो विद्रोह का विकृततम रूप है।'[21] जोशी द्वारा किया गया यह विश्लेषण वज्ञानिक है। हिन्दी उपन्यास साहित्य म इसक उदाहरण मिलते है। जोशी कृत 'लज्जा' उपन्यास म नायिका की असाधारण जड अवस्था प्रथम रूप का उदाहरण है। दूसरी अवस्था के दो रूप है—परिस्थितिया के प्रति सचेष्ट विद्रोह करनेवाला असाधारण वयक्तिक चरित्र शेखर एक जीवनी का नायक स्वय शेखर है। दूसरा रूप आत्म विद्रोह का विकृततम रूप प्रेत और छाया का नायक पारसनाथ है। पारसनाथ अपने विकृततम विद्रोह के कारण अपने चारा ओर के वातावरण का अपन भीतर के तजाबी विष से जलान और गलाने, स्वस्थ प्रवत्तिया का कुचलने और विकृत प्रतिहिंसात्मक प्रवत्तिया का नगा खेल खुल खेलन म ही जीवन की साथकता मानता है।

चिंतन प्रधान वातावरण

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यास दाशनिक प्रश्ना मे आवत्त रहने क कारण चिंतन प्रधान वातावरण प्रस्तुत करते हैं। दाशनिकता का आग्रह आज के उपन्यास की विशेषता बन चुकी है। वस ता हनरी जेम्स न ही उपन्यास को विचारा का वाहक मान लिया था, किन्तु आज यह विचार मूलकता जीवन दष्टि म परिवर्तित हा चुकी है। टॉल्सटाय, ऐंद्रे जीद आदि उपन्यासकार कथा का जीवन-दशन सम्बन्धी ऊहापोह का साधन बनाते गए। प्रमचन्द न उपन्यास का मानव चरित्र का चित्र कहकर जीवन चित्रण को प्रमुखता दी थी किन्तु आज का विश्लेषणवादी उपन्यासकार जीवन की समीक्षा का ध्येय मानकर विश्लेषणात्मक प्रयोगा म जुटा हुआ है।

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यासा म बन्ती हुई दाशनिकता के आग्रह का एक उदाहरण दिया जाता है। शेखर एक जीवनी' का नायक शेखर बुद्धि जीवी प्राणी है।

---

२१ देखा-परखा—पष्ठ ६५

वह यात्रा कर रहा है कि उसके स्मृति पट पर कुछ संस्मरण उभर आते हैं। वह सोचता हुआ कहता है नीलगिरि उसके लिए क्या है सिवाय इसके कि वहा पर डूबा था, भावन और भी क्या है सिवाय इसके कि वहा शारदा थी और वह उसमें लड आया ? जब वह नही रहेगा तब ये स्थान भी नहा रहेंगे ये सब इसलिए है कि इनमें वह है और अब वह इन सबसे भागा जा रहा है क्या यह सब सत्य है ? क्या ये स्थान सत्य है ? क्या ये सब लडाई भगडे प्यार तिरस्कार सत्य हैं ? क्या वह खुद सत्य है ? गाडी उसे खींचती हुई दौडी चली आ रही है उसमें लगता है कि कुछ भी सत्य नहीं है शायद गाडी का दौडाना भी सत्य नहीं है। [२२]

वर्णनात्मक शिल्प विधि के उपन्यासकार को कथा विस्तार और घटनाओं की ऊहापोह में चिंतन का अवकाश अपेक्षाकृत कम ही मिलता है। इधर विश्लेषणात्मक उपन्यासकार कथा को सीमित कर प्रत्येक घटना के साथ साथ चिंतनमय वातावरण का सृजन करता चलता है। चिंतन के लिए एकांत और अंतर्मुखी वृत्ति सुविधा जुटानेवाले तत्त्व हैं। विश्लेषणात्मक विधि के उपन्यासों में नायक केवल एकान्तवास का अवसर ही नहीं पाते अपितु उन क्षणों का सदुपयोग करके अपने अतीत वर्तमान और भविष्य पर मनन भी करते हैं। चिंतन विश्लेषण के लिए पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता रहता है। युग का जितना दार्शनिक दृष्टिकोण विश्लेषणात्मक विधि के उपन्यास में प्रतिफलित हुआ है अन्यत्र किसी विधि में प्राप्य नहीं है। इसीलिए कहीं कहीं विश्लेषणात्मक प्रसंग एक ओर बौद्धिक अनुचिंतन में संलग्न रहते हैं तो दूसरी ओर कथा में गत्यवरोध उपस्थित कर देते हैं।

शैली

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के अंतर्गत सबसे अधिक प्रश्रय आत्म कथात्मक शैली को प्राप्त हुआ है। जनेन्द्र जोशी और अज्ञेय की प्रसिद्धतम वैश्लेषिक कृतियाँ इसी शैली में रची गई हैं। इस शैली में एक या दो पात्र कथा का सूत्र स्वयं पकडकर उसका संचालन करते हैं। मानव मन की ग्रन्थियों को मानव स्वयं जितने स्पष्ट रूप में पहचान सकता है अन्य प्राणी नहीं जान पाता। अतएव इस शैली को अपनानेवाला कथाकार मन स्थिति के सूक्ष्म रूप का संतुलित रूप में अभिव्यक्त कर सकता है। अन्य पुरुष शैली में लिखनेवाले कथाकार को सत्व एक कल्पना करनी पडती है उसे पहले कल्पना द्वारा अमुक पात्र के मन में प्रवेश करना होता है फिर उसका उल्लेख करना होता है। अत उसका कार्य दुहरा हो जाता है।

जितने भी उपन्यास अहं विश्लेषण के धरातल पर रचे गए हैं उन सभी को आत्म कथात्मक शैली का आश्रय मिला है। आत्म विगर्हणा के भाव की इसी रचना में पूर्ण तीव्रता प्राप्त हो सकती है। तभी तो जोशी के लज्जा और संन्यासी इस शैली में अवतरित हुए। कहानी कहना इस शैली के कथाकार का उद्देश्य भी नहीं होता। वक्ता

२२ शेखर एक जीवनी—भाग २ पृष्ठ ६

वयत्तिक पाना का लकर चलता है। उनक अवचेतन स्तर का अवस्था का चित्रण करन के लिए जिन जिन परिस्थितिया की आवश्यकता पडती है उन्ह कल्पना एव अनुभूति के आधार पर निर्मित कर लेता है। इस शली म कथा कहनवाले पात्र घटनाआ म तारतम्य लान के लिए उत्तरदायी नही होन। कथा अखण्ड रूप म चन या खण्डित हा जाव इसकी कोई चिता ही नहीं रहती सबस अधिक चिता अवचेतन म कुण्डला मारकर बठी हुइ कुण्ठा के विश्लेषण की रहती है। साधारण म साधारण, तुच्छ म तुच्छ लगनवाली बात की भी खाज बीन की जाती है इसक लिए भाषा म गति रह या न रह इसकी चिन्ता कथाकार को नहीं हाती। इस सम्बध म स्यागी का विवचन करत हुए श्री यदुपति सहाय लिखत है— जाशीजी की शली अपनी शक्ति का चलती हुइ मुहावरेदार और लचीली भाषा म व्यक्त नही करता। इसके पहल कि वह अपन शिल्प की जादूगरी स हम मुग्ध कर सक, यह आवश्यक हाता है कि विषय वस्तु का स्तर कुछ ऊचा उठाया जाए उस एक स्वप्निल उदात्तता प्रदान की जाए। फिर भी कही-कही इस उदात्तता क साथ भी, उनकी शलीगत त मयता छूट जाती है जस कल्पना की इस कवि सुलभ उडान के बीच उन्ह फिर वही कष्टपूण यथाथ याद आ गया हो और तब शली के एकता भग हो जाती है। इसका परिणाम कभी-कभी एक विचित्र भावात्मक स्खलन हाना है जो अख रता है। उदाहरणत अत्य त गम्भीर आर विषादपूण स्थिति म भी जाशीजी अपन को लिखन म रोक नही पात 'लाचार कप की तरह मुह बनाकर वही बैठ गया। या इसी प्रकार का एक दूसरा अत्यन्त गम्भीर आर जबरदस्त भावात्मक तनाव का स्थल वह है जब नन्दकिशोर के बड भाइ सहसा प्रयाग आ जात है और उसको समस्त प्रम लीला का छिन्न भिन्न करक उस घर चलन का आदेश दत हैं। सम्भवत यह स्थल उपन्यास का चरमोत्कष भी है। जाशीजी की लखनी अपन पूर प्रवाह और शक्ति के साथ स्थिति का चित्रण करती है। तभी सहसा हम मिलता है भया इस बात से मेरी चिता का जो तार बज रहा था वह टट गया आर एक नया तार पिन पिन करन लगा।[23]

शली के क्षेत्र म इस प्रकार के दाप विश्लेषणात्मक शिल्प याजना के दोष मान जावेंगे। वास्तव म शली तो साधन का भी साधन है। साध्य ता इस मान ही नही सकते साध्य ता कथा या जीवनगत स्थिति की व्याख्या ही रहती है। वणनात्मक शिल्प म कथा और विश्लेषणात्मक विधान म जीवनगत स्थिति ही साध्य हाती है। साधन ता स्वय शिल्प है और शली शिल्प का भी साधन है। इस प्रकार किसी प्रकार के प्रवाह या अवरोध का कारण शली इतनी नही है जितना कि शिल्प। वैश्लेषिक शिल्प म मनावैज्ञानिक तथ्या का स्पष्टीकरण ही मुख्य उद्देश्य रहता ह अत कही कहा भाषा और शली म अवरोध आ जाना स्वाभाविक माना जावगा किन्तु यही अवरोध यदि वणनात्मक शिल्प की रच नाआ म दिखाई पड तो दोष बन जावगा क्योकि वणन क समय एक स्वाभाविक प्रवाह हाता है। जिस भाषा और शली पूण गति दिया करत हैं।

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का चार भागा म विभक्त किया जा सकता है—

१ मनाविज्ञान प्रधान विश्लेषणात्मक शिल्प विधि

---

२३ आलोचना उपन्यास विशषाक —पष्ठ १२२ २३

२ दर्शन प्रधान विश्लेषणात्मक शिल्प विधि
३ चेतना प्रवाहवादी विश्लेषणात्मक शिल्प विधि
४ पूर्वदीप्ति शिल्प विधि (Flash back technique)

मनोविज्ञान प्रधान विश्लेषणात्मक शिल्प विधि

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यासों में मनोविज्ञान प्रधान विधि ही सर्वाधिक प्रचलित है। इसमें मनस्तत्व की प्रधानता होती है। वैयक्तिक चेतना और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं का अध्ययन इस विधि द्वारा अधिक सुगम हो गया है। ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि अब मन की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करके उसके तीन रूप (चेतन अवचेतन अचेतन) मान लिए गए हैं। मन की स्वतन्त्र सत्ता के पक्ष में इलाचन्द्र जोशी द्वारा प्रेत और छाया की भूमिका में दिए गए वक्तव्य का यह अंश पर्याप्त होगा— आधुनिक मनोविज्ञान ने अत्यन्त परिपुष्ट प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है कि मानव मन के भीतर की अनन्त गहराई में एक ऐसा गहन रहस्यमय अपार और अपरिमित जगत वर्तमान है जिसकी अपनी एक निजी स्वतन्त्र सत्ता है। यह जगत किसी भी बाहरी—आर्थिक अथवा सामाजिक—अनुशासन से परिचालित नहीं होता।

इस विधि का अपना लेने पर उपन्यासकार असाधारण और अपसाधारण-व्यक्ति को अपनी कथा का नायक चुनता है फिर उसके अंतरजीवन के द्वन्द्वचक्रों का कल्पित चित्रण करता है। इसमें बाह्य जीवन चक्र की घटनाओं का मूल भी अन्तश्चेतना की प्रक्रिया द्वारा प्रकाश में लाया जाता है। उदाहरण स्वरूप जोशी की प्रसिद्ध रचना प्रेत और छाया को ही लें। सारी कथा के मूल में काम ग्रंथि है। यही पारसनाथ के चेतन मन का विघटन करता है। ईडिपस ग्रंथि द्वारा पिता पुत्र संघर्ष होता है और पारसनाथ पिता को छोड़कर प्रतिशोध की भावना लेकर चल पड़ता है। अपने अस्त व्यस्त और उच्छृंखल जीवन से वह भली भांति परिचित है। वह डटकर स्त्रीत्व हरण करता है। कुमारियों का ही नहीं वरन् विवाहिता का भी भ्रष्ट करता है। क्योंकि उसका अन्तर्मन कहता है कि यदि उसकी मां कुलटा थी तो समस्त स्त्री जगत वेश्यावृत्ति अपनाए है। लेखक ने घटना चक्र को पारसनाथ की अन्तश्चेतना के साथ साथ घुमाया है और पिता द्वारा उसकी मनोग्रंथियों खोलकर जीवन का स्वस्थ पथ पर अग्रसर कराया है।

मनोविश्लेषणात्मक शिल्प विधि की रचनाओं में काम ग्रंथियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की ग्रंथियों का भी महत्व होता है। मानसिक रोगों के विश्लेषण कार्य को फ्रायड के अतिरिक्त उसके दो शिष्यों एडलर और युंग ने आगे बढ़ाया है। उन्होंने फ्रायड के कुछ सर्वथा महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का तीव्र विरोध करके अपने सिद्धान्तों की स्थापना की है। एडलर ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि व्यक्ति की विशिष्ट पारिवारिक या सामाजिक परिस्थितियां ही उसकी मानसिक स्थिति के लिए उत्तरदायी होती हैं। विशिष्ट परिस्थितियां ही उसमें हीनता अथवा उच्चता की ग्रंथि उत्पन्न कर

---

२४ प्रेत और छाया—पृष्ठ १

दनी ह। इस हानता की गथि (Inferioty complex) की कुछ मनोविश्लेषणात्मक विधि के उपन्यासो म काफी चर्चा रही है। जोशी कृत जहाज का पछी जनेन्द्र रचित त्याग पत्र और अज्ञेय के शेखर एक जीवनी म इसके उदाहरण भरे पडे है। हीनता का बोध होन पर हीनता जनित क्षति की पूर्ति के लिए चेतन मन जो काय करता है वही इन उपन्यासो की कथा का आधार होता है। 'सुबह के भूले' म गिरिजा का जब हीन भावना की अनुभूति होती है तभी उसके मन म मनोद्वन्द्व की एक बाढ सी आ जाती है। मनोविश्लेषणात्मक प्रक्रिया द्वारा ही वह आत्मपरिष्कार करती है।

युग का सिद्धात फ्रायड और एडलर दोनो स अलग प्रकार का ह। युग न अपन सिद्धान्त म वयक्तिक अवचेतन के साथ-साथ सामहिक अवचेतन का प्रश्न उठाया है। उसके मतानुसार अवचेतना की अचेतनक्रिया के सतुलन के लिए आध्यात्मिक शक्तियो का जगान की आवश्यकता है। फ्रायड एडलर और युग तीनो का लक्ष्य एक हा है वह ह—विश्लेषणात्मक विधि द्वारा अन्तश्चेतना की अन्ध शक्तियो म सन्तुलन उत्पन्न करना। इस काय का कवल पाश्चात्य मनोविश्लेषक ही नहीं कर रहे हैं हमारे यहा भी यह काय सम्पन्न हुआ और जिस भव्यता के साथ हुआ उस पर प्रकाश डालते हुए श्री इलाचन्द्र जोशी लिखते है— हमारे यहा के प्राचीन योगशास्त्री मनोवैज्ञानिक सत्य की जिस अतल गहराई तक पहुच गए थे और जिस ऊचाई तक उस उठान म समथ हुए थे उसका क्षीण तम आभास भी अभी तक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक नही द सका —

योगस्थ कुरु कर्माणि सग त्यक्त्वा धनजय
सिद्धयसिद्धयो समोभूत्वा समत्व योग उच्यते। [२५]

दशन प्रधान विश्लेषणात्मक शिल्प विधि

इस विधि के अनुसार कथानक और पात्रो का बौद्धिक प्रश्नो स आवत्त करक विश्लेषणात्मक रूप म प्रस्तुत किया जाता ह। जनेन्द्र और अज्ञेय इस धारा के प्रतिनिधि उपन्यासकार हैं। जनेन्द्र के 'परख', 'त्याग पत्र' और 'कल्याणी' विशिष्ट रूप स दाशनिक प्रश्नो का लकर चल ह जिसके कारण कहीं-कहा तो कथा तत्त्व गौण हो गया है और उपन्यासो म दार्शनिकता की गध आने लगती है। इस विषय म उपन्यास सबधी जनेन्द्र के विचार पठनीय है। परख की भूमिका म व लिखत ह—"उपन्यास म जसी दुनिया है वसी ही चित्रित नहीं होती। दुनिया का कुछ उठा हुआ उन्नत कल्पित रूप चित्रित किया जाता है। वह उपन्यास किसी काम का नहीं जो इतिहास की तरह घटनाओ का बखान कर जाता है। उपन्यास का काम है कुछ आग की भविष्य की सभावनाओ की जरा झाकी दिखाना और जो कुछ अब है उसकी तह हमारे सामने खोलकर रख देना। उपन्यास एक नय, अजाब ही ढग स रग और उपान्त्य जीवन का चित्र हमारे सामन रखता है। जीवन क साधारण कृत्य और उलझी गुत्थियो को सुलझाकर और खोल-खोलकर रख देता है।" [२६]

---

२५ 'देखा परखा' मे सकलित 'मनोवज्ञानिक विश्लेषण' नामक निबन्ध से उद्धत—पृष्ठ ४३ ४४

२६ 'परख' की भूमिका से अवतरित

जनद्र ग्रौर ग्रज्ञेय के उपन्यासों में दार्शनिक तत्त्व का प्रतिपादन हुआ है। दार्शनिकता तो उनके एक एक कथानक में चित्र के भाव के समान गुम्फित रहती है। दार्शनिकता का प्रश्रय लेने के निमित्त इन कथाकारों ने रचना की कड़ियों को तोड़ मरोड़ डाला है। वहां पाठक को कल्पना का आश्रय लेकर कुछ अनुमान लगाने पड़ते हैं। अपने अपने उपन्यासों में जैनेन्द्र ने यह दार्शनिक विचार दिया है कि रहना नाम जिन्दगी का है। रहना मृत्यु है। चलना ही जीवन है आदि आदि। बौद्धिक प्रश्नों से आवृत्त रचना 'परख' में कट्टो कहती है—

लेकिन एक बात है। सोना हूं तो आकाश गंगा को ऊपर विलविलाते देखता हूं। वह हम पर नाच को हंसती रहती है। हमारी जगत की यह गंगा भी एसी ही ऊपर को देख देखकर बहती रहती और हंसती रहती है। मुझे लगता है कि ये दोनों गंगाएं एक दूसरे को देख देखकर ही जाती हैं। इस सारे अनन्त शून्य किसी गणना में न आ सकने वाले आकाश को भेदकर इनकी हंसी एक-दूसरे को परस्पर कुशल क्षेम दे आती है। दोनों का मन एक है। नियम एक है। मालूम होता है दोनों आपस के समझौते से इतनी दूर जा पड़ी हैं कि दोनों एक ही उद्देश्य को दो जगह पूरा करें। दूर हैं फिर भी पास हैं। अलग हैं फिर भी एक हैं। बिहारी बाबू क्या यह नहीं हो सकता—क्या हम भी दो एसे नहीं हो सकते? दूर फिर भी बिल्कुल पास। [27]

चेतना प्रवाहवादी विश्लेषणात्मक शिल्प विधि

चेतना प्रवाहवादी विधि को अंग्रेजी में (Stream of Consciousness) *कहते* हैं। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले विलियम जेम्स ने किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक प्रिंसिपल्स ऑफ साइकालोजी (Principles of Psychology 1890) में लिखा है—मस्तिष्क की प्रत्येक निश्चित मूर्ति उसमें स्वच्छन्दतापूर्वक प्रवाहित होनेवाले जल प्रवाह के रंग में डूबी रहती है। इस मूर्ति की सार्थकता और महत्त्व प्रदान करने वाली वस्तु यही ज्योतिवलय या कहिए छायावेष्ठित ज्योति है जो संरक्षक भाव से सदा उसे घेरे रखता है। चेतना अपने समस्त छोटे मोटे टुकड़ों में कट कर उपस्थित नहीं होती इसमें कहीं जोड़ नहीं यह प्रवाहमय होता है। इसे हम चेतना के विचार का या आत्मनिष्ठ जीवन का प्रवाह ही कहना चाहिए। [28]

---

२७ *परख—पृष्ठ ७४*

28 Every definite image in the mind is sceped and dyed in the free water that flows round it The significance the value of the ima ge is all in this halo or penumbra that *surrounds and escorts it* Con sciousness does not appear to itself Chopped up in bits It is noth ing jointed it flows Let us Call it the Stream of thought of Consci usness or subjective life

An Assessment of Twentieth Centuary Literature P 88

अंग्रेजी साहित्य म इस धारा के प्रवत्तक वर्जिनिया वुल्फ जेम्स ज्वाइस और डारोथी रिचड सन हैं। हिन्दी के क्षत्र म प्रभाकर माचवे रचित 'पर तु' नामक उपन्यास ही इस धारा की प्रतिनिधि रचना है। आलोचना के क्षेत्र म इस शब्द का प्रयोग सवप्रथम सिन्क्लेयर Miss Sinclaire न डारोथी रिचड सन के उपन्यास पाइन्टेड रूफ (1915) Pointed Roof का रिव्यू करत समय किया था। उन्होंन इसका प्रयोग उस नवीन विधि क अथ म किया है जिसके द्वारा एक क्षण स दूसर क्षण की ओर प्रवाहमान चेतना का अभियक्त किया जा सके। इसम कथाकार की ओर स कहीं भी विश्लेषण करन टीका टिप्पणि करन या व्याख्या करन का प्रयत्न नही होता। उपन्यास के चरित्रा की बौद्धिक चेतना म हम प्रवश कर जात हैं—हम उन्ह भीतर स दखत ह। इसम भावा के स्वच्छन्द सम्मिलन (free association) की सुविधा रहती है। किसी भी चरित्र क मस्तिष्क मे वतमान गहीत बिम्ब का सम्बन्ध अतीत जीवनगत स्मतिया स जोडा जाना है।

पूव दीप्ति विश्लेषणात्मक विधि (Flash back Technique)

पूव दीप्ति विधि विश्लेषणात्मक विधि का ही एक नया रूप ह। इसम उपन्यासकार कथा को पात्रा के मस्तिष्क म उठी हुइ स्मति लहरा के रूप म प्रस्तुत करता है। कथा आत्म विश्लेषणात्मक शैली म प्रस्तुत की जाती है। उपन्यासकार वतमान स सम्बद्ध या उस साथकता प्रदान करन वाली जीवन स्थिति का पात्रा के स्मति खडा के रूप म बिखेरता चलता है। पात्र कथा कहत कहत अकस्मात प्रसग के सूत्र को किसी विगत घटना के सूत्र स जाड दते ह जिमस कथा की गति बनी रहती है।

पूवदीप्ति विधि म मनाविज्ञान का समावश एक आवश्यकता है। इम विधि के उपन्यास वास्तव म किसी मानसिक स्थिति के आधार पर खडे होते हैं। कथानक का *निमाण बहिजगत की अपेक्षा अन्तजगत को दष्टिगत रखकर किया जाता है।* कथा का आरम्भ एक शब्द विशेष अथवा स्मति विशेष पर आधारित होता ह। स्मति भी साधारण नही अपितु असाधारण होनी है जा प्रतिपल व्यक्ति विशेष के अन्तमन को आदोलित करती रहती है। कथा का आरम्भ विश्लेषणात्मक प्रसग के साथ साथ हाना है। इलाचन्द्र जोशी क प्रथम दो उपन्यासा की आरम्भिक पक्तिया इसमत का प्रमाण हैं जिन्ह उद्ध त किया जाता है— घणा! घणा! मरी सारी आत्मा आज घणा के भाव स आत प्रात है। मुझ हत्यारी नारी न आज समस्त प्रकृति का, सारे विश्व का अपने अन्तस्तल की घृणा से लाप पातकर एकाकार कर लिया है। इस अनन्त सष्टि का अस्तित्व ही आज मरे लिए केवल घणा का लकर है। स्त्री का रूप देखत ही घणा स मेरा खून खौलन लगता है, पुरुष की छाया से भी मरा हृदय जर्जरित हो उठता है। इस घृणामयी नारी की क्या गति होगी। किस विकराल अन्धकारमय, निविड अवसादमय गहन गह्वर की ओर इस क्रूरा उत्तजिता हिंसामयी रमणी को तुम ढकेलने लिए जात हो! हे मरे अन्तय दवता! इस विपुल शून्य की अनन्त छाया म क्या कहीं भी मर लिए त्राण नहीं है।[२६]

---

२६ संन्यासी—तृतीय सस्करण—पृष्ठ ५

पर मैं पापी सदा आनन्दमय जीवन बिताने के बाद अन्त को जब भाग्य की विडम्बना से अकस्मात् संन्यासी बन बैठा और देश माता के वीर पुत्रों की प्रेरणा से लहर में आकर एक जोशीली वक्तृता देने के कारण जेल के अन्दर ठूंस दिया गया तो उस परास्त अवस्था में किसकी व्याकुल आत्मा का हाहाकार चट्टानों पर पछाड़ खाती हुई तरंगिणी के गर्जित क्रन्दन के समान मेरे हृदय को हिलाने लगा? किसकी निपट निस्सहायावस्था की कल्पना में रह रहकर पागलों की तरह छटपटाने लगा।[1]

इन स्मृतिपरक विश्लेषणात्मक प्रसंगों को पढ़ते ही पाठक की उत्सुकता जाग उठती है। उसकी उत्सुकता निवृत्ति हेतु कथाकार पूर्व दीप्ति विधि द्वारा कथा सूत्र को प्रधान पात्र के कर में सौंप कर उसी के द्वारा उसके विगत जीवन का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस विधि की एक विशेषता यह भी है कि यह अधिकतर वैयक्तिक तत्त्वों से परिपूर्ण कल्पनातीत मनोविश्लेषणात्मक प्रसंगों में अवलीन होकर पात्रमुखोद्गारित आत्म कथा के रूप में प्रस्तुत होती है। आरम्भ सदैव वैचित्र्यपूर्ण ढंग से कौतूहल वर्धन करने वाला होता है किन्तु कथा-कौतूहल शृंखला गौण हो जाने के कारण अपूर्ण रह जाता है। व्यक्ति विश्लेषण के बाहुल्य और विचार चिन्तन के आधिक्य के कारण रहा सहा कौतूहल भी अतृप्त रह जाता है। इस विधि की रचनाओं में पात्रों का वर्तमान अतीत से सम्बन्धित अनुभूतियों और घटनाओं के आधार पर होता है। अतः इसमें अतीत का महत्त्व अक्षुण्ण रहता है।

प्रतीकात्मक शिल्प विधि

प्रतीकात्मक शिल्प विधि के पीछे शब्द प्रतीक की अमोघ शक्ति है। जब किसी मनोद्गार को अभिधा शक्ति द्वारा प्रस्तुत करना अवांछनीय प्रतीत होता है तभी इसकी योजना की जाती है। प्रतीक योजना द्वारा वस्तु को अप्रत्यक्ष रखकर केवल अभिभावक के माध्यम से परोक्ष और अतीन्द्रियता की सीमा में खींचकर निकटस्थ ले आया जाता है। प्रतीक हमारे विभिन्न अनुभवों से युक्त होने के कारण अदृश्य अगोचर और नितान्त गुह्य मनोभावों को भी साकार मूर्त रूप देते हैं। आदि काल से ही प्रतीक प्रयोग होते रहे * किन्तु ये अधिकतर कविता और नाटक के क्षेत्र में ही हुए हैं। नाथ पंथियों सिद्ध योगियों कबीर और जायसी आदि ने अपने अपने काव्य में प्रतीकों का यथेष्ट प्रयोग किया है। यूरोपीय प्रतीकवाद का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस में हो गया था। वर्लेन रिम्बो मलार्मे और मेटरलिंक प्रतीक आन्दोलन में अग्र स्थान रखते हैं। प्रतीकवाद फ्रांस में जोला के प्रकृतवाद के प्रति प्रतिक्रिया रूप में सामने आया। इस संबंध में आलोचक शिवदानसिंह चौहान लिखते हैं— प्रतीकवादियों ने साहित्य या कला में प्रकृतवाद और रूपगत रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करके प्रतीकों के माध्यम से भावों, विचारों और मनःस्थितियों की अभिव्यक्ति देने पर जोर दिया और इसके लिए बात सीधे न कहकर सांकेतिक भाषा में व्यक्त करने की प्रणाली अपनाई।" चौहान जी का यह कथन सत्यपरक है।

३० संन्यासी—पृष्ठ १

३१ आलोचना के सिद्धान्त—पृष्ठ १४७ १४८

प्रतीक विधि म बात साधी नही कही जाती कुछ प्रतीका का सहारा लेना पडता है। अमूत को प्रकट करा के लिए रूपका की सप्टि करनी होनी है। साप शब्द का प्रयाग दुष्टता कपट और मायावी रूप म हाना है। 'चादनी के खण्डहर' आशाओ कल्पनाओ और स्वर्णिम स्वप्नो के टुट जाने की ओर सकेत करत है। अनेक बार साकेतिकता अस्पष्टता और दुरूहता का स्थान ग्रहण कर लेती है वही कृत्रिमता का आभास होने लगता है किन्तु वास्तव म ऐसी बात नही है। प्रतीका का समभन के लिए पर्याप्त बौद्धिकता का होना नितान्त आवश्यक है। इसके बिना प्रतीक विधि का न ता प्रयाग ही सम्भव है और न ही पाठक के लिए मूत विम्बा को ग्रहण करना सहज काय है। प्रतीक योजना पर अन्य मात्रा म स्पष्टता का अभियाग भी लगाया गया है और इसे स्वाभाविक जताया गया है। एक आलाचक लिखत है— प्रतीका म सूक्ष्म निर्देशन की जो शक्ति होती है उसकी कोई सीमा नही। किसी निर्देश स उसका कायकारण सबध नही है अत प्रतीकात्मक कथन म सकेतात्मकता के बाहुल्य के साथ साथ सामान्य जना के लिए अस्पष्टता की प्रतीति भी स्वाभाविक है।[३]

प्रतीकात्मक शिल्प विधि एक एसा प्रक्रिया है जिस उपन्यासकारा न अपन भावा और विचारा की अधिकतम अभिव्यक्ति के मा यमम रूप म ग्रहण किया है। भावा और विचारा की ऊहा पाह म न उलभकर य उपन्यासकार मानसिक स्तर को साधारण स कुछ ऊचा कर एकाग्रचित हाकर अपन अनुभवा का भिन भिन मकता के द्वारा अभिव्यक्ति देते है। प्रबल वेगयुक्त भावधारा साधारण भाषा और शली की अपेक्षा न रखकर रूपका और प्रतीका की बात जाहती है रूपक और प्रतीक म भी एक अन्तर है। रूपक का प्रयाग केवल अप्रस्तुत वस्तु अथवा अथ का आराप करक भाव अभिव्यक्ति पाता है जबकि प्रतीक प्रस्तुत वस्तु और अथ का साकेतिक भाषा म शब्दवद्ध कर दन वाला विधान है। पश्चिम के प्रसिद्ध प्रतीकवादी मलार्मे ऐन्द्रिता का प्रमुख मानकर इन्द्रिय चेतना के प्रबल समथक बन। उन्हाने एन्द्रियजनित रामाच का सकता द्वारा व्यक्त किया। इधर हिन्दी के प्रतीकवादी उपन्यास कारा न जावन का मल्याकन ही प्रतीकात्मक विधि स किया है। उन्हाने मनुष्य का दीखन वाल स्वप्ना म प्रतीक खाज निकाल है। उन्हान छाया का पीछा किया है और उस भाषा दी है चान्दनी स बातें की हैं और मून म स अमूत का लाकर पाठक के सम्मुख प्रस्तुत किया है। मध्यवग की आवश्यकताओ का सा यताओ और रूढियो का प्रतीकात्मक विधि के उपन्यास साहित्य न स्पष्ट रूप म लाकर हमार बीच रख दिया है। 'बूद और समुद्र' म व्यक्ति और समाज की रूपरखा खीची है। 'नदी के द्वीप' म व्यक्ति की विरह और समाजगत क्षुद्रता प्रकट की है। इस विधि के उपन्यास म विषय वस्तु विन्यास व्यक्ति, वाणी वातावरण विचार सब प्रतीक के आश्रया बनकर अभिव्यक्त हात हैं।

नाटकीय शिल्प विधि

परिस्थिति घटना और चरित्र का एक दूसर के सघात म उद्घाटन करन वाल उपन्यास अभिनयात्मक अथवा नाटकीय शिल्प विधान के अन्तगत आत है। सख्या की

३२ डा० रामअवध द्विवेदी—काव्य मे प्रतीक विधान—आलोचना (३३) पृष्ठ २६

दृष्टि से इनका स्थान गौण है किन्तु प्रभाव और महत्त्व की तुला पर ये अक्षुण्ण हैं। इस विधि के उपन्यासों में जो आकर्षण शक्ति है वह अन्य प्रकार के उपन्यासों से कहीं अधिक है। इन्हें पढ़ते समय पाठक का ध्यान प्रत्येक परिस्थिति और पात्र की ओर समाहित रहता है वह क्षण भर के लिए भी किसी घटना या पात्र को विस्मृत नहीं कर सकता क्योंकि इस शिल्प विधि के अनुसार कथावस्तु और कार्य व्यापार में अद्भुत समन्वय हुआ करता है। मैं इस संबंध में अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक एडविन म्यूर के मत से पूर्णतया सहमत हूँ। अपने निबन्ध नाटकीय उपन्यास में उन्होंने लिखा है—

पात्र कथानक रूपी कल का भाग नहीं है न ही वस्तु चरित्रों के चारों ओर घूमने वाली चीज है। इसके विपरीत दोनों अविभाज्य रूप से गुम्फित होते हैं। चरित्र विषयक विशेषताएं ही क्रिया कलाप की निर्णायक हैं और बदले में क्रियाएं ही चरित्रों को तीव्रता के साथ परिवर्तित करती हैं और इस प्रकार सभी तत्त्व अंतिम फल की ओर अग्रसर होते हैं।[1]

भगवतीचरण वर्मा कृत चित्रलेखा तथा वृन्दावनलाल वर्मा रचित मृगनयनी इस तुला पर पूरे उतरते हैं। इन उपन्यासों के कथानक और चरित्र चित्रण में अपूर्व संतुलन है। कथा का विकास नाटकीय विधि के साथ हुआ है। एक एक घटना पूरी तरह चरित्र को प्रभावित करती चलती है और प्रत्येक चरित्र नये दृश्यों की योजना में गत्यात्मक योग देता है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक बीच के मतानुसार नाटकीय उपन्यास का शास्त्रीय उदाहरण मिलना कठिन है। उनकी दृष्टि में Schnitzlers रचित Fraulein Else इस विधि का उत्तम उदाहरण है। वैसे बालजाक डास्टावस्की टाल्सटाय और थकरे के कुछ उपन्यास भी इस विधि अनुसार रचे गए हैं। हिन्दी में इस विधि को अपनाने वाले कथाकार चार-पांच ही हैं।

समन्वित शिल्प विधि

समन्वित शिल्प विधि प्रधानतया यथार्थ जीवन चित्रण को समग्र रूप में प्रस्तुत करने के निमित्त प्रयोग में आयी है। स्थानीय मानवीय और सामयिक परिस्थितियों के विस्तृत विवरण संयोजित करने के लिए वर्णनात्मक और व्यक्ति की यथार्थ स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए विश्लेषणात्मक और निम्न कोटि के तथ्यों स्वार्थों तथा विरोधों को सांकेतिक स्पन्दन के लिए प्रतीकात्मक परिस्थिति घटना और चरित्र में

---

[1] The characters are not part of the machinery of the plot nor the plot merely a rough frame work round the characters On the contrary both are inseparably knit together The given qualities of the characters determine the action and the action in turn progressively changes the characters and thus everything is borne towards an end

"Structure of Novel P 41

प्रभावात्मक सामजस्य ले आने के लिए नाटकीय शिल्प विधियो का मिश्रण हो जाने पर समन्वित शिल्प विधि का अभ्युदय होता है। इस विधि मे यह आवश्यक नही कि अवश्य ही सारी शिल्प विधियो का समन्वय हो। एक से अधिक शिल्प विधियो का सम्मिलित प्रयोग रचना को समन्वित शिल्प प्रदान कर देता है। इस विधि के लेखक को शिल्प और कला के प्रति अधिक सजग और सचेष्ट रहना पडता है।

प्रस्तुत विधि के अनुसार मूल विषय विश्लेषणात्मक होता है। वस्तु विन्यास का गठन साधारणतया वर्णनात्मक विधि के आधार पर संयोजित होता है। जब कथाकार पात्र के विषय मे बोलने लगता है, तब वह वर्णनात्मक शिल्प का प्रयोग करता है। आत्म केन्द्रित अन्तर्मुखी आत्मविश्लेषक पात्र विश्लेषणात्मक शिल्प विधि द्वारा चित्रित होते है। इस विधि की रचना मे समाज के फोटोग्राफिक चित्रण भी सभव हो गए है। कुछ प्रतीको की योजना करके सामाजिक चेतना की गहराइयो और वैयक्तिक अचेतन मन की ग्रंथियो का सम्बद्ध और असम्बद्ध मूर्तिविधानो रेखाचित्रो और सकेतो तथा रूपको द्वारा रूपायित कर दिया जाता है। इस विधि की रचना मे बाह्य घटनाओ का वर्णन तीव्र, प्रवाहमान रूप मे और आतरिक स्थितियो का विश्लेषण सूक्ष्म रूप मे संयोजित होता है। उपन्यास मे वर्णित घटनाए उपकथाए तथा भाषण आदि जितने व्यापक होते है, विषय का विश्लेषण उतना ही गहन, तीक्ष्ण तथा सूक्ष्म होता है। कोई भी सामाजिक क्रिया, राजनैतिक घटना, धार्मिक परम्परा और आर्थिक समस्या इस शिल्प के उपन्यास मे विस्तृत तथा सफल वर्णन पाती है साथ ही प्रभाव का प्रखर विश्लेषण भी लेकर अग्रसर होती है।

टाइप, वैयक्तिक और प्रतीक तीन प्रकार के चरित्रो का समन्वय इस विधि की रचनाओ मे हुआ है। बूद और समुद्र तथा चलते चलते इसके ज्वलन्त उदाहरण है जिनका विस्तृत विवेचन आगे किया जाएगा। इस विधि की रचनाओ मे व्यापकता और गहनता, सूक्ष्मता और साकेतिकता एक साथ उपलब्ध हुई है। समाज का व्यापक रूप टाइप चरित्रो द्वारा, उसका गहन अध्ययन वैयक्तिक पात्रो द्वारा और साकेतिक स्वरूप प्रतीक चरित्रो द्वारा उद्घाटित हुआ है। इस विधि की रचनाओ को पढकर पता चलता है कि केवल समाज और राष्ट्र की बाह्य परिस्थितिया ही व्यक्ति का व्यक्तित्व नही बनाती अपितु उसकी मन स्थिति, उसके ससर्ग मे आने वालो की अचेतनावस्था उसकी पाठकीय पुस्तकावली की सामग्री और उसके स्वप्न भी उसके मूर्त्त और अमूर्त्त वैयक्तित्व के स्रष्टा है। घटनाओ की व्यापकता पात्रो की सघनता सवेगो की स्पन्दनता और विचारो की प्रौढता भी इस शिल्प की परिधि मे आ जाते है।

हिन्दी उपन्यास ने इस शिल्प ने सवेगो (Emotions) को तेजस्विता के साथ साथ एक दिशा भी दी है। वास्तव मे सवेगो की शक्ति अक्षुण्ण होती है और यह व्यक्ति समाज और राष्ट्र का सचालन तक करती है। इसके द्वारा ही किसी व्यक्ति या समाज के मानसिक स्वास्थ्य और बौद्धिक स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। सवेगो के दमन स्वरूप उत्पन्न ग्रंथियो का विश्लेषण और सामाजिक व्यवहार की चर्चा इस विधि की रचनाओ मे खुलकर हुई है सवेगो के सतुलन पर समाज कल्याण की बात भी इसके अन्तर्गत

रचनाओं में आ गई है वास्तव में समन्वयवाद अपने आप में एक निखरी हुई प्रवृत्ति है इसके आधार पर समन्वित शिल्प विधि भी एक उपादेय विधा है जो परस्पर विरोधी अपूर्ण अधूरे और खण्ड सत्यों को एक सीमा में मिश्रित करके महाकार ही नहीं देती अपितु उन्हें साहित्य के प्रशस्त पथ पर अग्रसर भी करती है।

हिन्दी उपन्यास शिल्प का यह वर्गीकरण निश्चयात्मक वैज्ञानिक और भाव पूर्ण ता है किन्तु इसे अन्तिम नहीं कहा जा सकता तथ्य तो यह है कि शिल्प सदैव प्रयोग अवस्था में रहता है। जैसे जैसे साहित्यिक रचनाओं का विकास होता है वैसे ही शिल्प भी प्रौढ़त्व की ओर अग्रसर होता है। शिल्प को साहित्य के साथ सम्बद्ध करके इस वर्गीकरण को अगले अध्यायों में नियोजित किया जाता है।

≈

तीसरा अध्याय

वर्णनात्मक शिल्प-विधि के उपन्यास

'परीक्षा गुरु' से प्रारम्भ होकर 'दवदत्ता' तक हिन्दी उपन्यास में शिल्प की परिपक्वता के लिए आवश्यक प्रयत्न हुए हैं। अपने प्रारम्भिक रूप में शिल्प वर्णन की सच्चाई और विवरणों की यथातथ्यता की ओर झुका। व्यक्ति समाज धर्म राजनीति और आर्थिक विषयों को वर्णनात्मक शिल्प विधि में मुखरित करने और इसे सशक्त रूप प्रदान करने वाले प्रथम सफल कथाकार प्रेमचन्द हैं। वे उपन्यास को अनगढ़ तिलस्म, जासूसी उछल-कूद और भावलोक की रंगीली दुनिया से खींचकर यथार्थ परिस्थितियों और चेतन मन की व्यापक भावनाओं के धरातल पर ले आए। इन्होंने इसे व्यवस्थित रूपाकार (form) और वर्णनात्मक शिल्प (Descriptive Technique) प्रदान किया। इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन पर्याप्त है— "इस तृतीय उत्थान का आरम्भ होते होते हमारे हिन्दी साहित्य में उपन्यास का यह पूर्ण विकसित और परिष्कृत स्वरूप लेकर स्वर्गीय प्रेमचन्द आए। द्वितीय उत्थान के मौलिक उपन्यासकारों में शील वैचित्र्य की उद्भावना नहीं के बराबर थी। प्रेमचन्दजी के ही कुछ पात्रों में ऐसे स्वाभाविक ढांचे की व्यक्तिगत विशेषताएं मिलने लगीं।"[1]

प्रेमचन्द का ध्यान समाज के निम्न और मध्य श्रेणी के जीवन की ओर गया। इन्होंने इन श्रेणियों के गृहस्थों तथा भारतीय कृषक और मजदूरों की सिसकियों को वर्णनात्मक शिल्प विधि के द्वारा अंकित किया। इस शिल्प को अपनाने वाला कथाकार लक्ष्योन्मुखी रहता है, वह अपनी अनुभूतियों, भावनाओं और सिद्धान्तों को सूत्र रूप में न रखकर प्रत्यक्ष व्याख्या और विवरण रूप में प्रस्तुत करता है, इस संबंध में प्रेमचन्द ने स्वयं लिखा है—'अब साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नहीं है। मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है, अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग वियोग की कहानी नहीं सुनाता किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है। और उन्हें हल करता है।'[2] कथाकार के इन विचारों को पढ़कर यह सिद्ध होता है कि शिल्प विधि ही नहीं है उद्देश्य भी है इसीलिए इन्होंने उद्देश्यनिष्ठ शिल्प का संगठन किया। वे लिखते हैं— 'उपन्यास में वही घटनाएं, वही विचार लाना चाहिए जिससे कथा का माधुर्य बढ़ जाए प्लाट के विकास

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—छठा संस्करण—पृष्ठ ३३८-३९

२ कुछ विचार—पृष्ठ ८

में सहायक हो या पाठकों के शुभ मनोभावों को प्रोत्साहित करता हो।[3]

किन्तु उनके उपन्यासों की प्रमुख कमजोरी यह है कि विचार में इतना सहयोग नहीं देती जितना उनके सामाजिक आदर्शों की पूर्ति में योग देता है। सार सत्य की भावना से अभिभूत होकर प्रेमचन्द शाश्वत कथा को गौण कर देते हैं जिसका परिणाम स्वरूप कथा पीछे हट जाती है और उद्देश्य आगे आ जाता है। इस बात साहित्यकार का दायित्व समझते हुए लिखते हैं— जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है — चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है। उसकी अदालत समाज है, इसी अदालत के सामने वह अपना इस्तगासा पेश करता है और उसकी न्यायवृत्ति तथा सौन्दर्य वृत्ति को जागृत करके अपना यत्न सफल समझता है।[4] प्रेमचन्द का सम्पूर्ण साहित्य इस सिद्धान्त का प्रमाण है। यहाँ हम एक उदाहरण देते हैं। रंगभूमि में जब राजा महेन्द्र कुमार को दस मास का कारावास दण्ड है तब वह जनता के सम्मुख अपना दुखड़ा रोकर उसे अपने पक्ष में कर लेता है। यह दृश्य प्रेमचन्द के जनवादी आदर्शों का प्रतीक है कथा शिल्प का वाहक नहीं। वे चाहते भी यही थे कि उनके उपन्यास व्यक्ति, धर्म, समाज, नीति और देश के हित का माध्यम बनें। कला कला के लिए के सिद्धान्त को अपने युग के लिए असामयिक मानते हुए आप लिखते हैं— साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श यह है कि उसकी रचना केवल कला की पूर्ति के लिए की जाए। कला के लिए कला के सिद्धान्त पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। पर कला के लिए कला का समय वह होता है जब देश सम्पन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भाँति भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बन्धनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है दुख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनाई देता है तो कैसे सम्भव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय दहल न उठे? हाँ उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष रूप से व्यक्त हों, उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाए अन्यथा उपन्यास नीरस हो जाएगा।[5]

तत्कालीन परिस्थितियों और विचारों का प्रभाव उनके वस्तु विन्यास तथा पात्रों दोनों पर ही पड़ा है। भारतीय दासता और शोषण की कहानी इनकी कृतियों में मुखरित हो उठी है। प्रेमचन्द की उपन्यासकला का सामाजिक ध्येय— न्याय, समता और नीति के आदर्शों से प्रेरित रहा है। प्रत्येक उपन्यास में एक न एक सामाजिक ध्येय परिलक्षित होता है। सेवासदन में वेश्या जीवन की समस्या के साथ-साथ मध्यवर्ग की अन्य समस्याएँ (उनके नैतिक विचार, सामाजिक दायित्व, वैयक्तिक साहस) भी चित्रित की गई हैं। सुमन, सदन और पद्मसिंह मध्य वर्ग के प्राणी हैं। पद्मसिंह में इतना नैतिक साहस भी नहीं रह गया है कि सेवासदन में जाकर सुमन से बातचीत भी कर सकें। वे सुमन के हितैषी अवश्य बने रहते हैं। इस दृष्टि से प्रेमचन्द ने पात्रों के आदर्शों, सिद्धान्तों और व्यावहारिक

३ कुछ विचार—पृष्ठ ५१
४ वही—पृष्ठ ६
५ वही—पृष्ठ ४१, ४२, ४३

कार्यों का अमगति का चित्र अंकित किया है किन्तु मूल उद्देश्य सुमन के चरित्र का सुधार और एक आश्रम की स्थापना की है।

'सेवासदन' की भांति 'प्रेमाश्रम' में भी एक आदर्श का पीछा किया गया है। यहां एक आदर्श ग्राम (लखनपुर) की स्थापना की गई है। शोषित वर्ग किसान की यथार्थवादी समस्या कृषक भूपति संबंध समस्या का आदर्शवादी हल प्रस्तुत किया गया है। यह प्रेमचन्द के ध्येयवाद का प्रतीक है। यहां भी अनेक चरित्र कथाकार के आग्रह में हृदय परिवर्तन करते हैं, निजी इच्छाओं के कारण नहीं। ईजाज हुसेन सरीखा पाखण्डी इर्फानअली जैसा लोभी और प्रियनाथ सम सरकारी पिट्ठू—एक ही दिन में प्रेमशंकर की सत्वृत्तियों से प्रभावित होकर अपनी दुष्वृत्तियां छोड़ सदाधर्मी बन बैठते हैं। अनेक हत्याएं दिखाई गई हैं जो उद्देश्य पूर्ति के लिए ही सहायक होती हैं शिल्पगत गठन की दृष्टि से दोषपूर्ण है। अपनी दूसरी रचना 'निर्मला' में भी कथाकार ने अपने आदर्शवाद की पूरी-पूरी रक्षा की है। अनमेल विवाह द्वारा वशीभूत निर्मला मूक भाव में समस्त अत्याचारों को सहते हुए भी घुटनपूर्ण वातावरण में दम तोड़ देती है। उसकी मृत्यु समाज के लिए एक व्यापक सदेश छोड़ जाती है।

'रंगभूमि' प्रेमचन्द की औपन्यासिक कला का प्रगति सूचक ग्रन्थ है। इसमें विद्यमान शोषक शोषित संघर्ष का तीन कथाओं द्वारा चित्रित किया गया है किन्तु इस संघर्ष में भी एक आदर्श का आश्रय लिया गया है। संघर्ष का मूल केन्द्र सूरदास है। वह अनेक अवसरों पर अपने आदर्शों का प्रचार करता है। प्रेमचन्द ने अनेक स्थलों पर उसके मुख से कहलवाया है— हार जीत तो जिंदगी के साथ लगी हुई है कभी जीतूंगा तो कभी हारूंगा, इसकी चिन्ता ही क्या? अभी कल बड़े-बड़ों से जीता था आज जीत में भी हार गया। यह तो खेल में हुआ ही करता है।[६] इस प्रकार 'रंगभूमि' में कथाकार जीवन को सहज सरल और क्रीड़ामय रूप में स्वीकार करने का उपदेश देता रहता है और उसका आदर्शवाद अपनी चरम सीमा को छू लेता है। यहां औद्योगीकरण को नैतिक पतन के लिए जिम्मेवार ठहराया गया है और उसका भरसक विरोध किया गया है। 'रंगभूमि' में कथाकार ने अपने जीवन की समग्र अनुभूति और दृष्टिकोण को प्रतिष्ठापित करने का पूरी चेष्टा की है। 'गबन' में सामाजिक उद्देश्य और औपन्यासिक शिल्प में संतुलन रखा गया है।

'गोदान' में प्रेमचन्द ने अपने व्यापक दृष्टिकोण का पूरा परिचय दे दिया है। इसमें राजनीति, समाजनीति, नैतिकता दर्शन तथा अन्य मानव कर्मों के विभिन्न पहलुओं का यथार्थवादी चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से यह प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों से एक भिन्नता रखता है। इसमें तत्कालीन भूमिपति और किसान का प्रश्न, उद्योगपति और विद्वत् मण्डली के सामाजिक प्रश्न और मान्यताएं यथार्थ रूप में प्रस्फुटित हुई है। यह एक शिल्पगत परिवर्तन है। उद्देश्य का उदात्तीकरण (Sublimation) है। महता मालती प्रणय को लेकर एक प्रश्न उठाया जा सकता है—वह उनका अयथार्थवादी जीवन

---

६ रंगभूमि—पृष्ठ ६५

चितन। मेरे मत मे मेहता मालती प्रणय की ववाहिक जीवन मे परिणति न होने की बात एक बौद्धिक स्थिति है न कि सामाजिक अड़चन जिसको दोनो ने ही प्रसन्न वदन स्वीकार किया है।

उद्देश्य गर्भित होने के कारण प्रेमचन्द का पूववर्ती उपन्यास साहित्य कला और शिल्प की दृष्टि से वह श्रेष्ठत्व प्राप्त नही कर पाया जो हम 'गोदान' मे उपलब्ध होता है या एक सीमा मे 'गबन' मे दृष्टिगत होता है। उनके साहित्य पर आर्थिक विषमता तथा सामाजिक असमानता वृत्ति का विशेष प्रभाव रहा है किन्तु यह साहित्य अधिकतर मानसिक कुण्ठाओ से मुक्त रहा। क्योकि आप पहले समाज सुधारक थे फिर कलाकार, इसीलिए आपकी कला आपके सामाजिक उद्देश्य की वाहक है जिसके द्वारा अधिक से अधिक प्राणियो के अधिक से अधिक कल्याण की कामना ही हृदयगत रखी गई है। इस प्रवृत्ति के कारण ही प० रामचन्द्र शुक्ल ने भी आप पर दोषारोपण किया है। वे लिखते हैं— उनमे भी जहा राजनीतिक उद्धार या समाज सुधार का लक्ष्य बहुत स्पष्ट हो गया है वहा उपन्यासकार का रूप छिप गया है और प्रचारक (propagandist) का रूप उभर गया है।'[७]

प्रेमचन्द पूववर्ती उपन्यास साहित्य अदभुत काल्पनिक और भावप्रधान था। यह सत्य है कि उसकी कोई निर्धारित प्रणाली या रूपरेखा निश्चित नही हुई थी केवल प्रयोग हो रहे थे। ऐसा पहला प्रयोग 'परीक्षा गुरु' के रूप मे हमारे सामने आया। इसके निवेदन मे लेखक ने बतलाया कि 'अपनी भाषा मे नई चाल की पुस्तक होगी। वह इसे नावल कहकर पुकारता है। इनके पश्चात देवकीनन्दन खत्री आए गोपालराम गहमरी आए और हम ऐयारी तिलिस्मी तथा जासूसी उपन्यास देखने को मिले, किन्तु ये सब वचित्र्यपूर्ण सनसनीपूर्ण घटनाओ की योजना ही जुटाते रहे कोई शिल्पगत प्रश्न हल नही कर पाए। इसी कारण प्रेमचन्द को कोई परम्परा नहीं मिली। उन्हे अपना शिल्प स्वय तयार करना पड़ा। इतना होने पर भी एक बात स्पष्ट है—वह है प्रेमचन्द पूववर्ती उपन्यासकारो का प्रेमचन्द पर प्रभाव। इनके पूववर्ती उपन्यासकारो मे चमत्कार चातुय अपार था। प्रेमचन्द ने अपनी किशोरावस्था मे देवकी नन्दन खत्री गोपाल राम गहमरी आदि लेखको के उपन्यास बडे शौक से पढे थे और उन्ही के प्रभाव स्वरूप इनका कथा शिल्प विकसित हुआ। इनके वस्तु विधान के अन्तगत कतिपय कौतूहलवधक घटनाए, अतिनाटकीय प्रसग अस्वाभाविक आत्महत्याए असम्भव परिस्थितिया पूववर्ती प्रभाव के परिचायक हैं। प्रेमचन्दयुगीन परम्परागत शिल्पी उपन्यासकारो पर भी यही प्रभाव बना रहा। वे उसी धारा प्रवाह मे बहते रहे। प्रेमचन्द ने अपने पूववर्ती प्रभाव का निराकरण कर अपने शिल्प विधान के अन्तगत पात्रो के चरित्र चित्रण और विचारो को भी प्रतिष्ठित किया जिसका विवेचन आगे किया गया है।

मेरी कारली हगट डिकेन्स थैकरे गाल्सवर्दी टाल्सटाय, तुगनेव तथा गोर्की के उपन्यास साहित्य का विशेष अध्ययन करने के कारण पश्चिमी उपन्यास की शिल्प

---

७ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृष्ठ ८५४

निधि से भी प्रेमचन्द का कुछ परिचय हो चुका था। रूसी उपन्यासकार टॉल्सटाय से आप प्रभावित हुए। इनकी रचनाओं पर यह प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर यह होता है। इसी कारण आपके उपन्यास बहिर्मुखी हैं। इनमें वर्णित दृश्य समाजोन्मुखी हैं। प्रेमचन्द संघर्ष को कभी भी दो व्यक्तियों तक सीमित नहीं रखते। रंगभूमि में सोफिया और उसकी मां के बीच आरम्भ किया गया संघर्ष धीरे धीरे राजा महेन्द्रकुमार, इन्दु आदि अन्य पात्रों और शासक समाज के प्रतिनिधि बनाकर को अपनी लपेट में ले आता है। सूरदास का व्यक्तिपरक संघर्ष दीन दुखियों और ग्राम के असहाय वर्ग का वर्गगत संघर्ष का रूप धारण कर लेता है। गबन की कथा जालपा रमा के छोटे से परिवार के रूप में आरम्भ होती है किन्तु उपन्यास के मध्य में यही कलकत्ता की विशाल नगरी और पुलिस की धांधली की लम्बी और व्यापक कथा का आकार अपना लेती है। गोदान की कथा एक किसान की ही कथा नहीं है, अखिल भारतीय शोषित वर्ग की कथा है। व्यापक समाज और दूरवर्ती स्थलों की सुन्दर पकड़ प्रेमचन्द के शिल्प विधान की अभूतपूर्व योजना है जो पाश्चात्य उपन्यास के गम्भीर अध्ययन का प्रमाण है।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के रूप निर्माण (Form Construction) तथा कला स्थायित्व में पाश्चात्य उपन्यास के प्रभाव को ग्रहण किया है जिसके फलस्वरूप इन्होंने उपन्यास में कल्पना कम और सत्य अधिक अनुपात में ग्रहण किया। व्यक्ति का मूल्यांकन और परिस्थितियों के साथ उसका तादात्म्य पश्चिमी उपन्यास की ही देन है जिसको प्रेमचन्द ने अक्षुण्ण रूप में ग्रहण किया है। आपके मतानुसार उपन्यास को मानव चरित्र से अलग नहीं किया जा सकता। इस विषय में जोला लिखते हैं—"एक स्वभाव विशेष के माध्यम से देखा हुआ जीवन कोण।⁸"—इस दृष्टि से चरित्र चित्रण औपन्यासिक शिल्प का एक अविभाज्य अंग है। जिसे प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दोत्तरी उपन्यासकारों ने उपन्यास शिल्प का अनिवार्य अंग माना है।

वैयक्तिक और सामाजिक बौद्धिक चेतना सजीव पात्रों के माध्यम से उपन्यासों में चमत्कृत हो उठती है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में ऐसे पात्रों का निर्माण किया है जो सामयिक भारतीय समाज एवं जीवन दर्शन के वाहक हैं। ये पात्र कम कहते हैं अधिक सुनते हैं क्योंकि इनमें कहने का साहस कम है। होरी भारतीय कृषक का प्रतिनिधित्व करता है एक परिवार का ही प्रतिनिधि नहीं है। वह सब का सुन लेता है—राय साहब अमरपाल सिंह धनिया गोबर पंडित दातादीन महता आदि पात्र उसे सुनाते हैं और वह सुन लेता है कभी-कभी तर्क वितर्क करने की चेष्टा मात्र करता है। बौद्धिक और मानसिक रूप में जर्जर होरी तत्कालीन परतन्त्र भारतीय जन का प्रतीक होने के कारण सजीव रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

स्वभाव वैचित्र्य तथा चारित्रिक विशेषताओं का उपन्यास में खुलकर अभिव्यक्त किया जा सकता है। उपन्यासकारों के अतिरिक्त पात्र भी अपने चारित्रिक उत्थान अथवा पतन पर दृष्टिपात कर सकते हैं। प्रेमचन्द के पात्र न केवल दूसरे पात्रों के कार्यों की

8 A look of life visualised through temprament

आलोचना करते है अपितु स्वय अपने आलोचक है। गोदान के अमरपाल सिंह होरी को अपनी विवशताए ही नही बताते वे उसे अपनी तथा अपने वर्ग की समस्त दुर्बलताए बता देते है। उद्देश्यमूलक उपन्यासो मे प्रेमचन्द अपनी ओर से अधिक मुखरित होकर पात्रो की टीका टिप्पणी कर गए हैं।

विचार सघठन की दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यास ह्यूगो की उपन्यास कला से यथेष्ट प्रभावित हुए। ह्यूगो के उपन्यासो मे हम तत्कालीन राजनीतिक तथा विचार सबधी द्वन्द्वो के चित्र उपलब्ध होते है। कही-कही उद्देश्य का सकेत भी होता है। उनमे विभिन्न वर्गों तथा समुदायो के विचारो का पूर्ण योग है किन्तु वह अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है। प्रेमचन्द ने विचार प्रदर्शन मे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनो प्रणालियो का आश्रय ले लिया है। कही कही अपने सुधारवादी दृष्टिकोण को इतनी प्रमुखता दी है कि समय और स्थल का ध्यान न रखकर घटनाओ तथा चरित्रो को मनमानी दिशा मे मोड दिया है और लम्बे लम्बे भाषणो की योजना जुटा दी है।

इनकी विचार प्रधानता को दृष्टिगत रखते हुए डा० मदान लिखते है— साहित्य के दो काय है एक जीवन की व्याख्या करना और दूसरा जीवन को परिवर्तित करना। प्रेमचन्द पिछले पर अधिक जोर देते है। वस्तुत उनके उपन्यासो मे सबसे पहली बात है उनमे सामाजिक समस्याओ का प्रतिबिम्बित होना।[६] प्रेमचन्द के पहले पाच उपन्यासो मे घटनाए और व्यक्ति सामाजिक उद्देश्यो से दबे रहते हैं किन्तु गबन से इसका अपवाद आरम्भ हो जाता है। इस रचना का यही शिल्पगत महत्त्व है कि इसमे प्रेमचन्द ने वस्तुविन्यास व्यक्ति और विचार मे सतुलन रखा है। कथावस्तु की दुहरी प्रणाली (Dobule Plot) में भी कथा को मूल केन्द्र से अधिक दूर नही जाने दिया।

प्रेमचन्द के उपन्यासो मे साधारण मनोविज्ञान के प्रयोग तीन या चार मिल सकते है। इन्होने मनोविज्ञान को अपने उपन्यास शिल्प का साधन कभी नही बनाया। फ्रायड द्वारा प्रतिपादित कामवासनाओ की ग्रन्थियां एडलर द्वारा प्रचारित हीन भाव जनित कुण्ठाए आदि मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताए तथा असगतियां इनकी कला से परे ही रही है। इन्होने अपने पूर्ववर्ती उपन्यास के प्रमुख तत्त्व मनोरजन तथा परवर्ती प्रवृत्ति विश्लेषण के मध्य की स्थिति को स्वीकार किया है।

प्रेमचन्द ने शिल्प के महत्त्व को स्वीकार करने पर भी अधिक महत्त्व भाव विचार और अनुभूति को ही दिया है। इनके परवर्ती उपन्यासकार जैनेन्द्र जोशी अज्ञेय, धर्मवीर भारती आदि कथाकार शिल्प-वैभव पर अधिक बल देते हैं। नवीनता के य आग्रही मनोविज्ञान का आश्रय लेकर शिल्प मे परिवर्तन ले आए हैं। इनका मूल्याकन आगे किया जाएगा। प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत तो उन्ही लेखको को रखा गया है जिन्होने वर्णनात्मक शिल्प विधि को अपनाया है। प्रेमचन्द विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, प्रतापनारायण श्रीवास्तव जयशकर प्रसाद वृन्दावनलाल वर्मा यशपाल फणीश्वरनाथ रेणु, हजारी प्रसाद द्विवेदी नागार्जुन तथा भगवतीचरण शर्मा आदि उपन्यासकारो का औपन्यासिक कला

६ प्रेमचन्द एक विवेचन—कला और शिल्प विधान—पृष्ठ १२३

म विभिन्न स्वरा के ध्वनित होन पर भी उनके शिल्पगत दष्टिकाण म मूलगत साम्य है। अत इन लेखका को वणनात्मक शिल्प विधि के पोषक एव समथक के रूप म स्वीकार किया गया है। इनम से अधिकाश कथाकारा को सामाजिक और कुछ को ऐतिहासिक या आचलिक उपन्यासकार माना जाता है। विषय और प्रवत्ति की दष्टि स यह कहना उचित भी है किन्तु शिल्प की दष्टि से य सब कथाकार वणनात्मक शिल्प विधि को अपनाकर चले हैं अत इन्हें वणनात्मक शिल्प विधि के कथाकार कहगे। इनकी औपन्यासिक रचनाओ के अध्ययन और अन्वेषण स यह सिद्ध हो जाता है कि इनम इस विधि की बहुनाम प्रवत्तिया परिरम्भित हैं।

सेवासदन—१६१७

'सेवासदन प्रेमचन्द की महत्त्वपूर्ण रचना है। शिल्प की दष्टि से इसका ऐतिहासिक महत्त्व ह। हिन्दी उपन्यास जगत में यह शिल्प की निमात्री रचना है। सन १६१७ के लगभग इसके प्रकाशन के पश्चात विभिन्न आलोचको द्वारा इसकी समालोचना की गई। किसी न इस हिन्दी साहित्य का प्रथम मालिक सामाजिक उपन्यास कहा तो कोई इसके कलात्मक रूप पर मुग्ध हुआ।

(क) 'सेवासदन प्रेमचन्द का ही नही हिन्दी का पहला मौलिक सामाजिक उपन्यास है।

(ख) "विचार परिपक्वता वस्तु योजना एव चित्रण कला की दष्टि से इसे ही हम प्रेमचन्द का प्रथम उपन्यास मानते है।

(ग) हिन्दी साहित्य क्षितिज पर आधुनिक उपन्यास की प्रथम किरण प्रेमचन्द के उपन्यास सेवासदन से प्रस्फुटित होती दिखलाई पडती है।

(घ) सेवासदन प्रेमचन्दजी का पहला मुख्य उपन्यास है।

मेरे मतानुसार यह शिल्प की दष्टि स पहला सफल प्रयाग है। प्राचीन ढर्रे के उपन्यास जो केवल एक वग विशेष के मनोरजन का साधन मात्र थे कोई शिल्पगत महत्त्व न रखते थे। कथा की अतिशयता और घटना बाहुल्य उन्हें एक अलग कोटि के अन्तगत रख छोडते है मानव जीवन के विविध रूपो की कोई व्याख्या ये प्रस्तुत नहीं कर पाए। सेवासदन पहला उपन्यास है जिसम मानव जीवन का चित्र और उसकी व्याख्या दोनो उपलब्ध है।

मानव जीवन की व्याख्या मुख्यत दो प्रणालियो द्वारा की गई है—वणनात्मक

---

१ (क) श्री गगाप्रसाद पांडेय हिन्दी कथा साहित्य—पष्ठ ५६,
(ख) प्रो० शिवनारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास—पष्ठ ७६,
(ग) डॉ० देवराज उपाध्याय आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान—पष्ठ ७१,
(घ) डा० नन्द दुलारे वाजपेयी प्रेमचन्द साहित्य विवेचन—पृष्ठ २३,

विधि तथा विश्लेषणात्मक विधि—प्रेमचन्द ने इनमें से प्रथम को अपनी कला तथा कृतित्व का साधन बनाया। सेवासदन वर्णनात्मक शिल्प विधान का प्रथम सोपान है। इस शिल्प विधि को अपनाने के कारण प्रेमचन्द ने जीवन के विस्तृत क्षेत्र का चित्रण विवरणपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने की सुविधा प्राप्त कर ली। उनकी ये सुविधाएं इतिहासकार से कम नहीं हैं इसीलिए तो सेवासदन में बहिर्गत (Extrovert) जीवन से नाना घटनाएं जुटाई गई हैं। कथा में संयोजित समस्त घटनाएं पात्रों की विभिन्न लीलाएं तथा उपन्यासकार की व्याख्याएं समाजपरक तथा वर्णनात्मक हैं। इनमें एक साथ व्यक्ति समाज राजनीति अर्थनीति और नैतिक परिस्थितियों की बाह्य सीमाओं का खुलकर वर्णन किया गया है। सेवासदन में वर्णनात्मक शिल्प विधान के सब गुण तथा अभाव विद्यमान हैं। इसमें मानव के बाह्य आपे का विस्तृत वर्णन हुआ है घटनाओं का विशद चित्रण हुआ है परिस्थितियों और परिणामों की अद्भुत व्याख्या हुई है किन्तु पात्रों के अन्तर्मन में कम ही प्रवेश हुआ है उनके अन्तर्द्वन्द्वों के सूक्ष्म और तीक्ष्ण चित्रण का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। सेवासदन में व्यापकता है गहराई नहीं स्थूलता है, सूक्ष्मता नहीं गति है तीक्ष्णता नहीं। 'सेवासदन' के ये अभाव वर्णनात्मक शिल्प विधान के अभाव हैं और जो विशेषताएं हैं वे भी वर्णनात्मक शिल्प के गुण कहे जायेंगे।

विषय को ही लें। सेवासदन का विषय नारी जीवन और वेश्या समस्या है। यह एक सामाजिक विषय है और वर्णनात्मक शिल्प विधान का विषय सदैव सामाजिक ही हुआ करता है वैयक्तिक विषय विश्लेषणात्मक शिल्प की धरोहर है। सेवासदन में विषय के अनुकूल वस्तु जुटाई गई है। सुमन और शान्ता को सामने रखकर नारी विशेषकर वेश्या समाज से सम्बन्धित नारी की व्याख्या की गई है। भोली वेश्या समाज की प्रतिनिधि पात्र है सुमन वेश्यामुख युवती का प्रतीक है सुमन से सम्बन्धित शान्ता वेश्याओं के कुल से सम्बन्धित विवश नारी का प्रतीक है।

वर्णनात्मक शिल्प विधि के उपन्यास का वस्तु विन्यास इतिवृत्तात्मक होता है इसमें घटनाओं का एक जाल सा बिछ जाता है। कथावस्तु अधिकतर दुहरी या तिहरी हो जाया करती है किन्तु इकहरी भी रह सकती है। सेवासदन को ही लें। इसकी वस्तु योजना इकहरी है। डा० इन्द्रनाथ मदान के मतानुसार सेवासदन का निर्माण एक ही प्रधान ढांचे पर हुआ है।[१] श्री हरस्वरूप माथुर आदि समीक्षक ने दो कथाओं की बात उठाई है। सुमन और शान्ता की कथाएं दो होने पर भी एक हैं। प्रधान कथा सुमन की है जो आदि से अन्त तक रहती है और शान्ता आदि की कथा को सहायक रूप में स्वीकार कर अपने रूप (form) में समेट लेती है। सेवासदन की आलोचना करते हुए श्री हर स्वरूप माथुर ने यह मान भी लिया है— अन्य घटनाओं की भांति शान्ता की कहानी भी

१ सेवासदन' 'निर्मला', 'प्रतिज्ञा' और 'गबन' एक ही प्रधान कथा के ढांचे पर खड़े किए गए हैं। 'प्रेमाश्रम' 'रंगभूमि' 'कायाकल्प' 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में एक से अधिक कथाओं का समावेश है।

प्रेमचन्द : एक विवेचना—पृष्ठ १२३ १२४

सुमन के सबध से विकास प्राप्त करती है।'[3] नाता ही नही उमानाथ और पद्मसिंह स सबधित घटनाए और उपकथाए भी सुमन की कथा को व्यापक बनाने म सहायक होती है।

'सेवासदन म जो घटनाए ली गई ह व समाज सापेक्ष है विवरणात्मक है, मनोवैज्ञानिक या अन्तर विश्लेषणात्मक नहीं है क्योंकि वणनात्मक शिल्प विधान के अन्तगत घटनाओं के व्यक्तिपरक और मनोविश्लेषणात्मक वनन का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता। कुछ घटनाओं का विवेचन शिल्प की तुला पर करके देख। कृष्णचन्द्र (सुमन के पिता) की गिरफ्तारी उपन्यास की सबसे पहली घटना है। सुमन के तिलक की साइत से पूव इस प्रकार की गिरफ्तारी निश्चय ही घटना के द्वारा कथा को एक विशेष दिशा मे मोडने के लिए प्रस्तुत की गई है। अत यह शिल्पगत महत्त्व रखता ह। दूसरी प्रधान घटना रामनौमी के दिन घटित होती ह। सुमन की उपस्थिति म भोली का मन्दिर प्रवेश और गीत गाना केवल मात्र सुमन के चरित्र को प्रभावित करने के लिए सयोजित नही किया गया अपितु कथान्यासाथ जुटाया गया है। तीसरी मुख्य घटना गजाधर सुमन नोक झोक के पश्चात सुमन का गृह त्यागना है। इसके द्वारा ही सुमन जीवन के नये क्षेत्र म प्रवेश करके नये यनम परिस्थितियो और अनुभूतियो का परिचय प्राप्त करती है। कथा के इस भाग तक की घटनाओं की प्रशसा आचाय नन्ददुलारे न भी की है किन्तु आगे की घटनाओं की आलोचना करते हुए व लिखते है— प्रेमचन्द जी ने कथा के आरम्भ स लेकर सुमन के गृहत्याग तक का वणन बडे व्यवस्थित रूप म किया है परन्तु गृहत्याग के पश्चात घटनाए उतनी सुन्दर गति से आगे नही बढ़ती। दालमण्डी म रहते हुए सुमन का वृत्तान्त बडा अस्पष्ट और उखडा-उखडा-सा लगता है।[4]

आचाय नन्द दुलारे द्वारा की गई परवर्ती घटनाओं की आलोचना स मैं सहमत नही हू। वास्तव म आचाय जी ने प्रेमचन्द जसे वणनात्मक शिल्पी स विश्लेषिक व्याख्या की माग की ह। दालमण्डी म रहते हुए सुमन से सबधित घटनाओं का विवेचन नही हुआ ह, इसीलिए आचायजी को यह आरोप लगाने का अवसर मिला उन्ह सुमन का वृत्तान्त अस्पष्ट नजर आया किन्तु तथ्य यह ह कि सुमन का चरित्र ही अस्पष्ट है न घटना योजना ही उखडी हुई है। सुमन के दालमण्डी म रहते हुए बहुत कम घटनाए चित्रित की गई ह। प्रेमचन्द का शिल्प वणनात्मक है अत आशा थी व उन परिस्थितियो और घटनाओं का भी विस्तृत वणन करेंगे जो दालमण्डी के वातावरण मे घटित होगी किन्तु यहा पहुच कर कथा को समेट लिया ह। इसका कारण प्रेमचन्द की उद्देश्य प्रियता है जिसके कारण शिल्पगत दोष आया। उनकी लक्ष्य प्रियता अनेक स्थलो पर शिल्प पर छा जाती ह। इसीलिए उन्होंने सुमन को नाना सभावित घटनाओं से दूर रखा है। मनोवैज्ञानिक घटना वैचित्र्य के जाल मे वे नहीं फसे है। सीधे, सरल ढग से अपने आदर्श की रक्षा करते हुए सुमन को घुटन स भरे हुए वेश्यालय के वातावरण स शीघ्र ही मुक्त करा देते ह। उनके

---

३ प्रेमचन्द कथा और शिल्प—पृष्ठ ३०
४ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन—पृष्ठ ३१

वृत्तान्त को अस्पष्ट नहीं होने देते केवल अत्यावश्यक घटनाओं को प्रस्तुत करते हैं।

सदन सुमन प्रेम नैतिक और सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय होता हुआ भी शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह कथा को विस्तार देने के साथ-साथ उसमें शैथिल्य भी नहीं आने देता। वश्या प्रेम में अन्धा युवक (सदन) एक ओर चोरी करके कंगन लाकर अपनी प्रेयसी (सुमन) को भेंट कर देता है तो दूसरी ओर यह कंगन सुमन की आँख खोल देता है उस पद्मसिंह का स्मृति ताज़ा हो जाता है। अतः कथा संश्लिष्ट होकर ध्येय की ओर बढ़ता है। वर्णनात्मक शिल्प के उपन्यास में कथा संश्लिष्ट होकर ध्येयोन्मुखी रहता है। यहाँ पहुँचकर प्रेमचन्द ने अपनी सूक्ष्म बौद्धिक प्रतिभा का परिचय दिया है। सुमन पद्मसिंह को कंगन लौटाने के लिए बेताब हो उठती है साथ ही इस नरककुण्ड से छुटकारा पाने के लिए चिन्तित तथा प्रयत्नशील भी रहती है।

कथा की तीसरी अवस्था में घटनाएँ अधिक व्यापकता के साथ चित्रित हुई हैं। प्रेमचन्द के वर्णनात्मक उपन्यासों में व्यापकता की कोई कमी नहीं है। सुमन के अतिरिक्त शान्ता उमा गंगाजली मदनसिंह पद्मसिंह गजानन्द आदि पात्रों की चारित्रिक घटनाएँ जीवनी सम दृष्टिगोचर होता है। इनमें से कुछ घटनाएँ और उपकथाएँ तो इतनी फैल गई हैं कि मुख्य कथा कुछ समय के लिए लुप्त-सी हो गई है। सुभद्रा पद्मसिंह पारिवारिक कलह म्युनिसिपैलिटी की कार्यवाहियाँ पद्मसिंह विचार माला कृष्णचन्द्र की विक्षिप्त दशा और आत्महत्या गजानन्द के भाषण आदि प्रसंग कथा का विस्तार देने में अधिक सहायक सिद्ध हुए हैं सुमन की कथा से इनका प्रत्यक्ष संबंध नहीं जुड़ता।

कथा शिल्प की दृष्टि से प्रेमचन्द पर एक भारी आरोप लगाया गया है। कतिपय आलोचकों ने इनके प्रचारक और उपदेशक रूप की कड़ी आलोचना की है। सेवासदन भी प्रचारात्मक प्रसंगों से रहित नहीं है। इसमें प्रेमचन्द ने अनेक स्थलों पर हस्तक्षेप करके वर्णन और व्याख्या का विस्तार किया है। इसे शिल्पगत दोष नहीं कह सकते। वर्णनात्मक शिल्प की तो यही एक मुख्य विशेषता है इसमें उपन्यासकार को खुलकर कहने की सुविधा प्राप्त होती है। वर्णनात्मक शिल्पी समस्याओं का उद्घाटक ही नहीं होता उनका हलकर्ता भी होता है। अवसर मिलते ही वह राजनैतिक-सामाजिक आर्थिक नैतिक या धार्मिक समस्या पर भाषण देने की सुविधा जुटा लिया करता है। सेवासदन की प्रथम प्रधान तथ्यमूलक घटना के घटित होते ही (अनाथालय की सफलता अवसर पर) एक भाषण दिया गया है उसकी कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

सच्चा हितोपदेश कभी निष्फल नहीं होती। अगर समाज को विश्वास हो जाए कि आप उसके सच्चे सेवक हैं आप उनका उद्धार करना चाहते हैं आप निस्वार्थ हैं तो वह आपके पीछे चलने को तैयार हो जाता है। लेकिन यह विश्वास सच्चे सेवा भाव के बिना कभी प्राप्त नहीं होता। जब तक अन्तःकरण दिव्य और उज्ज्वल न हो वह प्रकाश का प्रतिबिम्ब दूसरों पर नहीं डाल सकता।"[५]

कथाकार ने अनेक घटनाओं का वर्णन करके उन पर अपनी ओर से टीका टिप्पणी

[५] सेवासदन—पृष्ठ ३२।

भी कर डाली ह । इमस उपयास म वस्तु ‍चरित्र, पात्रा और वातावरण के साथ साथ जीवन व्याख्या भी सभव हो गई है । अग्रेजी तथा अय भाषाओं के उपयास साहित्य के प्रथम कलाकारो द्वारा भी यह प्रवत्ति अपनाई गई है । य कथाकार कथा का दक्षता के साथ पकड़े रखते हैं और उसे पूणतया अपने इगित पर घुमाते ह तथा विभिन घटनाओं की चर्चा के साथ साथ उनकी आलोचना भी करते हैं । यह आलोचना कही भाषण कही टीका तो कही नीति वचन द्वारा प्रस्तुत होती है । सवासदन म कृष्णचन्द्र की गिरफ्तारी के पश्चात् प्रेमचन्द ने लिखा है—' जिस प्रकार विरले ही दुराचारियो को अपने कुकर्मो का दण्ड मिलता है उसी प्रकार सज्जन का दण्ड पाना अनिवाय ह । ' सन्न सुमन नौक भौक के समय लिखा गया है—"व्यग और क्रोध म आग और तेल का सबध है । व्यग हृदय को इस प्रकार विदीर्ण कर देता है जसे छेनी वफ क टुकडे को ।

वर्णनात्मक शिल्प की इस प्रवत्ति के विषय म अग्रजी के प्रसिद्ध समालोचक श्री बीच ने अपने ग्रथ "दि टवेंटीथ सचरी नावल स्टडीज इन टेक्नीक" म लिखा है—

"अग्रजी उपयास पर विहगम दष्टि डालने स एक बात जो तुम्हे किसी अय बात स अधिक प्रभावित करेगी, यह है कि फील्डिंग म लेकर फोड तक पहुचते-पहुचते लेखक परे हट गया । फील्डिंग तथा स्काट थकर और जाज इलियट म लेखक प्रत्यक्ष स्थल पर उपस्थित रहता है इसलिए कि वह देख सके कि आप प्रत्यक्ष परिस्थिति तथा कायकलापो से भली भाति परिचित करा दिए गए हैं साथ ही चरित्रो की व्याख्या कर सके ताकि आप उनके बारे म उचित धारणाए बना सक बुद्धि की विषमताओं को बिखेर सकें और मधुर कथा के साथ-साथ अच्छे भाव प्रवाह रखें । और यह बताया जा सके कि कैसे उनकी असफलताओ से तुम एक स्वस्थ और ठीक जीवन दशन अपना सको । यह ठीक भी है । क्योंकि सेवा सदन स ही प्रमचन्द्र न घटनाओं के अतिरिक्त पात्रो सामाजिक कुप्रथाओ तथा कुविचारो एव दूषित मान्यताओं की कटु आलोचना प्रस्तुत की है । उनकी सब कुछ कह डालने की प्रवत्ति वणनात्मक शिल्प का अपनाने की धारणा की पुष्टि करती है ।

---

६ सेवासदन—पष्ठ १३

७ वही—पष्ठ ४७

8 In a bird s eye view of the english novel from Fielding to ford the one thing that will impress you more than any other is the disappearnce of the author In Fieding and scott in Thackary and George Eliot the anthor is everywhere present in Person to see that you are properly informed on all the circumstances of the action to explain the characters to you and insure your forming the right opinion o them to scatter nuggets of wisdom and good feeling along the course of the story and to point out how from tne failures and successes of the characters, you may form a sane and right philosophy of conduct' page 14 chap II Exit author

शिल्प की दृष्टि से वस्तु विन्यास में अनेक स्थल कृत्रिम प्रतीत होते हैं। इसका मूल कारण प्रेमचन्द पूर्ववर्ती उपन्यास साहित्य है जिसे प्रेमचन्द ने रुचि के साथ पढ़ा था। और जिसका प्रभाव प्रारम्भ में वे पूर्णतः नहीं त्याग सके। इसी कारण से इनके उपन्यासों में संयोग और आकस्मिकता का प्रवेश हुआ है। सेवासदन में [illegible] का आत्महत्या के प्रयत्न में गंगा-तट पर पहुँचना, अकस्मात स्वामी गजानन्द का पहुँच जाना एक ऐसी ही सृष्टि है। ऐसे ही सुमन का भ्रम में भ्रम में स्वामी गजानन्द की कुटिया तक पहुँच जाना एक आकस्मिक घटना है। ये संयोग और आकस्मिक घटनाएँ कथाकार के उद्देश्य की पूर्ति हित संयोजित हुई हैं और वर्णनात्मक शिल्प के उपन्यास साहित्य में इनका बाहुल्य है क्योंकि यहाँ कथा की कार्य-कारण शृंखला की ओर इतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना कि विश्लेषणात्मक शिल्प की कृतियों में पाया जाता है।

रचना चाहे वर्णनात्मक हो या विश्लेषणात्मक, उसमें पात्रों का महत्त्व सर्वोपरि होता है। उपन्यास तो मानव चरित्र का चित्र कहा जाता है। कथाकार ने इस महत्त्व को प्रमाण समझा है और अपने पात्रों द्वारा उस कथन को साधार कर दिखाया है। सेवासदन वर्णनात्मक शिल्प का उपन्यास है जो इसके पात्र समाजोन्मुखी हैं और किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। सुमन को ही लें। यह मध्यवर्गीय नारी समाज का प्रतीक है। इस पात्र के चारित्रिक विकास में कथाकार ने भारतीय नारी विशेषकर मध्यवर्ग से सम्बन्धित नारी की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक मान्यताओं को संयोजित किया है। सुमन अकस्मात रूप से ही वेश्या नहीं बन बैठती अपितु कथाकार उसके मन पर कुछ ऐसे संस्कार डालता है जो सामयिक परिस्थितियों का परिणाम हैं जिनके कारण वह वेश्या वृत्ति की ओर उन्मुख होती है। शैशव की चंचलता, यौवनगत रूप प्रदर्शन की कामना उसके शाश्वत संस्कार हैं किन्तु भोली का साहचर्य, आर्थिक समस्याएँ और पारिवारिक कलह सामयिक परिस्थितियाँ बन जाती हैं जो उसके मन और चरित्र को परिवर्तित करने में सहायक सिद्ध होती हैं।

सुमन एक टाइप पात्र है अतः इसका चारित्रिक पतन क्षणिक रहता है, हृदय से वह पवित्र भारतीय मध्यवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव ही उसके चरित्र को प्रभावित और परिवर्तित करता है। आदर और सम्मान की भूख उसमें यौन-सुख की भूख (Sex desires) से कहीं अधिक है। इसी से प्रभावित होकर उसने वेश्यावृत्ति ग्रहण की और इसी की प्राप्ति आकांक्षा में इसका त्याग भी कर दिया। वह आरम्भ से अन्त तक कीच में फँसे कमल सदृश खिली हुई पवित्र नारी रहती है। इस विषय में प्रेमचन्द ने एक स्थल पर लिखा है— सुमन को यद्यपि यहाँ भोग विलास के सभी सामान प्राप्त थे लेकिन बहुधा उसे ऐसे मनुष्यों की आवभगत करनी पड़ती थी जिनकी सूरत से उसे घृणा होती थी, जिनकी बातों को सुन उसका जी मिचलाने लगता था। अभी उसके मन में उत्तम भावों का सर्वथा लोप नहीं हुआ था।'[६] यह सिद्ध करता है कि सुमन का चरित्र एक स्थिर (Static) चरित्र है जो परिवर्तित परिस्थितियों और जीवन स्थितियों

६ सेवासदन—पृष्ठ १११

म भी अपरिवर्तित रहता ह। सदन से सतत प्रेम करने पर भी वह यौन सबधो से बची रही,यह अमनोवैज्ञानिक है। इसका कारण वणनात्मक शिल्प योजना ही है जिसके कारण मनस्तत्व की खोज सभव नही हो पाई।

सुमन के अतिरिक्त शाता, सदन पद्मसिंह मदनसिंह उमानाथ कृष्णचन्द्र, विटठल दास, सुभद्रा और भोली उपन्यास के मुख्य सामाजिक पात्र ह, जो कथा म गति लान म विशेष सहयोग देते है। इनका चरित्र चित्रण प्रेमचन्द द्वारा ही प्रस्तुत हुआ है। इनके अतिरिक्त अबुल्लवफा सेठ बलभद्र प्रभाकर राव आदि गौण पर सामाजिक पात्र ही हैं जो केवल मात्र प्रेमचन्द की उद्देश्यप्रियता के प्रतीक है, इनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नही है।

परिस्थितिया चरित्रो और घटनाओ का पारस्परिक सबध और प्रभाव प्रेमचन्द के शिल्प का मूलाधार है। परिस्थिति का सयोजन चरित्र म उत्कर्ष अथवा अपकर्ष ले आना है साथ ही उद्देश्यमूलक भी होना है। शाता गम्भीर थी और शीलवती भी जबतक उसकी मा थी, मा गई, तो वह उदण्ड भी हुई और क्रोधी भी। विवाह से पूर्व परिस्थितिवश वह सुमन से दबी रही, श्रद्धामयी भी रही पर विवाह के ठीक बाद उसने सुमन को आँखें भी दिखाई यही नही प्रसव पीडा से छुटकारा पाने ही आख भी फर ली। यह चारित्रिक चित्रण स्पष्टत उद्देश्यमूलक है। इसम चरित्र की स्थिरता को उद्देश्य के लिए भ झाडा भर गया है उसम निजी गतिशीलता नही है।

वणनात्मक रचना विधान होन के कारण सेवासदन म वगगत प्रवत्तियो का चित्रण अधिक मात्रा और व्यापकता के साथ किया गया है जिसमे एक असाधारण सी सजीवता प्रेमचन्द की अपनी मौलिक विशेषता है— विवाह के इच्छुक बूढे नाइयो से मूछ कटवाते और पके हुए बाल चुनवाने लगते। कोई अपना बडप्पन दिखाने के लिए उनसे पैर दबवाता कोई धोती छटवाता। जबतक उमानाथ वहा रहते स्त्रिया घर म न निकलती कोई अपने हाथ स पानी न भरता कोइ खेत म न जाता।[10]

वगगत चित्रण वणनात्मक कृति म स्वाभाविक भी है क्योकि वह पात्र द्वारा नही कथाकार द्वारा होता है। इसीलिए व्यक्ति उसम व्यक्ति न होकर कथाकार क उद्देश्य के कारण वग का प्रतिनिधि बन जाता है। सेवासदन म भोली का नही, वेश्या वग का समग्र चित्रण है। गजाधर का अहमन्यता पूरे पुरुष वग के बडप्पन की प्रतीक है। अब्दुल वफा विट्ठलदास और प्रभाकर राव मे मानवीय स्वार्थप्रियता तथा ईर्ष्या वत्ति का चित्रण है। *नगरवासी साहब सेठ और धनी मानी सज्जनो की विलासिता उस वग की यथार्थ* मनोवत्ति को उभार कर प्रस्तुत की गई है।

वणनात्मक शिल्प विधि के उपन्यासो म कथाकार का ध्यान कथा और चरित्र के साथ साथ विचार और समस्या पर भी पडता ह। कभी कभी तो उसका ध्यान सबसे अधिक विचार पर भुक जाता है। सेवासदन म ऐसा ही हुआ है। इस रचना म प्रेमचन्द का ध्यान सबसे अधिक अपने लक्ष्य की ओर केंद्रित रहा है। उन्होने इस उपन्यास की

---

१० सेवासदन—पृष्ठ १८

गए समस्त भाषण उपन्यास के आकार का वन्तान और प्रेमचन्द की उद्देश्य प्रियता का तृप्त करने म सहायक सिद्ध हुए है वे औपन्यासिक शिल्प की प्रारम्भ अवस्था के परिचायक है।

निर्मला—१९२३

सेवासदन के पश्चात प्रेमचन्द के दो उपन्यास 'वरदान' और 'प्रेमाश्रम' प्रकाशित हुए। इनम से 'वरदान' बहुत पहिले लिखा जा चुका था अत इसमे 'सेवासदन' की सी कलात्मक प्रौढता का अभाव खटकता है। प्रेमाश्रम सेवासदन के ढर्रे पर ही रचा गया, किन्तु दुहरे कथानक के कारण इसम प्रेमचन्द की वर्णनात्मक प्रतिभा अधिक प्रखर हो गई है। प्रेमाश्रम' के पश्चात निर्मला ही ऐसी रचना है, जिसे सेवासदन के उपरान्त शिल्प की दृष्टि से अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है इसका कारण प्रेमचन्द का इस रचना को तैयार करते समय शिल्प को अधिक महत्त्व देना है। वर्णनात्मक शिल्प के अन्तर्गत इसम व्यापकता की अपेक्षा गहनता का प्रश्रय मिला। निर्मला' का आरम्भ अधिक सयत होकर किया गया है। 'सेवासदन' की भाति इसकी आरम्भिक पक्तियां नीति शब्दों से लदी हुई नही है अपितु इनम आश्चर्यजनक ढग से उदयभानु की पारिवारिक दशा और कलह का परिचय भी दिया गया है इसम वर्णनाधिक्य नही है कथा बाहुल्य है, घटना प्रधान्य है। कृष्णा से रुष्ट होकर उदयभानु रुष्ट घर गुजरने के लिए घर से बाहर निकलते ही है कि मतई की अतीत प्रतिशोध अग्नि का शिकार हो जाते है उनकी मृत्यु एक सयोग नही है अपितु तीन वर्ष पूर्व घटित मतई को दिलाए गए कारावास के दण्ड का परिणाम है कार्य-कारण शृखला का निर्वाह इसी को कहेगे।

'निर्मला' एक लघु उपन्यास है। अनमेल विवाह ही इसका मूल विषय है किन्तु इसम केवल नारी-जीवन को विषाक्त करने वाले तत्वों का वर्णन ही नही हुआ है अपितु विमाता की छत्र छाया म पले शिशुओं की दारुण स्थिति का वर्णन भी किया गया गया है। अनमेल विवाह और विमाता के सस्कारो का विवरण निर्मला म सयत होकर प्रस्तुत किया गया है। वर्णनात्मक शिल्प विधि के अन्तर्गत यह सयम और सक्षिप्त चित्रण योजना प्रेमचन्द के नये रूप को प्रस्तुत करती है। कथाकार ने कथावस्तु को सगठित करने और वर्णन विस्तार को सीमित रखने के लिए जिस विधा का प्रयोग किया है उससे हम परिचित भी करवा दिया है। तीसरे परिच्छेद का आरम्भ करते ही वह निर्मला म लिखता है— विधवा का विलाप और अनाथो का रोना सुनाकर हम पाठकों का दिल न दुखाएगे। जिसके ऊपर पडती है वह रोता है विलाप करता है पछाडें खाता है यह कोई नई बात नही है।'[१] इतना लिखने ही वह मुख्य विषय और कथा को पकड कर आगे बढ गए हैं, किन्तु कथा के साथ म बार बार आकर अपना ओर म मुख्य घटनाओं का विवेचन करने और अपना मत देने की प्रवृत्ति का त्याग नही कर सके। निर्मला के पिता उदयभानु की हत्या के पश्चात प्रेमचन्द ने अपनी ओर से जो टीका टिप्पणी की है, वह सयत ता है

१ निर्मला—पृष्ठ १६

किन्तु अपनी ओर से टीका टिप्पणी करने की प्रवृत्ति की परिनायक प्रवृत्त है। यह टिप्पणी तीन हो जाती है—

जीवन तुम्हें क्या इस असार भी दुनिया में कोई वस्तु है? क्या यह उस दीपक की भांति ही क्षणभंगुर नहीं है जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है? पानी के एक बुलबुले को देखते हो लेकिन उसे टूटते ही कुछ देर लगती है जीवन में उतना सार भी नहीं है। सांस का भरोसा ही क्या? और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं। नहीं जानते नीचे जाने वाली सांस ऊपर आएगी या नहीं पर सोचते इतनी दूर की हैं मानो हम अमर हैं।[२]

'निर्मला' में अनावश्यक विवेचन और विस्तार का अभाव है। लम्बे संभाषण और उपदेश भी नहीं हैं घटनाओं का विवरण भी संयत कर दिया गया है। पात्रों का चरित्र भी बड़ा कुशलता से अंकित किया है। निर्मला की दुराशंका का आभास पहले ही परिच्छेद में मिल जाता है। उसकी अस्थिर मनोदशा का एक चित्र देखिए— निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर आइने के सामने खड़ी होती है और उसमें अपने सौन्दर्य की सुषमा पूर्ण आभा देखती तो उसका हृदय एक सतृष्ण कामना से तड़प उठता था। उस वक्त उसके हृदय में एक ज्वालामुखी सी उठती। मन में आता इस घर में आग लगा दूं। अपनी माता पर क्रोध आता पर सबसे अधिक क्रोध बेचारे निरपराध (!) तोताराम पर आता।[३] उपन्यास के प्रत्येक परिच्छेद में निर्मला व्याप्त है। उसे उपन्यास की केन्द्रस्थ सत्ता कह सकते हैं।

निर्मला की घटनात्मक और वर्णनात्मक स्थिति पूर्ण संतुलित है। इसमें एक व्यक्ति विशेष (निर्मला) की कथा को पारिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय कोण से देखा परखा गया है। इस उपन्यास में केवल एक मुख्य कथा एक उपचरित्र तथा तीन वर्णन नियोजित हैं। उपन्यासकार एक सीमा तक पीछे हटकर पात्रों को ही परिस्थिति बनाने या बिगाड़ने का अवसर देता चला है। परिणाम स्वरूप वर्णित पात्रों की आन्तरिक मनोवृत्ति और जीवनगत अनुभूति अधिक प्रखर रूप में प्रस्तुत हुई है। मंसाराम निर्मला मनोमालिन्य कथाकार की नहीं रुक्मिणी की ईर्ष्यालु और मुंशीराम की चिरकालु प्रवृत्ति का परिणाम है। मंसाराम के बाल हृदय में पारिवारिक जीवन के विषम अनुभवों का चित्रण कराया गया है। विमाता की दिनचर्या और भावोद्गार की प्रतिक्रिया मंसाराम के बाल हृदय पर एक अमिट प्रभाव छोड़ती है उसे द्वंद्वात्मक स्थिति में प्रवेश कराती है—वह सोचता है—यह स्नेह वात्सल्य और विनय की देवी है या ईर्ष्या और अमंगल की मायाविनी मूर्ति। उसे निर्मला की सहृदयता पर विश्वास आया ही चाहता है कि मुंशी तोताराम आ धमकते हैं। उन्हें देखते ही निर्मला का परिवर्तित रूप कथा की रूप रंगों की दिशा ही बदल देता है मंसाराम के हृदय में पुनः द्वंद्व मच जाता है जिसके परिणामस्वरूप वह गृहत्याग और मृत्यु का शिकार होता है।

---

२ निर्मला—पृष्ठ १६

३ वही—पृष्ठ ४०

मिलने पर इस ससीम अवस्था का कहीं कहीं अतिक्रमण भी कर दिया है। पद्रहवे अध्याय में कृष्ण के विवाह अवसर पर कृष्ण निर्मला वार्ता केवल मात्र बूढ़े तोताराम के चरित्र पर उसकी शकालु प्रवृत्ति पर कटाक्षाघात करने के लिए नियोजित की गई है। इससे कथाकार के लक्ष्य की पूर्ति हुई है शिल्प की अभिवृद्धि नहीं।

निर्मला में प्रेमचन्द स्वयं ही लम्बे चौड़े और लच्छेदार भाषणों की योजना से दूर नहीं रहता अपितु पात्रों को भी संयत होकर बोलने देता है। पात्र मुखोच्चारित सम्भाषण ससीम हैं उनका विचार विवेचन पर्याप्त लघु है। जैसे—'स्त्री स्वभाव से लज्जाशीला होती हैं। कुलटाओं की बात तो दूसरी है, पर साधारणत स्त्री पुरुष से कहीं ज्यादा सयमशीला होती है। जोड़ का पति पाकर वह चाहे पर पुरुष से हँसी दिल्लगी कर ले, पर उसका मन शुद्ध रहता है। बेजोड़ विवाह हो जाने से वह चाहे किसी की ओर आँखें उठा कर न देखे पर उसका चित दुखी रहता है।'[६] तोताराम के ये मनोद्गार लघुकाय हैं, इसी प्रकार के विषयों पर प्रेमचन्द के दूसरे उपन्यासों के पात्र घण्टों बोलते नहीं अघाते। रगभूमि के सूरदास और गोदान के मि० मेहता काफी लम्बे लम्बे भाषण देते हैं।

निर्मला वर्णनात्मक शिल्प की रचना होने पर भी शुद्ध पारिवारिक उपन्यास है। इसका पारिवारिक चित्रण समाजोन्मुखी है और इसमें प्रेमचन्द ने पात्रों के अन्तस में बसने की अपेक्षा उनके बाह्य द्वन्द्व और बहिर्गत कार्य कलाप का चित्रण ही विशदता के साथ किया है। उपन्यास की तीन प्रमुख घटनाएं—मसाराम की मृत्यु, जियाराम का भाग जाना और सियाराम का अपहरण—घर के घेरे से बाहर घटित होती हैं। सुधा के पुत्र की आकस्मिक मृत्यु एकमात्र ऐसी घटना है जो घर में घटित होती है किन्तु यह घटना स्वयं कथा के मुख्य कैन्वस (Canvass) के घेरे से बाहर है। अतएव शिल्प की दृष्टि से आलोच्य है। इसका वर्णन केवल मात्र कथाकार की सुधार मूलक विचार धारा का प्रतीक है शिल्प सौष्ठव का परिचायक नहीं। यहाँ कथाकार ने यह चित्रित करने का प्रयत्न किया है कि दाम्पत्य जीवन की सफलता या असफलता केवलमात्र भौतिक साधनों और सुविधाओं पर ही निर्भर नहीं है अपितु मानसिक स्तर और बौद्धिक सौजन्य पर आधारित है।

कतिपय समालोचक कथाकार से नतप्रतिशत आधुनिकता की माग करते हैं। वे आधुनिक औपन्यासिक शिल्प का नितान्त नवीन रूप देखना चाहते हैं और प्रेमचन्द से भी उसी की अपेक्षा रखते हैं। श्री मन्मथनाथ गुप्त भी ऐसे समालोचकों में से एक हैं। उन्होंने निर्मला में कुछ शिल्पगत दोष ढूँढ निकाले हैं। निर्मला की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं— टकनीक की दृष्टि से इस पुस्तक में खोजने पर कुछ त्रुटियां मिल सकेंगी। द्वितीय परिच्छेद में ये शब्द आते हैं—पर यह कौन जानता था कि वह सारी लीला विधि के हाथों रची जा रही है। जीवन रंगशाला का वह सूत्रधार किसी अगम्य स्थान पर बैठा हुआ अपनी जटिल क्रूर क्रीड़ा दिखा रहा है। यह कौन जानता था कि नकल असल होने जा रहा है अभिनय सत्य का रूप ग्रहण करने वाला है। यह उस समय का वर्णन है जब उदयभानु रात गगा में डूबने का स्वांग रचने जा रहे थे। वर्णन कुछ प्राचीनता दोष पुष्ट

---

६ निर्मला—पृष्ठ १००

है। इसी के बाद प्रकृति वणन है— निशा ने इन्दु को पराम्त करके अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। सम्वत्तियां मुह छिपाए पडी थी, और कुवत्तियां विजय गभ से इठलाती फिरती थी। वन म वन्य जन्तु शिकार की खोज म फिर रहे थे, और नगरो म नर पिशाच गलियो म मडराते फिरते थे।' एक आधुनिक उपन्यास म इस प्रकार के वणन से सौन्दय की कोई वद्धि नही होती।"[७]

श्री मन्मथनाथ गुप्त ने पहले प्रसग का प्राचीनता दोष पुष्ट बताया है। यह तो ठीक है किन्तु शिल्प के अन्तगत इसकी विशिष्ट आलोचना नही की। इतना लिख देना कि प्रसग प्राचीनता दोष पुष्ट है पर्याप्त नहो। क्योकि प्राचीनता अपने आप म कोई दोष नही है। बहुत सी प्राचीन बातें आज भी सगत और वज्ञानिक भी हो सकती है। दूसरे प्रसग को लेकर उसम साकेतिक वणन की बात उठाई है यह भी आलोच्य नही कहा जा सकता क्योकि प्रेमचन्द का शिल्प वणन प्रधान शिल्प है। आचाय शुक्ल की भाति प्रेमचन्द की यह प्रवत्ति रही है कि एक बात लिखकर उस पर छोटी या बडी टीका टिप्पणी अवश्य दे देते है। 'निमला' म तो उन्होने इस प्रवत्ति की ओर विशेष सयम का परिचय भी दिया है अन्य रचनाओ म तो वे खुलकर बोल हैं अत यह कोई दोष नही शिल्पगत प्रवत्ति है। वणनात्मक शिल्प के अन्तगत प्राकृतिक भौतिक और अन्य बाह्य घटनाओ प्रवत्तियो और वातावरण का विस्तत वणन हुआ करता है यह स्वाभाविक ही कहा जाएगा। परिस्थिति अनुकूल प्राकृतिक वणन उपन्यास के रूप की सौंदय वद्धि ही करते हैं वे वणनात्मक शिल्प विधि के प्राण ह, उनके कारण ही उपन्यास म मानव और जगत के चित्र का चित्रण और व्याख्या प्रस्तुत होती है अत श्री मन्मथनाथ जी के मत स मै सहमत नही ह। प्राचीनता भी कोई दोष नही है अपितु ऐतिहासिक महत्त्व की विधा ह जिसका शिलान्यास हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र म प्रेमचन्द द्वारा प्रस्तुत हुआ है।

रगभूमि—१९२४

'रगभूमि' प्रेमचन्द का सबसे वहद उपन्यास ह। इस विशालकाय रचना म व्यक्ति, परिवार समाज धम राजनीति दशन और भारतीय इतिहास (१९०१–१९२३) को प्रतिष्ठित किया गया है। वस्तु विन्यास पात्र और विचारो की व्यापकता के कारण इसके रूपाकार (form) को सभालने की कठिनाइ का प्रश्न उठता है। इसके विषय म यह नही कहा जा सकता कि यह सुगठित रूप का उज्ज्वल प्रमाण है क्योकि एक साथ तीन कथानको को व्यवस्थित ढग से सभालने और निभाने का प्रश्न जटिल हुआ करता है। इसम व्यक्ति और स्थान इतने दूर तक फले हुए हैं कि उनम स्वाभाविकता रहना दुलभ हो गया है।

रगभूमि का शिल्प विधान वणनात्मक है। इसकी रचना व्याख्यात्मक शली के अनुसार की गई है। इसका रूप बहिर्मुखी है जिसम तीन मुख्य कथाए तथा अनेक उप कथाए समानान्तर चलती हैं जो जीवन की व्यापकता को इसके अन्तगत समेटने का प्रयास

७ कथाकार प्रेमचन्द— पष्ठ ४३९

करती है। संघर्ष का मूल बीज व्यक्ति-परक है किन्तु उसे बहिर्मुखी स्पंदन के लिए समाजोन्मुखी रखा गया है। सूरदास की लड़ाई दस बीघे भूमि की रक्षा हित की गई स्वार्थमूलक व्यक्तिपरक लड़ाई नहीं रह जाती, अपितु भारतीय ग्रामीण जीवन तथा निम्न मध्य वर्ग के अधिकारों की लड़ाई बन जाती है। इसे इतिवृत्तात्मक रूप देकर प्रस्तुत किया गया है जिसके कारण इसका विवरणात्मक रूप खिल उठा है। प्रस्तुत उपन्यास 'रंगभूमि' में कथाकार के व्यापक दृष्टिकोण और कथा की सुदृढ़ पकड़ दोनों ही दृष्टव्य हैं। वे कथा के एक सूत्र को पकड़ लेते हैं फिर उससे सम्बन्धित अनेक आख्यानों तथा घटनाओं को निर्मित कर दृश्यों का विस्तार कर देते हैं। इस प्रकार कहानी में से कहानी (Episode) जन्म लेता है, नये-नये चरित्रों के निर्माण का अवसर मिलता रहता है। 'रंगभूमि' में नई नई कथाओं तथा पात्रों की उद्भावना केवल कथा कहने के उद्देश्य से नहीं हुई अपितु मानव जीवन के अखण्ड चित्र को चित्रित करने के महान उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर हुई है। इस दृष्टि से यह रचना भी उद्देश्यमूलक है। कथाकार ने मनोनीत आदर्शों तथा सिद्धान्तों के प्रतिपालन हित स्थान स्थान पर कथा को तोड़ा है, नये चरित्रों को जन्म दिया है और कतिपय चरित्रों के स्वाभाविक विकास की गति रोक दी है या उन्हें मृत्यु लोक में पहुंचा दिया है।

सामयिक समाज ही 'रंगभूमि' का विषय है। जीवन के जितने विविध रूपों को इसमें अभिव्यक्त किया जा सकता था कथाकार ने अपनी ओर से उन सभी को एक साथ पकड़ लेने की पूरी चेष्टा की है। इसमें हम विश्व के तीन बड़े धर्म (हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई) तीन वर्ग (पूंजीपति, मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग) तथा मानवीय जीवन की तीन अवस्थाओं में चित्रित पात्र (वृद्ध—ईश्वर सेवक, युवक—विनय, शिशु—घीसू) उपलब्ध होते हैं। मूल विषय भारत में औद्योगीकरण हित उठी अनेक समस्याओं का विशद चित्रण है। औद्योगीकरण के विषय से सम्बन्धित समस्याओं का चित्रण भी उद्देश्य मूलक होने के कारण एकांगी रहा है। कथाकार ने अपने आदर्शवाद को प्रमुख रखकर ग्रामीण समाज की कठिनाइयों, इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा नैतिक विचारों की चर्चा ही अधिक बल देकर की है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप समाज और देश के कल्याण की बात जान सेवक से कहलवाकर भी उसे अपने आदर्शवादी विचारों तथा उद्देश्य के फलस्वरूप पल्लवित नहीं होने दिया।

विशाल विषय के चुनाव के कारण वस्तु विन्यास की व्यापकता आवश्यक हो गई। इसके लिए प्रेमचन्द ने कथा के तीन केन्द्र रखे हैं। पहली कथा का केन्द्र काशी का निकटवर्ती ग्राम पाण्डेपुर तथा इसका कर्णधार अंधा चमार सूरदास है। दूसरी कथा काशी नगरी में पल्लवित होती है इसके अग्रदूत विनय, सोफिया, राजा महेन्द्रकुमार, इन्दु तथा जानसेवक हैं। तीसरी कथा मुख्य घटना स्थल से दूर जाती है इससे सम्बन्धित सभी घटनाएं एक दूरवर्ती रियासत उदयपुर के जसवन्त नगर और उसके निकटवर्ती इलाके में घटित होती हैं। इसके सूत्रधार दूसरी कथा के नायक विनयकुमार ही हैं किन्तु इसकी परिस्थितियां तथा स्तर नए हैं। इनकी योजना प्रेमचन्द की उद्देश्य प्रियता का प्रमाण है।

इन तीनों कथाओं के अतिरिक्त भैरो सुभागी, ताहिरअली, माहिरअली आदि

की उपकथाएं भी ली गई हैं। कथाकार ने भरा-सुभागी की उपकथा को सूरदास की जीवनी से जोड़ दिया है और ताहिरअली माहिरअली परिवार की कथा को ही स्वतन्त्र रूप से विकसित किया है। यह कथा विशेष रूप से प्रेमचन्द के ध्येयवादी दृष्टिकोण की पुष्टि करती है। इसके द्वारा उन्होंने मध्यवर्गीय परिवारों की आर्थिक उलझनों का चित्र खींचा है तथा 'रंगभूमि' का सामयिक समाज का चित्र बनाया है। ये उपकथाएं तथा इसमें गुम्फित अनेक घटनाएं ही 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द के व्यापक दृष्टिकोण की परिचायक हैं। जिसकी स्वीकृति कतिपय विद्वानों द्वारा की गई है।[1]

(क) 'रंगभूमि भारतीय समाज की सम्पूर्णता को गाथाबद्ध करने का सबसे बड़ा प्रयास है। हिन्दी कथा साहित्य में इसकी जोड़ का दूसरा प्रयास अनुपलब्ध है।"

(ख) 'जितनी बड़ी रंगभूमि इस उपन्यास की है उतनी अधिक किसी अन्य उपन्यास की नहीं है।'

(ग) 'रंगभूमि जीवन की वास्तविक रंगभूमि है। इसमें लेखक ने समस्त जीवन का सम्पूर्ण चित्र बड़ी व्यापकता से खींचा है।'

(घ) ' 'रंगभूमि गांधीवाद के उन्माद की विभोर अवस्था में लिखित उपन्यास है।

एक उपन्यास में अनेक स्वतन्त्र कथाओं को स्थान देना प्रेमचन्द पर पूर्ववर्ती उपन्यास के प्रभाव स्वरूप घटित हुआ। प्रेमचन्द से पूर्व देवकीनन्दन खत्री आदि उपन्यासकार कथा के बीच अनेक कथाओं का मजन करते रहे हैं। उनका उद्देश्य केवल मात्र कौतूहलवर्धक घटनाओं और दृश्यों की रचना करना था। कार्य-कारण शृंखला की उन्हें कोई चिन्ता न रहती थी। प्रेमचन्द ने पाश्चात्य शिल्प का अध्ययन किया था, अतः उन्होंने कथाओं में कार्य-कारण शृंखला बनाए रखने की पूरी चेष्टा की। फिर भी यदि अस्वाभाविकता तथा असंबधिता दृष्टिगोचर होती है तो वह वर्णनात्मक शिल्प विधि के कारण है। वर्णनात्मक शिल्पी कथानक यदि तिहरी कथावस्तु को लेकर चलते हैं तो उनमें शृंखला बनाए रखना सम्भव नहीं रहता।

टॉलस्टाय की प्रसिद्ध रचना 'वार एण्ड पीस' में भी ऐसा ही हुआ है। इसके विषय में श्री लुबोक महोदय लिखते हैं—' 'वार एण्ड पीस' का साधारण स्वरूप दृष्टि को सन्तुष्ट करने में असफल रहता है। ऐसा मेरा विचार है कि यह अवश्य ही असफल रहता है। यह दो योजनाओं की असंगतता है एक ऐसी असंगतता जो अल्प या अधिक मात्रा में टालस्टाय के बदले हुए गतिमान ढंग से प्रतिपादित करती है। किन्तु यह अपने आकार को तभी अभिव्यक्त करती है जब समस्त रूप में देखा जाए तो इसका कोई केन्द्र नहीं मिलता। टाल्सटाय इस विषय में स्पष्ट रूप से इतने असंबधित रहते हैं कि कोई भी यह परिणाम

१ (क) श्री हरस्वरूप माथुर—प्रेमचन्द उपन्यास और शिल्प
(ख) डॉ० रामरत्न भटनागर—आलोचना उपन्यास विशेषांक
(ग) श्री गंगाप्रसाद पांडेय—हिन्दी कथा साहित्य
(घ) डॉ० इन्द्रनाथ मदान—प्रेमचन्द चिन्तन और कला

निकालना कि उन्होंने इस विषय पर गौर नहीं किया है। [2]

'रंगभूमि' में एक और बात दृष्टव्य है। वह है—कथा के केन्द्र की बात। पाण्डेपुर केवल पहली कथा का केन्द्र ही नहीं है दूसरी कथा का केन्द्र भी बन जाता है। हाँ तीसरी कथा (जसवन्त नगर की कथा) का केन्द्र नहीं बन पाया। इसीलिए यह कथा मूल कथा तथा मुख्य घटना से दूर रही है। यह केवल मात्र उद्देश्य पूर्ति के लिए रची गई है कथा शिल्प की सौन्दर्य वृद्धि के लिए नहीं। इस कथा का उद्गम स्थान रानी जाह्नवी की उस महत्त्वाकांक्षा से चलता है जहाँ वह विनय को कर्मनिष्ठ, समाजसेवी, आत्मत्यागी, वीर प्रसू के रूप में देखने का सुख स्वप्न लेती है। सोफिया के प्रति उसकी बढ़ती हुई आसक्ति को मन्द करने तथा उज्ज्वल प्रेम को प्रकट करने के निमित्त प्रेमचन्द उसे कुछ समय के लिए मुख्य रंगभूमि से हटाकर जसवन्त नगर भेज देते हैं। दूसरे प्रेमचन्द आदर्शों की पूर्ति ही नहीं करते उद्देश्य को भी दृष्टिगत रखते हैं। एकमात्र पूँजीवादी शोषण ही नहीं सामन्ती शोषण के चित्र भी अंकित करना चाहते हैं। इसी के लिए जसवन्त नगर और वीरपालसिंह से सबंधित घटनाएं दी गई हैं।

जसवन्त नगर वाली कथा मुख्य कथाक्रम से दूर हट गई है, इसीलिए इसमें एक अद्भुत उथल पुथल (Confusion) दृष्टिगोचर होता है। सोफिया को वश में करने के लिए विनय द्वारा किए गए जनतन्त्रात्मक प्रयोग भूतनाथ और 'चन्द्रकान्ता' का स्मरण कराते हैं। इस कथा के अन्तर्गत हमें सबसे अधिक अप्रासंगिक प्रसंग मिलते हैं। वीरपाल सिंह की सारी कथा अप्रासंगिक है। जब वह विनय को स्वतन्त्र कराने के लिए जेल में सेंध लगाकर आता है तब आदर्शवादी विनय के द्वारा डांट दिया जाता है दूसरे ही दिन जब जेल से न्यायालय की ओर विनय को ले जाते हुए एकाएक दूसरी मोटर में डालकर दीवान के सम्मुख दिखाया जाता है तब पाठक भौंचक्का सा रह जाता है। यह अद्भुत घटनावली स्पष्टतया पूर्ववर्ती उपन्यास का प्रभाव दर्शाती है। साथ ही कथाकार की उद्देश्यमूलक वृत्ति का उद्घाटन भी करती है। यहीं प्रेमचन्द ने विनय दीवान वार्ता दिखाई है जिसके द्वारा सामन्ती शोषण की खोखली बातों की जड़ें खोदी हैं। शिल्प की दृष्टि से इन घटनाओं का कोई महत्त्व नहीं है। यहाँ उद्देश्य ही प्रमुख है।

सोफिया पर हुए आक्रमण का प्रतिशोध लेने के लिए विनय का उग्र रूप धारण करना जहाँ मानवीय दुर्बलता का परिचायक है वहाँ परिस्थिति के प्रभाव का चित्रक दृश्य है। यहीं से अधिकतम आकस्मिक घटनाओं का सूत्रपात होता है। यहीं प्रेमचन्द

---

2 Why the general shape of War and Peace fails to satisfy the eye—as I suppose it admittedly to fail It is a confusion of the designs a confusion more or less marked by Tolstoy s imperturbable ease of manner but revealed by the book of his novel when it is seen as a whole It has no centre and Tolstoy is so clearly unconcerned by the back that one must conclude he never perceived it

The Craft of Fication P 39

अपने दार्शनिक विचार प्रकट करने का अवसर पाते ह—'जीवन क सुख जीवन क दुख है। विराग और आत्मग्लानि ही जीवन के रत्न ह। हमारी पवित्र कामनाए हमारी निमल सवाए हमारी शुभ कल्पनाए विपत्ति ही की भूमि म अकुरित और पल्लवित हाती है।

'रगभूमि म हम औद्योगिक क्रांति की आरम्भ कालीन परिस्थितिया तथा सामती राज्य म दुख के सास लेती जनता दोना ही दष्टिगोचर होती है किन्तु इनम से औद्योगीकरण से सबधित समस्याए अधिक प्रखर रूप म सामने आइ है। इसीलिए औद्योगिक आरम्भ कालीन परिस्थितिया का चित्रित करने के लिए दो कथाओ की योजना जुटाई गइ है। सामती शोषण की कथा एक कथानक म सनिहित कर दी गइ है। एक ही विषय (औद्योगिक विकास का विषय) से सबधित होने के कारण प्रथम दो कथानक एक-दूसरे म गुम्फित हो गए है। सूरदास पाण्डेपुर निवासिया की नाना लीलाओ म ही मग्न नही है अपितु काशी नगरी के उद्योगपति जानसेवक और प्रधान राजा महेद्रकुमार द्वारा आयोजित औद्योगिक तथा राजनैतिक दाव पचो को उलटता तथा घुमाता रहता है। इसी भाति जानसेवक, महेद्रकुमार विनय और इद्रदत्त पाण्डेपुर निवासी नायकराम, भरो बजरगी आदि पात्रो की कथाओ म पूरी रुचि रखने हे और उन्ह अपने अपने हाथ म रखकर स्वार्थ सिद्धि करना चाहते है। इन दो कथानको म केवल मात्र राजनीति और समाज का ही समावेश नहा हुआ है अपितु परिवार चित्रण भी खुलकर किया गया है। एक नही तीन तीन परिवार दोनो कथानको म लाए गए हैं। काशी म जानसेवक परिवार के अतिरिक्त कुवर भरतसिंह तथा राजा महेद्रकुमार के पारिवारिक जीवन की भाकी मिली है तो पाण्डेपुर म ताहिर अली परिवार के साथ-साथ भरो सुभागी परिवार तथा बजरगी का छोटा-सा कुटुम्ब भी दष्टिगोचर होता है। इन सब परिवारो म ताहिरअली परिवार की उपकथा ही सबसे लम्बी बन पडी है जो कथा शिल्प की दष्टि से आलोच्य है। आचाय नददुलारे वाजपयी के मतानुसार यह कथा उपन्यास का बोभीला बना देती है—"ताहिरअली और उनके समस्त परिवार की कथा जो उपन्यास म भिन भिन अवसरो पर आती रहती है कथानक की दष्टि से उपन्यास को बोभीला बना देती है। यदि ताहिर अली का आख्यान 'रगभूमि म न होता तो कोइ हानि न थी। बल्कि कथा अधिक व्यवस्थित और गतिशील हो सकती थी।'

इस उपकथा को कथाकार ने सुचारु ढग स चलाया है। हमारे मतानुसार यह कथा अपना स्वतत्र अस्तित्व रखती है। इसका वणन के लिए कथाकार ने पाच अध्याय मुख्य कथानक म जोड दिए।' यदि इनसे अलग कर दिया जाए तो एक लघु उपन्यास की रचना को जा सकती थी। हमारी दृष्टि म कथाकार ने इस कथा को जो विस्तार दिया है वह उद्देश्यमूलक है। कथाकार मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की कतिपय समस्याए

---

३ 'रगभूमि' (दूसरा भाग)—पष्ठ २०२

४ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन—पष्ठ ७७

५ रगभूमि—अध्याय सख्या—पृष्ठ ६७ से १०१ तक, ४, १०, २२ (प्रथम भाग) ३६, ४७ (दूसरा भाग)

तथा उनिर मायनाए चित्रित करना चाहता है और उस के निमित्त उसने यह कथा गढ़ ली है।

सूरदास और पाण्डेयपुर निवासियों की कथा मुख्य कथानक का सृजन करती है। इसमें भारतीय ग्रामीण जीवन की दीनता पारस्परिक कलह के कारण जनता का मानसिक हीनता तथा ईर्ष्या द्वेष जनित लोगों की वाह्य स्थिति का विवरणात्मक उल्लेख प्राप्त होता है। अभी ये लोग अपनी उलझनों से ही मुक्ति नहीं पा रहे कि नगरवासी पूँजीपति जानसेवक की असाम महत्वाकांक्षाओं के शिकार हो जाते हैं। यहाँ से दूसरे कथानक का श्रीगणेश होता है और दोनों कथानक साथ-साथ चलने लगते हैं। घटनाओं के मध्य छा जाते हैं और उनमें से कभी-कभी आकस्मिक घटनाएँ आल बन बरस उठती हैं। इन आकस्मिक घटनाओं का मूल कारण हम योजना है। प्रेमचन्द के शिल्प विधान में ये आकस्मिक घटनाएँ काटों के समान चुभ रही हैं। इनके समावेश के चार कारण दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें प्रथम का संबंध कथावस्तु से है शेष तीन का चरित्र चित्रण तथा उद्देश्य से है।

वस्तु विवेचन में नई घटना का समावेश शिल्प की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। हम परखना यह है कि क्या नवीन घटना स्वाभाविक प्रासंगिक और कथा संगठन की दृष्टि से उपादेय है अथवा केवल मात्र कौतूहल वृद्धि करनेवाली है। दूसरी मुख्यकथा का आरम्भ करने से पूर्व प्रेमचन्द ने जानसेवक की दुहिता सोफिया को अपने पारिवारिक एवं धार्मिक संकुल जीवन के प्रति असन्तुष्ट दिखाया है। वह इस जीवन से परे भाग जाना चाहती है। घर से चल पड़ती है कि शैशव कालीन स्मृति जागृत हो उठती है और उसे इन्दु की याद आ जाती है। इसी स्मृति पर प्रेमचन्द अपनी टिप्पणी दे देते हैं। मजबूरी में हम उन लोगों को याद आती है जिनका सूरत भी विस्मृत हो चुकी होती है। विदेश में हम अपने मुहल्ले का नाई या कहार भी मिल जाए तो हम उसके गले मिल जाते हैं चाहे देश में उससे कभी सीधे मुँह बात भी न की हो।[६]

एक तो कथा के बीच में आ आकर बार बार टीका टिप्पणी करते चलना वर्णनात्मक शिल्प का परिचायक है दूसरे उपन्यास में ऐसी योजना पूरी तरह अवाञ्छनीय है। रात समय में कभी भूलकर वह नहीं खाना होगा नामक कथा शृंखला का ताडन लगता है। तीसरे यहीं पर एक आकस्मिक घटना दिखा दी गई है। सोफिया ने अपने सामने एक जलते हुए भवन को देखा और वह आग में कूद पड़ी जल गई और अपने को इन्दु विनय के सम्मुख देखती है। यह घटना पूर्णतः अस्वाभाविक तथा अप्रासंगिक है। केवल दूसरी कथा को प्रस्फुटित करने के लिए नियोजित की गई है। यहीं पर एक अन्य प्रश्न उठ खड़ा है। अभी सोफिया बीमार ही पड़ी है। परिवार के सब लोग उसकी सेवा में संलग्न हैं कि परिवार अधीश्वर कुँवर भरतसिंह उस घायवान् रैन के लिए आते हैं। पाठक आशा करता है कि कुँवर साहब द्रुत गति से सोफिया के पास पहुँच जाएँगे और कुशल समाचार पूछेंगे किन्तु हुआ यह है कि कथाकार ने कुँवर साहब के रंग रूप का वर्णन शुरू कर दिया

---

६ रंगभूमि—भाग १—पृष्ठ ५१

है। शिल्प की दृष्टि से यह एक भारी दोष है। जब पात्र के बाह्य रूप का वर्णन करने के लिए कथाकार विश्लेषणात्मक प्रणाली अपनाता है और कथा की गति को कुछ समय के लिए रोक देता है तब कथा में अस्वाभाविकता आ जाती है। घटना का चित्रण अबाध गति से होना चाहिए।

वर्णनात्मक शिल्प विधि के उपन्यास में कथा में वर्णित संघर्ष दो पात्रों का पारस्परिक संघर्ष न रहकर जातीय अथवा राष्ट्रीय संघर्ष बन जाया करता है। छोटी से छोटी घटना भी उग्र रूप धारण कर लिया करती है। सूरदास भैरो द्वारा सताई सुभागी को शरण देता है तो सूर तथा भैरो में मनोमालिन्य हो जाता है किन्तु यह द्वेष दो पात्रों तक सीमित नहीं रहता। राजा महेन्द्रकुमार तथा जनसेवक तक को अपनी सीमा में ले लेता है। भैरो राजा साहब से फरियाद करने जाता है तो कथाकार कुछ देर के लिए कथा प्रवाह को रोककर अपनी टिप्पणी देने लगता है— 'किसी बड़े आदमी को रात देखकर हम उससे स्नेह हो जाता है। उस प्रभुत्व से मंडित देखकर हम थोड़ा दर के लिए भूल जाते हैं कि वह भी मनुष्य है। हम उसे साधारण मानवीय दुर्बलताओं से रहित समझते हैं। वह हमारे लिए एक कौतूहल का विषय होता है। हम समझते हैं वह न जाने क्या खाता होगा, न जाने क्या पढ़ता होगा, न जाने क्या सोचता होगा उसके दिल में सदैव ऊँचे ऊँचे विचार आते होंगे छोटी-छोटी बातों की ओर तो उसका ध्यान ही न जाता होगा—कुतूहल का परिष्कृत रूप ही आदर है। भैरो को राजा साहब के सम्मुख जाते हुए भय लगता था, लेकिन अब उसे ज्ञात हुआ कि यह भी हमीं जैसे मनुष्य हैं। मानो उसे आज एक नई बात मालूम हुई।'[७]

फिर कथा आगे बढ़ाई गई है। यह इस शिल्प विधि की विशेषता का उद्बोधक उदाहरण है। जानसेवक महेन्द्रकुमार और मि० क्लार्क के सामूहिक आक्रमण द्वारा सूरदास को हराने की कुचेष्टा भी एक दोष काल लेती है। एक ओर ये राजकीय एवं पूंजीवादी शक्ति है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय एवं जनवादी आन्दोलन जो विनय के नेतृत्व में सूरदास के झोपड़े की रक्षा ही नहीं कर रहा, दीन हीन निर्बल और निराश जनता के अधिकारों की रक्षा भी करता है।

शिल्प की दृष्टि से विनय की मृत्यु एक दोषपूर्ण घटना है। विनय की आत्महत्या नितान्त आकस्मिक एवं क्षणिक भावुकता का परिणाम है। इसके साथ ही साथ मुख्य कथा का अन्त हो जाना उचित था किन्तु सूरदास के सच्चरित्र पर टिप्पणी देने के लिए तथा कुछ अन्य कुछ उद्देश्यों की पूर्ति हित कथा आगे बढ़ा दी गई है। इसमें से प्रमुख उद्देश्य है पात्रों का सुधार। हृदय परिवर्तन में प्रेमचन्द का पूर्ण विश्वास है। मृत्यु शय्या पर पड़े सूरदास से क्षमा मांगने के लिए जानसेवक और महेन्द्रकुमार को भेजा जाता है। ताहिरअली माहिरअली उपाख्यान को भी अन्तिम सोपान पर बैठाया गया है। महेन्द्रकुमार का अन्तिम रूप मुख्य कथा की अन्तिम घटना को प्रस्तुत करना है। सूरदास की प्रतिमा पर किया गया उसका पदाघात और स्वयं मृत्यु प्राप्त करना एक गढ़ी हुई घटना

---

७ रंगभूमि (दूसरा भाग)—पृष्ठ १०७

प्रतीत होती है जो कुर की बुराई का फल दिखाने के हेतु लिखा गया है।

'रंगभूमि' में जानसेवक के पिता ईश्वर सेवक लगभग वही कार्य करते हैं जो 'प्रभु मसीह मुझे अपने दामन में छिपा लो' दुहराते हैं जो धार्मिक महत्त्व रखते हुए भी शिल्पगत महत्त्व नहीं रखते। उपन्यास के अन्तिम आठ पृष्ठों में पात्र पात्रों की मृत्यु दिखाई गई है जो कथा का करुण बनाकर भी उतना प्रभावशाली प्रभाव नहीं। ऐसी जितनी शिल्प गत न अन्तिम दृश्य में नायक सूरदास की मृत्यु।

व्यक्ति के व्यक्तित्व पर विचार किए बिना कोई भी आलोचना पूर्ण नहीं कही जा सकती। व्यक्ति ही वह केन्द्र है जिसके द्वारा प्रेरणा पाकर राजनीति समाज और धर्म प्रस्फुटित होते हैं। 'रंगभूमि' में अनेक प्रकार के व्यक्ति विद्यमान हैं इनमें से कुछ वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं तो कुछ वैयक्तिक प्रवृत्तियों से ओतप्रोत हैं।

सूरदास रंगभूमि का सबसे अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली व्यक्ति है। इसका चुनाव प्रेमचन्द ने एक ही वर्ग विशेष से किया है-- भारतवर्ष में अन्धे आदमियों के लिए न नाम की जरूरत होती है, न काम की। सूरदास उनका बना बनाया नाम है और भीख मांगना बना बनाया काम। उनके गुण और स्वभाव भी जगत प्रसिद्ध है—गाने-बजाने में विशेष रुचि हृदय में विशेष अनुराग अध्यात्म और भक्ति में विशेष प्रेम उनके स्वाभाविक लक्षण है। बाह्य दृष्टि बन्द और अन्तर्दृष्टि खुली हुई।[1]

किन्तु अपने शिल्प द्वारा इसमें कुछ विशेषताएं रखने के कारण इस वैयक्तिक पात्र बना दिया है। सूरदास के दादा का किसी को पता मालूम नहीं। अन्धा होने के कारण उसका नाम सूरदास रखा गया है और दीन होने के कारण उसकी वृत्ति भिक्षा मांगना है। इसके साथ साथ हृदयगत विशालता तथा सहृदयता उसकी वैयक्तिक विशेषताएं हैं इसके आगे सभी बातें व्यक्ति विशेष की बातें हैं जिनपर विचार करना है।

पहली बात जो सूरदास के बारे में कही जा सकती है वह है उसकी चारित्रिक स्थिरता (Static character)। जीवन के विषय में विषमतम परिस्थिति में भी वह हिमालय की तरह दृढ़ खड़ा रहता है। राजा जनक की भांति वह विदेही है। संसार में रहता हुआ भी संसार की झूठी मान्यताओं का दास बनकर नहीं रहता उनपर विजय पाकर जीवन यापन करता है। सूरदास का दृष्टिकोण पूर्णत आस्थावादी दृष्टिकोण है। वह जीवन को एक खेल समझता है और संसार को क्रीडा गृह। न जीत पर सन्मत होता है न हार पर निस्तेज।

दूसरी बात जो उसके चरित्र के बारे में अनेक आलोचकों ने की है—वह है सूरदास का आदर्शवाद। कतिपय आलोचकों के मतानुसार वह गांधीवाद का प्रतीक है। राष्ट्रीय जीवन का संचालक है। वैयक्तिक मानापमान और क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठ गया है। कुछ पात्र उसे देवता तक कह डालते हैं किन्तु कथाकार ने उसे इसी धारा का पुत्र मानते हुए मानवीय गुणों तथा अवगुणों का दूत माना है। हृदय परिवर्तन में उसका विश्वास है।

---

[1] रंगभूमि—पृष्ठ ६

सूरदास के चरित्र को चित्रित करने के लिए कथाकार ने तीन ढग अपनाए है। अधिकतर वह स्वय उसके चरित्र पर टीका टिप्पणी करते हुए आगे बढा है—"कोई कहता था, सिद्ध था, कोई कहता था वली था कोई देवता कहता था पर वह यथार्थ म खिलाडी था—वह खिलाडी, जिसके माथे पर कभी मल नही आया, जिसने कभी हार नही मानी।'

इसके अतिरिक्त विभिन्न पात्र उसकी चरित्र विपयक प्रशसा करते हैं। नायक राम राजा महेन्द्रकुमार सिंह से कहते है— हुजूर उस जन्म का कोई बडा महात्मा है। इसके उत्तर म राजा महेन्द्रकुमार कहते है— उस जन्म का नही इस जन्म का महात्मा है।"[६क] सूरदास वार्तालाप म राजा साहब को हरा देता है। उसके विचारो म दृढता है। ठाकुरदीन के मतानुसार—'सूरे को किसी देवता का इष्ट है।" इन्दु के शब्दो म—"वह अपनी धुन का पक्का, निर्भीक निस्पृह, सत्यनिष्ठ आदमी है किसी से दबना नही जानता।" ख भैरो के विचार म—'यह आदमी नही साधु है।'[१०]

कथाकार ने सूरदास का मानसिक पतन भी दिखा दिया है। जब सुभागी भैरो की मार से तग आकर सूरदास की शरण लेती है तब वह सोचता है— मैं कितना अभागा हू। काश यह मेरी स्त्री होती तो कितने आनन्द से जीवन व्यतीत होता। अब तो भैरो ने इस घर से निकाल दिया मैं रख लू तो इसम कौन सी बुराई है।"[११] यहा पर प्रेमचन्द का चरित्र अन्वेषण द्रष्टव्य है। उन्होने सूरदास को एक दुर्गुण म लिप्त दिखाकर सामूहिक मानवीय दुर्बलता के प्रतीक के रूप म चित्रित करने के निमित्त साथ ही साथ टिप्पणी दे दी है—"मनुष्य मात्र को प्रेम की लालसा रहती है। भोगलिप्सी प्राणियो मे यह वासना का प्रकट रूप है सरल हृदय दीन प्राणियो म शान्ति योग का।[१२] केवल कथाकार के विचार म ही वह सरल हृदय नही है। उपन्यास का प्रसिद्ध पात्र इन्द्रदत्त प्रभुसेवक से अग्रेज़ी म वार्ता करता हुआ कहता है— कितना भोला आदमी है। सेवा और त्याग की सदेह मूर्ति होने पर भी गरूर छू तक नही गया अपने सत्कार्य का कुछ मूल्य ही नही समझता। परोपकार इसके लिए कोई इच्छित कर्म नही रहा, उसके चरित्र म मिल गया है।'

हिम्मत नही हारी जिसने कभी कदम पीछे नही हटाए जीता, तो प्रसन्नचित्त रहा हारा तो प्रसन्नचित्त रहा हारा तो जीतने वाले से कीना नही रखा जीता तो हारने वाले पर तालिया नही बजाइ जिसने खेल म सदव नीति का पालन किया कभी धाधली नही की, कभी द्वन्द्वी पर छिपकर चोट नही की। भिखारी था अपग था अधा था दीन था कभी भरपेट दाना नही नसीब हुआ कभी तन पर वस्त्र पहनने को नही मिला पर हृदय धैर्य और क्षमा सत्य और साहस का अगाध भण्डार था। देह पर मास

---

६ क रगभूमि (भाग १)—पृष्ठ ११८

६ ख वही—पृष्ठ १२६

१० वही—पृष्ठ ११७

११ वही—(भाग २) पृष्ठ ६८

१२ वही—पृष्ठ १५

न था पर हृदय म विनय शील और सहानुभूति भरी हुई थी।

हा वह साधु न था महात्मा न था, दवता न था, फरिश्ता न था एक क्षुद्र शक्ति हीन प्राणी था चिन्ताओ और बाधाओ से घिरा हुआ, जिसम अवगुण भी थे और गुण भी गुण कम थ अवगुण बहुत। क्रोध लाभ मोह अन्धकार य सभी दुगुण उसके चरित्र म भ हुए थे गुण केवल एक था। किन्तु य सभी दुगुण उस गुण के सम्पर्क से नमक की खान म जाकर नमक हो जाने वाली वस्तुओ की भाति, देवगुणो का रूप धारण कर लते थे—क्रोध सत्क्रोध हो जाता था लाभ सन्तानुराग मोह सदुत्साह के रूप म प्रकट होता था, और *अहकार आत्माभिमान क वेष म। और वह गुण क्या था ? न्याय प्रेम, सत्य, भक्ति दद* या उसका जो नाम चाह रख लीजिए। अन्याय दखकर उससे न रहा जाता था, अनीति उसके लिए असह्य था।[13]

प्रभाव की दृष्टि स सवश्रेष्ठ न होन पर भी शिल्प की दृष्टि स एकछत्र चरित्र का उत्कृष्ट उदाहरण हमे विनय माफिया म दृष्टिगोचर होता है। ये दो चरित्र तीन मुख्य कथाओ म विद्यमान रहत है। साफिया म हम स्वतत्र व्यक्तित्व के दशन मिलते हैं ईसाइ धम म इस कोइ आस्था नहा—इसलिए कि इस उसका मन और मस्तिष्क श्रेष्ठ नही समझत। इसकी जिज्ञासु और आत्माभिमानी प्रवत्ति कथा म बाह्य सघष का कारण *सिद्ध होती है। मात द्रोह करके वह एक आकस्मिक घटना द्वारा इन्दु के घर पहुचती है* वहीं इसका विनय से साक्षात्कार होता है और साथ ही साथ चारित्रिक विकास भी—

यहा प्रसग वश एक दो पक्ति मिसज जानसेवक के चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए लिखत ह। कथाकार प्रमचन्द की यह चरित्रगत विशेषता है कि परिस्थिति का सीधा प्रभाव चरित्र पर और चरित्र का स्थायी प्रभाव परिस्थिति पर डालकर आग बढ़ते है। जब मिसज जानसेवक अग्नि म झुलसी अपनी विद्रोही दुहिता सोफिया को मिलने आती है तो परिस्थितिवश उनका मानस द्रवित हो उठता है वात्सल्य रस बहने लगता है साफिया द्वारा कुवर भरतसिंह के गुणो का बखान सुनकर वे पुन ईर्ष्या अग्नि म जलकर कह उठती है— तुझे दूसरा म सब गुण ही गुण नजर आते है। अवगुण सब घर वाला ही क हिस्से म पड ह। यहा तक कि दूसरे धम भी अपने धम से अच्छे है।[14] मिसज सेवक का यह चारित्रिक परिवतन जो एक क्षण म ही दो रूप धारण कर लेता है शिल्प की दृष्टि स महत्त्वपूण है *क्योकि यह कथा म गति लाता है और परिस्थितिया के घात प्रतिघात दिखाने म सहायक ह।*

कथाकार न जीवन की अनेक परिस्थितिया का प्रभाव साफिया क जीवन चरित्र पर भी डाल दिया है और उसका वणन वणनात्मक प्रणाली द्वारा किया है। एक दो उदाहरण हम अपने मत की पुष्टि हेतु उपादेय समझते हैं। जब इन्दु साफिया स मिले बिना राजा महेन्द्रकुमारसिंह क साथ चली गई तब साफिया की मानसिक अवस्था का चित्र कथाकार इन शब्दो म चित्रित करता है— साफिया इस समय उस अवस्था म थी

---

१३ रगभूमि दूसरा भाग—पृष्ठ १५२

१४ रगभूमि प्रथम भाग—पृष्ठ ६८।

जब एक साधारण हसी की बात, एक साधारण आखा का इशारा किसी का उसे देखकर मुस्करा देना, किसी महरी का उसकी आज्ञा का पालन करने म एक क्षण विलम्ब करना ऐसा हज़ारा बातें, जो नित्य घरा म होती रहती है और जिनकी काई परवा भी नही करता, उसका दिल दुखाने के लिए काफी हो सकती थी। चोट खाए हुए अग को मामूली सी ठेस भी असह्य हो जाती है। [१५]

कथाकार ने सोफिया को परिस्थिति विशेष म लाकर खडा कर दिया है और यही से उसे विनय की ओर झुका दिया है मानो इन्दु को हटान का एक मात्र उद्देश्य ही विनय साफिया रोमास की मुक्त उदभावना हो। किन्तु—नही, अभी नहीं। सोफिया विनय अभि सार से पूव ही विनय की सुदूर यात्रा सोफिया के कामल प्रेमपाश को छिन्न भिन्न कर देने के लिए तथा विरहनी नायिका के भावोदगारा को अभिव्यक्ति हित चित्रित कर दी गई है। विरही साफी की जीवनी मीरा की भाति धमचर्या के एकागी क्षत्र म तल्लीन नही होती समाजान्मुखी बहिगत सघष म रत हो जाती है। उसकी लडाई त्रयमुखी चित्रित की गई है। विनय के प्रेम से वचित वह अपन मन के घात प्रतिघात सहती है—धार्मिक विचार वैषम्य तथा अध भक्ति स विहीन होने क कारण वह चिरायु मिसज सेवक के कोप का भाजन बनी रहती है। उसकी तीसरी और अन्तिम लडाई उसके चिरप्रेमी मि० क्लाक क साथ होती है।

साफिया के चरित्र का चरम विकास उसके निराश प्रम की दारुण अवस्था म है अथवा डाकू वीरपालसिह की शरण म रहकर व्यतीत किए कुछ क्षणा म—शिल्प की दष्टि स एक महत्त्वपूण प्रश्न है। उन्मत्त प्रेमघातनी साफिया रात का सो नही पाती। एक बार आदश की आड लेकर भावुकता म कहे गए शब्दो पर पश्चाताप करके रात के अधेरे म प्रेमी विनय के पत्र का खोजन लगती है किन्तु केवल मात्र निराशा ही पल्ले पडती है—उस निराश अवस्था पर चारित्रिक टिप्पणी दते हुए प्रमचन्द लिखते है—'उसकी दशा उस मनुष्य की सी थी जो किसी मेले म अपन खाए हुए बन्धु को ढूढता हा वह चारो ओर आखें फाड फाडकर देखता है उसका नाम ले-लेकर जोर-जोर तक पुकारता है उसे भ्रम होता है वह खडा है लपककर उसके पास जाता है, और लज्जित होकर लौट आता है। अन्त को वह निराश होकर जमीन पर बठ जाता है और राने लगता है। [१६] निराश प्रेम आक्रान्त हो जाता है। सोफिया अपनी सखी इन्दु के दुव्यवहार पर रानी जाह्नवी की कठोरता पर रुद्र रूप धारण कर लेती है। वह आत्म विश्लेषण करके अपने चरित्र पर स्वय भी प्रकाश डालती है—'मैं अभागिन हू मैंने उन्हें बदनाम किया, अपने कुल का कलकित किया, अपनी आत्मा की हत्या की, अपने आश्रयदाताओ की उदारता को कलुषित किया। मर कारण धम भी बदनाम हा गया नही तो क्या आज मुझसे यह पूछा जाता —क्या यही सत्य की मीमासा है। वास्तव म यही वह पक्ति है 'क्या यही सत्य की

१५ रगभूमि—पृष्ठ १३२।
१६ वही—पृष्ठ १३७।
१७ वही—पृष्ठ १४०।

मीमांसा है जो उसका रायायत्न भरता है मि० बनारस साथ हुए क्षणों में नियम गांठ साठ जोडती है। जसवन्तनगर पहुचनी है वहा पर आकस्मिक घटना का शिकार होकर वीरपालसिंह के सम्पर्क में उसका कायाकल्प हो जाता है। वह नारीत्व के नाम मात्र न बन जाती है। उसकी समस्त इच्छाए, समग्र विचार एव भावनाए समाजोन्मुख हो जाती है। वह विनय का ध्यान भर मन कहकर पुन सद्मार्ग पर स आती है। निम्न का दृष्टि से यहा एक बात स्पष्ट है। जहा पर सोफिया के चरित्र की साधकता नहीं रहती वहा कथाकार उसके द्वारा आत्महत्या कराकर उसका जीवन लीला समाप्त कर देता है। आत्म हत्या का परिचय वह अपनी माता को लिखे अन्तिम पत्र द्वारा देता है। जिसका एक प्रसिद्ध पंक्ति है— जब विनय न रहा तो मैं जिन्दा किसके लिए रहू।[18] यही सोफिया के आत्म बलिदान का उत्कृष्ट उदाहरण सामने आता है।

कथाकार ने प्रधान चरित्र विधान में जहा सूरदास तथा सोफिया जैसे वर्यक्तिक चरित्र अवतरणी व्यक्तियो की योजना की है वहा वर्ग विशेष के प्रतिनिधि पात्र भी सजाए हैं। विनय एक आदर्श प्रेमी पात्र है। प्रधान प्रेम की उत्कृष्टता में उसका स्वय विश्वास है— 'मैं तुमसे सत्य कहता हू, मेरे प्रेम में वासना का लेश भी नहीं है। मेरे जीवन को सार्थक बनाने के लिए यह अनुराग ही काफी है।[19] आदर्श प्रेमी की भांति उसके चरित्र का पूर्ण विकास हुआ है। और कोरी भावुकता के कारण अन्त।

जानसेवक उद्योगपति है—पूंजीवादी समाज का प्रभाव है। एस लोगो का न कोई धर्म होता है न ईमान। धन ही इनके लिए सर्वस्व है जिसके लिए ये आत्मा तक को बेच डालते हैं। इनका चरित्र कभी स्थिर (Static) नहीं होता, ये अस्थिर (Dynamic) चरित्र के साक्षात नमूने है। जिधर हवा देखी पलट गए। भरतसिंह के पास गए उसका यश-गान किया, महेन्द्रकुमार से साक्षात्कार कर उसे गांठ लिया।

महेन्द्रकुमारसिंह जन नायक होने का स्वप्न भरते दिखाए गए है। जन नायक तो क्या बनेगे गृह नायक नहीं बन सके। आजीवन इन्दु से खिंच रहे। सूरदास से वैमनस्य मोल लिया ऐश्वय के मद में पूर्ण सत्त्व उसे घृणा की दृष्टि से देखा उसकी प्रतिमा पर पदाघात किया किन्तु स्वय उसी प्रतिमा के नीचे दबकर पानी पानी हो गए। वह न तो पदलोलुपी नहीं सम्मान के भिखारी नहीं किन्तु सभी काय एक पातक महत्त्वाकांक्षी जीव के इनमें देख-परख जा सकते है। सेवा का मेवा तुरन्त ही मांग लेने वाले वाह्याडम्बरी भारतीय नेताओ के ये एकमात्र प्रतीक है।

रानी जाह्नवी एक आदर्श माता के रूप में चित्रित की गई है जिसमें मां सीता शकुन्तला और पद्मनी के दर्शन किए जा सकते है जो मृत पुत्र को देखकर प्रसन्न हो सकती है विलासोन्मुख जीवन क्रीडा कर रहे पातकी सुत को सहन नहीं कर सकती।

मानव चरित्र दुर्बलताओ और योग्यताओ का समूह है। रंगभूमि वह संसार है

---

१८ सोफिया का मिसेज सेवक के नाम पत्र रंगभूमि दूसरा भाग—पृष्ठ ४२

१९ रंगभूमि में प्रभु सेवक से की गई एक वार्ता में प्रकट भावोद्गार भाग १ पृ०१४४।

जो दुर्बल से दुर्बल और योग्य से योग्य चरित्र प्रस्तुत कर रहा है। यहाँ कृतज्ञता भी है और कृतघ्नता भी। भलाई भी स्पष्टता भी, अस्पष्टता भी, कोमलता भी, कठोरता भी। पहला रूप ताहिरअली की सफेद वर्दी में तो दूसरा माहिरअली के काले जाम में पहचाना जा सकता है। एक की भौतिक विपन्नता दूसरे की आध्यात्मिक विपन्नता चारित्रिक विषमता का जीता-जागता नमूना पेश कर रहे हैं।

मानवमात्र के स्वभाव की सार्वलौकिक व्याख्या करता हुआ कथाकार एक स्थल पर लिखता है—"कठिनाइयों में पड़कर परिस्थितियों पर क्रुद्ध होना मानव स्वभाव है।"[20] भला इनसे बढ़कर मनुष्य चरित्र का चित्रकार कौन होगा?

शिल्प की दृष्टि से विचार विवेचन के अन्तर्गत सबसे पहली वस्तु जो हम अपनी ओर आकृष्ट करती है—वह है पहले कथाकार का सुधारवादी दृष्टिकोण। प्रेमचन्द की अन्य रचनाओं की भाँति रंगभूमि एक ही ढर्रे पर नहीं चलता इसमें सर्वत्र सुधार एवं हृदय परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता केवल कतिपय अनिवार्य स्थलों पर कुछ एक पात्रों का हृदय परिवर्तन दिखाया गया है। सूरदास के परोपकारों को देखकर भैरों की सद्वृत्तियाँ जागृत कर दी गई हैं। सोफिया के त्याग और अभिनन्दनीय कार्यों की चर्चा सुनकर रानी जाह्नवी के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन कर दिया गया है किन्तु राजा महेन्द्रकुमार अन्त तक बुराई का दामन नहीं छोड़ते, मि० क्लार्क दमन की नीति नहीं त्यागते तथा नीलकण्ठ जसवन्त नगर को दुर्दशा बनाए रखते हैं।

प्रेम के विषय में कथाकार के उज्ज्वल विचार हैं जो विभिन्न पात्रों द्वारा व्यक्त किए गए हैं। प्रभुसेवक से बातचीत करते हुए सोफिया कहती है— प्रेम और वासना में उतना ही अन्तर है, जितना कंचन और काँच में। प्रेम की सीमा भक्ति से मिलती है और उनमें केवल मात्रा का भेद है। भक्ति में सम्मान का और प्रेम में सेवा भाव का आधिक्य होता है। प्रेम के लिए धर्म की विभिन्नता कोई बन्धन नहीं है।"[21] प्रेम में विभोर व्यक्ति की दशा बड़ी विचित्र होती है। चोरी डाका या हत्या वह सभी कुछ कर गुजरता है। सोफिया विनय के पत्र को चुराने के लिए अर्ध रात्रि को रानी जाह्नवी के कमरे में घुस जाती है और पकड़ लिए जाने पर उसकी जो दशा हुई कथाकार ने तत्कालीन वातावरण का शब्द चित्र अत्यन्त सजीव बना दिया है। 'वह गड़ गई, कट गई, सिर पर बिजली गिर पड़ी, नीचे की भूमि फट जाती तो भी कदाचित वह इस महान संकट के सामने उसे पुष्प वर्षा या जल विहार के समान सुखद प्रतीत होती।'[22] विनय सोफिया को विपद्ग्रस्त परिस्थिति में देखकर पिस्तौल चलाकर हत्या तक कर डालता। शान्तमय वातावरण का राग अलापने वाला व्यक्ति उपन्यास के पृष्ठों के पृष्ठ रक्त से लाल बना डालता है।

'रंगभूमि' में सबसे अधिक आकर्षक बात है कथाकार का अपने विचारों का

२० रंगभूमि भाग १—पृष्ठ २३६।
२१ वही—पृष्ठ १४५
२२ वही—पृष्ठ २३९

सूक्ति रूप म प्रकट करता। उदाहरणार्थ हम चार सूक्तियां ले रहे हैं। ये सूक्तियां कथा कार ने अपने युग स न कहकर कथा म विभिन्न स्थलो पर विभिन्न पात्रो के द्वारा कहलाई है। यह एक निश्चयात्मक उन्नति सूचक प्रयोग है जो कथाकार की सब कुछ अपने मुख स कह डालने की प्रवृत्ति के परिवतन की सूचना दे रहा है। इन्दु के साथ वार्ता करता हुई सोफिया स्वाधीनता विषयक विचार प्रकट करती हुई कहती है— हमारी स्वाधीनता लौकिक और इसलिए मिथ्या है। आपकी स्वाधीनता मानसिक और इसलिए सत्य है। असली स्वाधीनता वही है जो विचार के प्रवाह म बाधक न हो।"[23] यहा पर इस सूक्ति के द्वारा सोफिया ने दो धर्मों (ईसाई तथा हिन्दू धम) की स्वाधीनता की विवेचना कर डाली है। पहले भाग के चौथे अध्याय म ग्राम वालो के साथ वाणो स छलनी हुआ सूर दास जब भूमि बचन का सकल्प कर ताहिरअली की ओर चल देता है तभी उस माग म दयागिर मिल जाता है उस मोह माया अहकार और क्रोध को त्याग सच्चे धम माग पर चलने का उपदेश देना हुआ कहता है— धम का फल इस जीवन म नही मिलता। हम अपना कर्म करके नारायन पर भरोसा रखते हुए धम माग पर चलते रहना चाहिए।[24] इस एक पक्ति म दयागिर हिन्दू धम के प्रसिद्ध धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थ गीता का सार दे देता है। तीसरा उदाहरण प्रभु सेवक और कुवर भरतसिंह की वार्ता स लिया जाता है— व्यवसाय कुछ नही है, अगर नर हत्या नही है। आदि स अन्त तक मनुष्यो को पशु समझना और उनसे पशुवत व्यवहार करना इसका मूल सिद्धान्त है।[25] यहा पर प्रभु सेवक ने नई सभ्यता की देन व्यवसाय के अधिकार पक्ष पर कुठाराघात किया है उसके विचार म व्यवसाय बिना छल, कपट और न्याय हत्या के चल ही नही सकता।

चौथी सूक्ति अग्रजो की अधिकार लिप्सा और सदभावना की सूचक है जो क्लाक द्वारा विनय को दिए गए एक भाषण रूपेण शब्दो म स ली गई है। अग्रजो की राजनीति की मीमांसा करते हुए वह कहता है— अधिपत्य त्याग करने की वस्तु नहा है। ससार का इतिहास केवल इसी एक शब्द आधिपत्य प्रेम पर समाप्त हो जाता है।[26] इस भाति हम इस निष्कष पर पहुचते हैं कि कथाकार विभिन्न पात्रो द्वारा विभिन्न सूक्तियां कहला कर भाषण दिला कर एक महान काय किया है। रगभूमि रूप म उसन एक महा काव्य की रचना की है जिसम राजनीति, समाज, धम दशन और व्यवसाय प्रधान ग्रथ शास्त्र की मीमासा कर दी है।

इतना होने पर भी प्रेमचन्द 'रगभूमि' म अपने प्रिय आदर्शों सिद्धान्तो और मान्य ताओ का स्वय व्याख्या करने के अवसर का पूर्णत नही त्याग देते। कृतज्ञता की व्यापक क्रियाशीलता पर विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं— कृतज्ञता हमसे वह सब कुछ करा लेता है जो नियम की दृष्टि से त्याज्य है। यह वह चक्की है जो हमारे सिद्धान्तो और

२३ रगभूमि—पृष्ठ ६२
२४ वही—प्रथम भाग—पृष्ठ ८६
२५ वही—दूसरा भाग—पृष्ठ १६५
२६ वही—दूसरा भाग—पृष्ठ १८५ १८६

नयमा को पीस डालती है। आदमी जितना ही नि स्पृह होता है उपकार का बोझ उसे उतना ही असह्य होता है।" [27] कहीं-कहीं कथाकार सूक्ति रूप म जीवन के शाश्वत सत्य को प्रकट करते देखे गए हैं--- नराश्य ने निद्रा की शरण ली, पर चिन्ता की निद्रा क्षुधा रस्था का विनोद है—शान्तिविहीन और नीरस।" [28] ईर्ष्या म तम ही तम नही होता कुछ सत भी होता है। वे केवल सूक्ति देकर बस नही कर दते तद अनुकूल वातावरण का सजन भी कर डालते हैं। ईर्ष्या विषयक ये विचार प्रकट करते ही उन्होन रगभूमि' म जगधर भैरो की कथा का विकास किया है। भरो द्वारा सूरदास की जलाई गई झोपडी का जगधर के सत्प्रयत्ना द्वारा पुन न्यास कराया गया है। ईर्ष्या के अतिरिक्त क्रोध ही एक ऐसा भाव है जो मानव चरित्र का पतनान्मुख करके औपन्यासिक वातावरण म मधप नया सजीवता ला देता है। क्रोध की सशक्त कायक्षमता पर व्यग्याघात करता हुआ कथाकार एक अन्य स्थल पर लिखता है— मगर क्रोध अत्यन्त कठोर होता है। वह देखना चाहता है कि मेरा एक एक वाक्य निशाने पर बठता है या नहीं वह मौन को सहन नहीं कर सकता। उसकी शक्ति अपार ह ऐसा कोइ घातक स घातक शस्त्र नहीं है जिसमे बढ़कर काट करने वाले यन्त्र उसकी शस्त्रशाला म न हो लकिन मौन वह मन्त्र है जिसके आग उसकी सारी शक्ति विफल हो जाती ह। मौन उसके लिए अजय है। [29] यहा पर क्रोध की अपरिमित शक्ति के साथ साथ अहिंसावादी मौन व्रत की अपरम्पार महिमा का गान भी कर दिया गया है।

रगभूमि' की रचना करके प्रेमचन्द ने किस उद्देश्य की पूर्ति की ? एक शिल्पगत प्रश्न है। वस्तुत प्रेमचन्द की उपयोगिता मे विश्वास रखते है। इसी दृष्टिकोण को सामने रख आपने सेवासदन,' 'निमला' तथा प्रेमाश्रम' की रचना करके एक न एक सामाजिक, नैतिक अथवा धार्मिक समस्या को चित्रित किया है। इधर 'रगभूमि इस दृष्टि स इन रचनाओ से कही उच्च कोटि की कलाकृति है। इसम कथाकार न अखण्ड जीवन ज्योति प्रदीप्त की हैं। पूर्वी तथा पश्चिमी सभ्यता का तुलनात्मक अध्ययन भी हम 'रगभूमि म उपलब्ध होता है। पूजीवाद पश्चिमी सभ्यता की नइ देन है जिसकी विकासकालीन परिस्थितियो का सफल चित्रण रगभूमि के विशाल पट पर चित्रित कर दिया ह। इसक एक लेख म कथाकार ने इस सभ्यता को महाजनी सभ्यता का नाम दिया है। यह कवल शोषण के आधार पर फल फूल सकती है। 'रगभूमि की मुख्य कथा इसका ज्वलन्त उदाहरण है। जानसवक की उन्नति, सूरदास तथा पाण्डेयपुर निवासियो की अवनति है। जानसवक का व्यवसाय सूरदास इन्द्रदत्त के मत शरीर और सकडो उजड शरणार्थियो की आहो पर फलता है।

रगभूमि म कथाकार न भारतीय को एक बडा सन्देश दिया है। जीवन एक खल है। इस खलो। हारा तो घबराओ नही, जीतो तो गव मत करो। सूरदास की मत अवस्था

---

२७ रगभूमि—प्रथम भाग—पष्ठ १०५
२८ वही—पृष्ठ १४६ १६२
२९ वही—दूसरा भाग—पृष्ठ १३७

के समय दिया गया भाषण इस मत की पूरी मीमांसा करता है। मृत्यावस्था में भी वह आशावादी रहता है। आशा और धारणा नहीं उसका संबल है। मरते मरते वह कह जाता है— हम हारे, तो क्या मैदान से भागे तो नहीं, रोये तो नहीं, धांधली तो नहीं की। फिर से खेलेंगे जरा दम ले लेने दो हार हारकर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी जरूर होगी।[30]

कितनी बड़ी आशा है और कितना दृढ़ विश्वास। सूरदास की लड़ाई जानसेवक या क्लार्क के विरुद्ध लड़ाई नहीं है—यह लड़ाई पुण्य की पाप के साथ लड़ाई है, शासित की शोषक के विरुद्ध लड़ी लड़ाई है। इस रूप में रंगभूमि प्रतीकात्मक महाकाव्य है।

गबन—१९३०

सन १९३० के लगभग औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से हिन्दी भाषा में तीन महत्त्वपूर्ण उपन्यासों का प्रकाशन हुआ। इनमें से इलाचन्द्र जोशी द्वारा रचित लज्जा और जैनेन्द्र रचित परख विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की रचनाएं हैं। केवल 'गबन' वर्णनात्मक शिल्प विधि के अन्तर्गत आती है। वर्णनात्मक शिल्प विधि की रचना होने पर भी यह प्रेमचन्द के उपन्यास शिल्प में सतत विकास की परिचायक है। इसमें प्रेमचन्द ने अपनी दृष्टि नये विषय और नये रूप की ओर केंद्रित की। विषय की दृष्टि से उन्होंने समाज की अपेक्षा व्यक्ति और व्यक्ति को भी परिवार के परिवेश में प्रस्तुत किया है। वस्तु विन्यास की दृष्टि से अधिकतम घटनाएं बाह्य जगत में घटित होने के साथ-साथ अंतर्जगत की नाना लीलाओं पर भी प्रकाश डालती हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से इस उपन्यास के पात्र दोहरा व्यक्तित्व लेकर चलते हैं। रमा और जालपा एक ओर व्यक्ति रहते हैं दूसरी ओर समाज में अपने प्रतिनिधित्व को सार्थक करते हैं। समस्या की दृष्टि से जहां अन्य रचनाओं में समाज की समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं वहां 'गबन' में व्यक्ति की आकांक्षाओं से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का चित्रण भी करते हैं। इस संबंध में एक आलोचक लिखते हैं—"अन्य उपन्यासों में प्रेमचन्द समुदाय को लेकर चले हैं और वर्ग की समस्याओं पर विचार किया है। गबन की समस्या व्यक्तिगत है और परिवार तक ही सीमित रहती है।[1]

गबन की समस्या को नितांत वैयक्तिक नहीं कह सकते। यह ठीक है कि इस रचना में वे समाज से कुछ हटकर व्यक्ति की ओर उन्मुख हुए, किन्तु व्यक्तिपरक रचना के लिए जिस विश्लेषण की आवश्यकता है उस प्रकार का विश्लेषण इस वर्णनात्मक शिल्प विधि की रचना में उपलब्ध नहीं है। प्रेमचन्द की वर्णनप्रियता आदर्शोन्मुखता तथा ध्येय वादिता इस उपन्यास के अन्तिम परिच्छेद में इतनी बढ़ गई है कि इसमें प्रस्तुत राजनतिक सामाजिक और नैतिक प्रश्न एक प्रश्नचिह्न बनकर सामने आ गए हैं। आरम्भ के चित्रण और अंत के दृश्यों में भी शिल्पगत परिवर्तन दीख पड़ता है। मनोवैज्ञानिक

३० रंगभूमि—भाग दो—पृष्ठ ३७९

१ डा० प्रेमनारायण टंडन प्रेमचन्द कला और कृतित्व पृष्ठ—८९

विश्लेषण का सूत्र प्रेमचन्द के हाथ से छूट गया है और वणनात्मक घटनाओं की भीड़ सी लग गई है। आरम्भ में केवल जालपा के आभूषण प्रेम की समस्या को लिया गया है किन्तु अन्त तक पहुचते-पहुचते हम प्रत्येक नारी पात्र वद्धा हो या युवती, अशिक्षिता हो अथवा शिक्षिता जेवरों के प्रति लालायित नजर आता है। जालपा, रतन और बूढ़ी जग्गो प्रति क्षण आभूषणों की बाट जोहती दृष्टिगत हुई हैं। उपन्यास की कथा भी द्विमुखी होकर सामने आई है। 'गबन' की मुख्य कथा रमा जालपा की दाम्पत्य प्रेमगाथा है जो प्रयाग तक सीमित रहती है इसमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए पर्याप्त अवसर था, किन्तु कथाकार ने जालपा की विरहजनित दशाओं का चित्रण ही पर्याप्त न समझकर कथा को दो भागों में विघटित कर दिया। समाज के विभिन्न रूप दिखाने और वणन आधिक्य लाने के लिए कलकत्ता सबंधी विशाल गाथा का आयोजन किया गया है। इस विषय पर विद्वान समालोचक आचार्य वाजपेयी का वक्तव्य प्रस्तुत है—'यदि पूरा उपन्यास प्रयाग की घटनाओं से ही सम्बद्ध रहता तो उसमें रचना सबंधी पूणता आ जाती। उसका प्रभाव भी अधिक तीव्र होता और कदाचित मध्यवर्ग की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं पर तीखा प्रकाश पडता। इसी प्रकार यदि केवल कलकत्ते की घटनाओं से ही सम्बद्ध होता, तो वह पूर्णत राजनीतिक उपन्यास बन जाता और न्याय के स्वरूप पर कुछ प्रभाव डालता। वसी स्थिति में एक उपन्यास के बदले दो बन सकते थे। एक मध्यवर्गीय पारिवारिक चित्रण के आधार पर और दूसरा पुलिस के हथकण्डे और न्याय की विडम्बनाओं के आधार पर। पर इन दोनों को एक में मिलाकर प्रेमचन्दजी ने दोनों का प्रभाव घटा दिया।'[1]

इससे सिद्ध होता है कि प्रेमचन्द ने नये विषय के साथ-साथ नया शिल्प प्रयोग भी करना चाहा, किन्तु उसमें आप पूर्ण सफल नहीं हो पाए। यह प्रयोग इनका विश्लेषण की ओर झुकाव मात्र कहा जाएगा। वणनात्मक से विश्लेषणात्मक की ओर थोडा झुककर पुन वर्णनात्मकता का आश्रय देना इनकी प्रयोगशील प्रवृत्ति का परिचायक दृष्टान्त है। इनके प्रयोगों के संबंध में डॉ० राजेश्वर गुरु लिखते हैं—''वरदान' से लेकर 'मगल सूत्र' तक प्रेमचन्द अपने उपन्यासों की रचना में निरन्तर प्रयोगशील रहे हैं। उनका प्रत्येक नया उपन्यास अपने पिछले उपन्यास से स्वरूप में थोडा बहुत भिन्न है। इसका प्रधान कारण यही है कि प्रेमचन्द जहां अपने विषय के क्षेत्र में विस्तार करते रहे हैं वहां वे इस विस्तार को उपन्यास की कथा-वस्तु के रूप में सगठित करते समय उपन्यास के शिल्प विधान को भी अधिकतर गबन में कथाकार ने कथा के बीच में कुछ स्वप्नों की योजना जुटाई है किन्तु उनका मनोवैज्ञानिक क्रम घटनाओं से नहीं जोडा है। जालपा को कुछ स्वप्न आते हैं किन्तु वे बे सिर पर के हैं। वास्तव में प्रेमचन्द को स्वप्न विज्ञान (Dram Psychology) का वह ज्ञान नहीं था जो विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के कथाकारों या प्रतीकात्मक शिल्पियों में देखा गया है। उपन्यास की मुख्य घटना रमा का गबन कर कल

---

१ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन—पृष्ठ १२४

२ प्रेमचन्द एक अध्ययन—पृष्ठ २६१

कत्ता भाग जाना है। इस घटना के घटित होने म दो पष्ठ पूर्व ही कथाकार न इस ओर सकेत कर दिया है—'जालपा नीचे जाने लगी तो रमा ने कातर होकर उसे गले से लगा लिया और इस तरह भीच भीचकर उससे आलिंगन करने लगी मानो यह सौभाग्य उसे फिर न मिलेगा। कौन जानता है, यही उसका अन्तिम आलिंगन हो।'[३] इसके पश्चात कथा दो भागो मे विभाजित हो गई है। यही से रमा और जालपा का प्रवास काल आरम्भ हो जाता है जो लगभग छ मास तक चलता है यह कथा को दो भागो म विभाजित रखता है।

कलकत्ता की कथा का सूत्रपात करने से पूर्व कथाकार हम एक प्रसिद्ध पात्र का साक्षात्कार करा देते ह। यह केवल चरित्रगत विशेषताओं को प्रकाश म लाने के लिए ही नही किया गया है अपितु कथा सूत्र की पकड को दृढ करने के लिए भी किया गया है। रेलगाडी म रमा को बचाकर अपनी सच्चरित्रता की छाप मात्र बठाने के लिए ही देवीदीन यात्रा नही कर रहा है अपितु रमा को कलकत्ता म प्रश्रय देकर उसके जीवन चक्र को एक केन्द्र पर घुमाने के लिए वह सामने आया है। रमानाथ उसके घर आश्रय ही नही पाता बल्कि उसके परिवार का एक सदस्य बनकर रहता है। रमा के भागने पर कथा दो भागो म तथा दो दिशाओ म गतिशील होती है किन्तु कब तक? उसी समय तक जब तक कि परित्यक्ता जालपा कुछ समय के लिए विरही जीवन के कुछ कटु अनुभव प्राप्त करके पति प्राप्ति हित सलग्न नही हो जाती और रमा पुलिस के चगुल म फसकर झूठी गवाहियो की एक पेशी नही भुगत लेता। जालपा के कलकत्ता पहुचते ही कथा पुन एक ध्येय की ओर अग्रसर होती है—ध्येय है पति पत्नी मिलन, जिसके लिए कथाकार ने एक कडी शर्त लगा दी है। मानवती जालपा आदर्श पति को स्वीकार करेगी झूठे, खुशामदी और पतित देशद्रोही मुखबिर पति को नही। इसी के अनुसार कथा का दिशा न्यास किया गया है और प्रसादान्त भी।

यही प्रासगिक कथाओ के शिल्पगत महत्त्व पर विचार कर लेना भी समीचीन होगा। प्रासगिक कथाओ म रतन तथा देवीदीन की दो उपकथाए ही महत्त्वपूर्ण हैं। रतन की उपकथा करुण रस प्रधान है। यह उपकथा भी प्रयाग तथा कलकत्ता दोनो स्थलो की सैर कर आती है और रमा जालपा की आधिकारिक कथा से सबधित है। रतन का विवाह एक अनमेल विवाह है जो निर्मला की-सी करुणा नही रखता। इसका पति बीमार रहता है किन्तु मन ही मन दु खी है। रतन के प्रति रोता भी है आदर भी करता है। रतन कलकत्ता पहुचकर जालपा स किया वादा भूल-सा जाती है और इस प्रकार कुछ समय के लिए मुख्य कथा स परे जा खडी होती है किन्तु विधवा होकर जब पुन प्रयाग आती है तब जालपा के साथ दु ख-दैन्य के दिन इकट्ठ काटना चाहती है किन्तु जालपा के कलकत्ता जाने ही फिर अकेली रह जाती है और अपने भतीजे मणिभूषण के कारण अत्याचारो का शिकार होती है फिर कहीं अन्त म जाकर कथाकार द्वारा स्थापित स्वर्गिक आश्रम म निवास करके बीमार पड़ प्राण दे देती है। हम देखते है कि रतन का जबरदस्ती

३ गबन—पष्ठ १३५

इस अन्तिम सोपान तक घसीटा गया है। यदि मणिभूषण के अत्याचारा के तले दबकर उसकी मत्यु दिखाई हानी तो क्या अधिक प्रभावशाली हानी, सगठित रहती। 'गबन' के कथानक तथा रतन सबधी आख्यान के शिल्पगत महत्त्व पर श्री मन्मथनाथ के विचार भी स्पष्ट हैं—'जब हम इस उपन्यास के कथानक की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो हम निश्चय पर पहुचते है कि निमला' के अतिरिक्त प्रेमचन्द के किसी भी उपन्यास का कथानक इतना सुग्रथित नही है। सगठन की दृष्टि मे 'निमला' और 'गबन' प्रेमचन्द के श्रेष्ठतम उपन्यास हैं।'[४]

हम उनसे पूणत सहमत है। हमारे मतानुसार प्रेमचन्द की अन्य सभी कृतिया की अपेक्षा 'गबन' और 'निमला' का कथा तत्त्व सबसे अधिक सशक्त है। दवीदीन-जग्गा का उपकथा इसलिए महत्त्वपूण है कि इसने रमा जालपा की अन्तिम कथा म पूण सहयाग दिया ह। जाहरा का प्रवेश कथा को एक तीव्र गति प्रदान करता है। और कथा मे त्रिकाणिक प्रेम (Triangular Love) उपस्थित कर देता है। कथाकार ने गबन म भी अपनी आदशवादिता तथा ध्ययान्मुख प्रवत्ति का परिचय देकर कथा को विशेष ढाच म रखकर माड दिया है। विलासी जोहरा का कायाकल्प कर उसे त्याग, सेवा और श्रद्धा युक्त प्रेम की मूर्ति बनाकर अन्त म स्थापित आश्रम मे बठाकर कुछ समय पश्चात त्रिवेणी की धारा म समाधिस्थ कर दिया है। अन्त का एक अध्याय यथार्थवादी समालोचका को खटकता ह। यदि रमा के बरी हाने ही उपन्यास का अन्त हो जाता तो अधिक सुन्दर हाना। आगे की कथा को जबरदस्ती ठूसा गया है।

गबन के पात्रो का चरित्र चित्रण परिस्थितिजनित वातावरण के अधिक अनुकूल बन पड़ा है और इस दृष्टि से अन्य उपन्यासा की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक और प्रभावशाली है। व्यक्तिपरक प्रकृति हाने के कारण गबन म स्थायी महत्त्व रखने वाले दो ही पात्र हैं—रमानाथ और जालपा—गबन इन्ही की प्रमकथा है जो केन्द्र म रहकर गतिशील हाती है। इनके अतिरिक्त जो भी पात्र है व इनके सहायक होकर आए हैं। अनावश्यक पात्रा की कल्पना इस रचना म कही भी नही की गई। सभी प्रधान पात्र दोहरे व्यक्तित्व से युक्त दीख पडते है। रमानाथ इस उपन्यास का नायक है। इसकी शत प्रतिशत वैयक्तिकता सन्दिग्ध है क्योकि इसम कुछ वगगत चारित्रिक दुबलताए विद्यमान है जो भारतीय मध्यवर्गीय युवक की यथाथ स्थिति का पर्दाफाश कर रही हैं। मिथ्या भाषण और बाह्य प्रदशन इसके चरित्र की ही नही भारतीय मध्यवर्गीय युवक के चरित्र की जानी पहचानी बातें है। इतना हाने पर भी सहज सकोच की अत्यधिक मात्रा इसके वयक्तिक चरित्र की उदघाटक प्रवत्ति है। क्योकि हम जानते है कि अधिकतर मिथ्या भाषी युवक पक्के ढीट और स्वार्थी हाते हैं जबकि रमानाथ ऐसा नही है। रमानाथ के चरित्र की यह विचित्रता चारित्रिक शिल्प का तथ्य है जिसे आचार्य नन्ददुलारे भी स्वीकार करते हैं—'प्रमचन्दजी ने रमानाथ के द्वारा एक विशेष प्रकार का वचित्र्यपूर्ण चरित्र उपस्थित किया है।'[५]

४ कथाकार प्रेमचन्द—पृष्ठ ४१३

५ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन—पृष्ठ १२६

रमानाथ गुप्त इस पात्र में नगण्य और मर्यादित [illegible] रूप लेकर है — इस उपन्यास का नायक रमानाथ [illegible] बाबू श्रेणी का एक प्रतिनिधि है। हम यह नहीं कहते कि रमानाथ केवल एक ढांचा मात्र है तथा उसका व्यक्तित्व नहीं है उसका व्यक्तित्व है।[6]

रमा में हम एक साथ विलासिता, कायरता, अदूरदर्शिता, महत्वाकांक्षा और स्वार्थप्रियता के दर्शन होते हैं। ऊपर की आमदनी को वह महत्ता और आत्म चतुरता का करिश्मा समझता है। इसका अधिकतर चरित्र विश्लेषणात्मक प्रणाली द्वारा कथाकार ने स्वयं चित्रित किया है। परिस्थिति के उतार चढ़ाव के साथ-साथ उसके चरित्र में उन्नति और अवनति का प्रवाह होता रहता है। आतंक, भय, चिन्ता और ग्लानि तो कभी कभी आनन्द की प्रतिमा इसके वदन पर रंगी-बिरंगी गई है। सबसे बड़ी बात जो रमा के चरित्र में देखी जा सकती है वह है इसकी चारित्रिक चंचलता। यह स्थिर नहीं है गतिशील रहता है। जालपा से प्रतिज्ञा कर भावुकता का परिचय देता है। किन्तु [illegible] की घुड़की सुनकर भीगी बिल्ली बन जाता है। अन्त में इसका जो चारित्रिक परिवर्तन और उत्थान दिखाया गया है वह कथाकार की [illegible] का परिचायक है। वास्तव में रमानाथ एक कायर (Coward) व्यक्ति का उदाहरण है जो हिन्दी में वर्णनात्मक शिल्प के उपन्यास साहित्य में अपनी मिसाल नहीं रखता।

जालपा का चरित्र रमा के चरित्र की अपेक्षा अधिक गतिमय (Dynamic) तथा उज्जवल बन पड़ा है। प्रयाग के एक छोटे से गाँव में पली लाड़ और प्यार के संस्कार में ढली आभूषण प्रिय युवती का रूप धारण कर हमारे सामने आती है। कथाकार ने इसका चरित्र वैयक्तिक रखने के साथ विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। उसकी आभूषण प्रियता का विश्लेषण कर कथाकार लिखता है— जालपा को गहनों से जितना प्रेम था, उतना कदाचित् संसार की और किसी वस्तु से न था और उसमें आश्चर्य की कौन-सी बात थी। जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी उस वक्त उसके लिए सोने के चूड़े बनवाए गए थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगती गहनों ही की चर्चा करती। तेरा दुलहा तेरे लिए बड़े सुन्दर गहने लाएगा। ठुमक ठुमक चलेगी।[7] बाल हृदय पर पड़े ये संस्कार यौवन द्वार पर पहुँचकर परिष्कृत हो सकते थे। किन्तु कहाँ? रमा के मिथ्या गौरव ने तो रही-सही कसर भी मिटा दी और अपने कृत्यों से जालपा की आभूषण प्रियता तथा विलासिता वृत्ति को हवा दी।

विरह की अग्नि में तप्त होकर जालपा का चरित्र निखर आता है। वह किसी भी साँचे में ढाली जा सकती है।[8] रमा के जाते ही वह विलासिता का जामा उतार फेंकती है। अपने प्रिय हार को ४०० में बेचकर पति का ऋण उतारती है। पति को गबन के धब्बे से बचाती है। विलास की सभी वस्तुओं को गंगा की लहरों की भेंट कर आत्मा पर पड़

---

६ कथाकार प्रेमचन्द—पृष्ठ ४०४ ४०५
७ गबन—पृष्ठ २६
८ वही—पृष्ठ २६०

या अन्य की हत्या करती है। जालपा का आत्म गौरव पूर्ण रूप से कलकत्ता पहुँचकर ही जाग्रत होता है—पति मिलन पर वह सिहर उठती है। कथाकार ने बड़े सफल ढंग से वह चित्र खींचा है—"उसकी आशा में कभी इतना नशा न था, अगों में कभी इतनी चपलता न थी, कपोल कभी इतने न दमके थे हृदय में कभी इतना मृदु कम्पन न हुआ था। आज उसकी तपस्या सफल हुई। किन्तु जालपा अधिक समय शिकवे शिकायतों तथा मान अभिनय में न बिताकर एक गर्वपूर्ण बात कहती है—'अगर तुम्हें यह पाप की खेती करनी है तो मुझे आज ही यहाँ से विदा कर दो।

कलकत्ता में ले जाकर जालपा के चरित्र को कथाकार ने उज्ज्वलतम सोपान पर बैठा दिया है। दिनेश की फाँसी का समाचार सुनकर वह पति के पाप का प्रायश्चित करने का दृढ़ निश्चय कर लेती है। सहिष्णुता त्याग, और सेवा वृत्ति को अपनाकर तन मन, धन दिनेश के परिवार हित समर्पित कर देती है। कथाकार ने जालपा के चरित्र का समस्त विकास एवं परिवर्तन अत्यन्त स्वाभाविक रखा है—रमा तक ने यह स्वीकार किया है कि जालपा के त्याग निष्ठा, और सत्य प्रेम ने उसकी आँखें खोली हैं यही नहीं वह तो जोहरा जैसी वेश्या का कल्याण भी कर डालती है।

जोहरा हमारे सामने एक क्षणिक प्रभाव रखने वाले पात्र के रूप में आती है और वह भी एक वेश्या बनकर। किन्तु कथाकार ने उसके चरित्र को भी गतिशील (Dynamic) बना दिया है और उसके सुधार का कारण उसी के मुख से कहलवाया है— जिस प्राणी को जंजीरों से जकड़ने के लिए वह भेजी गई है, वह खुद दर्द से तड़प रहा है उसे मरहम की जरूरत है जंजीरों की नहीं। वह सहारे का हाथ चाहता है धक्के का भोंका नहीं। जालपा देवी के प्रति उसकी श्रद्धा, उसका अटल विश्वास देखकर मैं अपने को भूल गई। मुझे अपनी नीचता अपनी स्वार्थपरता पर लज्जा आई। मेरा जीवन कितना अधम, कितना पतित है यह मुझ पर उस वक्त खुला, और जब मैं जालपा से मिली तो उसकी निष्काम सेवा उसका उज्ज्वल तप देखकर मेरे मन के रहे सहे संस्कार भी मिट गए। विलासयुक्त जीवन से मुझे घृणा हो गई। मैंने निश्चय कर लिया, इसी अंचल में मैं आश्रय लूँगी।'[१] इस प्रकार से यह चरित्र केवल इसी तथ्य का उद्घाटक बनकर सामने आता है कि विपरीत परिस्थितियों में भी नारी का नारीत्व पूर्णतः विलुप्त नहीं होता। परोपकार हित वह रुग्ण रतन की सेवा भी करती है। मानवतावाद का परिचायक यह दृष्टिकोण प्रेमचन्द के चरित्र चित्रण की विशेष टेक्नीक है।

देवीदीन, रतन रमेश और जग्गो अन्य पात्र हैं जो उपन्यास में समय समय पर उभरकर लीन हो जाते हैं। इनमें से देवीदीन और रतन के चरित्रों के द्वारा कथाकार ने कुछ आदर्शों की रक्षा की है। देवीदीन अर्धशिक्षित होने पर भी परोपकारी और आतिथ्य सत्कारी मानव के रूप में तथा रतन एक सच्ची पतिव्रता स्त्री के रूप में अंकित की गई है।

गबन में कुल मिलाकर चार विषयों पर विचार प्रकट किए गए हैं। इनमें प्रमुख स्थान नारी संबंधी आभूषण प्रेम के विषय को दिया गया है। आभूषण प्रेम को व्यक्ति के

---

१ गबन—पृष्ठ ३२५

लिए ही अहितकर सिद्ध नहीं किया गया अपितु इसे एक सामाजिक बीमारी का रूप दे दिया गया है। कुछ आलोचकों ने तो गबन को गहनों की ट्रेजडी तक कह डाला है। आभूषण प्रेम पर कथाकार ने एक पात्र रमेश के द्वारा एक लम्बा चौड़ा भाषण भी दिलवा दिया है जिसका कुछ भाग यहाँ उद्धृत कर देना समीचीन होगा—"बुरा मरज है बहुत ही बुरा। यह धन जो भोजन में खर्च होना चाहिए बाल बच्चों का पेट काटकर गहनों की भेंट कर दिया जाता है। बच्चों को दूध न मिले, न सही। घी की गंध तक उनकी नाक में न पहुँचे न सही। मेवों और फलों के दर्शन उन्हें न हों कोई परवाह नहीं। पर देवी जी गहने जरूर पहनेंगी और स्वामी जी गहने जरूर बनवायेंगे। दस-दस बीस बीस रुपये पाने वाले क्लर्कों को देखता हूँ जो सड़ी हुई कोठरियों में पशुओं की भाँति जीवन काटते हैं जिन्हें सवेरे का जलपान तक मयस्सर नहीं होता उन पर भी गहनों की सनक सवार रहती है। इस प्रथा से हमारा सर्वनाश होता जा रहा है। मैं तो कहता हूँ यह गुलामी पराधीनता से कहीं बढ़कर है। इसके कारण हमारा कितना आत्मिक नैतिक दैहिक, आर्थिक और धार्मिक पतन हो रहा है इसका अनुमान ब्रह्मा भी नहीं कर सकते।"[10] वास्तव में ये विचार कथाकार के अपने विचार हैं किन्तु इन्हें पात्रमुखोच्चारित कराकर उसने शिल्पगत उन्नति का परिचय दिया है।

विचार प्रतिपादन का यह ढंग उसने आगे चलकर भी अधिकतम रूप में अपनाए रखा है। 'गबन' में स्त्री स्वाधीनता तथा उसे पुरुष सम अधिकारों से विभूषित करने के लिए रतन के पति वकील इन्दु भूषण एक लम्बा चौड़ा भाषण देते हैं व रमा से तर्क वितर्क भी करते हैं जोश में आकर यहाँ तक कह उठते हैं— "जब तक हम स्त्री पुरुषों को अबाध रूप से अपना अपना मानसिक विकास न करने देंगे हम अवनति की ओर खिसकते चले जाएँगे।"[11]

स्त्री स्वाधीनता से संबंधित एक भयंकर समस्या संयुक्त परिवार की समस्या है जिसमें सरल निष्कपट और परमार्थी प्राणी घुट घुटकर मरने के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं करता। इसमें भी अधिकतर स्त्री ही अधिक पिसती है और विशेषकर वह स्त्री जो विधवा हो जाए। उसके लिए जीवन एक नारकीय अग्नि बनकर सामने खड़ा रहता है जिसमें वह तिलों की भाँति चटक चटककर भुनती चली जाती है। पति की मृत्यु पर सान में लदी रहने वाली रतन जब मणिभूषण के कपट जाल में फँसकर दाने-दाने को मुहताज हो जाती है तब चिल्लाकर कहती है— "न जाने किस पापी ने यह कानून बनाया था। अगर ईश्वर कहीं है और उसके यहाँ कोई न्याय होता है तो एक दिन उसीके सामने उस पापी से पूछूँगी क्या तेरे घर में माँ बहन न थी। तुझे उनका अपमान करते लज्जा न आई। अगर मेरी जबान में इतनी ताकत होती कि सारे देश में उसकी आवाज पहुँचती तो मैं सब स्त्रियों से कहती—बहनो किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना और अगर करना तो जब तक अपना घर अलग न बना लो चैन की नींद मत सोना।"[12] यथा

१० गबन—पृष्ठ ५१
११ वही—पृष्ठ १०७
१२ वही—पृष्ठ २७४

कार वा रतन से ही नहीं रतन सदृश सारे नारी जगत स पूण सहानुभूति है और वह उस सम्मानित अवस्था म देखना चाहता है।

भारतीय नेताओ की काली करतूता का पर्दाफाश करन के लिए भी कथाकार ने अपनी ओर स लम्बी चौडी टीका टिप्पणी की योजना न करके देवीदीन का भाषण दिला दिया है जिसकी कुछ पक्तिया पठनीय हैं—"इन बडे-बडे आदमियो के किए कुछ न होगा। इन्हे बस रोना आता है छोकरियो की भाति बिसूरने के सिवा इनस और कुछ नही हो सकता। बडे बडे देशभक्ता का बिना बिलायती शराब के चैन नही आता। उनके घर म जाकर देखो ता एक भी दशी चीज न मिलगी। दिखान का दस बीस कुरते गाढे के बनवा लिए घर का और सामान बिलायती है। सब के सब भाग बिलास म अधे हो रहे है। "[13] इस ढग से प्रमचन्द न समसामयिक नेताओ की यथाथ स्थिति पर प्रकाश डलवा दिया है। इसका अथ यह नहीं कि प्रमचन्द स्वय सवत्र तटस्थ रहे है और इस उपन्यास म मौन व्रत धारण कर लेते है।

आवश्यकता पडन पर ही प्रमचन्द न अपनी ओर स आलोचनात्मक टिप्पणिया दी है जिनम स एक-दो स्थल दृष्टव्य है। रतन के पति की मत्यु पर मौन की सवकाल जनीनता पर आपने लिखा है— मानव जीवन की सबस महान घटना कितनी शाति के साथ घटित हो जाती है। वह विश्व का एक महान अग वह महत्वाकाक्षाओ का प्रचण्ड सागर वह उद्योग का अनन्त भण्डार वह प्रेम और द्वष सुख और दुख का लीला-क्षेत्र वह बुद्धि और बल की रगभूमि न जान कब और कहा लीन हो जाती है किसीको खबर नहीं होती। एक हिचकी भी नही एक उच्छवास भी नही एक आह भी नही निकलती। कितना महान परिवतन है। वह जो मच्छर के डक का सहन न कर सकता था, अब उस चाहे मिट्टी म दबा दो, चाहे अग्नि चिता पर रख दो उसके माथे पर बल तक न पडेगा। "[14]

गबन तक पहुचकर प्रेमचन्द का विचार प्रतिपादन अधिक व्यवस्थित अधिक सयत और व्यजनामय हो गया है। इसम उन्होन नारी की विवशता और मर्यादा तथा सीमाओ के साथ-साथ मध्यवग की दिशा को तोलकर रख दिया है।

गोदान—१९३६

मानव-व्यापारा का व्यापक और सूक्ष्म कथात्मक विवेचन 'गोदान की शिल्पगत विशेषता है। गोदान' म कथाकार अपने को एक बडी सीमा तक परोक्ष म ले जाकर पात्रा का आगे ल आया है। आलोचको ने इसे निर्विवाद रूप से प्रेमचन्द की सवश्रेष्ठ रचना माना है। कतिपय आलोचको के मत उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है —

'गोदान निर्विवाद रूप से प्रमचन्द की सवश्रेष्ठ कृति है। और यह परिपक्व चिंतन का परिणाम है दूसरी ओर इसम उपन्यास के शिल्प विधान का अयतम स्वरूप

१३ गबन—पष्ठ १७७
१४ वही—पष्ठ २०३ २०४

मिलता है।'[१]

"गोदान प्रेमचन्दजी की अन्तिम और अन्यतम कृति है।[२]

"औपन्यासिक कौशल प्रस्तुत उपन्यास में सबसे अधिक है।[३]

'गोदान ग्रामीण जीवन के अन्धकार पक्ष का महाकाव्य है।[४]

'गोदान आधुनिक भारतीय जीवन का दर्पण है।'[५]

'गोदान' का शिल्प विधि में मूल रूप से कोई नवीनता नहीं है। यह भी वर्णनात्मक शिल्प विधि की रचना है किन्तु इसमें प्रस्तुत जीवन की आशाओं और निराशाओं का द्वन्द्वमूलक वर्णन भारी उपन्यास की उत्प्रेरणा स्वरूप समृद्ध रूप में प्रस्तुत हुआ है। समस्त रचना समाजपरक बहिर्गत संघर्ष के व्यापक चित्रण के साथ विकसित हुई है। सभी प्रमुख पात्रों के बाह्य अंगों का वर्णन सविस्तार रूप में प्रस्तुत हुआ है। पात्रों की संख्या पचास से भी अधिक है उनकी मनोभावनाओं का विवरण प्रेमचन्द की प्रौढ़ व्याख्यात्मक शैली का परिचायक है। 'कायाकल्प' में जो शिल्पगत त्रुटियाँ रह गई थीं उनका निराकरण पूर्ण रूप से गोदान में हो गया है। 'कायाकल्प' और 'कर्मभूमि' में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों तथा अनौचित्यपूर्ण दृश्यों की भरमार है। 'गोदान' की रचना 'रंगभूमि' के ढर्रे पर वर्णनात्मक शिल्प में हुई है किन्तु इस अखण्ड जीवन का महाकाव्य बनाने की चेष्टा नहीं की गई यह दो कथाओं के समन्वय का एक सुन्दर प्रयास है। इस दृष्टि से 'गोदान' का विषय जीवन का कोई एक पहलू नहीं है। यह जीवन के दो रूपों का तुलनात्मक अध्ययन है। अतः 'गोदान' के शिल्प विधान पर लगाया गया आरोप कि इसमें दो एकदम अलग अलग लगभग समानान्तर कथाओं को बड़े कमजोर सूत्रों से बाँधने का यत्न किया गया है न्यायपूर्ण नहीं है।

गोदान के वस्तु विधान के शिल्पगत पहलू पर प्रकाश डालते हुए आचार्य नन्द दुलारे लिखते हैं— 'गोदान उपन्यास के नागरिक और ग्रामीण पात्र एक बड़े मकान के दो खण्डों में रहने वाले दो परिवारों के समान हैं जिनका एक दूसरे के जीवन क्रम से बहुत कम सम्पर्क है।'[६] इस संबंध में एक अन्य आलोचक लिखते हैं— 'गोदान की आधिकारिक कहानी के साथ-साथ प्रासंगिक कहानी भी चलती है। वह है देहात के साथ शहर की कहानी। मालती और मेहता की कहानी। यह प्रासंगिक कथा मुख्य कथा से अलग दिखाई पड़ती है और लगता है कि यदि लेखक होरी के ग्राम जीवन की कथावस्तु तक

---

१ डा० राजेश्वर गुरु प्रेमचन्द एक अध्ययन—पृष्ठ २२३

२ आचार्य नन्ददुलारे प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन—पृष्ठ १३१

३ डा० महेन्द्र भटनागर समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द—पृष्ठ २१०

४ श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय हिन्दी कथा साहित्य—पृष्ठ ६१

५ श्री विश्वम्भर मानव, सम्पादक डा० इन्द्रनाथ मानव प्रेमचन्द चिंतन और —ना—पृष्ठ ६५

६ आधुनिक साहित्य—पृष्ठ १४८

सीमित रहता तो यह उपन्यास शिल्प की दृष्टि से अपने में पूर्ण हो सकता था।''[7] इस संबंध में मुझे डॉ० राजेश्वर गुरु का कथन अधिक तर्क संगत प्रतीत हुआ है। वे लिखते हैं— 'एक कथा शहर की है और एक गाँव की। और 'गोदान' को। संक्षिप्तीकृत रूप में लाने वाला न शहर की कथा का अधिकांश अलग करके यह सिद्ध करना चाहा है कि इसके बिना भी कथा के रसास्वादन में कोई विक्षेप नहीं पड़ता। उपन्यास शास्त्र की दृष्टि से यह निश्चित है कि 'गोदान' की आधिकारिक वस्तु गाँव की कथा है और प्रासंगिक शहर की लेकिन इस प्रकार के दृष्टिकोण के द्वारा जो दोनों को अलग अलग और एक को प्रमुख और अन्य को गौण समझने की प्रवृत्ति है वह उचित नहीं है।'[8] वास्तव में ये दोनों कथाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। आचार्य नन्ददुलारे द्वारा आरोपित नागरिक कथा की शिल्पगत अनुपयोगिता संदिग्ध है। उन्होंने नागरिक कथा के समन्वय के दो उद्देश्य बनाए हैं—

१ तुलना द्वारा ग्रामीण परिस्थिति की विषमता को स्पष्ट करना और प्रभाव को तीव्र बनाना।

२ प्रभाव को तीव्र करना तथा नागरिक पात्रों द्वारा ग्राम में सुधार के प्रयत्न।

मेरे मतानुसार इसका एक तीसरा उद्देश्य भी है वह है नागरिक जीवन के प्रलोभनों में भोले भाले कृषकों को फँसाकर उनकी असारता दिखाना। इन प्रलोभनों के कारण आज ग्राम के ग्राम उजड़ रहे हैं कृषक मजदूर बनते जा रहे हैं और सूदखोरी आदि महाजनी सभ्यता के चिह्न फूट पड़े हैं। इन सबके मिश्रित प्रभाव को व्यापक रूप में प्रस्तुत करने के लिए ही शहर और गाँव की कथाएँ गुम्फित की गई हैं। अतः गोदान में दो जीवन रूपों का प्रतिपादन एक नवीन शिल्पगत प्रयोग है। जीवन के कुछ सत्य शाश्वत होते हैं और सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। ग्राम हो या नगर शोषित हो व नायक सुधारक हो अथवा सुधारपात्र सर्वत्र स्वार्थ का ही प्रभुत्व है। स्वार्थ की मात्रा में अन्तर हो सकता है, और इसी अंतर को स्पष्ट करने के लिए दो कथाएँ ली गई हैं। शोषण तथा स्वार्थ का सीधा संबंध महत्वाकांक्षाओं में है ज्योंही महत्वाकांक्षाएँ बढ़ती हैं इनकी मात्रा बढ़ जाती है। होरी खन्ना रायसाहब से संबंधित कथाएँ इसका प्रमाण हैं। 'गोदान' की इन दोनों कथाओं में जीवन के इस शाश्वत सत्य का अभिव्यक्त किया गया है।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि शोषण के विभिन्न रूप ही दिखाने थे तो गोदान की रचना भी 'रंगभूमि' के पटन को अपनाकर की जा सकती थी। इसमें भी अखण्ड जीवन को प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए था ताकि यह महाकाव्य (Epic) पद पर आसीन होता। परन्तु ऐसा नहीं किया गया। इसका एक कारण तो यह है कि एक बार अति विस्तृत चित्रपटी (Canvass) पर जीवन चित्र उतार लेने के पश्चात पुनः उतनी ही बड़ी पृष्ठभूमि तैयार कर लेना किसी भी बड़े से बड़े कलाकार के लिए सरल खेल

---

७ गोपाल कृष्ण कौल प्रेमचन्द चिंतन और कला—सम्पादक डा० इन्द्रनाथ मदान—पृष्ठ ८६

८ प्रेमचन्द एक अध्ययन—पृष्ठ २२४

नहीं है। दूसरे यदि ऐसा किया जाता तो 'रगभूमि' का प्रभाव नष्ट होने की आशंका बनी रहती। इतनी महान कृति (रगभूमि) के प्रति अपने थ पुण्य मोह को सजगतापूर्वक कैसे त्यागा जा सकता था जिसके फलस्वरूप प्रेमचन्द ने नई योजना जुटाई और इस योजना के अन्तर्गत दो समाज (ग्राम समाज और नागरिक समाज) की कथाओं में चित्रपटी पर चित्रित किए गए हैं।

अब देखना यह है कि ये दो कथाएं किस अंश में और किस स्थल पर आकर समन्वित होती हैं और किस स्थल पर अलग अलग रहती हैं। ग्रामीण समाज को लेकर चित्रित की गई कथा में होरी धनिया कथानक की आधिकारिक है और इसके साथ तीन उपकथाएं जोड़ी गई हैं—

(क) गोबर झुनिया कथा

(ख) मातादीन सिलिया प्रणय सबंध कथा

(ग) भोला-नोहरी-दातादीन आख्यान

इन तीनों उपकथाओं का सीधा संबंध आधिकारिक कथा से (अर्थात होरी धनिया करुण कथा से) जुड़ा हुआ है। इन तीनों उपकथाओं ने किसी न किसी रूप में होरी धनिया जीवन को प्रभावित किया है अतएव ये शिल्पगत उपयोग रखती हैं किन्तु इनके अतिरिक्त जो उपकथाएं या किस्से गढ़ गए हैं वे उद्देश्यपूर्ति करने के अतिरिक्त कोई शिल्पगत महत्त्व नहीं रखते। जैसे उन्नीसवें अध्याय में सिलिया को माता की ससुराल में जाकर मनहरा में जाना करना सोना का उसपर बिगड़ उठना शिल्प की दृष्टि से व्यर्थ पूर्ण और व्यर्थ आकार वृद्धिजनक बातें हैं। झुनिया गोबर उपकथा में झुनिया द्वारा गोबर को सुनाई गई गप्पें, कामासीरी की उपकथा भी मुख्य कथा पर कोई प्रभाव नहीं डालती। एक आलोचक महोदय तो मातादीन सिलिया प्रणय संबंध कथा को भी शिल्पगत दोष बताते हैं—'मातादीन सिलिया की कहानी होरी और धनिया के चरित्र पर प्रकाश अवश्य डालती है पर वस्तु विकास में इसका विशेष स्थान नहीं है। यह कथा यदि वस्तु से पूर्णतया निकाल दी जाए तब भी वस्तु शृंखला शिथिल नहीं होती।'[१]

किन्तु यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो गोबर झुनिया रामासे दृश्य धनिया का झुनिया को आश्रय देना नोहरी की विभिन्न लीलाएं भी महत्त्वहीन सिद्ध होंगी। परन्तु ऐसा नहीं है। ये उपकथाएं जहां एक ओर वस्तु विधान में व्यापकता की परिचायक हैं वहां तीव्रता की द्योतक भी हैं। चौबीसवें अध्याय में सिलिया के भविष्य के विषय को लेकर मातादीन के प्रति किया गया सिलिया के पिता हरखू का रोमांचकारी काण्ड उपन्यास में नाटकीय दृश्य प्रस्तुत कर देता है और उक्त घटना पर कथाकार द्वारा किया गया संक्षिप्त व्याख्यान अधजागत पाठक को पूर्ण चेतन अवस्था में ले आता है। मैंने आरम्भ में लिखा है कि गोदान में कथाकार की प्रवृत्ति टीका टिप्पणी में न रम कर अधिकतर कथा में लिप्त रही है। यहां इसका प्रमाण प्रस्तुत है—'उस हड्डी के टुकड़े ने उसके मुंह को ही नहीं उसकी आत्मा को भी अपवित्र कर दिया था। उसका धर्म इसी

१ श्री हरस्वरूप माथुर प्रेमचन्द उपन्यास और शिल्प—पृष्ठ १५४

खान पान, छूत विचार पर टिका हुआ था। आज उस धम की जड कट गई।"[10] सिलिया केवल धनिया का आश्रय ही प्राप्त नही करती आगे चलकर हारी एक बडी कठिनाई (साना के विवाह की समस्या) को हल करने म भी पूण सहयोग देती है। मातादीन सिलिया की कथा का महत्त्व किसी मात्रा म भी कम नही है।

धनिया होरी की मुख्य कथा अवध प्रान्त के एक छोटे स ग्राम बलारी से सबध रखती है। इसम धनिया हारी पुनिया हीरा, शाभा गाबर भुनिया भोला, दातादीन, मातादीन, सिलिया, नोखेराम तथा पटवारी झिंगुरी आदि अनेक पात्र समय समय पर रगमच के मुख्य भाग पर आकर कथावस्तु का आग बढाते है। स्वय धनिया तथा होरी उपन्यास क चौदह अध्याया म विद्यमान रहकर मुख्य वस्तु विधान जुटात है।"[11] शायद इसीलिए अधिकतर समालाचका न गोदान का ग्रामीण जीवन के अन्धकार पक्ष का महा काव्य कहा है। किन्तु गादान केवल मात्र कृषक समुदाय के धुधल जीवन विकास का उदघाटक महाकाव्य नहा है अपितु हम इसम कृषक के अतिरिक्त अन्य वर्गो तथा ग्राम के साथ-साथ नगर के लागा की अलम्य खण्ड गाथा भी प्राप्य हा गइ है। महता मालती तथा खन्ना गाविन्दी आदि पात्रा तथा नागरिक प्राणियो की खण्डित गाथाए भी इस रचना म गुम्फित कर दी गई है जा अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखत हुए भी धनिया होरी कथा की ओर कभी कभा झुक रही प्रतीत हाती है। मेहता मालती ग्राम म पहुचकर होरी आदि कृषक समुदाय स सबध स्थापित करना चाहत है किन्तु यह सबध क्षणिक सिद्ध होता है।

वस्तु विधान क अन्तगत नागरिक खण्ड म सबधित कथा साष्ठव एव इसके शिल्प गत महत्त्व पर दष्टिपात कर लना भी समाचीन हागा। नागरिक कथा का क्रीडा केन्द्र लखनऊ नामक प्रसिद्ध नगर है और इस कथा के वाहक है मि० मेहता तथा मालती। इन पात्रा के अतिरिक्त मि० खन्ना तथा गाविन्दा का उपकथा भी समानान्तर चलती है। मिर्जा खुर्शेद मि० तन्खा तथा ओकारनाथ आदि अन्य पात्र इसम यथासभव सहयाग देते है। रायसाहब अमरपाल सिंह अपने ग्राम समरा म बठ हुए इन दो कथाओ (नागरिक और ग्रामीण) की आर बारी-बारी झुकत दिखाए गए है। हारी का ग्राम बलारी उनके इलाके म हैं और वहा घटित प्रमुख घटनाओ के प्रति व उदासान नही रह सकते—उधर लखनऊ म उन्हे अपनी मित्र मडली (मि० खन्ना महता, मिर्जा खुर्शेद मालती आदि) तथा आमाद प्रमाद के प्रधासन प्राप्त हैं।

नगर की कथा किसा भी दष्टि स कम महत्त्वपूण नहा ह। ग्राम म ना केवल एक वग (कृषक वग) का हा शाषण दिखाया गया है किन्तु नगर म तो प्रत्यक वग प्रत्यक पात्र एक दूसर को हडप कर लेने का दौड रहे है। पूजीपति मि० खन्ना के आवरण म भी रायसाहब का शापण करत नही घबरात उन्हे जी भरकर कमीशन काटकर रुपया उधार

---

[10] गोदान (पन्द्रहवा सस्करण, १९५८)—पष्ठ २५२

[11] वही—अध्याय सख्या १ ३, ४, ८, ९, १०, ११, १४, १७, २०, २१, २४, २५, ३६

दिलाते है। मि० तंखा प्रतिपल अपना उल्लू साधने की क्रिया में रत हैं। मिर्जा खुर्शेद के साथ वे शिकार खेलने नही जाते अपितु उन्हीं का शिकार करने जाते है। धन प्राप्ति हित दो पात्रों को परस्पर लड़वा कर दूर खड़े हो जाना तथा तमाशा देखना और हाथ सेंकना आपके बाएं हाथ का काम है। इधर पंडित ओंकारनाथ सिद्धान्त और आदर्श का राग अलाप कर भी राय साहब के द्वारा फेंके गए पंद्रह सौ रुपया पर अपना ईमान बेचकर आत्महनन करते दृष्टिगोचर होते है। गोबर ग्रामीण पात्र नगर की वायु लगते ही ग्राम केन्द्रित और परम स्वार्थी बन जाते हैं। वही गोबर जो मिर्जा खुर्शेद का आश्रय पाकर चार पैसे जोड़ने के योग्य हुआ आवश्यकता पड़ने पर उन्हीं को दो रुपया उधार न देकर कृतघ्नता और स्वार्थपरता का परिचय दे देता है। नगर में पहुंचकर झुनिया भी कुछ समय को अपने सास श्वसुर को विस्मृत कर देती है।

नगर की कथा से सम्बन्धित कुछ अध्याय शिल्प की दृष्टि से दोषपूर्ण हैं। विशेषकर पंद्रहवां तथा बत्तीसवां अध्याय कथागत महत्व न रखकर विचारगत महत्व रखते हैं। पंद्रहवें अध्याय में बीमस लाग में मि० मेहता द्वारा दिया गया एक लम्बा भाषण और बीच बीच में उसपर विभिन्न पात्रों द्वारा की गई टीका टिप्पणी नारी विषयक दृष्टिकोण से परिपूर्ण अध्याय है जिसमें कोई भी घटना घटित नही होती। इसी भांति ३२वें अध्याय में मिर्जा खुर्शेद नगर में वेश्याओं की एक नाटक मण्डली बना लेते हैं। मि० मेहता उस पर तर्क वितर्क करते है जो दोनो मित्रों की अति भावुकता की परिचायक है कथा विकास की सूचक नहीं। नगर की कथा से सम्बन्धित एक घटना ऐसी है जिसे आकस्मिक कह सकते हैं वह है मि० खन्ना के मिल में आग लग जाना।

कथा शिल्प की दृष्टि से वे अध्याय जो एक पात्र को लेकर अग्रसर हुए है दोषपूर्ण हैं। बारहवें अध्याय में गोबर की यात्रा का विवरण कोई कथात्मक शृंखला नहीं जोड़ता उन्तीसवें अध्याय में सिलिया का सोना के घर जाने वाला भी अप्रासंगिक और अनावश्यक विस्तारजनक आख्यान है। शेष कथा चाहे वह गांव की है या नगर की वर्णनात्मक शिल्प विधि द्वारा एक दूसरी से गुम्फित कर दी गई है और अपने व्यापक प्रभाव को अंकित करने में समर्थ सिद्ध हुई है। वर्णनात्मक शिल्प विधि के उपन्यासों में मानवचरित्र अपनी समग्रता सामाजिकता विविधता विषमता तथा बहिर्गत उलझनों के साथ अभिचित्रित होता है। गोदान का होरी भी एक ऐसा ही पात्र है। उसकी वर्गगत प्रतीकात्मकता असन्दिग्ध है। उसे हम ग्रामीण सामाजिक संघटना और रूढ़िगत धारणाओं का पुतला मान कर चलते है। वह पहिले कृषक है फिर पिता पति या व्यक्ति है। होरी की विशिष्टता एवं विलक्षणता का विवेचन विभिन्न आलोचकों ने इन शब्दों में किया है—'होरी के रूप में उन्होंने भारतीय कृषक को ही मूर्तिमान कर दिया है। जीवन भर परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ किसान अन्त में अपनी करुण कहानी का व्यापक प्रभाव छोड़कर समाप्त हो जाता है। भारतीय किसान की समस्त विषमता होरी में साकार हो उठी है।'[12]

गोदान का होरी गरीब स्थिति के किसान का प्रतीक है। उसका व्यक्तित्व उस

---

१२ आचार्य नन्ददुलारे—प्रेमचन्द साहित्य विवेचन—पृष्ठ १४४

वग का व्यक्तित्व है।"[१३]

'इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है हारी। वह भारतीय किसान का प्रतिनिधि है।"[१४]

"होरी का सघप सामाजिक व्यक्तित्व के साथ वयक्तिक व्यक्तित्व का नही है बल्कि सामाजिक व्यक्तित्व का समाज व्यवस्था के साथ है जिसम जमादार एक है तो साहूकार तीन-तीन, एव शासन व्यवस्था जिनके सरक्षण के लिए इनकी ही नीति अपनाती है।'[१५]

होरी की समाज एव धम भीरुता वणनात्मक ढग से चित्रित की गइ है। वह सदैव अपना गदन शोषकों के पाव तले दबी अनुभव करके भी सी नही करता उन्हें सहलाना उसकी प्रवृत्ति बन चुकी है। चारित्रिक विविधता की भी उसम कमी नही है। वह स्वार्थी भी है और परमार्थी भी। एक क्षण पूर्व किए गए निश्चय अनुसार भोला को ठग कर गऊ ले लेना चाहता है, किन्तु दूसरे ही क्षण उसे दुखी देख बिना मोल लिए भूसा दे डालता है। हीरा और शोभा को धोका देन के निमित्त दमडी बसार से छलपूर्ण सौदा करने वाला होरी धम भीरुता के कारण बैल को खोल ले जाने वाले भाला के सम्मुख असहाय एव निरुपाय खडा रहता है। सहनशीलता एव धय का यह सकेत उसके शील के सकतक रूप म नहा अपितु परम्परा और रूढियो की निर्वैयक्तिक सत्ता की स्वीकृति के परिणाम के आधार पर दिया गया है। होरी म किसान के प्रतिनिधित्व का पुष्ट करन के लिए प्रमचन्द लिखते हैं—' किसान पक्का स्वार्थी हाना है इसम सन्देह नहा। उसकी जेब से रिश्वत के पैसे बडी मुश्किल से निकलते हैं भाव-तोल म भी वह चौकस हाता है लकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वक्षो म फल लगते है उन्हे जनता खाती है, खेती म अनाज हाता है, वह ससार के काम आता है, गाय के थन म दूध होता है वह खुद पीने नही जाती दूसर ही पीते हैं मघो से वर्षा होती है, उससे पथ्वी तप्त होती है। ऐसी सगति म कुत्सित स्वार्थ के लिए स्थान कहा ? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर म हाथ सकना उसन न सीखा था। "[१६] होरी के रूप म कृषक समाज की परोपकारी प्रकृति का किया गया यह सामहिक चरित्र चित्रण वणनात्मक ढग पर किया गया है।

किन्तु सवत्र एसा नही हुआ है। धनी मानी कहलान और समझे जान वाल शोषक समाज का चित्रण नाटकीय प्रणाली द्वारा कराया गया है। रायसाहब अमरपाल सिंह होरी स वार्ता करत हुए इस समाज क यथाथ रूप का उदघाटन करत है जो इन शब्दो म अकित है।

'हम भी दान देते है धम करते हैं। लकिन जानते हो, क्यो ? कवल अपने बराबर वालो को नीचा दिखान के लिए। हमारा दान और धम कोरा अहकार है विशुद्ध अहकार।

---

१३ श्री बाबूराम विष्णु पराडकर—प्रेमचन्द कृतियाँ और कृतित्व सम्पादक डा० प्रेमनारायण टडन—पृष्ठ १५५

१४ श्री विश्वम्भर मानव—वही—पृष्ठ ११३

१५ डॉ० रामखेलवन पाण्डेय आलोचना विशेषांक (३३) पृष्ठ १५७

१६ गोदान—पृष्ठ १०

हमम से किसी पर डिग्री हो जाय कुर्की आ जाय, बकाया मालगुजारी की इल्लत म हवालात हो जाय किसी का जवान बेटा मर जाय किसी की विधवा बहू निकल जाय, किसी के घर म आग लग जाय, कोई किसी बेश्या के हाथा उल्लू बन जाय या अपने आसामियो के हाथो पिट जाय तो उसके और सभी भाई उस पर हसगे बगले बजायगे। मानो सारे ससार की सम्पदा मिल गई। और मिलेंगे तो इतने प्रेम से, जैसे पसीने की जगह खून बहाने को तयार हैं।[17] इस कथन द्वारा नाटकीय रूप म नायक समाज के अवगुणो—स्वार्थ, ईर्ष्या कपट आदि का पर्याप्त परिचय प्राप्त हो जाता है।

सामूहिक चित्रण का यह रूप प्रेमचन्द की शिल्पगत पकड का परिचायक है। जहा भी दो पात्र मिलते हैं अपने दुख दर्द रोने बठ जाते हैं किन्तु उनके य दुखडे व्यक्ति परक न रहकर समाज परक हो जाते हैं। इसी द्वारा समाज के बाह्यरूप पर पूरा प्रकाश पड गया है और उस यथार्थ रूप म देखा परखा जा सकता है। रायसाहब-खन्ना वाता म रायसाहब द्वारा अपनी परेशानिया के साथ-साथ समाज का रूप उद्घाटित करना राय साहब ओकारनाथ वाद विवाद म रायसाहब द्वारा अपने (तथा अपने जसे सामतो) के काले कारनामो की सूची देना[18] तथा रायसाहब बातचीत के प्रसग म तथा कथित शोषक समाज की रहस्यवत्तिया का उद्घाटन करना[19] और अन्त म खन्ना का विक्षिप्त अवस्था म सब कुछ कह जाना,[20] शिल्प के क्षेत्र म अन्यतम उदाहरण हैं।

होरी खन्ना रायसाहब के अतिरिक्त दातादीन भी एक वर्गगत पात्र है और स्थिर (static) चरित्र का उदाहरण है। इस पात्र का चित्रण विश्लेषणात्मक ढग पर करते हुए कथाकार लिखता है— दातादीन हार मानने वाले जीव न थे। वह इस गाव के नारद थ यहा की वहा वहा की यहा, यही उनका व्यवसाय था। वह चोरी तो न करते थे उसम जान जोखिम था पर चोरी के माल म हिस्सा बटाने के समय अवश्य पहुच जाते थ। कही पीठ म धूल न लगने देते थ। जमादार को आज तक लगान की एक पाई न दी थी कुर्की आती तो कुए म गिरने चलते नोखेराम के किए कुछ न बनता, मगर आसामियो को सूद पर रुपए उधार देते थे। किसी स्त्री को कोई आभूषण बनवाना है दातादीन उसकी सेवा के लिए हाजिर है। शादी ब्याह करने म उन्ह बडा आनन्द आता है, यश भी मिलता है दक्षिणा भी मिलती है। बीमारी मे दवा दारू भी करते है झाड फूक भी जसी मरीज की इच्छा हो। और सभा चतुर इतने है कि जवानो म जवान बन जाते है बालको म बालक और बूढो म बूढे। चोर के भी मित्र है और साहु के भी। गाव म किसी का उनपर विश्वास नही है पर उनकी वाणी म कुछ ऐसा आकर्षण है कि लोग बार-बार धोखा खाकर भी उन्ही की शरण जाते हैं।[21] वास्तव म ऐसे ही पोंगे पडितो

---

१७ गोदान—पष्ठ १३
१८ वही—पष्ठ ८८
१९ वही—पष्ठ १७३ १७४
२० वही—पष्ठ २३२
२१ वही पष्ठ १२५

के कारण हिंदू समाज और इस देश की बड़ी भारी हानि हुई है। दातादीन भी किसी शोषक से कम नहीं है। वे होरी को मजदूर तक बना डालते है।

शोषक वग के प्रतिनिधि रूप में दो पात्र उल्लेखनीय हैं। ये दोनों क्रमश सामन्त शाही और पूजीवादी चरित्र के प्रतीक ह। रायसाहब सेवा और त्याग का ढाग रचकर कौंसल म पहुच जाते हैं। अपने अवगुणो को विवशता के आवरण मे ढकना चाहते है। कथाकार ने इनका अधिकतम चित्रण इन्ही की वाणी द्वारा करा दिया है, किन्तु मि० खन्ना के चरित्र पर वह स्वय प्रकाश डालकर वणनात्मक विधि का प्रश्रय लेना दिखाई पडता है—'अन्य कितने ही प्राणियो की भाति खन्ना का जीवन भी दोहरा या दो रुखी था। एक ओर वह त्याग और जन सेवा और उपकार के भक्त थे, तो दूसरी ओर स्वाथ और विलास और प्रभुता के। कौन उनका असली रूप था वह कहना कठिन है। कदाचित उनकी आत्मा का उत्तम आधा सेवा और सहृदयता से बना हुआ था मद्धिम आधा स्वाथ और विलास स। पर उत्तम और मद्धिम म बराबर सघष होता रहता था। और मद्धिम ही अपनी उद्दण्डता और हठ के कारण सौम्य और शात उत्तम पर गालिब था।'[22] किंतु कथाकार धीरे धीरे उनके उत्तम को ही मद्धिम पर गालिब कर दिखाता है और यह उसकी ध्येयोन्मुखता का परिचायक है। शिल्प विषयक यथाथ का द्योतक नही।

अब हम स्वतत्र व्यक्तित्व परिचायक पात्रों का उल्लेख मात्र करेंगे। स्वतत्र व्यक्तित्व के स्वामी विकास शील होते है। ये उपन्यास को कभी कभी अनपेक्षित दिशा मे मोड दिया करते है जैसे शुरू शुरू के मेहता और मालती कथा के अंतिम अध्यायो के मेहता मालती म आकाश पाताल का अन्तर है। विलास प्रिय, आत्म केंद्रित मालती अंत तक पहुचते पहुचते सेवा त्याग और विश्वजनीन प्रेम की मूर्ति मालती चरित्रगत विकास की सूचक है। नागरिक कथा का यह सब से अधिक सशक्त पात्र है। नागरिक कथा के सभी पात्र इसकी ओर झुके दिखाए गए अत नागरिक कथानक इसके सहारे गति पाता है अत एव इस पात्र का शिल्पगत महत्व भी बढ जाता है। कथाकार ने इसके चरित्र का सक्षेप एक पक्ति म प्रस्तुत करके रख दिया है—'मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधु मक्खी।'[23] किंतु इतना भर लिखकर उसकी तृप्ति नहीं हुई। उसने मालती के बाह्य आप का चित्रण सविस्तार करके दिखाया है—'नवयुग की साक्षात प्रतिमा है। गात कोमल, पर चपलता कूट कूट कर भरी हुई। झिझक या सकोच का कहीं नाम नहीं। मेकअप म प्रवीण बात की हाजिर जवाब पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार आमोद प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली लुभाने और रिझाने की कला म निपुण, जहा आत्मा का स्थान है वहा प्रदशन जहा हृदय का स्थान है वहा हाव भाव मनोदगारो पर कठोर निग्रह जिसम इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया हो। मालती का यह रूप पारिवारिक तथा शक्षिक प्रतिक्रिया का परिणाम है। मालती का चारित्रिक विकास और

---

२२ गोदान—पृष्ठ २८८ ८९
२३ वही—पृष्ठ १५६
२४ वही—पृष्ठ १५६

परिवर्तन मेहता के बुद्धिबल और तेजस्विता का शुभ परिणाम है अतएव चारित्रिक शिल्प की कसौटी पर खरा उतरा है।

मेहता केवल दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक ही नहीं है, स्वयं एक श्रेष्ठ विचारक भी है। अत इनकी चरित्र विषयक गठन का विवेचन विचार विवेचन के अन्तर्गत आ जायेगा।

धनिया के चरित्र पर विचार किए बिना हमारा व्यक्तिपरक चरित्र वर्णन अधूरा ही रह जावेगा। वास्तव में यही वह पात्र है जो होरी के साथ ग्रामीण कथानक की वाहक है। इसके बिना होरी का जीवन अधूरा है और होरी के बिना 'गोदान' की सार्थकता ही नहीं। धनिया का चरित्र भी स्वतंत्र व्यक्तित्व रखता है। वह होरी की अर्धांगिनी होने के नाते उसकी पूरक ही नहीं है समालोचक भी है। शोषण का शिकार होने वाले होरी को वह समय समय आकर बचाती है

किसी भी औपन्यासिक कृति में विचार प्रतिपादन विशिष्ट शिल्प के अन्तर्गत किया जा सकता है। आचार्य नन्ददुलारे के मतानुसार यह कार्य उपन्यास के प्रमुख पात्रों द्वारा कराया जाता है। गोदान में प्रेमचन्दजी ने पात्रों को अपने विचारों का वाहक बनाकर एक शिल्पगत अन्तर प्रस्तुत कर दिया है। सेवासदन 'निर्मला', 'रंगभूमि' आदि कृतियों में आप स्वयं विचार प्रतिपादित करते रहे मुख्य घटनाओं व पात्रों की विवेचना करते रहे हैं। किन्तु गोदान तक पहुँचते पहुँचते आपने यह कार्य अपने प्रमुख पात्रों को सौंप दिया है। रायसाहब अमरपालसिंह, मि० खन्ना, मि० मेहता मालती, होरी धनिया गोबर आदि प्रमुख पात्र इन विचारों का वहन किए हैं।

नारी विषयक विचारधारा मि० मेहता के लम्बे चौड़े भाषणों तथा वाद विवाद में इसी पात्र के मुख से कहलवा दी गई है। एक स्थल पर आप मिर्जा खुर्शेद को कहते हैं— मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है जो अपनी कुर्बानी से, अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का अंश बन जाती है। देह पुरुष की होती है पर आत्मा स्त्री की होती है।[२१]

मि० बी० मेहता वाम सा लीग में एक भाषण देते है। इसका विषय है नारी दायित्व और अधिकार। यह भाषण शिल्पगत महत्त्व रखता है। कथाकार ने इसका आरम्भ १९६वें पृष्ठ पर कराया है और अन्त पृष्ठ १९८ पर। इस प्रकार से यह सात पृष्ठों में वर्णित है। शिल्प की दृष्टि से स्थान एक भारी अभाव है। भाषण धारावाहिक रूप में प्रवाहित नहीं होता। बीच-बीच में अनेक पात्रों (प० ओंकारनाथ मि० खुर्शेद आदि) की टीका टिप्पणी का शिकार हो जाता है। यह तो ठीक उसी तरह हो जाता है जैसे एक कक्षा में पढ़ाते हुए प्राध्यापक को भिन्न भिन्न विद्यार्थियों द्वारा टोका जाना, ऐसा होने पर प्राध्यापक कक्षा के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर सकता। इस भाषण में भी मेहता इसी कारण अपने विषय के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर पाए। प्रेम के विषय तक पहुँचते-पहुँचते वे बहक जाते है। और स्वच्छन्द प्रेम को कोरे विलास का साधन तक कह देते हैं।

---

२१ गोदान—पृष्ठ १८७

मिस मालती भी समय समय पर तक वितर्क करके कथाकार के विचार प्रकट कर रही दष्टिगोचर होती है। मि० महता की उदारता और दानप्रियता पर व्यग्याघात करती हुई वे कहती हैं— तुम किस तक से इस दान प्रथा का समथन कर सकते हो। मनुष्य जाति को इस प्रथा न जितना ग्रालसी और मुफ्तखोर बनाया ह और उसके आत्म गौरव पर जसा आघात किया है उतना अन्याय ने भी न किया होगा, बल्कि मेरे ख्याल मे अन्याय ने मनुष्य जाति म विद्रोह की भावना उत्पन्न करके समाज का बडा उपकार किया है।[२६] इस भाति समस्त कथा म कथाकार के प्रमुख पात्र विभिन्न समस्याओं पर अपने विचार प्रकट करते दिखाए गए हैं। इसका तात्पय यह नही कि कथाकार पूरी तरह परोक्ष मे चला गया। वह कही-कही अपने विचार प्रकट करने का मोह नहीं त्याग सके। प्रेम के विषय का लेकर कथाकार कहता है— प्रेम जसी निमम वस्तु क्या भय से बाघ कर रखी जा सकती है? वह तो पूरा विश्वास चाहती है, पूरी स्वाधीनता चाहती है पूरी जिम्मेदारी चाहती है। उसके पल्लवित होने की शक्ति उसके अन्दर है। उसे प्रकाश और क्षेत्र मिलना चाहिए। वह कोई दीवार नही है जिस पर ऊपर से इटें रखी जाती है। उसम तो प्राण हैं, फैलने की असीम शक्ति है।[२७] कथाकार यही पर बस नही कर देता। वह तो प्रेम को उच्चतम सोपान पर पहुचाकर श्रद्धा का नाम तक दे डालता है— प्रेम म कुछ मान भी होता है, कुछ महत्त्व भी। श्रद्धा तो अपने को मिटा डालती है और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार करना चाहता है, जो कुछ देता है, उसके बदले मे कुछ चाहता भी है। श्रद्धा का चरम आनन्द अपना समपण है जिसमे अहमन्यता का ध्वस हो जाता है।'[२८] इसी प्रेम को श्रद्धा की वस्तु बना कथाकार ने भौतिक जगत से ऊपर की वस्तु बना दिया है। आध्यात्मिकता है ऐहिकता नही, त्याग और परमाथ है छल और स्वार्थ नही। इसी जाज्वल्यमान वातावरण म मालती मेहता रोमास की इतिश्री होती है—मालती का यह सक्षिप्त उत्तर "मित्र बनकर रहना स्त्री पुरुष बनकर रहने से कही सुखकर है' (पष्ठ ३४३) एक अपूर्व प्रेम जगत की सष्टि करता है जो इहलौकिक न रहकर पारलौकिक विचार जगत की वस्तु बन गया है अतएव इहलौकिक शिल्प से ऊपर की वस्तु है।

प्रेम से पूर्व विवाह के बारे म जो विचार दिए गए हैं व स्वय कथाकार न न कहकर महता स कहलाए है— विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हू और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है न स्त्री को। समझौता करने के पहले आप स्वाधीन है समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते है।''[२९]

दान प्रथा पर लेखक ने जो दृष्टिकोण अपनाया है उसका विश्लेषण करते हुए एक आलोचक लिखते है—'दहेज प्रथा पर भी लेखक ने अपने दृष्टिकोण को प्रतिफलित

२६ गोदान—पृष्ठ ३३४
२७ वही—पष्ठ ३३५
२८ वही—पष्ठ ३४२
२९ वही—पृष्ठ ३४४

पीत हैं, मधा स वर्षा हानी है, उसम पृथ्वी तप्त हानी है। ऐसी संसार म कल्पित स्वाथ के लिए वहा स्थान ! हारी विगाड था, और किसी के जमने हुए पर म हाय मलना उसन सीखा न था।[4]

मा का शिल्पगत महत्त्व इसलिए चुन लिया गया है कि समस्त कथा व्यंग्यपूर्ण शली स आग बढ़ी है। कथाकार न व्यक्ति समाज और मापदण्ड आदि पर एक कराग व्यंग्यपात किया है। जब यह कथा के रूप म यह दिखा देता है कि आज भी बड़-स-बड़ा आदमी अपनी स्वाथ कामना की पूर्ति के लिए छोटे-स-छोटे आदमी के द्वार पर पहुच सकता है। कौशिक जी लिखते हैं— स्वाथ म पड़कर मनुष्य प्राय वह काम कर बठता है जो बिना स्वाथ के वह कभी न करता। ब्रजमोहन अथवा सावित्री स ऐसी आशा कभी नहीं हो सकती थी कि व एक सामान्य आदमी के घर पर जाएं और इसके लिए वह आदमी से प्रार्थना करे। परन्तु आज अपने काम के लिए—स्वाथ के लिए बिना बुलाए हो जाने के लिए तयार हैं।[5]

कथाकार ने चरित्रों का भी व्यंग्यपूर्ण ढग स प्रस्तुत किया है। एक स्थान पर व लिखते हैं— पुरोहित जी विदा हुए। वे मकान स निकलकर थोड़ी ही दूर पहुचे थ। उसी समय गोकुल प्रसाद उनके पास पहुचे। कौन गोकुल प्रसाद ? वही बाबू श्यामनाथ के वेश्यागामी मित्र।[6] चरित्र प्रकन का यह विधान हिन्दी कथा-साहित्य म अपूर्व है। यहा पर 'कौन गोकुल प्रसाद ?' एक प्रश्न सूचक चिह्न मात्र ही नहीं आया, अपने साथ अनेक प्रश्न लेकर आया है और 'वही बाबू श्यामनाथ के वेश्यागामी मित्र' भी एक ही उत्तर नहीं दे रहा अपितु सारी कथा के समस्त भूल भटके चरित्रों का भंडा फोड़ रहा है।

मा म एक शिल्पगत बात और भी अधिक प्रभावपूर्ण है। वह है कथाकार का अपने का विषय तक ही सीमित रखना। 'मा' म कौशिक जी ने ममतामयी मा और त्यागमयी मा के चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए कथा का जो ढाचा तयार किया है उसम केवल उसीसे सम्बन्धित गिने चुने पात्र और विचार रखे हैं। वे प्रेमचन्द की भांति जीवन और जगत की विविध गुत्थिया सुलझाने नहीं बठ गए। हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि जहा प्रेमचन्द म व्यापकता है वहा कौशिक जी म गहराई है जहा उनमे पात्रगत विविधता है वहा इनम तीव्रता और सूक्ष्मता है।

भिखारिणी—१६३०

भिखारिणी का पढ़कर एक और ही बात मानने का मन उत्सुक हो उठता है। इसमे कथाकार कथा और केवल कथा कहने की कामना लेकर अवतरित हुआ है। भिखारिणी म न तो अत्यधिक पात्रों का ही घटाटोप है और न ही विचारों का मानाए। इस

४ गोदान—पृष्ठ १०
५ मा—पृष्ठ ७१
६ वही—पृष्ठ १६८

उपन्यास म कथा लिखन की विधि अधिक वनानिक व्यवस्थित और सुगठित ह। यहा कवल एक कथा ली गई है। घटनाए और पात्र दोनो अगुली पर गिनाए जा सकत हैं—आदशमयी जस्सो सप्त नन्द रूढिवादी अजुनसिंह तथा श्यामनाथ, रोमाटिक रामनाथ और व्यवहार कुशल ब्रजकिशोर एव मुग्धा। चम्पा स ही समस्त कथा का निर्माण हुआ है।

इस उपन्यास म कथा कहन के ढग म भी एक अन्तर स्पष्ट दष्टिगोचर होता है। जहा पर मा' की समस्त कथा कथाकार द्वारा टीका टिप्पणी सहित कही गई है, वहा भिखारिणी की कथा के कुछ अश पात्र मुखोच्चारित है। भिखारी नन्दू अपनी दारुण गाथा स्वय बाबू ब्रजकिशोर तथा रामनाथ को सुनाता है।[7] कथा इतनी ममस्पर्शी है कि सुनाते सुनाते नन्दू की आखो से अश्रुधारा वहन लगती है। इस कथा की समाप्ति पर कथाकार ने व्यगात्मक शली का प्रयोग किया है। किशोरनाथ से चुटकी लेकर कहता है—"सुनते हो भाई यदि घर स भागन वागन की आवश्यकता पडे तो सीधे मरे घर चले आना—वहा तुम्हे किसी बात का कष्ट न होगा।[8]

विषय के चुनाव म कौशिक जी सदव सिद्धहस्त रहे है। 'मा' की भाति भिखारिणी' का विषय दो चरित्रो का तुलनात्मक अध्ययन न होकर एक ही चरित्र का आदर्शात्मक गठन है। जस्सो के चरित्र का लेकर कथाकार न यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि गूदडी म भी लाल भरे होते हैं। अभावग्रस्त जीवन म पली जस्सा नवयौवन के नाना विलास पाकर भी पथभ्रष्ट नही हुई वह अपने पिता को स्पष्ट कह देती है "पिताजी इस सबध म आप मुझसे क्या पूछत है? जिसम आपको सुख शाति मिले आप वह कीजिए—मरे सुख दुख का विचार छोड दीजिए। मुझे उसीम सुख है जिसम आप सुखी हैं।[9]

भिखारिणी की कथावस्तु इकहरी है। सक्षेप म यह दो तरुण हृदयो की प्रम गाथा ह जिसम पात्र ही कथानक पर छा गए है। पात्रो के चारित्रिक विकास और कथोपकथन क द्वारा ही कथा को आगे बढाया है। यह कथाकार के कथा शिल्प के विकास की स्पष्ट सूचना है जिसे स्वीकार करते हुए डा० शिवनारायण श्रीवास्तव लिखते हैं—"परन्तु 'कौशिक' जी की सबसे बडी विशेषता है उनके कथोपकथन की चुस्ती। मेरी समझ म तो सवाद लिखन म कौशिक जी अपने ढग के बेजोड है। इनके उपन्यासो की धारा ही प्रवाहित होती है उसम वणनता विरल ही होत हैं।[10] हमारे मतानुसार म कथोपकथन शिल्पगत महत्त्व रखत है। इनके प्रयोग स भिखारिणी म इतिवत्तात्मक तत्त्व कम हो गया है और नाटकीय तत्त्व (Dramatic Element) आ गया है। ये सवाद ही कथा का सूत्र सभाले हुए है और बड ही सतुलित, सक्षिप्त और कथा प्रवाह को गतिमय करने

---

७ भिखारिणी—पृष्ठ ४२ से ५२

८ वही—पृष्ठ ५४

९ वही—पृष्ठ १७६

१० हिंदी उपन्यास—पृष्ठ १६३ १६४

प्रसाद वर्णनात्मक शिल्प विधि के उपन्यासकार कहे जाएंगे, न कि विश्लेषणात्मक शिल्प विधि को प्रश्रय देने वाले व्यक्तिवादी कथाकार।

कंकाल – १९२९

कंकाल प्रसाद का प्रथम उपन्यास है। डा० रामरतन भटनागर इसे नई कोटि की रचना बताते हुए लिखते हैं 'कंकाल हिंदी की किसी उपन्यास परम्परा में नहीं आता। उसकी रचना स्वतः नई कोटि की है।'[1] मेरे विचार में कंकाल अवश्य ही प्रेमचन्द परम्परा का वर्णनात्मक शिल्प का उपन्यास है। विषय की दृष्टि से यह स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक आकर्षण प्रत्याकर्षण पर अवलम्बित है किन्तु विषय प्रतिपादन विधि विश्लेषणात्मक नहीं है। धार्मिकता की आड़ में असामाजिक तथा अनैतिक तत्त्वों की भरमार के कारण प्रस्तुत उपन्यास में वर्णनाधिक्य हुआ है। प्रेमचन्द और प्रसाद के सामयिक समाज में मूलतः कोई अन्तर नहीं है दोनों द्वारा समाज चित्रण विधि में भी कोई अन्तर नहीं है फिर इस रचना को किस दृष्टि से नई कोटि की रचना कह सकते हैं? कंकाल में हम हिन्दू समाज में स्त्रियों की दयनीय स्थिति का विवरण पढ़ने को मिलता है।

कंकाल के वस्तु विधान पर दृष्टिपात करने पर हम समस्त कथा चार खण्डों में विभाजित की गई पढ़ने को मिलती है। प्रथम खण्ड में देव निरंजन किशोरी प्रेम गाथा है। दूसरे और तीसरे खण्ड में कथा का विकास होता है और कुछ उपकथाएं कथासूत्र में पिरोई गई हैं। घंटी जितनी चंचल है उतनी ही चंचलता से उसका प्रवेश कराया गया है। एक ओर वह विजय को लेकर प्रेम चक्र में घूमती है तो दूसरी ओर बाथम के साथ प्रेम प्रपंच रचती है। शुद्ध कथाशिल्प की दृष्टि से बाथम संबंधी उपकथानक असामयिक अस्वाभाविक तथा अवांछनीय है। जिसके कारण 'कंकाल' का रूप विशृंखल हुआ उनमें गूजर परिवार गाला बदन संबंधित उपाख्यान भी दृष्टव्य है। विशेषकर गाला की माँ की आत्मकथा कथानक में ठूंस दी गई प्रतीत होती है। इसके बिना कथानक अधिक संघटित एवं व्यवस्थित होता। यही अवस्था श्रीचन्द चन्दा रामास की है जो वास्तव में पानी में उठे बुलबुले से अधिक महत्त्व नहीं रखता। नवाब की मृत्यु के पश्चात् समय अपनी चरमोत्कर्ष अवस्था को तो पहुंच जाता है किन्तु यमुना की गिरफ्तारी विजय का पलायन मंगल की दौड़ धूप संबंधी घटनाओं से तिलस्मी घटना चक्र की गंध आने लगती है। डा० रामरतन ने भी कुछ इसी प्रकार के विचार प्रकट किए हैं। 'जिस प्रकार के घटना संगठन की योजना बाद में हुई है वह चन्द्रकान्ता के युग के उपन्यासों की याद दिलाती है। यह योजना इसलिए करनी पड़ी है कि प्रसाद एक विशेष सिद्धान्त से परिचालित हैं। वह अपने प्रत्येक पात्र को अवैध हीन मानव और कुल भ्रष्ट सिद्ध करना चाहते हैं।'[2]

सिद्धान्त प्रतिपादन हित कथा सूत्र को अवैज्ञानिक रूप देने के कारण कथा शिल्प पर भारी कुठाराघात हुआ है। इसके पश्चात् चतुर्थ खण्ड में कथा का अवसान होता है और

---

१ प्रसाद साहित्य और समीक्षा—पृष्ठ १५०
२ वही—पृष्ठ ७२

इस प्रसंग में पूर्व कथाकार ने कई तथ्यों का उद्घाटन कर दिया है जिसमें (तारा मंगल) का अवैध सन्तान मोहन का रहस्य उद्घाटन प्रमुख स्थान रखता है। प्रथा भिखारी नन्दा से उसकी पुत्री घंटी का मिलाप करा कर गंगा में डूब मरता है। हरिद्वार वाली चाची ही नन्दा है। मंगल सरला का पुत्र है और तारा ही यमुना है और उसकी उत्पत्ति देव निरंजन रामा सहवास से हुई, इसकी पुष्टि भी कर दी गई है।

'कंकाल' की कथावस्तु में सबसे अधिक प्रभावित करने वाली बात है—इसका अन्त। सम्भवतः 'गोदान' और 'संन्यासी' को छोड़कर इतना करुणापूर्ण, प्रभावपूर्ण और करुण अन्त अन्य किसी उपन्यास का नहीं हो पाया है जितना 'कंकाल' का। उपन्यास के अन्त में हम एक ऐसे नर कंकाल को देखते हैं जिसके शव को फूंकने तक के लिए कोई तैयार नहीं—उसकी बहन तारा तक विवश है और नगर कालीन मित्र मंगल भी देखता रह जाता है।

'कंकाल' में हम वर्गगत और वैयक्तिक दोनों तरह के पात्र मिलते हैं। मंगल एक वर्गगत पात्र है। वह मध्यवर्गीय दुर्बलता तथा विलासिता का प्रतिनिधित्व करता है। उसके चरित्र में द्वैधात्मकता है। उसके विषय में तारा कहती है— 'वह पवित्रता और आलोक से घिरा हुआ पाप है कि दुर्बलताओं में लिपटा हुआ एक दृढ़ सत्य।'[२] उसके चरित्र का बहुरूपियापन इस तथ्य से उद्घाटित हो जाता है कि बाहर से महानता और आदर्शवादिता का रूप धारण करते रहने पर भी वह तारा को गर्भवती बना ठीक विवाह के दिन यह जानकर भाग जाता है कि तारा दुश्चरित्रा माँ की सन्तान है। इस प्रकार के व्यक्तियों की शिष्ट समझे जाने वाले मध्यवर्ग में कोई कमी नहीं है। आडम्बर, धार्मिक पाखण्ड आदि अभाव इस वर्ग की जानी पहचानी बातें हैं जिनके सभी रूप मंगल में विद्यमान हैं। ऐसा ही विजय का चरित्र समाज का वास्तविक रूप है। इसके द्वारा समाज में व्याप्त दुराचार, असमानता और ढोंग का पर्दाफाश हुआ है। विजय का चारित्रिक विकास पूर्ण कलात्मक है। उसमें विद्यमान उच्छृंखलता स्वाभाविक है। वह क्रमशः यमुना, घण्टी और गाला की ओर वासनात्मक दृष्टि से देखता है। तारा त्याग, प्रेम और संयम की प्रतीक बनकर भारतीय नारीत्व का प्रतिनिधित्व करती है।

वर्णनात्मक शिल्प विधि के अधिकतम उपन्यासों के पात्रों का स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं होता। वे उपन्यासकार के हाथों की कठपुतली होते हैं। 'कंकाल' के पात्र भी कथाकार के संकेत पर चलते हैं। इस संबंध में एक आलोचक लिखते हैं—'लेखक को कुछ विशेष प्रकार के पात्रों का चित्रित करना था और उसने उन्हें विभिन्न परिस्थितियों में डालकर उनके चरित्र के अभिप्रेत पक्षों का प्रदर्शन किया है। इसके लिए पात्र अनेक स्थानों पर लेखक के संकेत पर घूमते फिरते हैं। देवनिरंजन किशोरी यमुना, विजय मंगल देव आदि सुविधा के अनुसार कभी हरिद्वार कभी काशी, कभी मथुरा आदि स्थानों पर पहुँच जाते हैं।'[३] 'कंकाल' के पात्र सूत्रवत संचालित हुए हैं। 'कंकाल' में हम यत्र तत्र

---

२ कंकाल—पृष्ठ ११

३ डा० त्रिभुवननारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ १२२

पात्रों की प्रवृत्तियों का विवरण भी मिल जाता है व प्रमचन्द की भांति पात्र की बाह्य आकृति वेश भूषा और रूप रंग का वर्णन करने में ही संलग्न नहीं रहे।

प्रसाद जीवन और जगत के व्याख्याता है। अपने उपन्यासों म इन्होंने पाप और पुण्य नर और नारी धम और समाज, प्रेम और विवाह आदि शाश्वत विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। कंकाल म विजय पाप की व्याख्या करते हुए कहते है—'पाप और कुछ नहीं है यमुना जिन्हें हम छिपा कर किया चाहते है उन्हीं कर्मों को पाप कह सकते हैं, किन्तु समाज का एक बडा भाग उसे यदि व्यवहार्य बना देता वही कम हो जाता है। धम हो जाता है।'[4] कितनी सुन्दर व्याख्या है। उन्मुक्त प्रेम पर अपने विचार अभिव्यक्त करता हुआ यह पात्र कहता है— जो कहते है अविवाहित जीवन पाशव है, उच्छृंखल है व भ्रान्त है। हृदय का सम्मिलन ही तो ब्याह है। मैं सवस्व तुम्हें अपण करता हूं और तुम मुझे, इसमे किसी मध्यस्थ की आवश्यकता क्या—मन्त्रों का महत्त्व कितना? मैं स्वतंत्र प्रेम की सत्ता स्वीकार करता हूं, समाज न करे तो क्या।[5]

व्यक्ति स्वतन्त्रता की इस युग वाणी को प्रसाद ने राजनैतिक पहलू के परिवेश म प्रस्तुत किया है— प्रत्येक समाज म सम्पत्ति अधिकार और विद्या न भिन्न देशों म जाति वर्ण ऊंच-नीच की सृष्टि की। जब आप उसे ईश्वरकृत विभाग समझने लगते है तब यह भूल जाते है कि इसमे ईश्वर का उतना संबंध नहीं जितना उसकी विभूतियों का। कुछ दिनों तक उन विभूतियों के अधिकारी बने रहने पर मनुष्य के संस्कार भी वैसे ही हो जाते है और वह प्रमत्त हो जाता है। प्राकृतिक ईश्वरीय नियम विभूतियों का दुरुपयोग देखकर विकास की चेष्टा करता है वह कहलाती है उत्क्रान्ति। उस समय केन्द्रीभूत विभूतियां मानव स्वार्थ के बंधनों को तोडकर समस्त भूतहित बिखरना चाहती है। यह समदर्शी भगवान की क्रीडा है। इसीलिए भारतसंघ सवसाधारण के लिए मुक्त है वह वर्गवाद धार्मिक पवित्रतावाद आभिजात्यवाद इत्यादि अनेक रूपों म फले हुए सब देशों के भिन्न भिन्न प्रकार के जातिवादों की अत्यन्त उपेक्षा करता है। यही व्यक्ति की राजनीतिक स्वतन्त्रता है।[6] इस टिप्पणी को पढकर श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय लिखते हैं— व्यक्ति स्वातन्त्र्य के इस उद्बोधन मे स्त्री-पुरुष का भेद भाव नहीं पाया जाता सभी पात्र समाज के अभिशाप से सन्तप्त और व्यक्ति के विकास की आस्था से आश्वस्त है।[7]

व्यक्ति विकास समाज कल्याण धम स्वरूप आदि विषय कंकाल म वर्णनात्मक शिल्प विधि म प्रस्तुत हुए है। प्रसाद ने मानव जीवन लीला का परिवीक्षण करके उसे जो मूर्त स्वरूप (structure) दिया है। उसके द्वारा व्यक्ति की जातीय संस्कृति सामाजिक वातावरण और जीवन क्रम म आई मानस वृत्तियां वर्णनात्मक रूप म प्रस्तुत होकर पाठक को एक दृष्टि विशेष अपनाने की प्रेरणा देती हैं।

---

४ कंकाल—पृष्ठ १०७
५ वही—पृष्ठ १७५ १७६
६ वही—पृष्ठ २१२
७ हिन्दी कथा साहित्य—पृष्ठ ७१

'तितली'—१६३४

'कंकाल' की भाति 'तितली' भी वणनात्मक शिल्प विधि की रचना है किन्तु इसमे वर्णित जीवन 'कंकाल' से नितान्त भिन्न है। 'तितली' मे कथाकार ने ग्राम की ओर प्रयाण किया है। धामपुर गाव ही सारी कथा का केन्द्र है। वजो और मधु अर्थात तितली और मधुवन इसके प्रधान पात्र हैं। 'कंकाल' मे स्त्री-पुरुष की यौन समस्याओ और मानवीय दुबलताओ का व्यापक वणन प्रस्तुत हुआ है किन्तु 'तितली' मे प्रेम के आदश और सयत स्वरूप का विवरण पढ़ने को मिलती है। वाटसन द्वारा शैला के वैवाहिक सम्बन्धो का समर्थन करना एक आदश सस्कृति का प्रतीक है।

प्रस्तुत उपन्यास की वणनात्मकता पर प्रकाश डालते हुए एक आलोचक लिखते हैं—'इस उपन्यास मे वर्णित समाज के अनेक स्तर हैं और इनकी शक्ति एव दुबलता दोनो ही की ओर लेखक की दृष्टि है। विषय चयन की दृष्टि से इस उपन्यास मे प्रसाद ने प्रेमचन्द-मार्ग को अपनाया है और जमीदार के कमचारियो की कूटनीति एव धाधली ग्रामीण जनता की सरलता एव घोर स्वाथ वृत्ति गावो की राजनीति, त्योहार-उत्सव मनाने के ढग, सम्मलित कुटुम्ब की दुबलता आदि की झलक दिखाने का प्रयत्न किया है। इसमे ग्राम-सुधार तथा ग्राम-सगठन की ओर भी सकेत है। कविजनोचित उन्मुक्त कल्पना से प्रेरित होकर, एक विस्तृत चित्रपट पर अनेक प्रकार की जीवन रीतियो के चित्रण के उत्साह मे लेखक ने लन्दन तथा कलकत्ता जसे जनसकुल स्थानो मे अपने पात्रो को ले जाकर मानव समाज के विभिन्न रूपो को देखने दिखाने का प्रयास किया है। 'प्रस्तुत ग्रन्थकार के विचार मे प्रसाद इस प्रयास मे सफल रहे हैं। उन्होने 'तितली' मे मानव समाज का व्यापक चित्र प्रस्तुत किया है।

'तितली' की कलात्मकता और शिल्पगत प्रौढता पर प्रकाश डालते हुए एक आलोचक लिखते हैं— 'तितली' मे प्रेमचन्द के उपन्यासो 'रगभूमि' 'गोदान' के सभी प्रसगो का समावेश मिल जाता है, किन्तु सत्याग्रह आन्दोलन का स्पश प्रसाद ने नही किया। चरित्र चित्रण कथावस्तु का विकास और उसका अन्तर्जातीय निवाह 'तितली' की अलग विशेषता है। पात्रो के मानसिक घात प्रतिघात का विश्लेषण इसमे प्रेमचन्द से अधिक है 'तितली' मे आज के भारतीय नर-नारी का यथाथ चित्रण है।' 'तितली' मे तितली का चरित्र अत्यधिक प्रभावशाली है। वह हम 'गोदान' की धनिया की दृढ़ता और 'निर्मला' की निर्मला की सी सहिष्णुता का परिचय देती है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रसाद उपदेशक बनकर सामने नही आए उन्होने सूक्तियो और व्यग चित्रो से काम लिया है।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव

प्रेमचन्द के पश्चात प्रतापनारायण श्रीवास्तव तीसरे प्रमुख उपन्यासकार है जिन्होने वणनात्मक शिल्पी की भाति जीवन के विस्तृत क्षेत्र का चित्रण विवरणात्मक

---

८ डा० शिवनारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ १२३

६ [illegible]

ढग स किया है। उ होन समाज मे प्रतिष्ठित उच्च वग की पारिवारिक एव सामाजिक दशा का वणन एक इतिहासकार की तरह स किया है। इन्होन अपने उपन्यासा म कथा वस्तु का फलाव और चरित्र चित्रण का विकास वणन विस्तार की विधि द्वारा किया है। एक एक घटना का लेकर उसकी विशद व्याख्या की गई है और एक एक चरित्र का विस्तार उपयुक्तता की सीमाग्रा का उल्लघन कर गया है। आदशवादी विचारधारा इनके पात्रा द्वारा वणनात्मक शिल्प विधि स प्रस्तुत हुई है। इनके नीचे उपन्यासा का शिल्प गत अध्ययन उपस्थित किया जाता है।

विदा—१६२८

विदा प्रतापनारायण श्रीवास्तव की प्रथम औपन्यासिक कृति है। इसम सिविल लाइस के बगल म रहन वाल बाबू निमलचन्द की कथा है। यह कथा पाच खण्डा म विभाजित की गई है और डा० शिवनारायण श्रीवास्तव इस वज्ञानिक बतात हुए लिखत है—' विदा म जा सबस पहली बात हम आकर्षित करती है वह है इसकी वस्तु का वज्ञानिक सगठन। नाटक के पाच अंशा की भाति विदा क पाच अक भी वज्ञानिक आधार पर किए गए ह।'[1] कथा का खण्डा म विभाजित करक आग बढाने का प्रयाग जयशकर प्रसाद न 'ककाल' म और 'कौशिक' न मा म किया है। यह रीति कविता के क्षत्र म सगबद्ध काव्य और नाटक के क्षत्र म अक विभाजन क अन्तगत प्रयुक्त हाती रही है किन्तु उपन्यास क क्षत्र म इसक द्वारा कथा की गति का तीव्रता रुक जाती है अत यह वज्ञानिक नही कही जा सकती। आरम्भ प्रयत्न, सघप विमश आदि नाटक क शिल्प म सौ दय वद्धि करते ह उपन्यास अबाध गति का अपना रखना है इसम इस प्रकार की सधियो की आवश्यकता नही है।

विदा म निमलचन्द्र कुमुदिनी दाम्पत्य की लघु कथा का बहिर्गत (Extrovert) जीवन का नाना घटनाओ स आच्छादित करक समाजपरक और वणनात्मक बना दिया गया है। इसम दाम्पत्य की भारतीय एव पाश्चात्य मान्यताग्रा का खुलकर वणन किया गया है। इसम आदश पुत्र आदश पत्नी और आदश प्रमिका का विशद चित्रण हुआ है। निमल एक आदश पुत्र है लज्जा पतिव्रता गहिणी है केट एक आदश प्रमिका है। आदश के पुतले निमल बाबू अपना माता का सवा म सलग्न हैं उनकी पत्नी कुमुदिनी इसी कारण उनस रुष्ट है और पीहर चल जान पर विदा हा जाना है कथा क चतुर्थांश तक दाना सम्मिलित रहकर वियाग का अनुभूतिया अर्जित करत है, यथाथ क लाक म रह कर भी दाना आदश का बातें साचत और करत रहत है जिसक फलस्वरूप उपन्यास की घटनाए बन गइ हैं और यह वणनात्मक उपन्यास बन गया है।

कथानक म कुछ आवश्यक माड प्रस्तुत करन क लिए तथा इस विवरणात्मक स्पष्टता क लिए कुछ पत्रा का याजना का गइ है। उपन्यास क प्रथम खण्ड के आठवें अध्याय म सघषात्मक व्यापकता लान क लिए कुमुद अपन पिता बाबू माधवचन्द्र का

---

१ हिन्दी उपन्यास—विकासक्रम प्रेमचन्द-युग—पृष्ठ २४१

पत्र लिखती है, इसके द्वारा वह क्रोधी पिता के क्रोध को भडका देती है और प्रतिक्रिया स्वरूप वे उसे अपने पुत्र द्वारा अपने पास बुलवा लेते ह। दूसरा पत्र कुमुदिनी की सखी चपला द्वारा उसे लिखा गया है जिसम उसके अभाग्य के मूल कारण पर खुलकर प्रकाश डाला गया है तथा भविष्य को उज्ज्वल बनाने की प्राथना तथा प्ररणा दी गई है।[2] चपला अपने पत्र मे अपनी भावधारा को वणनात्मक रूप म उडेल डालती है। भय, क्षोभ, आशका और लज्जा की मिली-जुली भावधारा का विशद चित्रण कथानक को बोझीला बना देता है। इस पत्र मे इन मनोदगारो का विश्लेषण नही हुआ, केवल विवरण दिया गया है। निमल चपला रामास कथानक को भारी भरकम बनाने के हेतु नियोजित हुआ है। मसूरी की हरियाली म यह हरा होता है और वही इसका अन्त भी होता है। कुमुदिनी द्वारा इस अनतिक सबध के पकड लिए जान पर चपला के हृदय म ग्लानि उत्पन्न होती है और केट द्वारा देवदत्त प्रसग सुनकर उसके मन म सेवा भाव पैदा होता है। यही तक घटनाओ का जाल बिछा हुआ है इसके अनन्तर केट और चपला का विदेश यात्रा का सकल्प और घटनाओ का अन्त है, यह अन्त पूण स्वाभाविक, परिस्थिति अनुकूल तथा शिल्पगत गठन से परिपूण है किन्तु उपन्यास के मध्य म कतिपय घटनाए अति विस्तृत हो गई हैं और आधिकारिक कथा पर छा गई है। जान डिक या देवदत्त से सबधित घटनाए ऐसी ही है। जान डिक का नाम बदल-बदलकर सामने आना मन को अच्छा लगता है किन्तु बुद्धि को अखरता है। इसके द्वारा जासूसी उपन्यास के वातावरण की सृष्टि हुई है। रेल म टनल्म क्लाइव के साथ यात्रा कर रहे महाशय अपने को काक बताते है किन्तु ये विलसन नामधारी जान डिक ही है य जान डिक के किस्से स्वय ही सुनाते हैं इनका मुख्य कथा से कोई सबध नही है, ये उपन्यास को वणनात्मक बनाने म ही सहायक सिद्ध हुए है। उपन्यास म प्रधानता कथा सगठन और कुतूहल निर्वाह को दी गई है इसके लिए वस्तु विधान इतिवृत्तात्मक रखा गया है और इसम तीन परिवारो की कहानी को उठाकर घटनाओ का जाल बिछा दिया गया है।

विदा का चरित्र चित्रण की विधा पर परखें। इसके प्राय सभी पात्र किसी-न किसी वग का प्रतिनिधित्व करते है। राय बहादुर माधवचन्द्र बगला मे रहने वाले भारतीय उच्च वग के प्रतीक हैं। धन वैभव और सम्मान की अय म ऐसे मन्धि रहते ही हैं। निमल बाबू उपन्यास के नायक है और आदशप्रिय त्यागी युवक का प्रतिनिधित्व करते है। ये उपन्यास मे स्थिर (Static) रहते है और तीथ यात्रा म केट के सम्पर्क म आकर और मसूरी म चपला के साथ रहकर भी अपने आदश से तिल भर नही टलते। कुमुदिनी आदर्शोन्मुख दृढ़शीला नारी की प्रतीक है। चपला नउ ा केट, मिस्टर वर्मा और जान डिक अपने अपने वग की विशेषताओ और अभावो से परिपूण है।

उपन्यासकार न चरित्र चित्रण की दोनो विधाओ का प्रयोग करके पात्रो का चारित्रिक विकास किया है। वह स्वय वणनात्मक विधि द्वारा अपने शब्दो म पात्रो की रूप रेखा प्रस्तुत करता है उनकी तत्कालीन बाह्य परिस्थितियो का प्रभाव उनके बाह्य काय-

---

२ विदा—पृष्ठ ३१८ ३२०

कलाप पर दिखला कर उनका उत्थान व पतन दिखलाता है। माधव बाबू का मिथ्याभिमान परिस्थितियों की क्रिया प्रतिक्रिया का शिकार बनता है, वही उपन्यासकार स्वय कुछ क्षणों के लिए पीछे हटकर उसे बोलने देता है— मैं इसका प्रतिशोध लूगा। प्रतिशोध घोर होगा कि ससार भय से मेरी ओर देखेगा और सिहर कर पीछे हट जायगा। जो पिता अपनी पुत्री को उसके रक्त म स्नान करावेगा उसको अनन्त वधन्य के गहरे गड्ढे म डुबा देगा। उसके सामने पति के शरीर के टुकडे टुकडे करेगा और छोटी छोटी बोटियां करके चील कौव्वा को खिला देगा क्या ससार उसको देखकर भय न खावेगा ससार म हडकम्प न पड जायगा ? ससार थर्रा उठेगा। [३]

ऊपर विश्लेषणात्मक पद्धति के चरित्र चित्रण का उदाहरण दिया गया है किन्तु उपन्यास म अधिकाश म वर्णनात्मक ढग से चरित्रो के कृत्यो पर प्रकाश डाला गया है। माधवचन्द्र के क्रोध निमल बाबू के आदर्श और कुमुदिनी के दर्प का चित्रण अधिकाश म स्वय उपन्यासकार ने ही किया है। वह लिखता है कि माधवचन्द्र अक्रूरय का कृत्य कर दिखलाने की क्षमता रखते है। निमल बाबू सुशिक्षित सेवा परायण और त्यागी जीव हैं। कुमुदिनी पति के पास जाने म लज्जा भय अपमान और आशका की अनुभूति करती है। वह टूट सकती है झुक नही सकती। मिस्टर वर्मा के चरित्र विकास म वर्णनात्मक के साथ-साथ विश्लेषणात्मक चरित्र विधि के कतिपय प्रयोग देखे गए हैं— 'मैं इलाहबाद का ज्वाइट मजिस्ट्रेट हू। इगलड का सर्टिफिकेट मेरे पास है। सुशिक्षित हू। अ वि वाहित ही सा हू क्या कौन जानता है ? नही मैं अविवाहित हू। केट तो मर गई मेरे सिवा इसका रहस्य कोई नही जानता। [४] इस प्रकार के एक दो आत्म विश्लेषणात्मक चरित्रगत प्रयोग आवश्यक ही है, क्योकि इनके द्वारा चरित्र की मानसिक द्वन्द्वात्मक स्थिति का रहस्योदघाटन अधिक सफलता से किया जाता है। 'अ वि वा हित सा हू' मि० वर्मा के ये शब्द उसकी आशक्ति द्वन्द्वात्मक मन स्थिति का अधिक स्पष्टता के साथ उदघाटित करते हैं यहा पर यदि उपन्यासकार स्वय मि० वर्मा के विषय म लिखने बैठ जाता कि उसके मन म द्वन्द्व था, आशका थी भय था तो वह चमत्कार न आता जो अब आ गया है।

विदा म उपन्यासकार का ध्यान सब से अधिक अपने लक्ष्य की ओर केन्द्रित रहा है। प्रेमचन्द परम्परा के लेखक होने के कारण प्रतापनारायण ने उपन्यास की समस्त घटनाओं और पात्रों को अपने आदर्शवादी विचारों के अनुसार मोड दिया है। इस उपन्यास म उन्होने मूलत सयुक्त परिवार की समस्या को उठाया है। इसके विभिन्न रूप दिखाकर स्त्री विशेषकर भारतीय स्त्री के दायित्व और सीमाओं की विशद व्याख्या की है। यह कहा उपन्यासकार द्वारा और कही विभिन्न पात्रो द्वारा सामने आई है। चपला निमल वार्ता द्वारा प्रेम के आदर्श रूप की व्याख्या उदाहरण स्वरूप दी जाती है— प्रेम का अन्तिम रूप भक्ति है। पहले मनुष्य किसी ओर आकर्षित होता है वह शुद्ध आकर्षण है आकर्षण

३ विदा—पृष्ठ ३६८
४ वही—पृष्ठ १६७

मोह म बदलता है, मोह अनुराग म, अनुराग प्रेम भक्ति म और प्रेम भक्ति या भक्ति म पाप नही होता, सन्देह नही होता, वासना नही होती। केवल असीम अखण्ड निस्वार्थ प्रेम होता है।"[5]

पात्रमुखोद्वेलित विचार धारा शिल्प की दृष्टि से प्रशसनीय है क्योकि यह अधिकतर सक्षिप्त होती है इसे पढकर पाठक ऊबता नही है, इससे कथा के स्वाभाविक प्रवाह की गति भी मद नही पडती किन्तु लेखक द्वारा प्रस्तुत की गई विचार धारा विस्तृत होती है कथा घातक होती है और कभी कभी मन और मस्तिष्क पर भार डाल देती है। विदा म ससार और ससार जना पर लिखी लेखक की विचारधारा अप्रासगिक और लम्बी तथा मन को ऊबा देने वाली बन गई है।[6]

विकास—१९४१

'विदा' के पश्चात विजय और इसके पश्चात विकास' का प्रकाशन हुआ। इसम एक साथ दो कहानिया ली गई हैं—एक भारतेन्दु आभा की रोमास भरी कहानी है दूसरी मालती कामेश्वर की गाथा है। शिल्प की दृष्टि से दुहरी कथावस्तु की परम्परा प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम और 'रगभूमि' द्वारा प्रतिष्ठित हुई है इसम अधिकतर कथा दोष रह ही जाता है क्योकि कुछ अस्वाभाविक एव आकस्मिक घटनाए सयोजित हो जाती है किन्तु यह वणनात्मक शिल्प की कृतियो म प्राय प्रवृत्ति रूप म स्वीकृत हो चुका है।

'विकास मे अनेक स्थलो पर आधिकारिक और प्रासगिक कथा का निणय करने म कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। भारतेन्दु आभा की मुख्य कथा अनेक स्थलो पर अपना चमत्कार खो देती है विशेषकर उन स्थलो पर जब कथाकार प्रेमचन्द की भाति पुनजन्म वाद की घटनाए देने लगता है ये घटनाए प्रेमचन्द के कायाकल्प से भी बढ चढकर वर्णित की गई हैं और मूल कथा स कोई सबध नही रखती। एक-एक घटना का उल्लेख अनेक बार हो गया है। डा० नीलकण्ठ जब अपनी मत पत्नी का चित्र देखकर उस स्मरण करते हैं, तब पूवजन्म की व्याख्या करते है। उन्ह पूण विश्वास है कि उनकी प्रियतमा अवश्य ही इस जन्म म उन्ह मिलेगी। इस विश्वास को सत्य म परिणत करने के लिए कथाकार ने कथा शिल्प म एसी घटनाए गुम्फित कर दी है कि पाठक दाता तले अगुली दबाने लगता है। दक्षिणी अमरीका म माधवी नीलकण्ठ भेंट पूव नियाजित और उद्देश्य मूलक है, कथाकार की यह कथा सृष्टि सप्रयास है स्वाभाविक नही। माधवी डा० साहब *की पगरज लेने को आतुर हो उठती है य घटनाए कल्पना प्रसूत है अनुभूति प्रधान नहीं।*

विदा से तुलना करने पर 'विकास' के कथा शिल्प म स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है। 'विदा' म तीन कहानिया हैं किन्तु तीनो निमल-कुमुदिनी से सबधित है। यहा कवल दो कथाए हैं और दोनो भिन्न रहती है। इस सबध डा० शिवनारायण श्रीवास्तव का यह कथन सत्यपरक है—' इस उपन्यास म स्पष्टत दो कहानिया हैं, जिनका आपस

५ विदा—पष्ठ २७४

६ वही—पष्ठ २८५ ८६

म कोई सहज सबध नही है। दाना पास पास चिपकाकर रखी हुई हैं।' अमीलिया हुसनभाइ की उपकथा को भी अलग से चलाया गया है केवल उसकी नायिका अमीलिया का पूव सबध भारतेन्दु के साथ जोडकर उस मुख्य कथा के साथ गुम्फित करने की चेष्टा की गई है। ऐसे ही राजा सूरजबख्श की कहानी एक स्वतन्त्र कहानी है जिसम दीवान मातादीन के घुमावदार घटनापूण षडयन्त्र और खेल अनूपकुमारी के भीषण कायक्रमा का विशद वणन है। यह सब जासूसी उपन्यास का आशिक प्रभाव है जिसे कथाकार नही त्याग सका।

उपन्यास की वणनात्मकता विविध काल्पनिक घटनाओ की विशदता स स्वय सिद्ध हो जाती है। उपन्यास का आरम्भ ही एक बडी भारी घटना के साथ होता है जिसम माधवी का अपहरण और विदेश यात्रा का विस्तत वणन है। आभा भारतेन्दु प्रेम की गति मुक्त वातावरण का आश्रय पाकर भी मन्द ही रहती है। वह मौण द्रष्टा है। इस मौण के कारण का उद्घाटन अमीलिया द्वारा कराया गया है। अमीलिया द्वारा प्रेरणा और स्वीकृति पाकर ही वह आभा से विवाह करती है। इधर मालती-कामेश्वर दाम्पत्य भी सुखी नही है। इस असन्तोष का उदघाटन अनेक उपकथाओ द्वारा कराया गया है। कामाध सूरज बख्श और महत्त्वाकाक्षी अनूपकुमारी की घटनाओ से एक तिहाई उपन्यास भर गया है और इस प्रसग म कुल मिलाकर १११ पष्ठ काले किए गए है, जो उपन्यास की वणनात्मकता की श्रीवद्धि ही करत है मुख्य कथा म कोई योग नही देते। उपन्यासकार ने अनूपकुमारी के अतीत पर प्रकाश डालकर उसे स्वामी गिजानन्द की दूसरी पत्नी अहल्या प्रकट करके दो कथाओ म सबध स्थापित करने की जो चेष्टा की है, उसम भी उसे विशेष सफलता नही मिली है।

विकास के सभी पात्र वगगत हैं। डा० नीलकण्ठ आदश प्रेमी है मत पत्नी स भी अनन्य अनुराग रखत हैं। व अपने सिद्धान्त और विश्वास पर अडिग रहत हैं, य पात्र भी अपरिवतनशील हैं। अमालिया मौण भाव स वियोग के क्षणो को व्यतीत करने वाली प्रेमिका है। अनूपकुमारी आदि पात्र महत्त्वाकाक्षा षडयन्त्रकारी प्राणियो का प्रतिनिधित्व करत हैं।

विकास म चरित्र चित्रण की अपेक्षा कथा विकास और विचार प्रतिपादन ही अधिक हुआ है। उपन्यासकार ने कही प्रत्यक्ष तो कही परोक्ष विधि स कुली प्रथा और कलुषित स्त्री व्यापार प्रथा पर प्रकाश डाला है। सभी मुख्य घटनाओ तथा पात्रो का सबध इन समस्याओ से है। डापो वालो द्वारा स्थापित कन्याओ तथा कन्या बनाने की पद्धतियो का वणन अधिक विस्तार क साथ किया गया है। विवाह सबध म आभा क य विचार पठनीय हैं— विवाह जीवन का विकास है और कही-कही यह जीवन का अन्त भी है विवाह क्या है ? प्रेम को चिरस्थायी करने या मुहर का नाम विवाह है। विवाह दो हृदयो क मिलन और उनकी युग्मता का नाम है। इस शब्द म कितना आनन्द है। सत्य ही हृदय नाचने लगता है भूख और प्यास कुछ नही लगती। यह जीवन की भूख

७ हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ २४६

है, जो एक समय आने पर सबको लगती है।"[8]

विसजन—१९५०

शिल्प की दृष्टि से 'विसजन', विल्ग विकास आदि प्रथम कृतियां से भिन्न कोटि का है। इसमे कथाकार स्वय पीछे हट जाता है और पात्रा को मनन करने और कथा कहने का अवसर प्रदान करता है। जेल की कोठरी म आबद्ध नायक रामनाथ अपने अतीत पर विचार करता है और गत घटनाओं को दोहरा देता है। अज्ञेय कृत 'शेखर एक जीवनी' म भी इस विधि को अपनाया गया है किन्तु वहा कथा का रूपाकार (form) विश्लेषणात्मक (Analatical) है। विसजन का कथाशिल्प वणनात्मक (Descriptive) है, अत यह वणनात्मक शिल्प विधि की रचना है।

वणनात्मक शिल्प के कारण कथा प्रवाह की गति को बीच बीच म लम्बी विचार-वणन धारा के फलस्वरूप एक धक्का लगा है। प्रथम खण्ड के तीसरे अध्याय म ही उर्मिला कनक सवाद म कनक अपने विचारा को केवल उर्मिला पर ही प्रकट नही करती अपितु पाठक पर ठास देती हैं। पुरुष भी एक मानव है—की पुनयुक्ति लगभग पाच-छ बार हुई है और इस पर दो पृष्ठ काले कर दिए गए हैं।[9] इतना ही नही उपन्यास की वणनात्मकता की असदिग्धता ता वही सिद्ध हा जाती है जहा अदालत के दृश्य का विस्तृत वणन हुआ है। इसके अतिरिक्त सारे उपन्यास म मजदूर सघ पूजीवादी सगठन आदि का विशद वणन हुआ है और अनेक स्थलो पर पाठक के धैर्य की परीक्षा ली गई है।

शिल्प की दृष्टि से बलवन्त, श्रीराम और सेठ साहबदीन से सबधित उपकथा म आलोचना का विषय है। आधिकारिक कथा से इनका कोई निकट का सबध नही है। ये उपकथाए उद्देश्य मूलक हैं। बाप के पापा का प्रायश्चित पुत्रा का किस प्रकार भुगतना पडता है इस दिखाने के लिए ही इन उपकथाओं की सृष्टि की गई है। बलवन्त ने ऋण लिया और यशवन्त उसे उतारने के लिए सेना म भरती हुआ। इस वणन म वह प्रभाव नही है जो प्रेमचन्द के रगभूमि, कमभूमि और गोदान' के वणना म प्राप्य है। चन्द्रनाथ के षडयत्रा म जासूसी उपन्यास की चक्करदार घटनाओं की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

श्री प्रतापनारायण ने अन्य उपन्यासा की भाति विसजन म भी पत्र-योजना द्वारा विशिष्ट घटनाओं पर प्रकाश डाला है। एक पत्र कनक द्वारा जिलाधीश निक्सन की पुत्री पामीला का लिखा गया है। इसम पुरुष वग द्वारा नारी वग पर किए गए अत्याचारा का विस्तृत वणन है। देवकीनदन एक जासूस की भाति छिपकर सब घटनाओं का सिंहावलोकन करके समय आने पर उनका रहस्योद्घाटन करता है।[10] कुछ घटनाओं के अनन्तर विस्तृत स्वगत कथना की योजना भी की गई है। अधिकतर ऐसे स्वगत कथन किसी न

८ विकास—पृष्ठ ७१
९ विसजन—पृष्ठ १३ १४
१० वही—पृष्ठ २४६ ४८

किसी समस्या की व्याख्या प्रस्तुत करने में लिए जुटाए गए हैं। पुरुष, स्त्री प्रेम विवाह आदि विविध विषयों पर इनके द्वारा पर्याप्त प्रकाश डाला गया है किन्तु इनके द्वारा कथा की गति अबाध नहीं रहती—वर्णनात्मक उपन्यास में इन्हें अस्वाभाविक नहीं माना जा सकता। प्रेमचन्द, प्रसाद, कौशिक आदि वर्णनात्मक कथाकारों की रचनाओं में इस प्रसंगों की भरमार है। इनके द्वारा ही इनकी रचनाओं का कलेवर बढ़ गया है।

विसर्जन के पात्र टाइप हैं व्यक्ति नहीं। चन्द्रनाथ एक प्रगतिशील पूंजीपति का प्रतिनिधित्व करते हैं व अपने विचारों और सिद्धान्तों पर स्थिर रहते हैं। रामनाथ और वनज आदर्शप्रिय प्रतिनिधि पात्र हैं। वनज अपने आदर्शों के आगे बड़ी से बड़ी सम्पत्ति को भी हेय समझती है। त्याग, सेवा, साहस और कर्तव्यपरायणता उसमें है। वह प्रत्येक आदर्शप्रिय भारतीय मध्यवर्गीय महिला में देखे परख जा सकते हैं। रामनाथ अपने आदर्शों की रक्षा हित जेल और मृत्यु दण्ड से भी नहीं घबराता। इन पात्रों में एक न डगमगाने वाली साहसिक प्रतिभा है स्थिरता है। ये मिट सकते हैं झुक नहीं सकते।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव में वर्णनात्मक शिल्प के सभी गुण और दोष विद्यमान हैं। लम्बी लम्बी कहानियाँ घूमती फिरती बाह्य घटनाएं स्थिर (Static) पात्र विस्तृत भाषण तर्कपूर्ण सम्भाषण और उपदेशात्मक कथन इनके शिल्प की कथनीय बातें हैं। इनके विस्तृत वर्णनों के संबंध में एक आलोचक लिखते हैं—"एक ओर मज़ लम्बा म है, *आवश्यक विवरण देने और अनावश्यक शब्दावली व्यवहृत करने का। वे प्राय पात्रों* का पारिवारिक इतिहास और वंशावली देने लगते हैं। जो कथानक की दृष्टि से अनावश्यक है। इससे केवल कलेवर-वृद्धि होती है सौंदर्य-वृद्धि नहीं। उदाहरणार्थ विदा के पृष्ठ ३३ पर निर्मल' के दिवंगत पिता का परिचय। जिस विवरण के साथ उन्होंने वह परिचय दिया है वह मेरे निकट कागज और रोशनाई के व्यय के अतिरिक्त कुछ नहीं है।"[11] आलोचक का यह कथन तथ्यपूर्ण है किन्तु उनके कथानक विस्तार और विवरण-योजना का कारण वर्णनात्मक शिल्प को प्रश्रय देना है। इसके अन्तर्गत कथानक-सौष्ठव चाहे भ्रष्ट हो जाए किन्तु उसका विवरण एक आवश्यकता के रूप में ग्रहण किया जाता है। इस विवरण के कारण ही वह इतिवृत्तात्मक और वर्णनात्मक रूप (form) ग्रहण करता है।

डा० वृन्दावनलाल वर्मा

डा० वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी उपन्यास जगत में ऐतिहासिक लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से मैं इनकी गणना वर्णनात्मक शिल्प विधि के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों में करता हूं। सामाजिक उपन्यास का संबंध वर्तमान समाज से और ऐतिहासिक उपन्यास का संबंध दूरस्थ अथवा निकटस्थ अतीत के समाज और वातावरण से संबंधित रहता है। इनकी तुलना में आंचलिक उपन्यास भी लिया जा सकता है जिसका सीधा संबंध किसी अंचल विशेष के समाज से जुड़ा रहता है। इन तीनों कोटि

---

११ डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास—विकास काल प्रेमचन्द-युग—पृष्ठ २४६

की रचनाओं म जीवन का विवरण, घटनाओं की इतिवृत्तात्मकता और पात्र बाहुल्य वतमान रहता ह। अत तीना की वणनात्मकता असदिग्ध और निर्विवाद ह।

शिल्प की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासकार का काय जटिल रहता है। इस सबध म स्वय वमा जी लिखते हैं—'मेरा अनुमान है कि ऐतिहासिक उपन्यास या कहानी लिखने वाले के सामने कुछ अधिक कठिनाइया रहती है। उसे पात्रा और घटनाओं के सबध म पूरी शोध करनी पडेगी तत्कालीन वातावरण का अपनी आखो के सामने चित्र बनाए रखना पडेगा और साथ ही आज की कोई समस्या उस समय के वातावरण मे रखकर कुछ सुझाव देने पडेंगे परन्तु उपदेशक की हैसियत से नही, न लालबुझक्कड की तरह बल्कि केवल सुझाव देने वाले की हैसियत से—मानो शैल गत की बात निभा रहा हो

उस भविष्य वक्ता की तरह जो मुड-मुडकर पीछे की तरफ देखता है। बात यह है कि उबटा न ले ठोकर खाकर गिर न पडे।

पात्रा के साथ समय और स्थान भी चुनने पडेगे। यूरोप के कई एतिहासिक उपन्यासकारों न अधिकतर बड कहलाने *वाल पात्रों को चुना है इतिहास के पूर निर्वाह म* जो कठिनाई लेखक को भुगतनी पडती है उसे सर कर लेने पर उसे जो सन्तोष और आनन्द प्राप्त होता है, वह अपार है।'[1]

इस सबध म एक अन्य आलोचक लिखते हैं—'एतिहासिक उपन्यास कला की दृष्टि स अतिरिक्त दायित्व की अपेक्षा रखता है। आधुनिक वैज्ञानिक युग न अपने प्रथम चरण से ही कथा-साहित्य का यथार्थ की ओर और इतिहास को वैज्ञानिकता की ओर मोडना प्रारम्भ कर दिया था। इतिहास का वैज्ञानिक बनाना उसकी बहुत बडी देन है किन्तु इससे भी बडी देन है वह ऐतिहासिक दृष्टिकोण जिसके विकास न पुरातन रूढिया और अन्ध आस्थाओं का प्राय उन्मूलन ही कर दिया। ऐतिहासिक अन्तर्दृष्टि ने विगत जीवन को ऐतिहासिक परिप्रेक्षण (Historical Perspective) म देखने की प्रेरणा दी जिसम *बहुत ही महत्वहीन घटनाए महत्वपूण हो उठी।*[2] *इन मतो का सूक्ष्म अध्ययन कर हम* इस निष्कष पर पहुचते हैं कि एतिहासिक उपन्यासकार को अधिक सचेत रहकर लिखना पडता है। विविध घटनाओं और विभिन्न पात्रों को लेकर उनका पूर्वापर सबध स्थापित करते हुए उन्ह व्यवस्थित शिल्प म परिकल्पित और शृ खलित करने की प्रक्रिया (Colligation) जुटानी पडती है। एतिहासिक उपन्यासकार एतिहासिक तथ्यो का मूल्याकन कर अपने शिल्प के सहारे कल्पना द्वारा सत्य को परिचित के स्तर स ऊपर उठाकर भाव लोक म ले आता है। वह गत जीवन के राष्ट्रीय आन्दोलनों का सजीव चित्र उतारने का प्रयास करता है। किसी ऐतिहासिक घटना का ब्योरा देना उसके लिए साधारण बात है।

---

१ डा० वृन्दावनलाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यास—'समालोचक' —पृष्ठ १६१ ६२

२ डा० जगदीश गुप्त इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासकार 'आलोचना' उपन्यास विशेषाक—पृष्ठ १७७

किसी दृश्य या पात्र का वर्णनात्मक चित्र प्रस्तुत करना उसकी विशिष्ट शैली है। भौगोलिक विवरण, ऐतिहासिक परम्पराएं, गत समाज के रीति-रिवाज और प्राकृतिक सुषमा इन कथाकारों द्वारा अधिकतर वर्णनात्मक शिल्प विधि द्वारा संयोजित हुई हैं। वर्मा ने इतिहास के कंकाल में मांस और रक्त का संचार करने के लिए इस विधि को चुना है। इन्होंने १४वीं शताब्दी से लेकर आधुनिक युग के ऐतिहासिक काल खण्डों को अपनी रचनाओं का मूल आधार रखा है।

वर्माजी के उपन्यासों की प्रथम शिल्पगत विशेषता है—कथा सौष्ठव तथा वस्तु एवं शिल्प में संतुलन। इनके उपन्यासों में घटनाओं का एक जाल-सा बिछा रहता है किन्तु कहीं भी इसके तन्तु जर्जर नजर नहीं आते। वस्तु तथा शिल्प को सुदृढ़ बनाने वाले दो तत्त्वों पर प्रकाश डालते हुए एक आलोचक लिखते हैं— 'कथा वस्तु के ढांचे को सुदृढ़ बनाने में दो तत्त्वों का हाथ रहता है—इतिवृत्तात्मक और रसात्मक। इतिवृत्तात्मक घटनाओं के मध्य संयोग स्थापित कर कथा को अग्रसर करता है। घटनाएं प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इस संतुलन और अनुपात में रहें कि उनका क्रम अटूट रहे और कथा का अन्त उन सब क्रिया-कलापों का तर्क संगत निष्कर्ष जैसा जान पड़े। हृदय स्पर्शी घटनाएं रसात्मक स्थल हैं। इतिवृत्तात्मक और रसात्मक स्थलों पर आनुपातिक प्रकाश डाल कर पाठक के हृदय में वांछित प्रभाव उत्पन्न करने में उपन्यासकार की कला है।'[1] वर्माजी के उपन्यासों का वस्तु विधान इन्हीं दो तत्त्वों से आबद्ध है, अतएव इनके कथा शिल्प में आकर्षण और संतुलन आ गया है। उसमें प्रस्तुत संयोगात्मक या दैविक घटनाएं वर्णनात्मक शिल्प विधि की प्रतीक हैं।

वर्मा के उपन्यासों की दूसरी शिल्पगत विशेषता पात्र योजना है। इनके उपन्यासों के अधिकांश पात्र सामंती परिवारों की परम्पराओं के प्रतीक हैं। इनमें हम तत्युगीन राजशाही की समस्त प्रवृत्तियों को सजीव रूप में देख लेते हैं। प्रायः सभी पात्रों का चित्रण वर्णनात्मक शिल्प विधि द्वारा संयोजित हुआ है।

वर्माजी की तीसरी शिल्पगत विशेषता वातावरण का निर्माण है। वातावरण के निर्माण में ही कथाकार की वर्णनात्मकता अधिक उभर कर सामने आई है। राजनैतिक उथल पुथल, सामाजिक गति विधि, धार्मिक हलचल आदि अनेक युगीन चित्रों को इन्होंने पूर्ण विवरण देकर चित्रित किया है। युद्धों के वर्णन, शिकार के दृश्य, भौगोलिक स्थिति के व्यापक चित्र, प्रेम के उतार चढ़ाव, त्योहार तथा अन्य रीति रिवाज से भरपूर इनके उपन्यास वर्णनात्मक शिल्प विधि का साथ कर रहे दृष्टिगोचर हो रहे हैं। युद्ध, प्रेम और शिकार वर्णन पर्याप्त मात्रा में हैं और उनमें कथाकार ने पर्याप्त रुचि का परिचय दिया है। प्रकृति की गोद में क्रीडामान एक झील का वर्णन देखिए— वही शीतल लहरें। उसी तरह की प्रतिबिम्बित प्रकाश रश्मियां। लालिमा और तरंग। पहाड़ियों की गोद में निमग्न नाचने वाली जल राशि। प्रमुदित तरलता। स्वरमय एकान्तता। ठहरा हुआ सौम्य और बंधी हुई उन्मुक्तता। मौन पहाड़ों के घेरे में चंचल-सी जान पड़ती थी। ऊंचे पहाड़

[1] डा० शशिभूषण सिंहल उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा—पृष्ठ ३९ ४०

के नीच विस्तत भील का चित्र बनता है। उसकी लहरा पर ढलत सूय की किरणें नाच रही हैं। इस निजनता और वधन में भी सजीवता और गति है। ऐसी ही अन्धकारमयी रात्रि म वेगवती बेतवा नदी का एक चित्र है। नदी के प्रवाह म चहल पहल है। बडी मछलिया के दौडने का शब्द स्पष्ट सुनाई पडता है। बीच बीच म टिटहरी चिल्ला उठती है, वसे सुनसान है। आकाश म बिखरे हुए तारे वहा प्रकाश के एकमात्र साधन है। पानी पर उनकी कुछ टिमटिमाहट दाख पडती है।"[४] वर्मा का यह वक्तव्य भावपूण और मम स्पर्शी है। वणनात्मक शिल्प विधि की समस्त विशेषताए इनके उपन्यासा म वतमान हैं। सामाजिक रूढिया पर इन्होने तीखे व्यग कसे हैं भीषण युद्धा और राजनैतिक षडयन्त्रों का सजक परिस्थिति अनुकूल और विस्तत वणन किया है। मानव स्वभाव और विशेष घटनाआ पर पर्याप्त टीका टिप्पणी की है। इनके वणन कौशल के सबध म एक आलोचक लिखते है—'उन्होंने अपने कथानकों के घटना स्थलो म अनेक बार भ्रमण किया है उन स्थाना के भग्नावशेषा पर बठ कर वहा की अतीत घटनाओ का स्मति के सहारे जगाया है। फलत उनके वणन निवासोत्पादकता म अपना जोड नही रखते। उनका लडाइया किन्हीं खिलवाड नही है उनकी प्रणय लीलाए सम्पन्न व्यक्तिया की दिमागी ऐयाशी की उफान नही वरन प्राणा का लेने देने वाली सजीव और स्वाभिमानी व्यक्तिया की जीवन परिस्थितिया हैं वमा जी की लेखनी म वणन की शक्ति भाव प्रकाशन की कलात्मकता चरित्र चित्रण की क्षमता और कथानक की ममस्पर्शिता पहचानने के साथ साथ कहानी म उत्सुकता लाने की अपूव शक्ति है।'[५] प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक मता नुसार वर्मा केवल मनोरजन या मनोविश्लेषण को कोई महत्त्व नही देते। अतीत गौरव का यथाथ वणन ही उनका साधन और साध्य है।

गढ कुडार—१९२८

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास शिल्प को निर्धारित करने के लिए उनकी औप यासिक रचनाओं का एक अध्ययन नियोजित किया जाता है। 'गढकुडार' इनका प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। इसम वर्मा ने आरम्भ ही कुडार की चौकिया के वणन इतिहास परक परिचयात्मक शिल्प विधि द्वारा किया है, जिसका निवाह आद्योपान्त हुआ है। बुन्देलखण्ड म होने वाली चौदहवी शती की राजनीतिक उथल पुथल और बुन्देला द्वारा प्रभुत्व प्राप्त करने की कहानी ही इस रचना का मूल विषय है।'[६] गढकुडार म विषय प्रतिपादन ऐतिहासिक वातावरण अनुकूल कथानक द्वारा प्रस्तुत हुआ है। इसम तीन कथाओं का सयोजन हुआ है। मुख्य कथा कुडार के राजकुमार नागदेव के प्रेमाख्यान और खगार राज्य के पतन से सबधित है। इसमें नागदेव के सहचर अग्निदत्त के पराक्रम और

---

४ विराटा की पदमनी—पृष्ठ २१७

५ श्री गगाप्रसाद पाण्डेय हिन्दी कथा साहित्य—पृष्ठ १३९

६ झासी गजेटियर (यूनाइटेड प्राविंसेज आगरा व अवध के गजेटियर्स का चौदहवां ग्रन्थ)—पृष्ठ १८८ १८९

अलेट के उदात्त वर्णन संयोजित है। दूसरी कथा का नायक अग्निदत्त है, जो अपने प्रणय, अपमान और प्रतिशोध के परिवेश में घूमता चित्रित किया गया है। अग्निदत्त ब्राह्मण है और नागदेव की बहन मानवती क्षत्री। इनकी प्रेम गाथा के प्रसंग में अंतरजातीय प्रेम और विवाह की मूल समस्या की व्याख्या की गई है। तीसरी प्रणय कथा तारा दिवाकर के रूप में प्रस्तुत हुई है। दिवाकर सोहनपाल के सेवक मित्र धीर का पुत्र है, तारा अग्निदत्त की प्रिय चाहती बहन। उसे प्रतिदिन कनेर के फूल चाहिए। निराश प्रेमी अग्निदत्त से यह काम सम्पन्न नहीं होता। अवसर, दैविक संयोग दिवाकर के प्रणय को पल्लवित करने के लिए पुष्प प्रतिदान की योजना तयार करता है। मुख्य कथा का संघर्ष और विनाशमय परिणाम इस कथा के नेपथ्य में रहा।

'गढकुंडार' में परिस्थितियाँ बड़ी प्रबल हैं। यही कथा वस्तु का विन्यास करती है। अग्निदत्त की समस्त योजनाएं तथा नागदेव की सब क्रूर लीलाएं परिस्थिति अनुकूल परिवर्तित हुई है। अग्निदत्त मानवती का अपहरण किया ही चाहता है कि नागदेव द्वारा पकड़े जाने पर अपमानित होकर और भीषण प्रतीक्षा करता है। हेमवती का हरण न हो सका। बुन्देला द्वारा उसके विवाह का प्रस्ताव कर ऐतिहासिकता की रक्षा की गई है। इतनी लम्बी कथा पर पूर्ण अंकुश वर्मा के वस्तु एवं शिल्प के संतुलन का प्रतीक है। दिवाकर-तारा प्रेम कथा को कतिपय आलोचक वस्तु संतुलन की दृष्टि से संदिग्ध मानते हैं।[7] प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक मतानुसार यह प्रसंग वर्णन सौन्दर्य को बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ है साथ ही इसके द्वारा युद्ध में विघ्न उपस्थिति की चेष्टा व्यक्त करके उपन्यासकार ने मैत्री तथा बुन्देलों के युद्ध की प्रबल भावना और क्रियाशील वर्ग को भी रुचिकर बना दिया है। घटनाओं को अध्यायों में विभक्त करनेवाली विधि श्री प्रताप नारायण श्रीवास्तव के उपन्यासों में भी देखी परखी गई है।

ऐतिहासिक उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता तत्कालीन वातावरण की सृष्टि होती है। गढकुण्डार के आरम्भ में ही कथाकार ने कथा प्रवाह में तत्कालीन भारतीय वातावरण का सजीव चित्र खींच डाला है। गढ़ कुण्डार का निकटवर्ती मुसलमान साम्राज्य कालपी रहा है। उसी की राजनैतिक अवस्था का चित्रण करते हुए कथाकार लिखता है— कालपी दो घोड़ों पर सवार होने जा रही है। वह चाहती है कि उधर बलबन को यह विश्वास रहे कि विश्वासघात नहीं किया जा रहा है और इधर यह महत्त्वाकांक्षा है कि यदि बलबन भी तुगरिल से लड़ाई में हार गया तो दिल्ली चाहे जिसके पास जाए, कालपी तो अपने हाथ में बनी रहे। इसलिए कालपी का जमाव मुझे संकट में डाले हुए है। परन्तु अग्रगन्ता को ठंड लग रही होगी। भीतर चलें।[8] ये शब्द कथा के आरम्भ में उपन्यास के प्रसिद्ध पात्र हरी चंदेल तथा राजकुमार नागदेव के कहे गए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कथाकार अपने पात्रों अथवा उनके पत्रों द्वारा राजनैतिक अवस्था का चित्रण कराने की कला में निपुण है। आगे चलकर महाराज हुरमतसिंह का

---

७ डा० रामदरशसिंह ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा—पृष्ठ ३६
८ गढ़कुण्डार— पृष्ठ २७

विश्वासपात्र विष्णु पांडे दिल्ली पहुच कर तत्कालीन भारतीय राजनतिक उलट फेर पर प्रकाश डालता है। यह प्रकाश उसके द्वारा डाला गया है।

भारतीय परतन्त्रता का एक प्रधान कारण हिन्दू राजाग्रों की पारस्परिक कलह तथा जातीय अभिमान भावना थी। ये लोग सदव अहमन्यता मे पूर्ण रहते थे। वर्मा ने गढ कुण्डार म इन राजाग्रों के मिथ्याभिमान का चित्रित किया है। पुण्यपात पडिहार सरदार का छुटभैया कहने पर व उन्हे गवार कहते हैं—इस पर वाद विवाद बढ जाता है और तलवारे तक म्यान स बाहर निकल आती हैं। ऐसे दृश्यो को चित्रित करके वमा न प्रस्तुत उपन्यास म एतिहासिक वातावरण बनाए रखन की पूरी चेष्टा की है। केन्द्र की शक्ति-हीनता पर ये छोटे छोटे रजवाडे कितने उछृ खल हो जात थे—कालपी के आक्रमण द्वारा सिद्ध कर दिया गया प्रश्नोत्तर है।

गढ कुण्डार' के वातावरण म सचाई सफाई और सजीवता पाई जाती है। इसका कारण वमा की साधना ह। उन्होंने 'गढ कुडार' का अधिकाश कुडार के दुग के चारो ओर चक्कर काटकर लिखा है। इसमे वर्णित नदी झीलें वन टीले कथाकार के देखे परखे हैं। इतिहास तथा भूगोल के अतिरिक्त बुदेला तथा खगारो के आचार विचार एव रीति रिवाजो का भी उन्हे पूर्ण ज्ञान है। इसी कारण गढकुडार' म युग प्रवत्तिया अपने सच्चे रूप म सजीवता पूर्ण ढग से चित्रित हुई है। नागदेव द्वारा हमवती का अपहरण करने की योजना काल्पनिक नही कही जा सकती। यह युग प्रवति की प्रतीक है। चरित्र भी युग के प्रतिनिधि बनकर मुखरित हुए हैं। नागदेव हमवती सोहनपाल पुण्यपाल आदि पात्र अपने युग की प्रवत्तियो को चरितार्थ करते हैं वे अपने निजी सिद्धान्तो के लिए एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बनते है। हेमवती नागदेव को फटकारती है पुण्यपाल हुरमतसिंह से जूझ पडता है—यह सब कथाकार की ध्येयवादिता नही है ध्रुव सत्य है। अधिकतर विवरण युग के अनुरूप ही दिए गए है केवल दिवाकर-तारा रोमास के वणन काल्पनिक एव चमत्कारिक है किन्तु एतिहासिक न होन पर भी य ऐतिहासिक वातावरण मे इतने घुल मिल गए हैं कि अस्वाभाविक नही लगते।

कथा का पूरा विकास ऐतिहासिक वातावरण की भीति पर हुआ है। बुन्देला तथा खगारो की भेद भाव नीति ही कथा को गति देती है। नागदेव को छोडकर प्रत्येक व्यक्ति भेद भाव की नीति पर दृढ रहता है। सहजेन्द्र को नागदेव के घर का भोजन तक स्वीकार नही है फिर विवाह सबध कैसे स्वीकृत हो सकता है। विवाह सबध की स्वीकृति केवल एक प्रवचना है जिसका भेद उपन्यास के अन्त म स्पष्ट हो जाता है। विवाह, प्रणय आदि गभीर विषयो पर एतिहासिक पात्रो के विचार सामन्ती विचारो के प्रतीक हैं। नागदेव अपने मित्र अग्निदत्त को कहता है—'यदि उस लडकी के माता पिता तुम्हारे प्रणय म बाधक हैं तो तुम उसको लेकर कही चल दो।'[१] साथ ही अग्निदत्त द्वारा अपनी बहन के अपहरण का देखकर नागदेव द्वारा अपनाया विकृत रूप भी सामन्ती नागरण प्रणाली पर प्रकाश डालता है। नागदेव की कथनी और करनी का दर्शाना है।

---

१ गढकुण्डार—पष्ठ २३८

गढकुण्डार के कथोपकथन पात्र और परिस्थिति अनुकूल रख गए है। अर्जुन की सारी वार्ता बुन्देली भाषा म चलती है। इब्नकरीम और अली शुद्ध उर्दू म बात करते हैं। पात्रो की मनोवृत्तिया तथा परिस्थिति के अनुरूप कथोपकथन का एक उदाहरण दिया जाता है— अब की दफा का हमला दूसरी तर्ज का होगा। एक दस्ता तो अभी यही आता है और इस मदिर को तहस नहस करके आग बरसाता है, दूसरा दस्ता सीधा भरपुर जाएगा और तीसरा दस्ता देवरा के नीचे से कुण्डार पहुचेगा—अच्छा तो मैं जाता हू। खुदा अल्लाह ईमान की फतह होगी। सलाम।'

इब्नकरीम— सलाम—पाक परवरदिगार ईमान को कभी खानए खराब नही होने देगा।[१०] दोनो पात्रो के कार्य कलाप भी तदनुकूल है। अली आक्रमण करता है। इब्नकरीम कुण्डार का नमक खाकर वफादारी का सबूत देता हुआ मौत की भी परवाह नही करता। कुण्डार की रक्षाहित उसका बलिदान हिन्दू मुस्लिम एक्य का प्रतीक है।

पात्रो का मूल्याकन शिल्प का महत्वपूर्ण प्रश्न है। एतिहासिक उपन्यास म हम दो प्रकार के पात्र दृष्टिगोचर होते है। शुद्ध एतिहासिक और काल्पनिक। शुद्ध एतिहासिक पात्र अधिकतर वर्ग के प्रतिनिधि रूप म आते है। गढ कुण्डार के एतिहासिक वर्गगत पात्र है—हुरमतसिंह नागदेव मोहनपाल, पुण्यपाल धारप्रधान विष्णुदत्त सहजेन्द्र गोपीचन्द तथा हेमवती और मानवती। काल्पनिक पात्रो म अग्निदत्त, दिवाकर और तारा वयक्तिक चरित्र रखते हैं।

सबस पहले हम ऐतिहासिक पात्रो को लेते है। ये वर्गगत होने के कारण उपन्यास के आरम्भ म लेकर अन्त तक स्थिर (static) रूप म विद्यमान रहते है। हुरमतसिंह को ही लें। यह उपन्यास के आरम्भ म एक लडाकू, हठी और उदार सम्राट बताया गया है। मध्य भाग म भी वसा ही दिखाया गया है। हुरमतसिंह की अवस्था ढल गई थी और चेहरे पर झुर्रिया पड गई थी परन्तु शरीर की बनावट नही बिगडी थी और आखो स सहज कोप और हठी स्वभाव का लक्षण दिखलाई पडता था। एक बात या एक विषय पर स्थिर रहने का अभ्यास भी बहुत दिन स छूट गया था।[११]

और अन्त म तो उसकी अहमन्यता व आत्माभिमान चरम सीमा को पहुच चित्रित किए है— सोहनपाल का पत्रोत्तर पाकर हुरमतसिंह ने कहला भेजा कि विवाह और विवाह का महोत्सव खगार क्षत्रियो की रीति के अनुसार होगा। हुरमतसिंह अपनी जाति के बडप्पन को किसी बात म और किसी भाति भी छोटा नही करने देना चाहता था।''[१२]

नागदेव हुरमतसिंह का पुत्र और राज्याधिकारी होने के नाते उपन्यास का नायक है ऐसी बात नही अपितु समस्त कथा का केन्द्र होने के कारण इस पद पर आसीन है। यह भी वर्गगत पात्र होने के कारण स्थिर रहता है। शिकार प्रेम विलासिता और जातीय

१० गढ कुण्डार—पृष्ठ ३०५
११ वही—पृष्ठ १३२
१२ वही—पृष्ठ ४०६

भिमान इसकी परम्परागत चारित्रिक विशेषताएँ हैं। इसके चरित्र पर अधिक प्रकाश लेखक ने अन्य पात्रों द्वारा ही डलवाया है। एक स्थल पर अपने मन्त्री गोपीचन्द से वार्ता करते हुए हुरमतसिंह नाग के चरित्र पर प्रकाश डालता है—'हमारा नाग युवक है सुन्दर है पूरा योद्धा है—मामता का पराग है। देखिए, अकेले भरतपुरा की गढ़ी को बचा लिया। साहनपाल इत्यादि भी लड़े, परन्तु पीछे, और फिर ये लोग तो हमारी प्रजा है।'[13] इस प्रसंग द्वारा नाग के चरित्र पर प्रकाश तो पड़ जाता है किन्तु यह हमारे सामने एक युवक के चरित्र का स्थूल रूप से ही प्रकट कर पाया है। इसमें नाग के बाह्य आप का चरित्र ही उद्घाटित हुआ है। नाग के चरित्र पर लेखक वर्णनात्मक विधि द्वारा प्रकाश डालता है। आवश्यकता पड़ते ही उसने ऐसा किया है—'नाग स्वभाव का उद्धत था। बाप के लाड प्यार में उसके उद्धतपन को कर्कशता का रूप प्राप्त हो चला था। वह दिलेर था और तलवार चलाने के अवसर का स्वागत किया करता था। सहसा प्रवर्ती था, कष्ट सहिष्णु और हठी। कटु परिहास करना उसको बहुत पसन्द था, पर तु वार के उत्तर में वार खाने से वह नहीं घबराता था। अभिमानी था और उदार। प्रयोजन सिद्धि के लिए प्रत्येक प्रकार के उपाय काम में लाने के विरुद्ध न था परन्तु क्रूरता उसके स्वभाव में न थी। अपने को जाति में बहुत ऊँचा समझता था पर तु दूसरों का जाति गर्व कठिनता के साथ सह सकता था। कभी-कभी सुरा का सेवन करता था।' इस प्रकार के वर्णनात्मक विधि द्वारा किया गया चरित्र वर्णन हमें यह बताने में सहायक हो जाता है कि इस पात्र के क्रिया-कलाप आगे क्या रहेंगे। जब हम यह पढ़ चुकते हैं कि प्रयोजन सिद्धि के लिए प्रत्येक प्रकार के उपाय काम में लाने के विरुद्ध न था। तब आगे चलकर हेमवती के लिए प्राण को हथेली पर रखकर जब उसके यहाँ डाका डालना है (उसको भगा लाने के निमित्त लगाया डाका) हमें कोई बड़ा आश्चर्य नहीं होता। सब बातें उसके चरित्रानुकूल हैं।

हेमवती भी एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्र है। वीर बुन्देला की यह कुमारी ही इस उपन्यास की नायिका है। इसी के कारण उपन्यास में संघर्ष होता है और खंगारों का पतन। इस चरित्र के उद्घाटन में लेखक अधिक सफल नहीं हुआ। एक आलोचक लिखते हैं — हेमवती का चरित्र व्यापकता से चित्रित नहीं हो पाया है। वह मात्र देश की स्वाधीनता की भावना से ओत प्रोत है और अपने पिता के आज्ञानुसार पुण्यपाल को वरण कर लेती है। निश्चय ही उसके चरित्र का अभिव्यक्तिकरण अधिक सफल नहीं हो सका है।[15]

यदि वह चाहता तो इस चरित्र को अधिक स्थिर सुन्दर और आकर्षक बना सकता था। सारे उपन्यास में केवल दो ही स्थल हैं जहाँ इस चरित्र को उभारा गया है।

---

१३ गढ़कुण्डार—पृष्ठ १२५

१४ वही—पृष्ठ २६ ३०

१५ सियारामशरण प्रसाद वृन्दावनलाल वर्मा साहित्य और समीक्षा—पृष्ठ ११२

अन्त म द्रष्टव्य है, जिसके सबध म एक आलोचक लिखत है—"उसके चरित्र की महानता ता उस स्थान पर और भी व्यापक रूप म दीखती है जब वह अपने शरीर का अद्ध-नग्न कर, काल कोठरी म प्रवश कर दिवाकर की रक्षा करती है और उस प्रेमी के ही साथ घने जगल म विलीन हो जाती है। "[18]

दिवाकर सा त्यागपूर्ण चरित्र हिन्दी उपन्यास साहित्य म कम ही देखने को मिलता है। विराटा की पद्मिनी' के कुजरसिंह से भी अधिक पवित्र इसका प्रेम है मृगनयनी' के अटल से भी साहसी इसका हृदय है और देवत्व की कोटि को छू जाने वाली इसकी चारित्रिक लीलाये है। अग्निदत्त सहसा प्रवर्तिनी और प्रतिक्रियावादी चरित्र है। अभीष्ट सिद्ध करन म सिद्धहस्त हैं।

विराटा की पद्मिनी—१९३३

'विराटा की पद्मिनी' वर्मा का दूसरा प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका आधार भी बुन्दलखण्ड है और प्रेरणा स्रोत सन १७०० म घटित विराटा की पद्मिनी (कुमुद) का अमर बलिदान है। इस उपन्यास की रचना 'गढकुण्डार के पठन पर हुई है अतएव यह बहिर्मुखी है। कुमद कथा की केन्द्र है। उसे ही दृष्टिगत रखकर अनेक युद्ध होन है। नायकसिंह अलीमर्दान, कुजरसिंह सभी प्रमुख पात्र उसकी ओर उन्मुख हैं।

कथा शिल्प की दृष्टि से 'विराटा की पद्मिनी' गढ कुण्डार की अपेक्षा अधिक सुग ठित है क्योकि इस उपन्यास की अधिकाश घटनाय पूव नियोजित तथा कल्पित हैं। इति हास का पष्ठभूमि के रूप म रखा गया है उसपर खडा हुआ कथा का ढाचा जनश्रुतियो किम्वदन्तिया तथा स्मतिस्याम का परिणाम है। आरम्भ से अन्त तक कथा म दो प र रहत है। एकपक्ष कुमुद की प्राप्तिहित युद्ध का आह्वान करता है दूसरा उसकी रक्षाहित योजनाए बनाकर युद्ध करता है। रोमास युद्ध राजनतिक हेर फेर के वातावरण म कथा नक को गति मिली है।

कथा शिल्प की दृष्टि स दो प्रकार प्रवाहित हुइ है। उपन्यासकार प्रथम सौ पष्ठो म कथा वह कर इसे रामदयाल, छोटी रानी, गोमती कुमुद तथा कुजरसिंह के माध्यम से प्रस्तुत करता है। जहा पर राजनतिक विवरण देन की आवश्यकता पडी है वही कथा कार न लखनी चलाई है। अ यथा पात्रा क सवाद ही कथा के वाहक बनने है।"[19] सवाद सक्षिप्त हैं किन्तु घटनाओ एव परिस्थितिया पर पूण प्रकाश डालते है। अन्तिम सौ पष्ठो

---

१८ डा०सियारामशरण प्रसाद व दावनलाल वर्मा साहित्य और समीक्षा पृष्ठ—१३३

१९ रामदयाल गोमती वार्ता—पष्ठ १९४ १९८ २०४ २०७, २११ २१४, २७१ २८३

रामदयाल-कुजरसिंह वार्ता—पष्ठ २०० २०३

कुजर कुमुद वार्तालाप—पष्ठ २०८ २११, २५५ २६४

देवीसिंह जनादन वार्ता—पृष्ठ २१५ २१६

म कथा क सब स अधिक प्रभावशाली दृश्य की ओर कथा बडी तीव्रगति स बढ गई है। दांगी अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर अलीमर्दान स टक्कर लेते है उधर देवीसिंह तथा लोचनसिंह प्राणों की होड लगाते है। कुजर ने जीवन की बाजी लगाने स पूर्व कुमुद का आशीर्वाद चाहा है। वह भी देवीत्व का आवरण छिन्न भिन्न करके उसके गले म एक जगली फूलो की माला डाल देती है। देवीसिंह कुजरसिंह का वध करता है और अलीमर्दान कुमुद का पीछा करते हैं, तत्पश्चात् वह अथाह बेतवा के प्रवाह में लीन होकर अन्तिम सन्देश के साथ साथ कुमुद की जीवन लीला और उपन्यास की अन्तिम घटना घटित होती है केवल मात्र कुमुद के गौरवमय बलिदान की स्मृति ही शेष रह जाती है। यह घटना इतने सजीव रूप म प्रस्तुत की गई कि ऐसा लगता है कि इतिहास की य घटनाए सामने घटित हो।

'विराटा की पद्मिनी म अनेक कथा सूत्र है। नायकसिंह अलामर्दान सघर्ष दैनिक घटना का परिणाम नहीं है अपितु इसका मूल सूत्र तत्कालीन भारतीय राजनैतिक अवस्था की डावाडोल स्थिति है जिसपर कथाकार न अनेक स्थलों पर प्रकाश डाला है।'[20] नायक सिंह की मृत्यु के पश्चात राज्य देवासिंह नामक वीर बुदेला को मिलता है और कथा सूत्र अनेक पात्रो द्वारा पकड लिया जाता है—देवीसिंह छोटी रानी और कुजरसिंह—ये तीनो ही दलीपनगर के राज्य के लिए चिंतित और कर्मशील रहते है। नायकसिंह की विक्षिप्त अवस्था का अनुचित लाभ उठा कर जनार्दन शर्मा अपनी कूटनीति द्वारा देवासिंह को राज्य दिला देते है किन्तु छोटी रानी और कुजर सिंह इस स्थिति स सन्तुष्ट नहीं व जीवन भर दलीपनगर के राज्य को हस्तगत करने के लिए प्रयत्नशील रहते है। दूसरी ओर अली मर्दान इस राज्य को हडप लेना चाहता है अतएव कथा बहुमुखी रूपधारण कर लेती है। सिंहगढ़ रामनगर स्थलो पर भीषण युद्ध होते है।

कुजर कुमुद प्रेम कथा इस उपन्यास का प्रधान आकर्षण है। युद्ध के अतिरिक्त रोमास के वातावरण म यह कथा पल्लवित होती है। इनका प्रेम परिस्थिति का परिणाम है। कुजर अपने सेनापति लोचनसिंह के साथ देवी दर्शन के लिए आता है कि काले खा के साथ युद्ध छिड जाता है इस युद्ध का समाचार जब राजा नायकसिंह को मिलता है तब व रामदयाल द्वारा कुमुद को अपने विलास भवन म पहुचवाने की आज्ञा देते है यही समाचार जब कुजर को मिलता है तब वह कुमुद की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाता है। कुमुद के विराटा आगमन पर परिस्थिति कुजर को भी वही पहुचा देती है और मदिर के पावन स्थान पर इनका पवित्र प्रेम पल्लवित होता है। इनके प्रेम की कोमलता के विषय म श्री सियाराम शरण प्रसाद लिखते है— कुजर और कुमुद के मौन प्रेम को हल्के रोमास के अन्तर्गत श्रेणाबद्ध नहीं कर सकते क्योंकि उसमे भव्यता है सुदर निर्वाह है शारीरिक सौन्दर्य की प्रधानता नहीं कायिक महत्त्व धार्मिक स्वतत्रता की सुरक्षा के सम्मुख न्यूनतम म भी नहीं है।'[21]

२० विराटा की पद्मिनी—पृष्ठ ५३ ५४, ७२ ७३, १५८ ५६

२१ वृन्दावन लाल वर्मा साहित्य और समीक्षा—पृष्ठ १२०

'कुंजर कुमुद प्रेम अवश्य ही मौन रहता है। 'गढ़ कुण्डार' के तारा दिवाकर समान मुखरित नहीं होता। इसका कारण है। 'गढ़ कुण्डार' में परिस्थिति दिवाकर और तारा को बोलने का अधिक अवसर देती है। यहाँ मन्दिर और युद्ध के वातावरण के अतिरिक्त कुमुद का देवीत्व भी उसे अधिक बोलने से वंचित रखता है। 'गढ़ कुण्डार' में तारा अपने भाई अग्निदत्त तथा दिवाकर के पिता धीर प्रधान आदि पात्रों से दिवाकर के विषय में पूछताछ करती है। समय पड़ने पर पिता की अवज्ञा कर दिवाकर से मिलने भी पहुँचती है किन्तु कुमुद अधिक सक्रिय दीख नहीं पड़ता। परिस्थिति उसे स्थिर बनाए है, वह केवल अन्त में ही बलिदान हित हिलती है।

परित्यक्ता गोमती की कथा के मूल में कथाकार की लक्ष्यवादिता हमें स्पष्ट भासित रही है। इस कथा का कथा प्रवाह की दृष्टि से इतना महत्त्व नहीं है जितना नारीत्व के मौन पीडन (Silent Suffering) प्रदर्शन का। गोमती का विवाह देवीसिंह से होने वाला था, परिस्थितिवश ऐसा नहीं हो सका—देवीसिंह उसे राजकाज और युद्ध के वातावरण में विस्मृत कर देता है जो स्वाभाविक है। गोमती के मौन पीडन के अतिरिक्त कथाकार ने उसे मुग्धा दिखाकर रामदयाल के षडयन्त्रों का वाहक भी बनाया है जिसमें उसे पूरी सफलता नहीं मिली। गोमती किसी बड़े षडयन्त्र के किसी परिणाम का कारण नहीं बनती। अन्त में विदग्धा गोमती रामदयाल को प्रणय याचक के रूप में देखती है किन्तु निरपेक्ष रहती है और युद्ध में मारी जाती है।

कालपी के सरदार अलीमर्दान की कथा शिल्पगत महत्त्व रखती है। अलीमर्दान का लक्ष्य दलीपनगर की हिन्दु रियासत को नष्ट भ्रष्ट कर हस्तगत करना मात्र नहीं है अपितु सुन्दरता की देवी कुमुद को अपनी विलास सहचरी बनाना है। उपन्यास की अधिकांश घटनाएं अलीमर्दान की क्रियाशीलता का परिणाम हैं। पालो पर अलीमर्दान की चढ़ाई वृद्ध राजा नायकसिंह को युद्ध की अग्नि में धकेलता है। सिंहगढ़ की पहली विजय कुंजर सिंह अथवा छोटी रानी की वीरता का परिणाम नहीं है, अपितु अलीमर्दान की सहायता का निष्कर्ष है। अलीमर्दान की समस्त चेष्टाएं विराटा को जीतने के लिए केन्द्रित नहीं होती अपितु कुमुद ही वह केन्द्र है जिस ओर अलीमर्दान सचेष्ट है—युद्ध उसका लक्ष्य नहीं है। इसका प्रमाण हम उस स्थल पर मिलता है जब कुमुद बेतवा में छलांग लगा देती है और अलीमर्दान देवीसिंह के आगे घुटने टेक कर संधि का प्रस्ताव करता है। इस अंतिम दृश्य तक कथा में कौतूहल बना रहता है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार को ऐतिहासिक स्थानों और पात्रों के विवरण देने की आवश्यकता हुआ करता है। 'गढ़ कुण्डार' में तो आरम्भ में ही कुण्डार और उसके समीपवर्ती भू भाग का विवरण दे दिया है। 'विराटा की पद्मिनी' में आरम्भ में पालर का सांकेतिक वर्णन किया गया है किन्तु कुमुद के विराटा आगमन के पश्चात इस प्रदेश का मनोरम वर्णन किया गया है।[२२] बुन्देलखण्ड में प्रकृति की रमणीयता अपना ही आकर्षण रखती है। प्रकृति के मनोरम रूप की एक छटा देखिए— बेतवा के पूर्वीय किनारे का

---

२२ विराटा की पद्मिनी—पृष्ठ १५८, १६०

जल राशि छूती हुई चली जा रही थी। अस्ताचलगामी सूर्य की कोमल सुवर्ण रश्मियां बेतवा की धारा पर उछल उछल कर हँस सी रही थी। उस पार के वन वृक्षों की डालियों के सिरों ने दूरवर्ती पर्वत की उपत्यका तक श्यामलता की एक मसरस्थली सी बना दी थी।"[23] वर्मा ने ये वर्णन सांकेतिक रूप में रखे हैं अतएव ये कथा का अविभाज्य अंग बन गए हैं न कि कथा शिल्प के अवरोधक।

'विराटा की पद्मिनी' में पात्र योजना के विषय में वर्मा ने उपन्यास के परिचय में लिखा है, 'देवीसिंह लोचनसिंह जनार्दन शर्मा, अलीमर्दान इत्यादि नाम काल्पनिक हैं, परन्तु उनका इतिहास सत्य मूलक है।'[24] शेष पात्रों में कुमुद, कुंजरसिंह, नायकसिंह और छोटी रानी आदि पात्र शुद्ध ऐतिहासिक हैं।

कुमुद उपन्यास की प्रमुख पात्र है। इसकी ऐतिहासिकता को उपन्यासकार ने गौरवमय बलिदान द्वारा अमर बना दिया है। शिल्प की दृष्टि से हमने इसके वर्णगत रूप पर विचार करना है। बुन्देलखण्ड के प्रदेश में यह देवी के रूप में विख्यात है किन्तु उपन्यास में वर्मा ने इस देवीत्व की कोटि में रखकर भी मानवीय प्रेरणाओं से प्रभावित दिखाया है। कुमुद गोमती वार्ता तथा कुमुद कुंजर वार्ता ही इसके सम्पूर्ण चरित्र पर प्रकाश डाल देती है। कथाकार को अपनी ओर से कुमुद के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता बहुत ही कम पड़ी है। गोमती और कुंजर दोनों ही उसे देवी के रूप में देखते हैं और आप कहकर सबोधित करते हैं किन्तु वह दोनों को ही ऐसा करने का निषेध करती है। कुंजर तो उसके देवीत्व से इतना प्रभावित है कि प्रथम दर्शन में ही उसका भक्त बन जाता है उसके तेजोमय स्वरूप की ओर उसकी आंख नहीं उठती।

कुमुद को अपने अवतार का अभ्यास मात्र है जिसके कारण वह मौन चिंतनशील और रक्तपात पर उदासीनता का रूप धारण करती है, किन्तु साधारण नारीत्व की कुण्ठा, वेदना और चिंता के भी वह वशीभूत है। इसका उदाहरण भी हम सहज में ही मिल जाता है—गोमती की अनुनय विनय पर वह उसे वरदान देती है तुम्हारे राजा का राज स्थिर रहेगा। मंदिर बचेगा और अलीमर्दान की जय न होगी। तुम्हें इससे अधिक क्या चाहिए। गोमती की इच्छा तो पूरी हुई, किन्तु कुमुद की चिंता और वेदना बढ़ गई जिसके फलस्वरूप उसने तुरन्त ही रुखाई के स्वर में कहा जाओ सोओ। भविष्य में कभी फिर उस राजकुमार का वर्णन करोगी तो अच्छा न होगा।"[25]

कुमुद अपने सौन्दर्याभिभूत, किन्तु सच्चे प्रेमी कुंजर के प्रति आकृष्ट है। एकान्त में वह अपनी मानवीय मनोभावनाओं को अभिव्यक्त करके कहती है अच्छा ऐसा फिर कभी न करना। मैं कोई अवतार नहीं हूं। साधारण स्त्री हूं। हां, दुर्गा मां की भक्त जो से पूजा किया करता हूं। आप मुझे अवतार न समझें।"[26]

---

२३ विराटा की पद्मिनी परिचय—पृष्ठ २५६

२४ वही—पृष्ठ १४

२५ वही—पृष्ठ ११३

२६ वही—पृष्ठ २६१

कुमुद ने भीषण युद्ध देखा है, अतएव वह हिंसा के मूल कारण की खोज करती है और इस परिणाम पर पहुंचती है कि यह सब रक्तपात उसी के कारण हुआ है। अत वह आत्महत्या करती है, यदि उसमे देवीत्व का अश होता तो अपनी रक्षा के अतिरिक्त विराटा की जनता को भी भीषण हत्याकाण्ड से बचा सकती थी। समस्त उपन्यास म एक ही स्थल ऐसा है, जहा उपन्यासकार ने उसके दविक रूप का चित्र खींचा है। देवी कुमुद का वणन करते हुए वर्मा जी लिखते हैं—' कुमुद चट्टान की टेक पर खडी हो गई। ऐसा जान पडा मानो कमलो का समूह उपस्थित हो गया हो—जसे प्रकाश-पुज खडा कर दिया हो। परो के पजनो पर सूय की स्वण रेखाए झिलमिल रही थी। पीली धोती मन्द पवन के धीमे झकार से दुर्गा की पताका की तरह धीरे धीरे लहरा रही थी। उन्नत भाल मोतियो की तरह भासमान था। बडे बडे काले नेत्रो की बरौनिया भौंहो के पास पहुच गई थी। आखो से झरती हुई प्रभा ललाट पर से चन्ती हुइ उस निजन स्थान को आलोकित सा करने लगा। आधे खुले हुए सिर पर से स्वण को लजाने वाली बालो की एक लट गदन के पास ज़रा चचल हो रही थी। उस विशाल जगल और नदी की उस ऊच चट्टान के सिरे पर खडी हुइ कुमुद को देखकर कुजर का राम राम कुछ कहने के लिए उत्सुक हुआ।

व चट्टान और पठारिया, वह दुगम और नीली धार वाली बतवा वह शात भयावना सुनसान वह हृदय को चचल कर देने वाली एकातता और चट्टान की टक पर खडी हुई अतुल सौंदय की यह सरल मूर्ति।

कजर ने मन म कहा—अवश्य देवी है। विश्व को सुदर और प्रममय बनाने वाला दुर्गा है। [27]

शिल्प की दृष्टि से परखने पर हम इस निष्कष पर पहुचते है कि जहा भी कुमुद का दविक रूप आया है वहा वह बगगत पात्र का अभिनय करती है, स्थिर रहती है बहुत कम बोलती है—भक्तो को वरदान स्वरूप भस्म अथवा फल देती है किन्तु जहा पर इस चरित्र म कथाकार ने मानवीय सवेदनाओ, आवेगो तथा सहानुभूति की स्थापना की है कुमुद वैयक्तिक बाना धारण करके सामने आती है और मानवीय दौबल्य का व्यजित करने वाली क्रियाए करती है। कुजर को उसने पुष्प और भस्म दानो ही वरदान रूप म दिए है किन्तु रामदयाल को केवल मात्र भस्म देकर ही चल देती है। तारा की भाति इसने भी प्रम की वदी पर बलिदान दिया है। अपने आचल म जगली फूलो की माला कुजर के गले म डालकर मानवीय प्रेम का परिचय दिया है।

कुजर पद वचित दासी पुत्र राजकुमार है। यह ऐतिहासिक पात्र हीनता की ग्रन्थि (Inferiority Complex) का प्रतीक है। लज्जाशील होने के कारण इसका चारित्रिक विकास अवरुद्ध रह जाता है। इसका प्रेम भी मौन प्रेमी का भावोदगार मात्र है, जो बहुत कम प्रस्फुटित हुआ है — यदि इन चरणो की कृपा बनी रहे तो मैं ससार भर की एकत्र सामथ्य को तुच्छ तण के समान समझू। मुझे कुछ न मिले ससार भर मुझे तिरस्कृत,

---

२७ विराटा की पद्मिनी—पष्ठ २६३

बहिष्कृत कर द परन्तु बन्दि करणा की कृपा बना रहे, ता मैं समझ कि दवीसिंह मेरा चाकर है नवाब मेरा गुलाम है। सारा भर मरी प्रजा है।[२८]

कुजर की तुलना गडकुडार' के दिवाकर से की जाती है किन्तु कुजर म दिवाकर सी सहृदयता बलिदान भावना नहीं है — ईर्ष्या क्रोध और राज्य लिप्सा उस मन हो मन दग्ध रखते हैं किन्तु छोटी रानी सम राशियना और राजनीति पटुता इसम नहीं है, जिसके कारण वह जीवन भर वंचित ही रहता है। रामसिंह के प्रति उसका विनाशक रूप उस ही विनाश के गर्त म डाल देता है।

रामदयाल की घटना औपन्यासिक चरित्र-गठन की परिचायक है। यह चरित्र तत्कालीन वातावरण की उपज है। राजा और नवाब अपनी विलासिता के साधन रूप म ऐसे पात्रों की टोह म रहा करते थे। अलीमर्दान उसे सदा कोई बड़ा इनाम देने का प्रलोभन देता रहता है। वह भी परिस्थिति और पात्र के अनुरूप अपना रूप बदल कर उससे बात करता है। नायकसिंह अलीमर्दान छोटी रानी और सामना का समस्त आशाओं और आकाक्षाओं का यही एक केन्द्र साधन है।

रामदयाल छोटी रानी अलीमर्दान आदि पात्र वैयक्तिक चरित्र हैं। ये समय और स्थल के अनुसार अपना रूप बदलते हैं और गतिशील रहते हैं।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

एतिहासिक एव वणनात्मक उपन्यासकारों की परम्परा म आने वाले दूसरे प्रमुख कथाकार डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हैं। उन्होंने न केवल आलोचना तथा निबन्ध के क्षेत्र म ख्याति पाई है अपितु अपनी विशेष प्रतिभा के कारण सप्तम शती के सांस्कृतिक एव ऐतिहासिक वातावरण का वणनात्मक विधि द्वारा औपन्यासिक रूप भी प्रदान किया है। अपने प्रथम उपन्यास म लेखक ने बाणभट्ट के जीवन-सस्मरण प्रस्तुत किए हैं।[१] इस रचना द्वारा लेखक ने पाठक और आलोचक वग को शकापूर्ण स्थिति म डाल दिया। उपन्यास की भूमिका म यह लिखकर कि कथा की पाण्डुलिपि उन्हें शोण नदी के तट पर भ्रमण करते समय मिली और उन्होंने केवल सम्पादन काय किया भ्रमात्मक स्थिति उत्पन्न हो गई। थकरे के प्रसिद्ध उपन्यास हेनरी एसमड म भी एसा प्रयोग हुआ है। भूमिका के अन्त म मीठी चुटकी द्वारा इस भ्रम का निवृत्ति कर दी गई है। इस सबध म एक आलोचक लिखते हैं— काल्पनिक अश म द्विवेदीजी पूर्ण रूप से सफल है। उनकी कल्पना ने उस समय के वातावरण के पुनर्निर्माण म सहायता दी है।[२]

बाणभट्ट की आत्मकथा — १९४६

बाणभट्ट की आत्मकथा शिल्प की दृष्टि स हिन्दी उपन्यास साहित्य म एक

---

२८ वही — पृष्ठ २६०

१ इनका दूसरा उपन्यास चारु चन्द्रलेखा अभी 'कल्पना' मे धारावाहिक रूप म छपा है।

२ डा० देवराज उपाध्याय कथा के तत्त्व — पृष्ठ १७८

अभिनव प्रयोग है। यह एकमात्र आत्म-कथा ही नहीं है, उपन्यास की नई दिशाओं का प्रतीक है। वर्णनात्मक शिल्प विधि के अन्तर्गत आत्म कथात्मक शैली में लिखा गया एक मात्र उदाहरण है। संस्कृत का प्रसिद्ध कथाकार और अमर गद्य ग्रन्थ कादम्बरी का रचयिता बाणभट्ट ही इस उपन्यास का नायक है। कल्पनातीत वर्णनों से परिपूर्ण कथा का वाहक वह स्वयं बनता है।

बाण की सहज प्रफुल्लित प्रकृति चित्रग्राहिणी प्रतिभा कल्पनाप्रवण बुद्धि और असाधारण पाण्डित्य ऐतिहासिक महत्त्व की बातें हैं। इनके आधार पर एक ऐतिहासिक उपन्यास का निर्माण आचार्य हजारीप्रसाद सरीखे प्रतिभावान व्यक्ति के लिए सहज सम्भाव्य हो गया। इकहरी कथावस्तु का ताना बाना पहनाकर उपन्यासकार ने इसे सगठित वस्तु विन्यास (Novel Of Organic Plot) का रूप दे दिया है। समस्त घटनाओं को कलात्मक कौशल के साथ गुम्फित किया गया है। इनका विकास और समीकरण एक ही पात्र में से होता हुआ अनेक दिशाओं और पात्रों को अपनी लपेट में सजाए हुए है। शृंखला-बद्ध होने के कारण सभी घटनाएँ अपने निजी महत्त्व को अक्षुण्ण रखती है।

कविता में गाकर, नाटक में दिखाकर और कथा में कहकर साहित्यकार अपनी अर्जित अनुभूतियों एवं संस्मरणों को वाङ्मय का रूप देता है। बाणभट्ट की आत्म कथा में बाण की जीवनगत अनुभूतियाँ बाण की वाणी द्वारा कहलाई गई है। कथा का मुख्य सूत्र बाण की नाटय मण्डली की नायिका निपुणिका से जोड़ा गया है। उपन्यास के आरम्भ से अन्त तक निपुणिका बाण के साथ एक संरक्षक के रूप में बराबर चलता दिखाई गई है। इसके अवसान के साथ साथ कथा का अवसान हो जाता है, क्योंकि कहने और सुनाने के लिए बाण के पास कोई शेष अनुभूति नहीं रहती।

प्रस्तुत उपन्यास में कथा रस को अधिक सरस एवं सुग्राह्य बनाने के निमित्त उपन्यासकार ने उदात्त वर्णनों की रचना की है। इनमें से कतिपय वर्णन कल्पना प्रसून है तो कुछ की समता कादम्बरी के मनोहर वर्णनों से की गई है। जहाँ पर कादम्बरी अथवा अन्य किसी ग्रन्थ से मिलता जुलता वर्णन दिया गया है वहाँ पर नीचे पाद टिप्पणी देकर, उस ग्रन्थ से उद्धृत स्थल का परिचय देकर कथाकार ने ईमानदारी का पूरा-पूरा परिचय दिया है। कथा के आरम्भ में ही बाणभट्ट स्थाण्वीश्वर (थानेसर) नगर की धूम धाम और जलूस का वर्णन करता है जिसका संक्षिप्त अंश उदाहरणत दिया जाता है— कूर्म पृष्ठ के समान उन्नतोदर राजमार्ग पर एक बड़ा भारी जुलूस चला जा रहा था। उसमें स्त्रियों की संख्या ही अधिक थी। राजवधुएं बहुमूल्य शिविकाओं पर आरूढ थीं। साथ साथ चलने वाली परिचारिकाओं के चरण विघट्टन जनित नूपुरों के क्वणन से दिगन्त शब्दायमान हो उठा था। वेगपूर्वक भुज लताओं के उत्तोलन के कारण मणिजड़ित चूड़ियाँ चंचल हो उठी थीं। इससे बाहुलताएं भी झंकार करने लगी थीं। उनकी ऊपर उठी हथेलियों को देखने से ऐसा लगता था मानो आकाश-गंगा में खिली हुई कमलिनियाँ हवा के झोंकों से विलुलित होकर नीचे उतर आई हों। भीड़ के संघर्ष से उनके कानों के पल्लव खिसक रहे थे। साथ में नर्तकियों का भी एक दल जा रहा था। उनके हँसते हुए वदनों को देखकर ऐसा भान होता था कि कोई प्रस्फुटित कुमुदों का वन चला जा रहा है।

बहिष्कृत कर द परन्तु यदि करणा की कृपा बनी रहे तो मैं समझूँ कि दरोगा मेरा नौकर है नवाब मेरा गुलाम है। सरकार मेरी प्रजा है।'[१६]

कुंजर की तुलना 'गढ़कुंडार' के दिवाकर से की जाती है किन्तु कुंजर में दिवाकर सी सहृदयता, बलिदान भावना नहीं है। दोनों शाप और नाग सिंहा उस मार्ग हो मन स्पष्ट रखते हैं किन्तु छोटी रानी सम सक्रियता और राजनीतिक पटुता इसमें नहीं है, जिसके कारण वह जीवन भर वंचित ही रहता है। दरोगा के प्रति उसका विद्रोह रूप उसे ही विनाश के गर्त में डाल देता है।

रामदयाल की रचना औपन्यासिक चरित्र-गठन की परिणति है। यह चरित्र तत्कालीन वातावरण की उपज है। राजा और नवाब अपनी विलासिता के साधन रूप में ऐसे पात्रों की टोह में रहा करते थे। अलीमर्दान उस समय कोई बड़ा इनाम देने का प्रलोभन देता रहता है। वह भी परिस्थिति और पात्र के अनुरूप अपना रूप बदल कर उससे बात करता है। नायरसिंह, अलीमर्दान, छोटी रानी और गोमती की समग्र आशाओं और आकांक्षाओं का यही एक केन्द्र साधन है।

रामदयाल, छोटी रानी, अलीमर्दान आदि पात्र वर्गविशेष चरित्र हैं। ये समय और स्थल के अनुसार अपना रूप बदलते हैं और गतिशील रहते हैं।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक उपन्यासकारों की परम्परा में आने वाले दूसरे प्रमुख कथाकार डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हैं। उन्होंने न केवल आलोचना तथा निबन्ध के क्षेत्र में ख्याति पाई है अपितु अपनी विशेष प्रतिभा के कारण सप्तम शती के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक वातावरण का वर्णनात्मक विधि द्वारा औपन्यासिक रूप भी प्रदान किया है। अपने प्रथम उपन्यास में लेखक ने बाणभट्ट के जीवन-संस्मरण प्रस्तुत किए हैं।[१] इस रचना द्वारा लेखक ने पाठक और आलोचक वर्ग को शंकापूर्ण स्थिति में डाल दिया। उपन्यास की भूमिका में यह लिखकर कि कथा की पाण्डुलिपि उन्हें शोण नदी के तट पर भ्रमण करते समय मिली और उन्होंने केवल सम्पादन कार्य किया भ्रमात्मक स्थिति उत्पन्न हो गई। पंकर के प्रसिद्ध उपन्यास हनरी एसमंड में भी ऐसा प्रयोग हुआ है। भूमिका के अन्त में माठी चुटकी द्वारा इस भ्रम की निवृत्ति कर दी गई है। इस संबंध में एक आलोचक लिखते हैं— काल्पनिक अंश में द्विवेदीजी पूर्ण रूप से सफल हैं। उनकी कल्पना ने उस समय के वातावरण के पुनर्निर्माण में सहायता दी है।'[२]

बाणभट्ट की आत्मकथा—१९४६

बाणभट्ट की आत्मकथा शिल्प की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक

---

२८ वही—पृष्ठ २६०

१ इनका दूसरा उपन्यास चारु चन्द्रलेखा अभी 'कल्पना' में धारावाहिक रूप में छपा है।

२ डॉ० देवराज उपाध्याय कथा के तत्त्व—पृष्ठ १७८

अभिनव प्रयाग है। यह एकमात्र आत्म-कथा ही नही है, उपन्यास की नई दिशाओ का प्रतीक है। वणनात्मक शिल्प विधि के अन्तगत आत्म कथात्मक शली म लिखा गया एक-मात्र उदाहरण है। संस्कृत का प्रसिद्ध कथाकार और अमर गद्य ग्रन्थ 'कादम्बरी' का रचयिता बाणभट्ट ही इस उपन्यास का नायक है। कल्पनातीत वणनो से परिपूर्ण कथा का वाहक वह स्वय बनता है।

बाण की सहज प्रफुल्लित प्रकृति चित्रग्राहिणी प्रतिभा, कल्पनाप्रवण बुद्धि और असाधारण पाण्डित्य एतिहासिक महत्त्व की बात हैं। इनके आधार पर एक ऐतिहासिक उपन्यास का निर्माण आचार्य हजारीप्रसाद सरीखे प्रतिभावान व्यक्ति के लिए सहज सम्भाव्य हो गया। इकहरी कथावस्तु का बाना पहनाकर उपन्यासकार ने इस सगठित वस्तु विन्यास (Novel Of Organic Plot) का रूप दे दिया है। समस्त घटनाओ को कलात्मक कौशल के साथ सयोजित किया गया है। इनका विकास और समीकरण एक ही पात्र म से होता हुआ अनेक दिशाओ और पात्रो को अपनी लपट म सजोए हुए है। शृखला-बद्ध होने के कारण सभी घटनाए अपना निजी महत्त्व को अक्षुण्ण रखती है।

कविता म गाकर नाटक म दिखाकर और कथा मे कहकर साहित्यकार अपनी अर्जित अनुभूतियो एव सस्मरणो को वाङ्मय का रूप देता है। 'बाणभट्ट की आत्म कथा' म बाण की जीवनगत अनुभूतिया बाण की वाणी द्वारा कहलाई गई हैं। कथा का मुख्य सूत्र बाण की नाटय मण्डली की नायिका निपुणिका स जोडा गया है। उपन्यास के आरम्भ से अन्त तक निपुणिका बाण के साथ एव सरक्षक के रूप मे बराबर चलती दिखाई गई है। इसके अवसान के साथ साथ कथा का अवसान हो जाता है, क्योकि कहने और सुनाने के लिए बाण के पास कोई शेष अनुभूति नही रहती।

प्रस्तुत उपन्यास म कथा रस को अधिक सरस एव सुग्राह्य बनाने के निमित्त उपन्यासकार ने उदात्त वणनो की रचना की है। इनम से कतिपय वणन कल्पना प्रसूत हैं तो कुछ की समता कादम्बरी के मनोहर वणनो से की गई है। जहा पर कादम्बरी अथवा अन्य किसी ग्रन्थ स मिलता जुलता वणन दिया गया है वहा पर नीचे पाद टिप्पणी देकर, उस ग्रन्थ स उद्धत स्थल का परिचय देकर कथाकार ने ईमानदारी का पूरा-पूरा परिचय दिया है। कथा के आरम्भ मे ही बाणभट्ट स्थाण्वीश्वर (थानसर) नगर की धूम धाम और जलूस का वणन करता है जिसका सक्षिप्त अश उदाहरणत दिया जाता है—'कूर्म पृष्ठ के समान उन्नतोदर राजमार्ग पर एक बडा भारी जुलूस चला जा रहा था। उसम स्त्रियो की सख्या ही अधिक थी। राजवधुए बहुमूल्य शिविकाओ पर आरूढ थी। साथ साथ चलने वाली परिचारिकाओ के चरण विघट्टन जनित नूपुरो के क्वणन से दिगन्त प्रतिध्वनित हो उठा था। वेगपूवक भुज लताओ के उत्तोलन के कारण मणिजडित चूडिया चचल हो उठी थी। इससे बाहुलताए भी झकार करने लगी थीं। उनकी ऊपर उठी हथेलियो को देखने से एसा लगता था मानो आकाश-गगा म खिली हुई कमलिनिया हवा के झोको से विलुलित होकर नीचे उतर आई हो। भीड के सघष से उनके कानो के पल्लव खिसक रहे थे। साथ म नर्तकियो का भी एक दल जा रहा था। उनके हसते हुए वदनो को देखकर ऐसा भान होता था कि कोई प्रस्फुटित कुमुदो का वन चला जा रहा है।

उनकी चचल हार लताए जोर जोर से हिलती हुई उनके वक्षोभाग से टकरा रही थी, खुली हुई केशराशि सिंदूर बिंदु पर अटक जाती थी। निरतर गुलाल और अबीर के उडते रहन के कारण उसके केश पिंगल वण के हो उठे थे और उनके मनोरम गान से सारा राज माग प्रतिध्वनित हो उठा था सबके पीछे राजा के चारण और वदी लोग विरुद गान गाते हुए जा रहे थे। [3] कथाकार न यह वणन देकर नीचे पाद टिप्पणी म लिख दिया है कि यह वणन 'कादम्बरी' के शुकनास के पुत्रोत्सव कालीन यात्रा से मिलता जुलता है।

जिस प्रकार बाण रचित कादम्बरी के वणन वंजाड और कथा प्रवाह को गति देन म सहायक सिद्ध होते हैं उसी प्रकार 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के सभी वणन उदात्त कोटि के अतगत आते है। इनके कारण उपन्यास की कथा की गति कहीं भी रुकती नहीं है अपितु कहीं-कहीं तो ये वणन दो घटनाओ को जोडने अथवा चरित्र की अपूव व्याख्या प्रस्तुत करने म सहायक सिद्ध हुए है। बाणभट्ट के स्थाणश्वर पहुचन पर सुचरिता के गृह का वणन है। वही पहुचने पर बाण सुचरिता द्वारा उसकी अतीत जीवनी सुनता है। सुचरिता से पूव वह इस कहानी के एक अश का एक वृद्ध से सुन चुका है किंतु सुचरिता द्वारा कहानी का वणन अधिक सुचारु ढग से कराया गया है। अपनी कहानी कहते-कहते सुचरिता चत्र मास की बहार का वणन करन लगती है। जितनी मादकता वसन्त ऋतु म है, उससे कहीं बढकर इस वणन म प्रस्तुत की गई है। प्राजलता, काव्यात्मकता और प्रवाह से परिपूण यह वणन दो घटनाओ को भी जोड देता है दो चरित्रो का मोड देना है। डा० हजारीप्रसाद के अपूव वणन नपुण्य से प्रतिफलित दो चित्र लिखित-सी मूर्तिया समीप से समीपतर हो जाती हैं। *सुचरिता को अखण्ड सौभाग्य के रूप म अभिनवाति की प्राप्ति हो जाती है।*

सन्ध्या-वणन मदन पूजा-वणन नागरिक गन्ध-वणन जीण गृह वणन मदन उत्सव वणन गगा वणन सुचरिता गृह वणन वसन्त ऋतु वणन, राज सभा का वणन सौरभ हृद (मुरहा भील) वणन (कादम्बरी के पपा सरोवर से तुलनीय) आदि वणनात्मक प्रसग बाणभट्ट की आत्म-कथा को वणनात्मक शिल्प विधान के अतगत रखन म विशेष सहायक सिद्ध हो रहे हैं। इस शिल्प विधि के उपन्यासो म कथा को विस्तारपूवक कहने और सुनन की जिज्ञासा अति स्वाभाविक है। निपुणिका बाण भट के अवसर पर बाण उसे आप-बीती सुनान को उतावला हो जाता है। निपुणिका सबधी बात जानने की जिज्ञासा भी उसम पराकाष्ठा को पहुच चुकी है। कृष्णकुमार बाण मिलन अवसर कुमार (कृष्ण कुमार) बाण की कहानी भट्टिनी की कहानी आग्रहपूवक सुनता है। उसे अधिक सुनन की चाह बनी रहती है। तभी तो थककर बाणभट्ट कहता है— मरे पास कहने को बहुत कम था, व सुनना बहुत अधिक चाहत थ। [4] इसी प्रकार सुचरिता का साक्षात्कार करन पर बाण

---

३ बाणभट्ट की आत्म-कथा —पृष्ठ ३४

(कादम्बरी म मत्री शुकनास के गृह वनपायल नामक पुत्र के जन्म अवसर पर जो उत्सव मनाया जाता है उसका वणन ६७ पष्ठ पर इसी प्रकार का है।)

४ बाणभट्ट की आत्मकथा—पष्ठ १८ २०, २६, ३२ ३३, ६२ ६३, १०६, १८६ १६०, २१५ १६, १६८ २६३ ६४

भट्ट एक साथ ही उसके तथा विरति वज्र आदि के विषय म बहुत कुछ सुनकर अपनी नाना चिंताओं का समाधान पाता है। उसे अवधूत अघोर भैरव तथा महामाया की कथा सविवरण पता लग जाती है, साथ ही पाठक के मस्तिष्क म कथा का यथाथ चित्र स्पष्ट रूप मे अंकित हो जाता है।

वाणभट्ट की आत्म-कथा आत्म कथात्मक शली म लिखा गया उपन्यास है अत एव उपन्यासकार का प्रत्यक्ष रूप म पात्रा के विषय म कुछ कह सकने का अवसर ही नही मिलता। इसम परोक्ष विधि द्वारा पात्रो के भावो, काय कलापो राग-द्वेपो और विचारा का उदघाटन किया गया है। पात्र स्वय ही अपनी वार्ताओं द्वारा एक दूसरे के चरित्र पर प्रकाश डालते रहे है।

वणनात्मक शिल्प विधि की इस रचना म चरित्र अकन करत समय भी अपूव वणना नपुण्य का परिचय दिया गया है। निपुणिका द्वारा आयोजित बाण भट्टिनी सक्षात्कार क समय जिस अतुल सौदय राशि के दशन नायक को प्राप्त होत हैं उसे शब्द बद्ध करते हुए बाण स्वय कहता है—'उसकी धवल कांति दशक के नयन माग से हृदय म प्रविष्ट होकर समस्त कलुप को धवलित कर देती थी, मानो स्वणम दाकिनी की धवल धारा समस्त कलुप-कालिमा का क्षालन कर रही हो। मेरे मन म बार-बार यह प्रश्न उठता रहा कि इतनी पवित्र रूप राशि किस प्रकार इस कलुप धरित्री म सम्भव हुई? निश्चय ही यह धम के हृदय से निकली हुई है। मानो विधाता ने शख से खोद कर मुक्ता से खीचकर मणाल से सवार कर चन्द्रकिरणो के कूचक से प्रक्षालित कर सुधा पूण से धाकर रजत रस से पोछ कर कुटज-कुद और सिंधुवार पुष्पो की धवल कान्ति से सजा कर ही उसका निर्माण किया था।[5] यह वणन भी कादम्बरी के महाश्वेता वणन (१३३ १३५) से मिलता जुलता है।

बाणभट्ट ही इस उपन्यास का नायक है, जिसके वैभव का भावुकतापूण चित्रण ही उपन्यास की विशेषता है। नारी सम्मान हित स्वप्राणो की आहुति द देने को तत्पर बाण म आत्म सम्मान की भावना भी कूट कूट कर भरी हुई है। भट्टिनी महामाया कथोपकथन म बाण का सकेतात्मक चरित्र चित्रण प्रस्तुत किया गया है। भट्टिनी की यह पक्ति— मा, भट्ट इस पथ्वी क पारिजात ह, इस भवसागर के पुण्डरीक है, इस कटकमय भुवन के मनाहर कुसुम है।[6] बाण के समस्त चरित्र का सकेतात्मक उदघाटन कर देती है। भट्ट के हृदय की पवित्रता और सरलता उसके आवारापन आदि दोपो को वसुधान-कान के समान ढक लेती है। बाण टाइप न होकर वर्यक्तिक चरित्र है, जिसके व्यक्तित्व का प्रसाद परिस्थितिया और मना-कामनाओ की प्ररणा क साथ-साथ हुआ है। वह अपने जीवजगत साहसिक कार्यों का विवरण स्वय देता है।

पात्रा की एतिहासिकता का अक्षुण्ण बनाए रखन के लिए उन्ह तत्कालीन राजनतिक एव सामाजिक वातावरण क अनुकूल गढा गया है। आयवत के विनाश का

---

५ बाण भट्ट की आत्म-कथा—पष्ठ २६ २७

६ वही—पृष्ठ १४२

निकट देखकर बाणभट्ट अपने मान अपमान और सिद्धान्तो को तिलाजली देकर महाराजा धिराज हर्ष का दौत्य स्वीकार करता है तथा भट्टिनी को कान्यकुब्ज म सम्मानपूर्वक लाकर राज्यश्री के आतिथ्य को स्वीकार करने का उत्तरदायित्वपूर्ण काय सम्भालता है। यद्यपि इस भावुकतापूर्ण काय के लिए उसे भट्टिनी के सम्मुख लज्जित होना पडा। महाराज हर्षवधन के व्यवहार म जो परिलक्षित होता है वह भी निश्चय ही परिस्थितिजनित ही है। राष्ट्र प्रेम स अभिभूत होकर कृष्णकुमार सरीखे शठ भी आत्म परिष्कृति का अवसर पा लेते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि इस उपन्यास के कुछ पात्र वयक्तिक हैं और गति शील (Dynamic) प्रकृति के हैं। इसम पुरुष पात्र ही अधिक है, जो गति शील हैं। स्त्रिया स्थिर रहती है।

'बाणभट्ट की आत्म कथा' म पुरुष पात्रो की अपेक्षा स्त्री पात्र अधिक सजीव और गौरवपूर्ण ढग स चित्रित किए गए है। महामाया निपुणिका भट्टिनी और सुचरिता सभी टाइप हैं और अपने अपने सिद्धान्तो पर अटल रहती है। भट्टिनी के विषय म बाण कृष्ण कुमार से कहता है— वे हिमालय स भी अधिक महीयसी और समुद्र स भी अधिक गम्भीर है। प्रसिद्ध नतकी चारुस्मिता निपुणिका के बलिदान अवसर पर बाण की अस्त यस्त मन स्थिति को सयत करने के लिए निउना के गौरवपूर्ण चरित्र का इन शब्दो म उद्धत करती है— निपुणिका स्त्री जाति का श्रृ गार थी, सतीत्व की मर्यादा थी, हमारी जसी उन्मागगामिनी नारियो की मार्गदर्शिका थी।[७] 'त्याग, सेवा और सयम की साक्षात मूर्ति निपुणिका दृढ प्रतिज्ञ थी। अपने को नि शेष भाव से दे देने म ही जीवन की साथकता मानती थी अतएव उसका बलिदान उसकी कथनी और करणी के साम्य का ज्वलन्त उदा हरण है, उसकी चरित्रगत स्थिरता का प्रतीक है।

आचाय चतुरसेन शास्त्री

एतिहासिक वणनात्मक शिल्प विधि के कथाकारो म आचाय चतुरसेन विशिष्ट स्थान रखते है। परिमाण की दृष्टि से इनसे बढ कर उपन्यास रचने वाला अन्य कथाकार विरला ही मिलेगा। इन्होने चार बृहद् एतिहासिक उपन्यास लिखे है जिनम प्रथम वशाली की नगर वधू का प्रकाशन दो भागो म क्रम से १९४८ और १९४९ म हुआ। इस उपन्यास की वणनात्मकता असदिग्ध है। उपन्यास के ७८७ पष्ठो म बौद्धयुगीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक तथा नतिक परिस्थितियो का व्यापक चित्रण वणनात्मक शिल्प विधि द्वारा सयोजित हुआ है। भौगोलिक विस्तार देखना हो तो गाधार से लेकर मगध तक फले वज्जियो मल्लो एव शाक्यो के गणराज्यो म देखिए राजनतिक ऊहापोह पढनी हो तो अवन्ती कोशल वत्स्य एव मगध के प्रभुत्वशाली सम्राटो के महलो म होने वाले षडयन्त्रो के विवरण को पढिए, नतिक एव सामाजिक दशा परखनी हो तो लिच्छवियो के वज्जीसघ की राजधानी वशाली की परम्पराओ का अवलोकन कीजिए।

---

७ बाणभट्ट की आत्म-कथा—पष्ठ १०१
८ वही—पष्ठ ३१०

प्रस्तुत उपन्यास म एतिहासिक तथ्या का अभाव ह, किन्तु पात्रा की यथायता एव एतिहासिक रस की उपलब्धि निर्विवाद है। सम्राट बिम्बसार महामात्य वषकार आचाय शास्त्रज्ञ कश्यप, विष कन्या, कुण्डली सम्राट प्रसेनजित तक्षशिला से शस्त्रा एव शास्त्रा म पारगत होकर लौटा सोम, आया मातगी आदि पात्र एतिहासिक है, किन्तु इह वणनात्मक विधि स प्रस्तुत करन के निमित्त देश-काल म अन्तर डालन वाली सीमाओ से ऊपर रखकर सयाजित किया गया है। मगध केन्द्रीय सत्ता सम्पन्न राज्य माना जाता था। उसके सम्राट बिम्बसार वद्ध एव राजनीति के प्रति उदासीन, महत्त्वाकाक्षाहीन व्यक्ति के प्रतीक है। महा अमात्य वषकार कूटनीतिज्ञ शासन चाहन वाले वग के प्रतिनिधि है। इधर काशल सम्राट प्रसनजित विलासी राजवग का प्रतिनिधित्व करत है। व विदूडभ के षडयन्त्रा का शिकार हाते है। अम्बपाली वशाली की नगर वधू और कथा की केन्द्र है। उत्तराद्ध म सम्पूण कथा उसके सहारे बहती है, जिससे औपन्यासिक शिल्प की वद्धि हुई है।

प्रस्तुत उपन्याम म नगर मधुपर्वोत्सव आखट नारी-लालित्य आदि प्रसगा क अन्तगत लम्ब-लम्ब वणन भरे पडे है। एस प्रसगा के आते ही मूल कथा परे हट गइ है। अनक घटनाओ का प्रत्यक्ष रखकर उनके प्रसग का लाभ उठाकर कथाकार तत्कालीन राजनतिक धार्मिक तथा नतिक परिस्थितिया तथा दशाओ की व्याख्या करन लग जाता है। इसके घटना-बाहुल्य पर टिप्पणी करत हुए एक आलाचक लिखत हैं— सक्षप म इस उपन्याम म विविध प्रसगो की रोचकता के कारण कथा इतनी राचक ता नही हान पाती है परतु घटनाओ का भारी सयोजन जासूसी उपन्यास के कथानक की भाति है।[1] मेर विचार म इसके कथा रूप की सक्षिप्तता तथा तत्कालान राष्ट्रीय चित्रा का आधिक्य ही उपन्यास का प्राण है। इस सबध म एक-दूसरे आलाचक का मत उद्धत किया जाना है— "इस उपन्यास के अन्दर मूल कथा का स्थान अत्यन्त गौण है। उपन्यासकार न तत्कालीन सामाजिक, राष्ट्रीय तथा धार्मिक परिस्थितिया के चित्रा का अति स्पष्ट रूप म उभार कर रखन का प्रयत्न किया है। इस उपन्याम के द्वारा इस बात पर अच्छा प्रकाश पड जाता है कि उस काल म नगर कम और गाव अधिकाश सम्पन्न थे—इस प्रकार पौरोहित्य तथा मन्त्रित्व दाता के द्वारा देश की सारी की सारी सामाजिक एव राजनतिक व्यवस्था पर ब्राह्मण धम का एकमात्र प्रभाव स्थापित करन की याजनाए नित्य बनती रहती थी जिसम देश का वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध हा उठा था।[2] आलाचक का यह कथन तथ्यपरक है। प्रस्तुत उपन्यास म राज्यो और गणराज्या की तत्कालीन व्यवस्था पर ही विस्तार स प्रकाश डाला गया है। कथा ता उसका साधन बनकर गौण रूप धारण कर लेती है। साध्य तत्कालीन भारत का वणनात्मक चित्रण है जिसम उपन्यासकार का सफलता मिली है। कथा एक राज्य स सबधित न होन क कारण अनक राज्या एव गणराज्य

---

१ डा० प्रतापनारायण टडन हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास—पृष्ठ ३३०

२ डॉ० त्रिभुवनसिंह हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—पृष्ठ १८३

हंसली थी। बाहों में बाजूबंद थे, नाक के छेद में सोने की छड़ (कील) थी। कलाइयों में लाह की मोटी मोटी चार लहठियां बड़ी भली लगती थीं। पैर खाली थे। हां, उन पर पीपल के पत्ते की शक्ल का गोदना गोदवा रखा था। चौड़े पाट की साफ साड़ी पहन कर जब वह बाहर निकलती तो और भी खूबसूरत लगती। ढीठ वह इतना था कि अकेले में पाकर जाने कितनी दफे इन गालों को उसने चूम लिया था।[3]

जमींदारों के शोषण का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है जिसकी तुलना 'गोदान' से की जा सकती है। जैसे 'गोदान' में जमींदार और सूदखोर लोग होरी आदि पात्रों के खून की अन्तिम बूंदों तक लेकर तृप्त नहीं होते, ऐसे ही बलचनमा की मालकिन बेचारी मिसरायन से उसकी टोकरी बिलकुल खाली करवा लेती है और वह कहती है 'भगवान इनका पेट है कि अगम कुआं।'[4] यह कोई नई बात नहीं है। जमींदारी का उद्देश्य किसानों को भूमि से वंचित रखने का इतना नहीं है जितना जीवन की नित प्रतिदिन की सुख-सुविधाओं से दूर रखना।

बलचनमा ने देहाती जीवन के साथ नागरिक जीवन की अनुभूतियां भी अर्जित की। वह फूलबाबू के साथ पटना जाता है। वहां वह विभिन्न राजनैतिक दलों की कार्य प्रणाली तथा उन नायकों की जीवनचर्या को अति निकट से देखता है। राधे बाबू की बातें और स्वामी सहजानन्द के भाषण उसने बड़े ध्यान से सुने हैं। जीवन की असाधारण और अप्रत्याशित घटनाओं एवं अनुभूतियों को उसने आत्मसात कर लिया है। उसके चरित्र में असाधारणता उभर आ गई है जो यथार्थ एवं उपयुक्त पृष्ठभूमि पर आधारित है। आलोचक मानसिंह के मतानुसार बलचनमा का चरित्रगत उभार असाधारण तो है किन्तु उपयुक्त पृष्ठभूमि से वंचित है। वे लिखते हैं— 'बलचनमा के चरित्र में फिर भी आखिर में असाधारणता उभर आ गई है। जमाने के संघर्ष में जिस प्रकार वह नेतृत्व करता है और दुनियादारी बातों की पकड़ जितनी दृढ़ हो जाती है उसके लिए कुछ और ही उपयुक्त पृष्ठभूमि बनानी चाहिए थी।'[5] प्रस्तुत शोधकर्ता के मतानुसार यह पृष्ठभूमि पर्याप्त है। बलचनमा एक वर्णनात्मक शिल्प विधि की रचना है और इसमें [illegible] परिवार के जीवन की छोटी से छोटी घटना का चित्रण भी अति विस्तार के साथ किया गया है। नायक की अनुभूतियां शामिल नहीं है। हर अनुभूति ने उसे एक नया पाठ पढ़ाया है और उसके परिवर्तित गतिशील चरित्र के लिए पृष्ठभूमि तैयार की है। उसमें भारतीय ग्रामीणता पूर्ण रूप में विद्यमान है किन्तु इसका [illegible] में [illegible] प्रभाव उस पर निकटवर्ती समाज और कस्बों से परिलक्षित होता है। उसके जमींदार मालिक उसको [illegible] समान [illegible] का दर्जा है यह घटना उसके लिए अप्रत्याशित नहीं है यद्यपि वह जमींदारों के शोषित रूप से परिचित है किन्तु जब वह जागरूक बनता [illegible] तथा [illegible] के [illegible] और [illegible] घटना [illegible] करता है [illegible]

३ बलचनमा — पृष्ठ १८-१९
४ वही — पृष्ठ २४
५ मानसिंह : आलोचना — उपन्यास विशेषांक — पृष्ठ २१०

को अवना कर देते है, तब उसके पाव तल स धरती खिसक जाती है यह उसके जीवन की नवीनतम अनुभूति है जो उसके सस्कारा, विश्वासा और सिद्धान्ता म आमूल परिवतन ल आती है। उसे क्रान्ति की ओर अग्रसर करती है। वह अपने स्वत्व के लिए मर मिटने को तयार हो जाता है।

'बलचनमा म हम मैथिल भूमि के रहन-सहन, रीति-नीति सस्कृति, धम, भाषा और लोकगीता का महानुभूतिपूण चित्रण पढने को मिलता है। यहा लेखक ने जीवन को उसके यथाथ रूप म केवल पकड ही नही लिया अपितु उसे वणनात्मक शिल्प विधि की टोन भी दी है। गाव से नगर को बडी आशा आकाक्षा और लालसापूण दृष्टि से ताक रहा व्यक्ति, नगर स गाव को नवीन अनुभूति लेकर लौट रहा आदमी हम यहा देखने को मिलता है। इसम स्थानीय (Local) प्रचलित शब्दा बोलियो मुहावरा, लोकोक्तियो तथा किम्वदन्तियो का प्रयोग लोकगीता का माधुय स्थल-स्थल पर जुडा हुआ मिलता है। स्थानीय शब्दा का प्रयोग करते समय लेखक ने एक विशेष बात का ध्यान रखा है उसने शब्द का अथ नीचे रेखाकित कर दे दिया है—जैस डाकपीन (पोस्टमन) बरमबध, (ब्रह्मवध) हत्या का पाप।

बाबा बटेसरनाथ—१९५४

बाबा बटेसरनाथ नागाजुन का बहुचर्चित उपन्यास है। कोई इस आचलिक कोई प्रतीकात्मक और कुछ इसे समाजवादी रचना मानते है। प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक के मतानुसार इस उपन्यास का शीषक और आरम्भिक चित्रण ही प्रतीकात्मक है शेष रचना वणनात्मक शिल्प विधि अनुसार रची गई है। इसम बिहार प्रान्त के दरभगा जनपद का रूपउली ग्राम अपनी समस्त आचलिक विशेषताओ के साथ वर्णित हुआ है। इसी रूपउली ग्राम म एक वट वक्ष है जो जनपद म बाबा बटेसरनाथ के नाम स प्रचलित है। इसका आरोपण नायक जैकिसुन के परदादा द्वारा हुआ है इसीलिए जकिसुन को इस पर अपार आस्था है और इस इससे अपार स्नेह है। वट वक्ष मानव रूप धारण करके जकिसुन को इस जनपद के इस ग्राम की चार पीढियो की कथा सुनाता है।[1] वट वक्ष के मानव रूप धारण कर लेने को ही प्रतीक मानना हो तो मान लीजिए अन्यथा सारी कथा म इस प्रतीक का निर्वाह नही किया गया। वट वृक्ष बहुजन हितकारी है किन्तु किसी रूपक का वाहक नही है। इसके द्वारा कथा कहलाना एक उदात्त कल्पना अवश्य है किन्तु यह किसी बड प्रतीक की योजना नही कही जा सकती।

प्रस्तुत रचना म रूपउली की कथा का पूर्वाध जो इसके विगत स सबधित है वट वक्ष द्वारा वर्णित हुआ है शेष इतिहास का वणन जिसका सबध वतमान स है जकिसुन मुखोदगारित है। ये दोनो वणन कही भी साकेतिक नही है। प्रतीकात्मक शिल्प विधि साकेतिक भाषा का पहनावा पहनती है जिसका यहा अभाव है। रूपउली की बस्ती का

१ बाबा बटेसरनाथ—पृष्ठ १६-१८, १९ २५, ३३, ४५ ४७, ५१-५७, ९३ १०५

विवरण, शिव मन्दिर का चित्रण और ग्रामीणों की श्रद्धा का ब्यौरा, ग्रामवासी माडसिया का वर्णन जमींदार और उनके गुर्गों की ज्यादतियां, अकाल प्रकोप, असहयोग आन्दोलन वर्णात्मक शिल्प के द्योतक हैं। भूचाल और बाढ़ का ब्यौरेवार वर्णन, देवी देवताओं के प्रति जनता का अन्धविश्वास, पशु-बलि के रोमांचकारी दृश्य, कहीं भी सांकेतिक भाषा में नहीं दिए गए। बरगद के नीचे जुटने और कतिपय निर्णय लेने वाली पंचायतों के विवरण भारी भरकम हैं जो इस रचना को वर्णनात्मक अधिक और प्रतीकात्मक कम कर देते हैं। टुनाई पाठक के दादा जन्दू पाठक के चरित्र का रेखाचित्र नहीं अपितु पूर्ण विवरण हमें पढ़ने को मिलता है।

जहां तक शीर्षक का संबंध है वह अवश्य प्रतीकात्मक है। वट वृक्ष भारतीयों की दृष्टि में शान्ति सुख और समृद्धि का प्रतीक है। उसकी पूजा परम श्रद्धा एवं भक्ति के साथ सम्पन्न होती है। अपने प्रति जनसाधारण की आस्था को अटूट बनाए रखने के लिए बटेसरनाथ एक स्वप्न का आश्रय लेते हैं जिसके फलस्वरूप जनता में भक्ति भाव, पूजा पाठ और अनन्त श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। टुनाई पाठक और जनारायण उसे जमींदार से सरीन्दर कटवाना चाहते हैं यहीं से उपन्यास में संघर्ष और वास्तविकता आ जाती है। वट वृक्ष जकिसुन को स्वप्न की बात बताकर केवल डराता ही नहीं उसमें सहज सहानुभूति और मानवीय संवेदना भी जागृत करना चाहता है। किसान संगठन इस नवान्वित मानवीय संवेदना का परिणाम है। जब जकिसुन विगत युग की वास्तविक स्थिति से परिचित हो जाता है तब वह वर्तमान युग की गति विधि का पूर्ण निरीक्षण करता है। बाबा बटेसरनाथ द्वारा बाबा गाथा के कांग्रेस संगठन और असहयोग आन्दोलन में उस दल की राजनैतिक हलचल का विवरण मिलता है। जीवनाथ दयानाथ और जकिसुन आदि युवक मिलकर किसान संगठन को दृढ़ बनाते दिखाए गए हैं। उपन्यास के अन्तिम शब्द स्वाधीनता—शान्ति—और प्रगति हैं जो साम्यवादी विचारधारा को प्रकट कर रहे हैं। साम्यवादी विचारधारा का प्रबल समर्थक लेखक बरगद बाबा के अवतारवाद के सिद्धान्त का समर्थक नहीं हो सकता, अतएव उसे वह एक प्रतीक रूप में नहीं जन आन्दोलन के कथावाहक रूप में अपना रहा है। वह जकिसुन और अन्य युवकों का पथ प्रदर्शक है उनमें क्रान्ति की नई ज्वाला भड़काने वाला है।

'बाबा बटेसरनाथ' में हम मथिल प्रदेश की अमराइयां झील पोखर वट-वृक्ष की छांव और चांदनी रागपूर्ण प्राकृतिक छटा के साथ वर्णनात्मक शैली में पढ़ने को मिलता है। इसमें प्रतिवादी व्यक्तिवादी कलाकृति का विश्लेषण या प्रतीकवादी स्वप्नों के संकेत और कल्पनाएं नहीं हैं ठोस यथार्थ अंचल की जनसंस्कृति ग्राम वन उपवन और ताल की खुली वायु का गुंजन और अंधकार पर रूपउली ग्राम के पुरुष—उनके वर विरोध हास्य रुदन द्वन्द्व और आस्थाएं तथा युवकों का वर्तमान दृष्टिकोण उनका बल, उनकी दृढ़ता उनका तेज मधुर वर्णनात्मक चित्रों से भरपूर रूप में देखने को मिलता है। भाषा का प्रयोजकता भी इसमें रतिनाथ की चाची नई पौध और 'बलचनमा' से कम है। भाषा सरस मार्मिक और मुहावरेदार है, अनगढ़ अजनबी और भारी भरकम नहीं। इसमें न तो जनपदीय शब्दों का बाहुल्य है न सामाजिक संवाद। भाव प्रभिव्यंजना [illegible] में रस

गए ह। गीतो की मन्या भी उपन्यास म कुल दा है। बाबा बटेसरनाथ पूरी तरह स प्रतीकात्मक शिल्प विधान का भल ही न अपना पाया हा, किन्तु एक वचारिक क्रान्ति का उदबोधक अवश्य बन गया है। मनुष्य बालने देखे गए है प्रेत भी बोलत हैं किन्तु वक्ष का बोलना और ठोस बातें कहना हिन्दी उपन्यास के क्षत्र म रूप शिल्प की दष्टि से नया प्रयोग है।

वरुण के बेटे—१९५७

मछुओ के जीवन स सबधित उपन्याम हिन्दा साहित्य म कम ही रच गए है। नागार्जुन के इस उपन्यास म मछुआ के जीवन का यथाथ चित्रण वणनात्मक शिल्प विधि द्वारा सम्पन्न हुआ है कासी के प्रकोप स त्रस्त अचल अब अकाल और मलेरिया के प्रकोप से त्रस्त था। गढ पोखर सकडा मील का जलाशय मछलिया का अमित भडार ही इन मछुआ का जीवनाधार था किन्तु इस पर जमादारो की एक मात्र सत्ता, इनके जीवन की भी नाना समस्याए थी। इस समस्या स छुटकारा पाने के निमित्त नागार्जुन न इस रचना म भी राजनीतिक गति विधि का सनिवश जुटा दिया ह और किसान सभा आदि का वणन किया है। मोहन के द्वारा दिया गया ओजपूण भाषण वणनात्मक शिल्प का ज्वलन्त उदाहरण है।[1] माहन का यह भाव मथिली भाखा म दिया बताया गया है जो आचलिकता का द्योतक है। सिंगी मगुरी कबहू लाल मुह वाली रेहू आदि मछलिया की नामावली और इनको पकडने की विधि वणनात्मकता की वद्धि कर रहा है। ऊपर टान हइयो—बाए छबके हइयो —ढीलरस्सा, हइ हा वाला गीत न केवल लोक गात है अपितु श्रमिका को प्रेरणा दन वाला एक आचलिक प्रयोग भी है मधुरी मगल प्रेमालाप मधुरी का आदश मगल का परिवर्तित परिस्थिति का अपनाना मधुरी की विदाई का वणन विशिष्ट जनपद के जीवन की यथाथ झलक प्रस्तुत करने वाली बात है। भाला का त्याग खुरखुन की अलहडता माहन का तज प्रस्तुत रचना को दीप्ति प्रदान कर रह है मथिली के मधुर गीत जिनगी भेल पहाड उमिर भेल कासन नइ फेउनइ फेक आहे मार दिलचन (जीना हुआ मुश्किल जवानी हुई घातक न डालो, न डाला आ मेर दिल के चाद—पष्ठ २२) मन का गुदगुदा देने वाले आचलिक प्रयोग ह जो राजनतिक हलचला के साथ साथ मन की पीडा के चित्र प्रस्तुत करते है।

दुखमोचन—१९५८

वणनात्मक शिल्प विधि की इस रचना म आचलिकता के साथ-साथ सावदेशिक स्थिति का विवेचन भी उपलब्ध हाता है गाव की गुटबन्दी केवल टमका कोइली की गुटबन्दी नही है देश के नाना गावा की यथाथ स्थिति है। इसी गाव का पला हुआ मुसीबता का मारा दुखमोचन एक टाइप पात्र है जा कही और भी उपलब्ध हा सकता है। निरया बाबू जसे परम्परा के पुजारी देश म कराडा की सख्या म विद्यमान है। टमका कोइली की पचायत

---

१ वरुण के बटे—पृष्ठ ३६

देश की अन्य पचायत स किसी अथ म विभिन्न प्रकार की नही है। जात-पात का टटा खानदानी घमण्ड दौलत की धास अशिक्षा का अधकार, लाठी की अकड, नफरत का नशा और परम्परा का बोझ इसी पचायत की विरासत नहीं कही जा सकती। सेवा, त्याग और आदश की त्रयी दुखमोचन का अति मानव बनाने म समथ होती है। नये युग के नय आयाम और नई स्फूर्ति उसम प्रतिपल विद्यमान रहती है। उपन्यास की सब घट नाए उसे केन्द्र म रखकर वर्णित हुइ है। आग लगने की घटना उसे उसके आदर्शों से नही गिराती। वह सच्चा जन-सवक बनकर गाव के सुधार की योजनाए तैयार करता है। उपन्यास का अत ग्राम म कन्या पाठशाला क निर्माण और उसम ग्राम के सबसे वद्ध पूवज बोधू चाचा द्वारा ध्वजारोहन और छात्रा द्वारा गाए वन्दे मातरम गीत द्वारा होता है। 'दुखमोचन' का अलगाव नागार्जुन के अन्य उपन्यासो से इसके चरित्र प्रधान और साव देशिक होने म है। इस रचना म आचलिकता कम होती गई। साम्यवादी विचारधारा भी गौण हो गई है।

मैला आचल—१९५४

मैला आचल' की प्रसिद्धि का मात्र कारण हिन्दी कथा साहित्य म आचलिक चित्रण के अभाव की पूर्ति माना जाता है। इसम भारत के उत्तर पूव म स्थित बिहार प्रात क पिछड ग्राम मेरीगज का महन वणन मिलता है। अत शिल्प की दृष्टि से अध्ययन करने पर मैंने इसम वणनात्मक शिल्प विधान की समस्त विशेषताए देखी है। रेणु ने इस रचना में मिथिला के इस अचल का बिहारी ग्राम्य जीवन का अन्य शिक्षित निम्न वग की भावनाओ समस्याओ और कुण्ठाओ का एक व्यापक चित्र अकित किया है।

मैला आचल की समस्त घटनाए मेरी गज की जनता स सबधित हैं और पुर्णिया जिले की सीमाओं म आबद्ध रहती है। उपन्यास क आरम्भिक पष्ठो म इस जिल के गावो का सकेतात्मक वणन करने के पश्चात् रेणु की तूलिका मेरीगज पर आकर केन्द्रित हो गई। मरीगज का वणन इन शब्दो म अकित हुआ है—'एसा ही एक ग्राम है मरीगज। रौतहट स्टेशन स सात कोस पूरब बूढी कोशी का पार करके जाना होता है। बूढी कोशी क किनारे किनारे बहुत दूर तक ताड और खजूर के पडो स भरा हुआ जगल है। इस अचल के लोग इस नवाबी तडबन्ना' कहते हैं। किस नवाब ने इस ताड के वन को लगाया था कहना कठिन है। लेकिन वशाख स लेकर आषाढ तक आसपास क हल वाहे चरवाहे भी इस वन को नवाबी कहते हैं। तीन आने लबनी ताडी, रोक साला मोटर गाडी। अथात ताडी क नशे म आदमी मोटरगाडी को भी सस्ता समझता है। तडबन्ना क बाद ही एक बडा मदान है जो नेपाल की तराई स शुरू होकर गगाजी क किनारे खतम हुआ है। लाखो एकड जमीन। वन्ध्या धरती का विशाल अचल[1]

मेरीगज म स्थित मेरीगज कोठी का इतिहास भी विवरणात्मक है जिसम मि० डब्ल्यू० जी० मार्टिन की पत्नी की बीमारी और मार्टिन क मलेरिया सेन्टर तथा अस्पताल

---

1 मैला आचल—पृष्ठ ६

खोलने के प्रयत्न के वणना की भरमार है। इसके पश्चात मेरीगज म बसने वाली राज पूत कायस्थ और ब्राह्मण टालिया का वणन है। राजपूतो और कायस्थो के पुश्तनी झगडे ठाकुर रामकिरपालसिंह और विश्वनाथ प्रसाद को मुख्या बनाकर प्रस्तुत किए गए ह। इन लोगा की पचायत म भी गुड गोबर के दृश्य देखने को मिलते ह। मठ पर गाव भर के मुखिया इकट्ठे हो जाते हैं और सभी अपनी अपनी बात पहले कहने को तैयार दीखते हैं, परिणामस्वरूप सब एक साथ बोलते है और मूल विषय दबकर रह जाता है। बालदेव कालीचरन आदि पात्रो का भाखन (भापण) देने का विशेप शौक है। महन्त की रखेल लक्ष्मी भी इसी कोटि (Category) म आ जाती है। भावुकतावश वह यथाथ परिस्थितियो तथा विचित्र घटनाआ का विवरण दने के लिए लम्बे चौडे भापण दे डालती है। इन पात्रा के भापणो म बिहारी ग्रामीण जनता की सामाजिक राजनतिक धार्मिक एव सास्कृतिक समस्याआ तथा रीति रिवाजा आदि का वणन अति विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है।[२]

प्रस्तुत उपन्यास की कथा दो भागा म विभाजित है। प्रथम खण्ड म हम कोइ व्यवस्थित, सतुलित, शृ खलाबद्ध कथा नहीं मिलती। नीरस अवाच्छित खण्ड चित्रा का पढन-पढते पाठक का मन ऊबने लगता है। इस खण्ड म राष्ट्रीय आदोलना की व्याख्या, धार्मिक मठा के आडम्बरा की चचा ग्रामीण जनता के मनोदगारा का वणन अति विस्तार के साथ प्रस्तुत हुआ है। किसी भी उत्कृष्ट कलाकृति म समाज चित्रण प्रस्तुत करते समय एक विशेप सीमा तक सतुलन की आवश्यकता रहा करता है किन्तु 'मला आचल' मे इस सतुलन का अभाव है। पूवाध म ग्रामीण उत्सव रीति रिवाज धार्मिक आडम्बर राजनतिक उथल पुथल सोशलिस्ट आदालन, गाने बजाने के विस्तत वणना ने उपन्यास का आकार ही बढाया है कथाशिल्प का सौष्ठव नष्ट कर दिया है। इसी खण्ड म सन ४२ के स्वतत्रता आन्दोलन से लकर स्वराज्य प्राप्ति तक का उतार, चढाव, जनक्रान्ति म एक ग्राम विशेष का यागदान दर्शाया गया है। दूसरे खण्ड म कथा अपेक्षाकृत सतुलित एव सयत हा गइ है। सुराज (स्वराज्य) प्राप्ति का उत्सव नत्य वादन और सक्षिप्त भापण द्वारा सम्पन्न हो जाता है इसी खण्ड म कमला डॉक्टर प्रणय त रोमास अपने चरम सोपान पर पहुचता है। कमला के गभ रह जाता है और सामाजिक मर्यादा का पालन करने के लिए डॉक्टर कमला के साथ विवाह की हा कर लेता है। गभ का समाचार सुनकर कमला के पिता तहसीलदार की मनोदशा का वणन भी यथाथ ममस्पर्शी और पाठक के हृदय म सहानुभूति उत्पन्न कर देने वाला है। यहा कथा म उभार तथा सतुलन दृष्टिगोचर होता है। पूजीपतिया के प्रति पुलिस का पक्षपात और कालीचरण जस साहसी देशभक्त का कारावास आदि प्रसगो का वणन सामाजिक यथाथ का उद्घाटक तो है ही साथ ही वणनात्मक शिल्प विधि का परिचायक भी है।

'मला आचल' को पढते समय पाठक प्रति क्षण अपने को पूर्णिया जिले के गाहन

---

२ मला आंचल—पृष्ठ २६ ३० लक्ष्मी का भाखन, धार्मिक विषय पर कालीचरण का भापण—पृष्ठ ३१ ३२, बालदेव का भापण राजनतिक विषय पर—पृष्ठ २३५

म विद्यमान पाता हु और वहाँ की ग्रामीण परिस्थितिया एव घटनाओ से इतना अधिक परिचित हो जाता है जितना कि एक इतिहास का विद्यार्थी किसी विशेष प्रदेश की एतिहासिक एव भौगोलिक परिस्थितियो की जानकारी प्राप्त कर लेता है। इस विषय म डा० शिवनारायण श्रीवास्तव लिखते है— रेणु न ग्राम्य जीवन की प्रत्येक गति विधि, सबलता दुबलता, स्वास्थ्य अस्वास्थ्य को एक वज्ञानिक की तटस्थता से आकने का प्रयत्न किया है। मानव स्वभाव की जटिलताओ कुण्ठाओ आचरण की असगतियो सामाजिक एव वयक्तिक सदाचार के बीच वषम्य आदि के चित्रण म मनोविश्लेषणात्मक कला का उत्कृष्ट रूप मिलता है।[१]

प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को डा० श्रीवास्तव के कथन का अन्तिम अश मान्य नही है। यह ठीक है कि रेणु ने ग्राम-जीवन की प्रत्येक गतिविधि को अपनी तूलिका द्वारा बाध कर दिखाने का उत्तम प्रयत्न किया है किन्तु यह नही माना जा सकता कि इस रचना म मनोविश्लेषणात्मक कला का उत्कृष्ट रूप मिलता है। वास्तव म मला आचल एक वणन प्रधान रचना है। इसकी कथा इसके पात्र और इसका समस्त वातावरण तथा समस्याए समाजोन्मुखी हैं और उनके बाह्यरूप का वणनात्मक परिचय ही पाठक को प्राप्त होता है। घटनाओ की सूक्ष्म स्थितियो का अन्वेषण पात्रो की क्रियाओ प्रतिक्रियाओ का विश्लेषण और समस्याओ का मनोवज्ञानिक अध्ययन रेणु न इस रचना म कही भी प्रस्तुत नही किया है। यहा तो मेरीगज की ही बात उठाई गई है उनकी परिस्थितिया वहा के जमीदारो के जुल्म वहा की निम्न वर्गीय सामाजिक दशा, धम के ठेकेदारो के काले कारनामे जगली जाति के उपद्रवो के वणन द्वारा इतिहास ही पाठक के पल्ले पडता है कमला प्रशान्त को लेकर जो थोडा बहुत अन्वेषण हुआ है वह भी डा० प्रशान्त कुमार की सेवा प्रधान सामाजिक प्रवत्तियो के आधिक्य के कारण वयक्तिक विश्लेषण का विषय बन जाने से वचित रह गया है। मनोविश्लेषणात्मक रचना के लिए रचना का वयक्तिक होना अनिवाय है। मला आचल एक सामाजिक उपन्यास है अतएव इसम मनोविश्लेषण के प्रयोगो अथवा रूपो को देखना मरुभूमि म जल की कल्पना करना है।

मला आचल के पात्र भी वयक्तिक नही हैं वे टाइप हैं और स्थिर हैं। वे या तो क्रूर नाना भाति के अत्याचार करके मौज मनाने वाले जमीन्दार है, या मठो म रहकर भोली भाली ग्रामीण जनता की भोली बुद्धि और अध श्रद्धा के बल पर एश करने वाले मठाधीश सेवादास तथा महन्त रामदास फिर उमादारो के अन्याय की शिकार अनेक जातियो तथा उपजातियो म बटे गौण पात्र आते हैं जो एक विशेष स्तर की रूढियो, विश्वासो और सिद्धान्तो से जुकडे की भाति चिपके हुए दिखाए गए हैं। लछमी बालदेव सरीखे स्वच्छ प्रेमी उपरचित किन्तु निरान्त अन्य प्राणी भी हैं और कालीचरण जसे गिरगिट की भाति रग बदलने वाले मगन को नेतागिरी के चक्कर म घुमाने वाले पात्र भी हैं। डाक्टर प्रशान्त कुमार के चरित्र म गाधीवादी आदर्शों की स्थापना की गई है। आज के भौतिकवादी युग म जब साधारण युवक वग नगर के चकाचौंध का भरपूर आनन्द उठाना

---

१ हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ ३६८

अपने जीवन का चरम लक्ष्य समझता है, तब गाधीजी की विचारधारा से प्रभावित य-जीवन को अपनाने और जन सेवा करने को तयार डाक्टर प्रशान्त कुमार का चरित्र का इस प्रकार चित्रित करता है—"वह लोक-कल्याण करना चाहता है

भारत माता ग्राम्य वासिनी
खेता मे फला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आचल

जिन्दगी की जिस डगर पर वह बेतहाशा दौड रहा था उसके अगल बगल आस न कही क्षण भर सुस्तान के लिए कोई छाव नही मिली।"[4] डाक्टर के साथ साथ काली न के चरित्र म भी देवत्व की कल्पना की गइ है। डाक्टर दृढ प्रतिज्ञ भी है वह कहता —'ममता ! मैं फिर काम शुरू करूगा। यही, इसी गाव म। मैं प्यार की खेती करना हता हू। आसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौध लहलहावगे। मैं साधना करूगा। म्यवासिनी भारत के मले आचल तल। कम स कम एक ही गाव क कुछ प्राणिया मुरझाए ओठो पर मुस्कराहट लौटा सकू, उनके हृदय म आशा और विश्वास का प्रति न कर सकू [5] सक्षेप यह कि सब के सब चरित्र भी वणनात्मक शैली म घाटित हुए ह।

इस आचलिक उपन्यास म प्रादेशिक भाषा को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। यास का समस्त वातावरण स्थानीय बोली, स्थानीय गीत तथा स्थानीय सकेता स च्छादित है। प्रादेशिक सूक्तिया क कुछ नमूने देखिए— 'बनिया का कलेजा घनिया' ाज शोसलिस्ट लोग शोक सभा करन गए। एक भी आदमी सभा म नही गया। अब ग शभा का अथ समझ रहे ह हु कोइ बात हो तो फुच्च स शभा—। प्रस्तुत यास मे अनेक स्थलो पर पूर्णिमा की स्थानीय बोली की अनेक ध्वनिया ज्यो न्त्या रखी गइ हैं। जिसके कारण पाठक वग का बहुताश उपन्यास की थीम को समझ पर भी इस कृति का पूण आनन्द उठाने से वचित रह गया ह। जस—

"ओ होय ! नायकजी।
बिकटा (विदूषक) आया भीड म हसी की पहली लहर खेल जाती है।
'आ ! होय नायक जी।'
'क्या है ?'
अरे फतग फतग क्या वज रह हैं ?"
अरे मदग वज रहा है। यह करताल ह, यह झाल ह।"
सा तो समझा। यह घन्गि घडिगा गन पतगगा क्या बजात ह ?

धिन ताक धिन्ना धिन ताक धिन्ना।
'ओह। उत्तरहि राज स आयल हे नटुकवा कि आह मया

---

४ मला आचल—पृष्ठ १८३ ८४
५ वही—पृष्ठ ४२५

कि ग्राहे मया सरोसती हे परथमे वन्दानि हे नाहार
हमहू मरुत गवार कि ग्राहे मया
सरोसती, भूलूल ग्रागर जाडि व ग्रा मया
कठ ली ह वास १

इस उदाहरण से यह बात सिद्ध हो जाती है कि भोजपुरी मिथिला और बगला का जानकार ही इस उपन्यास को पूरी तरह समझ सकता है और इसमे रस ले सकता है। गीत खण्ड भी कम नही है अनेक स्थलो पर—

घिना घिना घिना तिना तिना
धिक तक घिन्ना, धिन तक घिना।

डिना डिना ग्रथवा डिना डिना'

पढकर भी पाठक ऊबने लगता है। हालाँकि पत्र का वर्णन चार-पाँच गीतो की योजना के कारण विस्तृत भी हो गया है और पाठक के धैर्य का परीक्षा स्थल भी बन गया है किन्तु वर्णनात्मक शिल्प विधि का उपन्यास यदि इस प्रकार के प्रयोगो से पूर्ण हो तो कोई आश्चर्य की बात नही है व्यापकता तो इस शिल्प का प्राण समझिए।

परती परिकथा—१९५७

परती परिकथा रेणु की दूसरी औपन्यासिक रचना है। यह भी एक आचलिक उपन्यास है। आचलिक उपन्यास में किसी ग्राम अचल अथवा सीमित क्षेत्र विशेष को लेकर वहा की जनता के रहन सहन वेश भूषा, बोल चाल और स्वभाव तथा सस्कृति का समग्र रूप से चित्रण पूर्ण विवरण के साथ प्रस्तुत किया जाता है। मैला आचल में पूर्णिया जिले के मेरीगज और परती परिकथा में परानपुर ग्राम को केन्द्र रूप में प्रस्तुत करके रेणु ने बिहार के इस क्षेत्र विशेष का वृहद वर्णन कर डाला है। मैला आचल की भांति यह भी वर्णनात्मक शिल्प विधि की रचना है जिसके आरम्भिक पृष्ठ परानपुर की परती भूमि के वर्णन में रगे गए है।

परती भूमि के वर्णन का नमूना हम उपन्यास की प्रथम पक्तियो में दृष्टिगोचर होता है— धूसर विरान अन्तहीन प्रान्तर। पतिता भूमि परती जमीन वन्ध्या धरती। धरती नही, धरती की लाश जिस पर कफन की तरह फैली हुई है—बालू चरो की पक्तिया। उत्तर नेपाल से शुरू होकर दक्षिण गगा तट तक, पूर्णिया जिले के नक्शे को दो असम भागो मे विभक्त करता हुआ—फैला फैला यह विशाल भूभाग। लाखो एकड भूमि, जिस पर सिर्फ बरसात में क्षणिक आशा की तरह दूब हरी हो जाती है। सम्भवत तीन चार वर्ष पहले इस अचल में कोसी मैया की यह महाविनाश लीला हुई होगी। लाखो एकड जमीन को अचानक लकवा मार गया होगा। एक विशाल भू भाग हठात कुछ से कुछ हो गया होगा। कथा होगी अवश्य इस परती की भी। व्यथा भरी कथा वन्ध्या

---

१ मैला आंचल—पृष्ठ ६६

धरती की '' ग्रौर इसी परती धरती की, इसके निवासियो की, उनके विश्वासो तथा सिद्धान्तो की कथा वणनात्मक शिल्प म प्रस्तुत हुई। परती के निकटस्थ ग्राम परानपुर को ही लें—यह समस्त कथा का केन्द्र है। इसका वणन इन शब्दो म हुआ है "परानपुर बहुत पुराना गाव है १८८० साय म मि० बुकानन न अपनी पूर्णिया रिपोट म इस गाव के बारे म लिखा है— 'पुरातन ग्राम परानपुर। इस इलाके के लोग परानपुर को सारे अचल का प्राण कहते हैं। अक्षरश सत्य है यह कथन। गाव से पश्चिम मे बहती हुई दुलारीदाय की धारा तीन ग्रोर विशाल प्रान्तर तुण-शू य लाखो एकड वादामी रग की धरती गाव की ग्रावादी है—करीब सात-आठ हज़ार। विभिन्न जातियो के तेरह टोले हैं। मुसलमान टोली छोटी है पचास घर रह गए हैं ग्रब। परानपुर की पुरानी प्रतिष्ठा की रक्षा ग्राज भी य सामूहिक रूप से करने की बात सोच सकते हैं। बहुत उन्नत ग्राम है परानपुर प्रत्येक राजनैतिक पार्टी की शाखा है। धार्मिक सस्थाग्रो के कई धुरन्धर धम ध्वजी इस गाव म विराजे हैं। [२]

परानपुर का ही नही इस गाव के पश्चिमी छोर पर स्थित परानपुर स्टट की हवेली का वणन भी विस्तार के साथ किया गया है। इसके साथ-साथ लैंड सर्वे सेटलमट के सिलसिले म ग्राम वासियो की अधीरता एक एक इच भूमि के लिए सिर तोड चेष्टा, पचायत मुकदमेबाज़ी ग्रादि सामाजिक दशा का ब्योरेवार विवरण उपन्यास को वणनात्मक बनाने मे विशेष सहायक सिद्ध हुआ है। राजनैतिक एव धार्मिक क्षेत्रो म भी वणना का ग्राधिक्य है। कांग्रेस सोशलिस्ट कम्युनिस्ट जगह-जगह शोर मचाते दष्टिगोचर हुए हैं। पाकिस्तान बन जान पर समसुद्दीन की पतरेबाज़ी, लुत्तो की लीडरी के लिए दौड धूप, मकबूल की कलाबाज़ी, भूमिहार टोली के मनमोहन बाबू की चाची के ग्रन्ध विश्वास कही प्रत्यक्षता कही पराक्ष रूप म राजनीति जातिवाद ग्रौर धार्मिक भावो तथा विश्वासो की व्याख्या हित जुटाए गए प्रयत्न हैं जो अपन उद्देश्य म (उपन्यास को ग्राचलिक वणन का रग देने म) पूण सफल हुए हैं। एक स्थान पर हम लुत्तो रगमच पर खडा होकर राजनैतिक भाषण देते हुए दिखाया गया है तो दूसरे स्थान पर जितेन्द्र से टक्कर लन के लिए जनता को भडकाने के निमित्त प्रयत्नशील चित्रित किया गया है। इसी तरह सुवश लाल एक ग्रार समाज सुधार ग्रौर बीमा के काय म तत्पर दिखाया गया है दूसरी ग्रार मलारी प्रेम म विभोर दष्टिगोचर हुआ है। इस प्रकार क चित्रण ने ही इस रचना को ग्राचलिक बनाया है जहा सामाजिकता के साथ-साथ वैयक्तिकता उभर ग्राई है। 'परती परिकथा' म वर्णित जितेन-लुत्तो सघष केवल भूमिधर ग्रौर भूमिहीन का वगमूलक सघष ही नही हैं इसमे क्षेत्रीय पुरुष के मन का विरोध अपनी चरम सीमा को छूकर पाठक के मन को भी छू गया है। लुत्तो पग-पग पर जितेन का विरोध करता है किन्तु जितेन जो उसके मन के घाव की पीडा को समझता है उसे क्षमा करता है। विरोध, ईर्ष्या ग्रौर क्षमा के य उदाहरण सामाजिक ही नही वैयक्तिक ग्रौर ग्राचलिक बन गए हैं।

---

१ परती परिकथा—पृष्ठ १
२ वही—पृष्ठ १४ २१

परती परिकथा की एक और विशेषता है। मैला आंचल की अपेक्षा इसकी घटनाओं तथा पात्रों में अधिक तारतम्य है। पात्र-बहुल और घटना बहुल तथा वर्णन प्रधान हो जाने पर भी यह रचना अत्यधिक एकाग्रचित्त होकर लिखी गई प्रतीत होती है। उपन्यास के दो भाग हैं। पहले भाग में जितेन ही कथा का केन्द्र है और उसकी कथा का वर्णन कथाकार द्वारा तृतीय पुरुष शैली में हुआ है किन्तु दूसरे भाग में जितेन के पिता के संस्मरण डायरी शैली द्वारा उद्घाटित हुए हैं। इतना कहने से मेरा तात्पर्य यही है कि इस रचना में रेणु की पहली रचना की अपेक्षा अधिक तारतम्य है, यह नहीं कि यह रचना पूर्णरूपेण शृंखलाबद्ध कथा को लेकर अग्रसर हुई है। वास्तव में आंचलिक चित्रण प्रस्तुत करने के लिए तथा समाज चित्रण करने के लिए क्रमबद्ध कथानक और कथा सौष्ठव का आगमन एक दुःसाध्य काम है जिसे नागार्जुन आदि उपन्यासकारों ने ही पूरा किया है। उनका बलचनमा उपन्यास उत्तम पुरुष शैली में रची गई एक सफल शृंखलाबद्ध कथानक वाली रचना है। कथा कहना रेणु का उद्देश्य ही प्रतीत नहीं होता, वे तो आंचलिक वर्णन का लक्ष्य मान कर चले हैं। जितेन-ताजमनी सुबंशलाल मलारी आदि की कथाएं जीवनकथा से अधिक जीवन-वर्णन बन कर सामने आई हैं, किन्तु फिर भी इनमें मैला आंचल' का डाक्टर प्रशान्त कमला आख्यान से अधिक उभर आया है।

परती परिकथा पूर्णिया जिले के जीवन को चित्रित करने वाला एक महाकाव्य है। इसमें परानपुर की जनता की जीवनी वर्णित हुई है। कोसी योजना के इतिहास का विवरण परानपुर वासियों के जलसे-जलूस स्त्रियों की गाली गलौच, पंचायत के दृश्य, यात्राओं नाटकों, संकीर्तनों और लोकगीतों के वर्णन इस अंचल की समसामयिककालीन सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक धार्मिक, राजनैतिक एवं नैतिक भावनाओं तथा धारणाओं के प्रतीक हैं। परानपुर हवेली के अहाते में पहुंचते ही पाठक नई घटनाएं, नये वर्णन और नई बातें ही नहीं पढ़ता अपितु नई भाषा भी सीखता है आंख मूंद कर गुरु की सुमर रहा है शायद[१]

हु-ऊ-ऊ[१] रघु ने गुरु मंत्र गुनगुनाया। सुना सारंगी ने गुरु मंतर के सुर पर माटी कारी गारी की—कु-हू-उ-कु-कु-ऊ। ट्रिप-टि-रि-रि-रि-रि-रि हुय-हुय-हुय-हुय-हुर-र-र-र।। घू-घू-घू-घू-घू-घू-र-र-युय-युय-युय-हु-हु-हु-हु ।।" इसके अतिरिक्त परती परिकथा के समस्त लोकगीतों की भाषा पूर्णिया की जनता की भाषा के रूप में प्रस्तुत हुई है। जैसे—र-सरदार-रे-सरदार की दरबार की दरबार कु-हू-कु-कु-कु कु-हू-कु-कु।

'परती परिकथा' के पात्रों में एक दृढ़ता एवं स्थिरता परिलक्षित होती है। सभी पात्र अपने अपने विश्वासों सिद्धान्तों पर स्थिर दृष्टिगोचर होते हैं। जितेन्द्र उपन्यास का नायक है सच्चरित्र, दृढ़संकल्प उदार, विनम्र, त्यागी जीव है। नगर के राजनीतिक कुचक्रों से छटपटा कर ग्राम लौटता है किन्तु परानपुर वासियों के स्वार्थों अन्धविश्वासों तथा मलीनता को देखकर और भी दुःखी होता है। उसके इस दुःख को देख कर उसी

---

१ परती परिकथा—पृष्ठ १६० ६१

चरित्र के सबंध मे इरावती कहती है— 'यह जिनेन्द्र है। छोटा नागपुर की पहाडियों म भटकने वाला भावप्रवण प्राणी। बात बात म जिसका आत्म विश्वास पहाडी झरने की तरह कलकल कर उठता था। नकित की सुन्दरता स आनन्दित मूलमण्डज मानव प्रीति से भरपूर स्वस्थ आत्मा। समाजमुखी उदार मन। परानपुर हवेली की तग कोठरी मे कद करके अपन को किस अपराध का दण्ड दे रहा है यह ? "४ जितेन्द्र स भी दृढ ताजमनी और मलारी पाठक को गेयकता प्रदान करन मे अधिक समथ सिद्ध हुए है। ताजमनी जितेन्द्र की प्रियतमा एव रक्षिता ही नही प्रेरणा भी है। मलारी सुवशलाल जैसे उच्चवर्गीय प्राणी को अपनी चरित्रगत दढता के कारण आकर्षित करके बालगोविन के प्रश्नो का दृढ़ता के साथ उत्तर देकर अपनी निभयता, सच्चरित्रता एव बौद्धिकता का परिचय देती है।

परती परिकथा की पात्र बहुलता का परिचय डा० शिवनारायण श्रीवास्तव ने इन शब्दो म अकित किया है — 'उपयु क्त पात्रो के अतिरिक्त दजनो अन्य स्त्री पुरुषो क सजीव रेखाचित्र उपन्यास मे वर्णित हैं। जमीदार का कारिन्दा म० जलधारीलाल, जमादार पवारनसिंह जितेन्द्र के पिता गिरीन्द्रनाथ मिश्र के खवास लरेना का पुत्र लुत्तो जो गाव का नेता है और जो जितेन्द्र को गाव से भगा कर ही छोडेगा, सबसे बडा महाजन रासन बिस्वा गाव का नारद गरुड धुज झा, कतरनी की तरह जाभ चलाने वाली गगा काकी, गाव की घुरघुमनी सामबत्ती पीसी नए नए शब्द तथा विलक्षण विचार प्रकट करन वाले गाव के मिनिस्टर निम्मल मामा 'राडूल बनाकर ही काम करने वाले बीरभद्र बाबू सभी अपनी अपनी विशेष आकृतिया चेष्टाओ वेषभूषा बोला बानी तथा स्वभाव सस्कार म सामन घूम जात है। ५ दिलबहादुर मीत (कुत्ता) आदि भी आचलिक पात्र हैं।

सागर, लहरें और मनुष्य—१६५५

उदयशकर भट्ट की इस रचना के शीर्षक को पढते ही आभास होता है कि यह रचना अवश्य प्रतीकात्मक है। उपन्यास के कवर पर लिखे ये शब्द—' इस उपन्यास मे लेखक ने समुद्र को वाणी दी है लहरो सेवार्तें की हैं और दी है सदियो से खाइ मछली-मारो का आत्मा पहचानने की आख न केवल पाठक की उत्सुकता जगाते हैं अपितु उसे रचना को विचारप्रधान मानकर पढन की प्रेरणा भी देते है। उपन्यास पढ जाने पर उसे सदियो से सोई मछलीमारो की मनःस्थिति का ज्ञान तो अवश्य प्राप्त हो जाता है, किन्तु सागर को दी गई वाणी और लहरो की बातो का सकेत कम ही मिलता है। स्वप्नो, रूपको और सकेतो की योजना इस रचना म अल्प मात्रा म जुटाई गई है। अधिकतर विस्तार और विवरण से काम लिया गया है अत यह रचना प्रतीकात्मक शिल्प विधि की रचना नही कही जा सकती, शिल्प की दृष्टि से यह वणनात्मक उपन्यास है विषय की दृष्टि से आचलिक।

---

४ परती परिकथा—पृष्ठ ४२६

५ हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ ४०१

बम्बई के पश्चिमी तट पर बसे मछलीमारों के गाव धरसोवा के प्राकृतिक वर्णन के साथ उपन्यास का आरम्भ होता है। इसके उपरान्त मछुओं के अध विश्वासित परम्परा वादी जीवन की भाकी प्रस्तुत की गई है। प्राचीन रूढ़ियों से जडित इस जाति म एक ऐसी नवयौवना की कहानी को प्रधानता दी गई है जो थोड़ा पढ लिखकर मत्स्यगधा बनने का स्वप्न देखती है। उसके अति महत्वाकांक्षी मन को वरसोवा का समस्त वातावरण घुटा सा, पिछडा सा दम तोडता सा प्रतीत होता है। यह नवयौवना उपन्यास की नायिका रत्ना है। इसकी अनुभूतिया इसकी महत्त्वाकाक्षाए, इसकी धारणाए सब वर्णनात्मक विधि द्वारा प्रस्तुत हुई हैं। ये अनुभूतिया और महत्वाकाक्षाए श्री इलाचन्द्र जोशी के प्रसिद्ध उपन्यास सुबह के भूले की नायिका गिरिजा के अनुभवो से पूर्ण सामजस्य रखती हैं। गिरिजा थोडा पढ लिखकर बम्बई का एक शानदार फ्लैट देखकर ही अपने घर के सारे वातावरण को विजातीय, नीरस और निर्जीव कह देती है। रत्ना को भी वरसोवा का अपना घर उसका गन्दा मला भ्रला मिट्टी लोहे चीनी के बरतन, सब उबकाई लाने वाले और बम्बई चकित अमित और विस्मित कर देने वाली लगती है। दोनो उपन्यासो म मध्यवर्ग तथा धनीमानी माने जाने वाले समाज का चित्र अति व्यापक और वर्णनात्मक रूप म प्रस्तुत हुआ है। वर्णनात्मकता का एक उदाहरण देखिए —

'वरसोवा का जीवन वहा के निवासी जैसे जगल के रहने वाले हो। विज्ञान के इस चमत्कार म भी हम आदिम रूप से आगे नही बढे हैं। वही पुराना मछली मारने का काम। वही पुराना रहने का ढग। पुराने मकान, पुराने विचार पुरानी बातें। उसने इतना पढा है तो क्या मा की तरह मछली मारकर मार्केट म जाकर बेचने के लिए। ये बडे आकाश चूमने वाले मकान उनका वैभव रहन सहन का ढग, मोटर गाडी हवाई जहाज, बागो की सैर, नये नये फैशन के कपडे ये एक से एक सुदर गहने जिन्हे पहन कर कुरूप भी सुदर लगने लगे क्या उसके लिए नही है? स्त्री पुरुष एक दूसरे की कमर म हाथ डाल नाच रहे थे, चिपटे चिपटे। कहा यह कहा वरसोवा।'[1]

प्रस्तुत उपन्यास म कथात्मकता, वर्णनात्मकता और पात्र बहुलता है। उपन्यास कार ने साकेतिकता, प्रतीकात्मकता और रूपको से काम न लेकर स्थान-स्थान पर विस्तृत वर्णनो का सयोजन किया है। उसने सागर को विराट शक्ति का प्रतीक अवश्य माना है किन्तु सागर-तटवासियो की मनोर्मियो को साकेतिक रूप न देकर विवरण प्रधान बना दिया है। उसका झुकाव कथा की रोचकता की ओर अधिक रहा है जिसके परिणाम स्वरूप उसने विट्ठल वशी यशवन्त रत्ना माणिक दुर्गा, वर्लीकर-पावती, जागला इट्ठा सारिका-माटवेकर आदि रोमास जोडिया गढकर खडी कर दी हैं। पात्र बहुलता के कारण चरित्रो का स्वाभाविक विकास नहीं हो पाया है। यशवन्त का प्रतिक्रियावादी भयकर रूप रत्ना और माणिक दानो की हत्या कर डालने की उद्धत रूप अति शीघ्र सुधारवादी कायर प्रेमी और भावुक समाज सेवक म परिणत हो जाता है। उपन्यास म वशी का व्यक्तित्व रत्ना स अधिक उभरकर सामने आता है। वह आत्म वचनाओं स

---

१ सागर, लहरें और मनुष्य—पृष्ठ १०६ १०७

मुक्त, प्राचीन परम्पराओ की भक्त और पुरुष वग पर आधिपत्य एव अनुशासन रखने वाली स्त्री है। रत्ना एक प्रयोगात्मक चरित्र है, जिसम हम क्रमश सरलता, बुद्धिमता, उत्सुकता भावुकता मानसिक पतन, मनोद्वन्द्व और अन्त म आत्मबल के दशन होते हैं। उपन्यासकार की दष्टि उपन्यास द्वारा रत्ना के चरित्र को विभिन्न कोणो से दर्शाने पर ही अधिक केन्द्रित रही है, इसलिए उसने उसे विभिन्न परिस्थितियो और वातावरण म ले जाकर नय अनुभूतिया अर्जित करन के लिए ढीला छोड दिया गया है, जिसके फल स्वरूप वणनात्मकता बढती गई और साकेतिकता गौण होती गई और अन्त तक पहुचते पहुचते प्रतीक का चिह्न ही नष्ट भ्रष्ट हो गया। उसम गति है, व्यक्तित्व है प्रतीक नही।

माणिक की प्रतीकात्मकता भी सदिग्ध हो उठी है। वह मध्यवर्गीय मान्यताओ का प्रतीक नही कहा जा सकता। वह केवल मानसिक रूप से जजर, आर्थिक रूप से शिथिल, सास्कृतिक दष्टि से खोखले व्यक्ति का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। उसम न व्यक्तित्व है न प्रतीक बनन का सामथ्य। उसके सबध म लेखक लिखता है—"वह उन लोगो म था जो वभव के छोटे रूप को अपनाकर खुश होत हैं। *चटक मटक का ही वास्तविकता समझते* हैं। उसी स व अपने को बडा मानते है। बस म ठसक से बठकर मोटर वाले लोगो स होड करते हैं। अल्प ज्ञान मडित माणिक अपन को किसी म कम नही मानता था। सिनमा जिसके आनद वभव की चरम सीमा है साधारण धुले कपडे पहन और गले म गजरा और सिर म तिली का तल लगाकर ब्रिलियण्टाइन स होड करते है।"[2] ऐसे पात्र प्रति निधि रूप म अन्य उपन्यासो म भी मिल सकते हैं। जोशी रचित 'प्रत और छाया' के एक पात्र भुजौरिया की भाति इन्हे भी रत्ना द्वारा पैसा कमाने स मतलब है नतिकता मान अपमान, लज्जा गुणा आदि को ये लोग बेचकर खा जाते है।

नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व और स्वावलम्बी बनने की विचारणीय समस्या को भी प्रतीकात्मक रूप मे नही रखा गया। रत्ना की अनुभूतिया और सारिका के प्रवचनो द्वारा इस गम्भीर समस्या का समाधान रत्ना को विभिन्न घटनाओ के लम्बे चक्र म घुमाकर वणना त्मक शिल्प विधि द्वारा प्रस्तुत किया है। अभी तक जन साधारण म अपरिचित असामान्य सागर तट वासियो की यह आचलिक गाथा वणनात्मक शिल्प विधि का विशिष्ट नमूना है। इस ग्रथ म कि इसमे जहा एक ओर बरसोवा की सस्कृति, सस्कार सभ्यता, स्वभाव और भाषा को मनोरजक वणनात्मक शिल्प के चौखटे म फिट किया है वहा क्षत्रिय सीमा के आवरण को उतार फका है। इस दृष्टि से डाक्टर त्रिभुवनसिंह इसे आचलिक उपन्यास नही मानत। वे लिखत है—'आचलिक उपन्यासो के लिए एक निश्चित भूखण्ड की सीमा का ही आधार रूप म स्वीकार किया गया है पर 'सागर लहरें और मनुष्य' म कथानक का फलाव उस सीमा का पार कर गया है और यदि इस नियम का कडाई क साथ पालन किया जाए तो यह आचलिक उपन्यास नही ठहरता।'[3] भला आचल जमी आचलिकता इसम कहा है।

---

२ सागर, लहरें और मनुष्य—पष्ठ १७५

३ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—ततीय सस्करण—पष्ठ ३७२

प्रस्तुत उपन्यास आंचलिक है या नहीं, इस विवाद् विवेचन में न पड़कर हम तो यह देखना है कि यह प्रतीकात्मक है या नहीं। इस रचना में केवल एक स्वप्न है जो संकेतात्मक या प्रतीकात्मक है। रत्ना का मन पढ़ाई से उचट जाता है। उस अपनी आनी है और अन्तर्मन में एक संघर्ष की अनुभूति होती है। वह एक आदमी को देखती है जो वरसोवा की ओर न जाकर अथाह सागर की ओर बढ़ने का संकेत करता है।[४] यह अथाह सागर जीवन अनुभूतियों की गहराई का प्रतीक है जो रत्ना को धनकुबेर की नगरी बम्बई के सम्पर्क में आकर सेठ साहब के माल, शंकर और वकील साहब द्वारा प्राप्त होती हैं। ये अनुभूतियाँ और परिस्थितियाँ भी रत्ना के दृढ़ सकल्प और स्वतन्त्र व्यक्तित्व को नहीं दबा पातीं। वह काली जाति की उस परम्परा को बनाये रखती है, जिसमें लम्बी पुरुष की दासी नहीं, अधिकारी है। वह अपनी सामाजिक व्यवस्था के प्रति उदासीन है आर्थिक विषमता के प्रति निराश है किन्तु मानसिक और चारित्रिक रूप से स्पष्ट और सचेत है। यशवन्त की विरक्ति डाक्टर पांडुरंग का आदर्शवाद अन्त में उसके जीवन को एक दिशा देते हैं। बम्बई की चकाचौंध का विशद वर्णन और उसके प्रति रत्ना की घोर आसक्ति उपन्यास को वर्णनात्मक बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। पात्र बहुलता के कारण भी उपन्यास में वर्णनात्मकता की वृद्धि हुई है और कुछ पात्रों के चरित्रांकन में शिथिलता भी आ गई है। उपन्यासकार ने जागला को वरसोवा के मजदूरों की नयी चेतना का प्रतीक बनाना चाहा किन्तु वही रत्ना और यशवन्त के विवाद वर्णन और नारी समस्या के विवरण प्रस्तुत करने की उमंग में उस ऐसे पात्रों का ध्यान नहीं रहा। शंकर जैसे गुण्डों की धमकियाँ भी निस्सार होकर रह गई और अन्त तक पहुँचते पहुँचते धुने सागर की विराट शक्ति लहरों के उन्मुक्त गीत मनुष्यों की कोमल भावनाएँ बम्बई की चकाचौंध विवरण में लुप्त हो गई।

यशपाल

वर्णनात्मक शिल्प विधि के उपन्यास के अन्तर्गत सामाजिक ऐतिहासिक आंचलिक परम्परा में उपन्यासों का मूल्यांकन कर लेने के पश्चात भी एक कोटि के उपन्यास रह गए हैं। इस कोटि के अन्तर्गत समाजवादी या मार्क्सवादी रचनाएं आती हैं। यह शुद्ध रूप में वर्णनात्मक हैं। समाजवादी दृष्टिकोण मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर आधारित है। मार्क्सवाद भौतिक जीवन दर्शन है जो भौतिक वस्तु को प्राथमिकता प्रदान करता है और जिसके अनुसार यह मनुष्य का चेतन नहीं है जो उसके अस्तित्व का निर्णायक है अपितु इसके विपरीत उनका सामाजिक परिवेश है जो उनके चेतन का निर्धारण करता है।[1]

४ सागर, लहरें और मनुष्य— २५ २६

1 Marxism is a materialist philosophy It believes in the primacy of matter It is not the consciousness of man that determines their existence but on the contrary their social existence that determines their consciousness

—Ralaph Fox The Novel and the People P 59 60

हिन्दी म मार्क्सवादी सिद्धान्ता की चचा प्रगतिशील लेखक सघ के अस्तित्व मे ग्रान पर हुई। इस सघ का प्रथम अधिवेशन परिस मे सन १६३५ मे हुआ। भारत मे उसके दूसरे वष डॉ० मुल्क राज ग्रानन्द ग्रौर सज्जाद जहीर के प्रयत्न से इस सघ की शाखा खुली ग्रौर प्रेमचन्द की अध्यक्षता म लखनऊ मे उसका प्रथम अधिवेशन हुआ। कतिपय आलोचक प्रगतिवादी तथा प्रगतिशील साहित्य म भेद करते है। उनके मतानुसार मार्क्सवादी सौंदय शास्त्र का नाम प्रगतिवाद है ग्रौर ग्रादिकाल से लेकर अब तक की समस्त साहित्य परम्परा प्रगतिशील है।[2] इन दाना का मतभेद प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय नही है।

प्रस्तुत प्रबन्धकार क मतानुसार यशपाल समाजवादी या प्रगतिवादी चिन्तनधारा का अपनाने वाले प्रगतिशील वणनात्मक शिल्पी है। इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य म मध्य वग तथा निम्न वग की परिवर्तित मान्यताओं तथा अवस्थाओं का चित्रण वणनात्मक विधि से किया है। एक आलाचक इन्ह प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा का लेखक बतात हुए लिखत है—"यशपाल प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा क समथ कथाकार है। अपन उपन्यास के माध्यम से युग-जीवन ग्रौर उसके सघर्षों का ग्राकलित करन का प्रयत्न किया है। एक कथाकार क रूप म यशपाल का उद्देश्य वतमान समाज की जजर मान्यताओं के खाखलेपन का उघाड़कर सामन रखता रहा है। इसके लिए ग्राप म एक यथार्थवादी कलाकार की सिसगता, ग्रौर सयम भी पर्याप्त है। ग्राप ग्रपन यथार्थवाद म प्रेमचन्द की तरह ग्रादश का नही, रामास का सयाग करन है जा सब जगह सफल नही हुई है।[3] दादा कामरेड ग्रापकी पहली ग्रौपन्यासिक रचना है जिसम राजनीति ग्रौर रामास की कथा का समाजवादी दृष्टिकाण से प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि स यशपाल के सभी उपन्यास प्रेमचन्द क उपन्यासा की भाति साद्देश्य है। उनका शिल्प विधान उद्देश्य से प्रभावित है।

दादा कामरेड—१६४१

दादा कामरेड' की कथा बारह ग्रध्याया म विभाजित की गई है। प्रत्यक ग्रध्याय म नइ कथा दी गइ है ग्रौर उसी के ग्राधार पर उसका नामकरण किया गया है। दादा ग्रौर कामरेड इसका ग्रन्तिम ग्रध्याय है। कथा का ग्रारम्भ साधारण जासूसी कथा के ढरें पर किया गया है। 'दुविधा की रात नामक पहल ग्रध्याय म यशोदा क पति ग्रमर नाथ सोने की तयारी म हैं समाचार पत्र पढ रह है। यशोदा गृहस्थी के दैनिक धधा से निपट कर बिजली का बटन दबाना ही चाहती है कि ग्रान्तिकारी हरीश हाथ म पिस्तौल लिए ग्रा धमकता है। ग्रत्यन्त भयप्रद स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह रात वास्तव म यशोदा की परीक्षा रजनी है जिसे कौतूहल जिज्ञासा, सनसनीपूर्ण वातावरण म प्रस्तुत किया गया है।

'गये ढग की लड़की म हरीश—शैल रोमास की स्वतन्त्र कथा वर्णित है। केन्द्रीय

---

२ डॉ० नामवरसिंह ग्राधुनिक साहित्य की प्रवृत्तिया—पष्ठ ५७

३ श्री शिवदानसिंह चौहान हिन्दी साहित्य के ग्रस्सी वष—पष्ठ १६६

सभा में आतंकवादियों की कार्यप्रणाली का विशद चित्रण है। मजदूर का घर में शोषित वर्ग की दयनीय स्थिति का पर्दाफाश करना ही यशपाल के सम्मुख एकमात्र ध्येय रहा है।

तीन वर्ष में जीवन के बहुमुखी रूप दर्शाए गए हैं। एक ओर उर्मिला, शीला और बी० एम० के प्रसंग हैं, दूसरी ओर शैल, दादा और हरीश की परिस्थितियाँ हैं जो उपन्यास में प्रवाह, सजीवता और आकर्षण उत्पन्न करते ही हैं।

मनुष्य नामक अध्याय में भी कथा पतली पड़ गई है। मजदूर का घर नामक अध्याय की भांति यहां भी कतिपय परिस्थितिजनित मान्यताओं की बात ही उठाई गई है। हरीश शैल के साथ मसूरी पहुंचता है, अपने जीवन के गत अध्याय में से आत्मनिष्ठ परिचयात्मक गाथा सुना कर शैल पर मुग्ध हुए विचार की बात भी कहता है। प्रगतिशील मर्यादा की अवहेलना स्पष्ट उभरी यह पंक्ति— 'मैं कुछ भी न कहूंगा ... मैं केवल जानना चाहता हूं, देखना चाहता हूं कि स्त्री कितनी सुन्दर होती है? मैं स्त्री के आकर्षण को पूर्ण रूप से देखना चाहता हूं। ... तुम्हें बिना कपड़ों के देखना चाहता हूं' —(पृ० १३८) जैनेन्द्र के हरिप्रसन्न की वासनात्मकता की ही अनुवृत्ति है।

गृहस्थ में अमरनाथ के रूप में पुरुष की अहंकारात्मक प्रकृति तथा नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व के प्रश्न को उठाया गया है। 'पहेली' में गर्भनिरोध आदि विषयों पर लम्बे लम्बे भाषणों की योजना की गई है। इस प्रकार यशपाल ने अपनी कला को कतिपय सिद्धान्तों के प्रचार का साधन बना लिया है। यहां उनकी उद्देश्यप्रियता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। 'न्याय' नामक अध्याय में हरीश द्वारा दिलाए गए भाषण आदि सारी कथा की लक्ष्य सिद्धि के साधन बन गए हैं।

चरित्रों की उद्भावना भी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर की गई है। शैलबाला इस उपन्यास की नायिका है। शैल का सम्पूर्ण व्यक्तित्व एक विशिष्ट विचार की पूर्ति हित उद्घाटित हुआ है— विचार है—स्त्री के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की सम्भावना?

'दादा कामरेड' में कथाकार ने स्त्री के स्वतन्त्र व्यक्तित्व, उन्मुक्त प्रेम और अनियन्त्रित जीवन व्यवहार का प्रश्न शैलबाला के चरित्र द्वारा प्रस्तुत किया है। शैल एक नए ढंग की लड़की है। नारी के अधिकारों की रक्षक और उसकी स्वाधीनता की प्रबल प्रचारक के रूप में वह हमारे सामने आती है। जिस स्त्री को पुरुष समाज अब तक सम्पत्ति रूप में देखता रहा है उसे वह सम्बोधित करती है— 'हां रहो किसी के या बनकर लो किसी को अपना, तो क्या मतलब। जहां स्त्री का कुछ अपना नहीं रह जाता। यदि स्त्री को किसी न किसी का बनकर ही रहना है तो उसकी स्वाधीनता का अर्थ ही क्या हुआ?'[1]

शैल को भारतीय स्त्री का पत्नी रूप भी स्वीकृत नहीं है। उसके मतानुसार संसार भर की अच्छाई एक ही व्यक्ति में संगृहीत होना सम्भव नहीं और मनुष्य हृदय का संचित स्नेह केवल एक ही व्यक्ति पर लुटा देना भी हितकर नहीं है।

---

१ दादा कामरेड—पृष्ठ ५५

'समय का प्रवाह' में रचना के अतीत पर प्रकाश डाला गया है। समस्त कथा को उपनायक दकर अध्याया में वर्णित किया गया है। इस रचना में कथा दादा कामरेड की अपेक्षा सुगठित नहीं हो पाई किन्तु दो तीन अध्यायों में ही अपने पूर्ण उभार पर आकर बैठ गई है। इनमें से अपने की चाह नामक अध्याय सर्वाधिक प्रभावपूर्ण है।

'अपने की चाह' में यशपाल ने सशक्त औपन्यासिक अभिव्यक्ति का परिचय दिया है। इसमें कथाकार ने एक भाव को पकड़ कर उसके सभी पहलुओं और संभव सीमाओं का चित्रण किया है। एक ओर डाक्टर खन्ना अपनी विवाहिता राज के बारे में अधिक से अधिक समाचार पा लेने के लिए उत्सुक दिखाए गए हैं दूसरी ओर राज की बहन चन्दा है जिसे खन्ना के जीवित रूप की कल्पना मात्र से पुलकन प्राप्त होती है। बहन के भविष्य की चिंता में उसकी मानसिक अवस्थाओं का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। खन्ना चन्दा भेंट उपन्यास की नाटकीय घटना है, जिसमें एक ओर करुणा का स्रोत बहाया गया है दूसरी ओर जाजा सान्त्वना का उद्भावना की गई है।

अनेक दिनों के सम्पर्क और सहवास के बाद एक दिन डा० खन्ना चन्दा से कहते हैं—'उसमें रोष छिपाया नहीं जा रहा गया हो गया।' कथाकार ने स्वयं अगली पंक्तियों में खन्ना के शब्दों के प्रभाव को स्पष्ट किया है— खन्ना के उस वाक्य के पहले भाग ने नश्तर के चुभन की-सी पीड़ा दी। पिछले भाग ने नश्तर के घाव से पीड़ा का कारण निकल जाने जैसा सान्त्वना।[1] अत यह सिद्ध हो जाता है कि 'देशद्रोही' में घटनाओं का चित्रण ही नहीं है उनका विश्लेषण और व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है। इस संबंध में सुरेशचन्द्र तिवारी लिखते हैं—'कथानक में लम्बे वर्णनों द्वारा सिद्धान्त प्रतिपादन किया गया है और दूसरे कथा के प्रवाह में कहां कहां बाधा पहुंची है। ये वर्णन उपन्यास कला की दृष्टि से नीरस हैं। यशपाल ने चित्रों में रेखाओं से काम न चलाकर आवश्यकता से अधिक रंग भरने का प्रयास किया है।[2] मेरे विचार में इस प्रकार के वर्णनों का संयोजन वर्णनात्मक उपन्यास में शिल्प की दृष्टि से एक आवश्यकता बन गया है। प्रेमचन्द प्रसाद और कौशिक के उपन्यासों में भी इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं। इनके द्वारा ही समाज और जीवन के व्यापक रूप का चित्रण संभव होता जाता है। ये वर्णन ही इन कलाकारों में व्यापकता तत्व के पोषक हैं। इनके कारण ही इन उपन्यासों में तेजस्विता, सूक्ष्मता और गहराई का अभाव रह जाता है।

डा० खन्ना इस उपन्यास का नायक है। इसे एक क्रान्तिकारी भ्रमणशील प्रगतिवादी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से यह एक टाइप चरित्र है। देशद्रोह की घटनाएं और परिस्थितियां डा० खन्ना के वर्गगत पात्र बने रहने में बाधक सिद्ध हुई हैं। उसके चरित्र का विकास लेखक ने जिस दिशा में ले जाना चाहा है—सफल विकृति के कारण वह उस दिशा से खिसक कर दूसरी दिशा की ओर बढ़ निकला है। कथा के पूर्वार्द्ध तक खन्ना जीवन की कुछ अनुभूतियां संचित करके रूस आदि देशों में भ्रमण कर भारत

---

१ देशद्रोही—पृष्ठ २२६

२ यशपाल और हिन्दी कथा-साहित्य—पृष्ठ ६८

ाटता है। यहा राजनतिक विचार धारा का प्रचार ही उसके जीवन का मूल उद्देश्य है। ह अपने चरित्र पर दृढ रहना चाहता है, किन्तु उपन्यास के उत्तरार्द्ध की घटनाए उसके गगत चरित्र को वयक्तिक रूप प्रदान करती है। चारित्रिक विकास की दृष्टि से यह एक वपयस्त (Pervert) की अवस्था है।

खन्ना एक राजनतिक पार्टी का कमठ नेता बनकर भारत लौटता है किन्तु सक्स ासना और कामेच्छा ही उस पर छा गई है। स्त्री-पुरुष के उन्मुक्त प्रेम और मुक्त मिलन ा उसका दृढ विश्वास है। इसीलिए वह नि सकोच चदा स प्यार की भीख मागता है और उसके प्यार का आश्रय पाकर ही जीवन शक्ति जुटा सकता है। परिस्थिति उसे यह अव र भी प्रदान कर दती है—उसे चदा का प्यार मिलता है किन्तु यह प्यार असामाजिक है अत सघष-मूलक है। खन्ना के जीवन का अन्त प्रेम के कारण नही इस प्रेम-जनित सघष के कारण हाता है जिसम चन्दा के पति राजाराम की चिन्ता आशका और अन्तिम उग्र रूप द्रष्टव्य है।

वयक्तिक बन जाने के कारण खन्ना का चरित्र स्थिर न रह कर गत्यात्मक (Dynamic) बन जाता है।

चदा इस उपन्यास की नायिका है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध की समस्त घटनाए इसी के आस-पास घूमती है। चदा के चरित्र का उदघाटन करते समय यशपाल दादा कामरेड की शल को नही भूले है और चदा की परिस्थितिया की चिन्ता न करते हुए भी उसका समस्त चारित्रिक विकास शल के अनुरूप कर दिखाया है।

मनुष्य के रूप—१९४६

दादा कामरेड' तथा देशद्रोही और दिव्या के ही ढर्रे पर मनुष्य के रूप की रचना हुई है। इसका विषय भारतीय नारी है। समस्त कथा दस अध्याया म विभाजित की गई है। प्रत्येक अध्याय का नामकरण उसम प्रतिपादित विषय के अनुकूल किया गया है। इस उपन्यास का कैनवास पहली कृतिया की अपेक्षा अधिक विस्तत है।

'मनुष्य के रूप' वणनात्मक शिल्प विधान के अन्तगत आता है। इसम एक नारी पात्र (सोमा) की कथा को विभिन्न परिस्थितिया म चित्रित किया गया है। सामा की समस्त जीवनी सामाजिक परिस्थितिया के आधान होकर चलती हैं उसे क्रमश धनसिंह बरिस्टर सरोला बरकत और पुन जी वाला की वश्यता स्वीकार करनी पडता है। परिस्थितिया के घात प्रतिघात मनुष्य के बदलने हुए रूप का उसके यथाथ रूप स कही अधिक परिवर्तित रूप मे प्रकट करते हैं। कथा मे अन्तमु खी द्वन्द्व अधिक नही उभर पाए हैं क्यांकि उपन्यासकार का उद्देश्य सामा की बहिगत परिस्थितिया को चित्रित करना था।

सोमा के जीवन म आई समस्त घटनाए स्वाभाविक नही हैं। धनसिंह स अलग करने के लिए ही दोना को बजनाथ म सिपाही के हाथा सौंप दिया गया है। थाने पहुच कर धनसिंह की बुरी दशा दिखाई गई है जो पुलिस द्वारा पकडे गए चोर की हो, किन्तु सामा का रोना तथा दूसरी प्रकार के अभिनय करना, पुलिस को द्रवीभूत कर लेना, अस्वाभाविक बातें हैं। तत्कालीन पुलिस अपने अति पाशविक रूप के लिए प्रसिद्ध रही है। इसके पश्चात

मनालन की कारवाई ताम्र ममाप्त करा दी गई है। पर्याप्त का जब सामा का नई परिस्थिति म डाल देने के लिए दिखाई गई है। जन म छूटने पर वह पुन सामा का प्राप्त करता है किन्तु एक वस्त्र क अभियाग म भयभीत हो फरार हा जाता है तब परिस्थितियाँ सोमा को बरिस्टर सरोला क निकट प्राप्त का अवसर देता है। 'प्रतिष्ठित लाग सामा' अध्याय म उनका रामास अपन पूरे यौवन पर पहुँच जाता है। बरकत-सामा सामीप्य की कथा भी परिस्थिति जनित है। सरोला के माँ-बाप जब अनुभव करने लगते हैं कि उनके परिवार म सामा की स्थिति सीमा से ऊपर हो उठी है तो उसे घर से निकल जाने पर बाध्य कर देते हैं। वह बरकत हारकर बरकत के साथ बम्बई पहुँच जाता है।

सामा-बरकत कथा परिस्थिति के प्रभाव की उत्तम कथा है। यही सोमा जा कभी बरकत की प्रार्थना अस्वीकार कर गरीबों का भी ध्यान रख पर त्याग करती रहा करती थी— कथा कहना है जो कहना है साहब से कहा अनेक बार उनके तिरस्कार का भाजन बनती है। तरुण का मूल्य नामक अध्याय म बरकत सामा को ठोकर मारता है अवाञ्छित गालियाँ देता है। यहीं एक प्रश्न उत्पन्न होता है। इस कारण परिस्थिति म भी सामा बरकत के साथ क्यों रही। इसका उत्तर भी उपन्यास म ही दे दिया गया है। सोमा के लिए प्रमुख समस्या जीवन यापन की समस्या है। वह नारी है और नारी का एक आश्रय की आवश्यकता रहती ही है। भले ही वह आश्रय उसके मनोनुकूल हो अथवा प्रतिकूल।

पुन परिचय' म घनसिंह का मुख्य कथा म कारण लाया गया है। वह सामा मुतलीवाला रामास की कथा सुनकर आग बबूला हो उठता है, मरने मारने को तयार हो जाता है किन्तु परिस्थितिवश उसके स्थान पर भूषण की मृत्यु दिखाई गई है। यह भूषण कौन है ?

भूषण एक राजनतिक दल (साम्यवादी दल) का कमठ सदस्य है। भद्र समाज नामक अध्याय म इसका परिचय लाला ज्वाला सहाय के परिवार के वणन के साथ दिया गया है। ज्वाला सहाय की पुत्री मनारमा को भूषण से प्यार है, किन्तु यहा राजनतिक परिस्थितियाँ दोनों के प्रेम अभिनय म बाधक है। भूषण द्वारा दी गई प्रेम की परिभाषा मार्क्सवादी परिभाषा है— और सब चीजों की तरह जीवन म प्रेम की गति भी द्वन्द्वात्मक है। प्रेम जीवन की सफलता और सहायता के लिए है यदि प्रेम बिल्कुल छिछला और थिथला रहे तो वह रसयत वासना मात्र बन जाता है और यदि जीवन म प्रेम या आकर्षण का सयम विवेक से न हो तो वह जीवन के लिए घातक भी सिद्ध हो सकता है। जल को देखती हो इसम से उष्णता बिल्कुल निकल जाए तो वह बर्फ बन जाता है उसम गति नहीं रहती। उष्णता एक सीमा से अधिक बढ जाए तो वह भाप बनकर उड जाता है।[1]

मनारमा का मन खिन्न रहता है क्योंकि वह अपने भाई सरोला तथा सोमा का उन्मुक्त प्रेम के वातावरण म विचरण करते हुए देखती है। उसकी परिस्थिति भिन्न है।

---

१ मनुष्य के रूप—पृष्ठ ६६

भूपण की ओर से उसके प्रेम को प्रोत्साहन नहीं मिलता। वह सुतलीवाला से विवाह करती है किन्तु परिस्थिति उसे 'अपनी अपनी राह' में पुन भूपण के निकट ले आती है। मनोरमा मुक्त वातावरण में विचरण करने का अवसर पाती है, किन्तु भूपण की मृत्यु उसकी सब योजनाओं पर पानी फेर देती है। उसकी मानसिक अवस्था की जजर दशा के साथ-साथ कथा समाप्त हो जाती है।

'मनुष्य के रूप' में दस अध्यायों में से आठ में सोमा की कथा है। इसलिए यही उपन्यास की नायिका है। 'गहन्य की मरीचिका' में मनोरमा की ही कथा है, मालिका की अदला बदली में धनसिंह से सबधित घटनाएं तथा राजनतिक परिस्थितियों की विपद चर्चा है, जिनका कथा से कम सबध है सिद्धान्तों की व्याख्या ही की गई है। फौजियों के रहन-सहन और नारियों के प्रति दुर्व्यवहार का चित्रण भी मिलता है। छोटी छोटी घटनाए विस्मृत हो जाती हैं क्योंकि उनका मुख्य कथा से सबध नहीं जुड पाया। उपन्यास को यथार्थवादी कृति बनाने के लिए जो अश्लील वाक्यावली प्रयुक्त हुई है, वह भी आलोचना का विषय है। बम्बई में साम्यवादी पार्टी के दफ्तर का ब्यौरा भी अनावश्यक है।

सोमा उपन्यास की नायिका है। विधवा होने के नाते इसे भी आरम्भ में एक प्रतीक पात्र के रूप में सयोजित किया गया है, किन्तु कथाकार उसके चरित्र को इतना गतिशील बना डालता है कि वह प्रतीक पात्र से दूर हटकर वयक्तिक बनती दृष्टिगोचर होती है। 'प्रतिष्ठित लोग' में उनके द्वारा किया किया गया समस्त अभिनय वयक्तिक पात्र की स्वाभाविक लीला है। बरकत के सम्पर्क में रहकर वह पुन दीन-हीन पराधीन नारी का प्रतीक बन जाती है और अभिनेत्री के रूप में वयक्तिक रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार उसका जीवन दो रूपों को लेकर विकसित होता है। जब वह परिस्थितियों के आगे झुक जाती है तब एक दीन हीन अबला दिखाई देती है और जब परिस्थितियों से ऊपर उठती है तब वैयक्तिक विशेषताओं से सुसज्जित हो जाता है। अन्त में तो वह यह सिद्ध कर देती है कि वह अशिक्षित इसलिए नहीं थी कि उसमें क्षमता नहीं थी, बल्कि इसलिए कि उसे उचित अवसर न मिला।

सोमा सुन्दरी है चतुर भी है। नवीनता के प्रति उसके हृदय में जिज्ञासा के साथ साथ उसके साथ तादात्म्य की उत्कट इच्छा भी है। अवसर का लाभ उठाकर वह नृत्य, गीत, अभिनय आदि कलाओं में पारगत हो जाती है। मनुष्य के कितने रूप हो सकते है, यह उसके चरित्र द्वारा उद्घाटित किया गया है—मनोरमा चिंतन का विषय बनाकर मनन करती है—"आदमी क्या है और उसके कितने रूप हो सकते हैं। एक दिन भूपण सोमा को 'धर्मशाला' में कुत्ता के भय से कापती हुई बकरी की सी अवस्था में लाया था। धनसिंह के लिए इसका जान देना पुलिस के भय से इसका गर्भपात इसका बाजार जाने से डरना। भैया की उसपर ज्यादती। बडी भाभी का अत्याचार। आज यह दुनिया को अगूठा दिखा रही है।"[२] लेखक ने इस उपन्यास में भी अपने अन्य उपन्यासों के पात्रों की भांति एक प्रतिनिधि पात्र को अन्तिम सोपान तक पहुचाने से पूर्व वयक्तिक रूप दे दिया है।

---

२ मनुष्य के रूप—पृष्ठ ३२१ २२

गुरुदत्त

आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों में सबसे अधिक ख्याति अर्जित करने वाले उपन्यासकार श्री गुरुदत्त हैं। शायद ही कोई पुस्तकालय हो, जिसमें आपके द्वारा लिखा एक सेट या एक दर्जन उपन्यास न हों। गुरुदत्त अनुभूति और भाव पक्ष के साथ-साथ वस्तु तत्त्व तथा चरित्र चित्रण के उपासक हैं शिल्प कौशल आपके लिए गौण बन जाता है। अपनी एक भेंट में आपने मुझे बताया—'शिल्प तो कारीगरी है जो बहुत उपकारी होते हुए भी वास्तविक चीज़ नहीं है। वह तो साधन है, वस्तु को निखारने का साधन, साध्य उसे कैसे स्वीकारा जाए। उपन्यासकार ने मन बुद्धि और आत्मा को व्यवस्थित करना होता है अतएव उसे स्वयं स्वाध्याय करना चाहिए। इसके स्रोत का पता लगाना चाहिए। जब उसके विचार निश्चित स्थिर और परिपक्व हो जाएं, तभी लेखनी उठानी चाहिए। इनके स्रोत का पता लगाना चाहिए। वस्तुतः उपन्यास कम आयु से लिखने आरम्भ नहीं करने चाहिए। जब उपन्यासकार पैंतालीस वर्ष का हो जाए, तब उसे लेखन कार्य आरम्भ करना चाहिए। जब उसके विचार निश्चित स्थिर और परिपक्व हो जाएं तभी लेखनी उठानी चाहिए। जब बुद्धि स्थितप्रज्ञ अवस्था को प्राप्त करने लगे तब समझो लेखनी उठाने का समय आ गया। इससे पूर्व अनुभव अर्जित किए जाओ। मैंने लाहौर में एम० एस सी० पास करके डिमान्स्ट्रेटर का कार्य किया। लाला लाजपतराय के स्कूल में राजनीति का अध्ययन किया फिर वैद्य बना और क्रान्तिकारी भी। सन् २१ के आन्दोलन में भाग लिया। अध्ययन अभी भी तीन चार घंटे नियमित रूप से करता हूं और बिना लिखे तो मानो मन को शान्ति ही नहीं मिलती। गांधी दर्शन में मेरी कोई आस्था नहीं। वे अहिंसा के नाम पर समझौता कर लेते थे।'[1]

श्री गुरुदत्त ने प्रचुर मात्रा में जो उपन्यास लिखे हैं, उनमें विचार पक्ष ऊपर उभर आया है। वस्तु स्थिति यह है कि वस्तु संगठन, शिल्प और शैली की ओर उनका ध्यान कम हो गया है। शिल्प को तो उन्होंने उपकारी मानते हुए भी अवास्तविक औपचारिक तथा द्वितीय श्रेणी की चीज़ माना है। वैयक्तिक मत एवं विचारणा को ही आप प्रमुख तत्त्व मानते हैं। इसीलिए आप अपने शिल्प जैसे दृढ़ विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए ही कथा साहित्य की सर्जना कर रहे हैं। अपने प्रसिद्ध उपन्यासों—'उमड़ती घटाएं' एवं और अनेक वृत्ता 'गंगा की धारा और घुटन' में आपने भारतीय राजनीति के बदलते परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों को उठाया है और उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपने उपन्यासों की कथाओं तथा पात्रों द्वारा समाज की शाश्वत समस्याओं विवाह, प्रेम, अनैतिक संबंध, नारी स्वतन्त्रता, जारज सन्तान आदि पर विस्तार के साथ विचार किया है और उनका इतिवृत्तात्मक रूप प्रस्तुत करने के कारण आपके उपन्यास वर्णनात्मक शिल्प विधि के अन्तर्गत आते हैं।

वन्ना—१९५३

वन्ना वन्ना के मूल प्रश्न को लेकर लिखा गया वर्णनात्मक शिल्प विधि का

१ श्री गुरुदत्त से उनके औषधालय पर भेंट वार्ता—दिनांक २५ ५ ६८

श्रयतम उपन्यास है। यहा सान की मूल प्रेरणा कला क प्रति उपन्यासकार के मन म उभरे वे प्रश्न है जा जब तक उसकी बुद्धि और आत्मा को घेर लेते प्रतीत होते ह। कथा नायक सुमन एक भावुक कवि है जो अपनी कला का ढूढने के लिए लक्ष्यहीन यात्रा पर चल पडता है। इस यात्रा म उसकी भेंट विद्याधरी नामक एक प्रौढ नतकी स हो जाती है, जो उसे दीन हीन अवस्था म दखकर भी इसलिए अपन साथ बम्बई ल आती है कि उसस गीत बनवाए तथा अपना स्थायी सहगामी बना ले। सुमन को अपनी जीवन सहचरी की तलाश अवश्य है किन्तु वह इस प्रौढा म न अपनी प्रेरणा का स्रोत पाता है न जीवन की तप्ति। उसकी दृष्टि विद्याधरी के घर म पली एक जारज कन्या इन्दु पर पडता है और उसम उलझ कर रह जाती है। शेष कथा फिल्मपट पर प्राए दृश्या जसी होकर भी नाटकीय नही बन पाई, इतिवृत्तात्मकता के आधिक्य न इसे वणनात्मक बना दिया। गुरुत्त वणनात्मक शिल्पी बन कथा के सूत्रों को दृढतापूवक पकड है।

कथा का मुख्य सूत्र सुमन इन्दु प्रेम और प्रम जनित व्यवहार है पर इसके परिप्रेक्ष्य म जो अन्य प्रसग आए हैं, मुख्य रूप स जानी सुमन प्रसग तथा जुनाई सुमन प्रसग ये आधुनिक युग म प्रेम की जटिलता के परिचायक हैं। सुमन के जीवन म विद्याधरी, इन्दु जानी, जुनाई ये जो चार स्त्री पात्र आते हैं य आधुनिक भारतीय जीवन की बदलती सामाजिक और नतिक अवस्था पर खुलकर प्रकाश डालते हैं। सीता सावित्री की पुण्य भूमि पर वेश्याओ का जाल फल जाना पश्चिमी सभ्यता और सस्कृति का दुराव के साथ अपने पजे म भारतीय जन मन को जकड लेना और कला का सौदा होना वे मूल प्रश्न हैं जो उपन्यास के लगभग हर पृष्ठ पर उभरें हैं। सुमन की कविताओ म भारतीय सस्कृति तथा कला की स्पष्ट छाप है।[2] वह विद्याधरी के घर रह कर मात्र जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति और मान-सम्मान चाहता है। कला का पारिश्रमिक लेना पाप समझता है कला का अपमान समझता है। कला को आत्मा की वस्तु बताते हुए इन्दु स वह कहता है—"कला के विषय म क्यो का प्रश्न उत्पन्न नही होता। वह मनुष्य प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाली वस्तु है। मनुष्य की प्रकृति क्या एसी बनी है कहना कठिन है। क्या मनुष्य प्रात काल ब्रह्म मुहूत म भगवान के भजन म लीन होना चाहता है इसका उत्तर मेरे पास नही है। वास्तव म मनुष्य प्रकृति ही ऐसी है। इसी प्रकार स्वरो का एक विशेष प्रकार का सग्रह क्यो एक विशेष प्रकार के उदगार उत्पन्न करता है यह युक्ति का विषय नही।"[3] मानसिक शान्ति और कला की खोज म भटके सुमन को महात्मा जी उत्तर काशी म कहते ह—'भगवान की माया म वे पदाथ कला का विषय हो सकते हैं जो शाश्वत सौंन्य के हैं। अर्थात महापुरुषो के मन और आत्मा। छोटे दर्जा के प्राणी जिनम सौन्य केवल शरीर का ही है इतने कम काल के लिए सुदर रहते हैं कि उनके लिए निर्माण की हुई कला स्वय छोटी वस्तु रह जाती है। छोटा की सगत म कोई बडा

२ कला—पष्ठ १० से १५, २२, २३, २७, ३१, ४१ से ४२, ४४ से ४६, ४६ से ५१, ७३, ६६ १०६, ११०, ११४, १४४, १४५,

३ वही—पष्ठ ४६

नही बन सकता।"

सुमन का जीवन वृत्तान्त वर्णनात्मक है। उसकी भटकन, उसकी विचारणाए और सामाजिक परिस्थितियो म भारी विषमता है। इसीलिए वह कही एक स्थान पर टिक नही सका। वह अपने को भाग्य रूपी नदी म एक छोटी सी नौका मानने वाला भाग्यवादी पात्र है। उसके जीवन वृत्तान्त से सम्बद्ध उसकी प्रमिका इन्दु का जीवन सूत्र बडा रोमाचक एव कुतूहलवर्धक है। इन्दु के अपने पिता स सहवास का प्रसग एक भारी भरकम प्रश्नचिह्न लेकर अवतरित होता है। इस प्रकार के सम्पर्क का परिणाम क्या है ? इन्दु को जब यह ज्ञात हुआ तो वह दु खी, क्षुब्ध और स्तब्ध हो आत्महत्या तक के लिए तैयार हुई। इस प्रसग द्वारा लेखक आज के जीवन म फली अनतिकता और अवैध सबधो को विभिन्न स्तरो पर विभिन्न रूपो और आयामो मे विस्तार के साथ चर्चा का विषय बनाया गया है। कही स्वय कही सुमन, कही इन्दु और कही स्वामी जी इस प्रश्न पर सविस्तार ससूत्र उदघाटन करते चलते हैं। विद्यार्थी जीवन म यौन इच्छाओ का वेग और पश्चिमी सस्कृति का अनुकरण करते हुए हमारे युवक-युवतियो का उसपर कोई नियत्रण न रखा पाना ही समस्या का मूल कारण है। फिल्मी आकर्षण और समसामयिक गीतो के माध्यम से भी नई पीढी कुछ मानसिक तनावो और खिचावो की अनुभूति कर पथ भ्रष्ट होती है। कथाकार ने जानी के द्वारा आधुनिकाओ के रहन सहन बोलचाल, हाव भाव सस्कार और सभ्यता को सशक्त अभिव्यक्ति दी है जो सुमन के नकारने पर भी उसपर अपने जादू का डोरा फेंकती जाती है और एक बार उससे विवाह के लिए हा कहलवा कर विवाह पूर्व ही सहवास का प्रस्ताव रख देती है।

इन्दु के जीवन म उभरी असगतिया परिवेश जनित हैं। वे विद्याधरी के घर पलने, सेठ की रखेल बनने और फिल्मी ससार क सम्पर्क मे आने का परिणाम हैं। इन्दु के प्रसग को लेकर ही कथाकार की सर्जन शक्तिया क्रियाशील हुई है। जब इन्दु को पता चला कि वह जारज सतान है, तब उसे अपने जीवन की सार्थकता म ही अनास्था उत्पन्न हो गई। कुशल कथाकार ने उसके चेहरे के उतार चढाव व मानसिक स्थिति का यथार्थपरक चित्रण कर आधुनिकता के नाम पर प्रेम सबधो पर एक मीठी चुटकी लेते हुए कहला दिया—

मुझको यह भी पता चल गया कि अनजाने म एक और पाप हो गया है। तुम अपने पिता की पत्नी भी बन गई हो। यह एक अति विकट समस्या है। इस अवस्था म इस घोर अनाचार का प्रायश्चित करना अत्यावश्यक है। सेठजी तो साधु हो जाने के लिए घर से भाग जाने वाले थे और सुना कि तुम समुद्र म डूब मरने की बात कह रही हो।[१]

आत्महत्या भी समस्या का समाधान नही इस सबध म उपन्यास की पात्रा मन्दाकिनी न कह दिया कि आत्महत्या कर इस ससार से बाहर जा सकोगी क्या ? इसी प्रसग के अन्तर्गत उपन्यासकार ने पुनर्जन्म का प्रश्न उठाया है। वस्तुत कथाकार का लक्ष्य कथा लिखना प्रतीत नही होता। कथा के माध्यम से पुनर्जन्म की वकालत करना आभासित

कला—पृष्ठ २६०

वही—पृष्ठ १५६

होता है। पूवजन्म के पाप के कारण ही सुमन के माता पिता पुत्र सेवा से वचित रहत है, पूवजन्म मे प्रेम के कारण इन्दु-सुमन प्रेम और विवाह होता है परन्तु उसम किसी पाप के कारण सुमन भटकता है और इन्दु महान त्याग और तपस्या करने पर ही सुमन को प्राप्त करती है।

गुण्ठन—१९५५

गुरुदत्त के प्रत्येक उपन्यास की रचना सास्कृतिक आवश्यकताम्रा के द्वारा हुई है, किन्तु 'गुठन सस्कृतियो और व्यक्तियो का मिलन बिन्दु है। इसम सामाजिक आस्था को (आदश) तथा पारिवारिक व्यावहारिकता (यथाथ) को एक बिन्दु पर ला खडा करने का महान काय लेखक ने किया है। प्राचीन सस्कृति के परिवेश म पला परिवार भी नए टाइप के व्यक्ति को जन्म दे सकता है यह विनोद की जीवनी से स्पष्ट हो जाता है। यह एक सस्कृति के ह्रास होने की भयावह स्थिति है जिसकी सुरक्षा हित श्री गुरुदत्त दत्त चित होकर परिवर्तित हो रहे युग धम को पुराने आयाम म ले आने का प्रयत्न अपने कथा साहित्य द्वारा करते है। 'गुठन का व्योवृद्ध नायक भगवतस्वरूप भारतीय सयुक्त परिवार की सस्था मे अडिग आस्था रखता है और इसे भारतीय सस्कृति का आधार स्तम्भ मानते हुए सभी पात्रा को इसके प्रति श्रद्धा रखन की प्रेरणा दता है जबकि उसी का पुत्र विनोद और पुत्र वधू नलिनी निर्धारित मान्यताम्रा के प्रति द्रोह कर नई सस्कृति (पश्चमी सस्कृति) को अपना कर जीवन की कशमकश तथा तनाव की अनुभूति करत ह।

'गुठन' म श्री गुरुदत्त वणनात्मक शिल्प विधि का अपनाते हुए अ य पुष्प शैली म इस उपन्यास की सजना करते हैं। कथा का सूत्र दृढतापूवक पकड कर व एक समाज सुधारक बन कही स्वय ता कही पात्रा द्वारा उपदेश देने और दिलाने की पूरी सुविधा प्राप्त किए है। 'गुठन म एक ओर सयुक्त परिवार के परिप्रेक्ष्य म घटनाम्रा और पात्रा को घुमाया गया है, दूसरी ओर इससे विच्छिन्न हुए पात्र और घटनाए टूटे परिवार म उत्पन्न व्यापक विस्फोट के प्रमाण है। परिवार क्या होना चाहिए इस विषय को लेकर लिखा गया उपन्यास लक्ष्योन्मुखी होगा इस पर दो मत नही हो सकते। इमम जीवन की व्याख्या के साथ साथ जीवन की समीक्षा का समावेश इसकी लक्ष्योन्मुखी प्रवत्ति का परिचायक है। उपन्यास की कथा घटना और पात्र उपन्यासकार की लक्ष्यप्रियता का शिकार हुए हैं। जिन पात्रो म सुवह के भूल साय को घर आकर सयुक्त परिवार म आस्था प्रकट करने की चाहना है व सुखी हैं—जसे नलिनी और कान्ता परवे पात्र जो विशृखल परिवार के पोपक बने रहना चाहते है विनोद की भाति अत म जाकर दो बार पागल होते हैं। विनोद पहली बार उस समय पागल हुआ जब कनब म जाकर जुआ खेलते और साथिया को धोका देत रगे हाथो पकडा गया और गवनर की सिफारस पर रिहा ता हो गया किन्तु नौकरी से अलग कर दिया गया और दूसरी बार उस समय जब सयुक्त परिवार म रह कर घुटन, ऊब और तनाव सहते सहते निराश हो गया। नलिनी विनोद म ग्रथित कथा कही द्रुत तो कही मद गति से बढी है, जबकि सुरेन-कान्ता गाथा की गति पहाडी नदी की तरह तूफानी ही बनी रही। इसम सयोजित दुघटनाए भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उभरी हैं।

सुरेश के पिता रामस्वरूप को उसके पड़ोसी रामशरण ने मूर्ख बनाया और वह अपने ही कमठ, त्यागवान, शीलवान पुत्र से लड़ पड़ा। वास्तव में उपन्यासकार अपनी कथा और घटनाओं के द्वारा यह बताना चाहता है कि मनुष्य के जीवन में संयुक्त परिवार की जो महिमा है वह अपार है और अपने सगे जितने हितैषी हो सकते हैं अन्य लोग नहीं। सुरेश रामस्वरूप विवाद में वकील प्रसंग द्वारा भी यही सिद्ध कराया गया है।

गुठन के पात्र जीवन की एक विशेष स्थिति के उद्घाटक हैं। भगवत स्वरूप सुशीला, भूषण, सुरेश का तो लो आदर्शवादी और आस्थावादी हैं ही, कथाकार मीनाक्षी नलिनी रामशरण और उसकी पत्नी को भी संयुक्त परिवार सस्था का उपासक बनाने में सफल हो गया है। मात्र अपवाद विनोद है जो नई शिक्षा तथा अपसंस्कृति की दासता के परिणामस्वरूप इनकी बुराईयों का वाहक बना है। वह भी जीवन की उस स्थिति का उद्घाटक है जिसमें नई शिक्षा और पश्चिमी संस्कृति हमारी नई पीढ़ी को नष्ट कर उसका सत्यानाश करते हैं।

विचार प्रतिपादन अधिकतर उपन्यासकार प्रत्यक्ष विधि द्वारा प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार ने कथा का आरम्भ करने से पूर्व एक विचार प्रस्तुत किया है—'किसी माता पिता के लिए जीवन की सबसे अधिक आनन्दप्रद घड़ी वह होती है जब वे अपनी सन्तान को साफ सुथरी, सुखी और सब प्रकार से सम्मानित देखते हैं। एक सम्राट की भांति जो प्रजा को धन धान्य से सम्पन्न सुख-सुविधा से युक्त और निर्भय देखता है वे भी अपनी सन्तान को देख वैसा ही सुख अनुभव करते हैं। वे जानते हैं कि यह उनके जीवन भर के परिश्रम का फल है। ये हैं जो ये निर्माण में सफल हुए हैं। ये सुन्दर हैं सबल हैं स्वस्थ हैं सुखी हैं और लोक में सम्मानित हुए हैं ऐसा विचार ही उनको आनन्दित करने में पर्याप्त है।'[६] भगवत किशोर में अपनी इस विचारणा को प्रतिष्ठित करते हुए आप कथा का आरम्भ करते हैं।

गुठन में विचार पक्ष कथा और चरित्र चित्रण की अपेक्षा प्रबल है। कथा में कहीं अस्वाभाविकता असंगति, विशृंखलता भले ही आ गई हो पात्रों का चारित्रिक विकास भले ही संदिग्ध हो परन्तु विचार पक्ष अत्यन्त पुष्ट है। संयुक्त परिवार के टूटने पर भारत में जो स्थिति उत्पन्न हुई है उस पर कथाकार खुल कर प्रकाश डालता है। पति-पत्नी में दुराव दोनों का आय के साधनों को बढ़ाने के लिए घर से निकलना बाहर के वातावरण में पुरुष का पर-स्त्रीगामी बनना स्त्री के सतीत्व पर आंच आना सन्तानों की स्वच्छन्दता में तनावात्मक स्थिति उत्पन्न होना शाश्वत समस्याएं हैं जिन पर कथाकार की दृष्टि गई है। भगवतस्वरूप का पुत्र विनोद बिखरे परिवार का कायल बन नई विचारणा का प्रचारक है तो उन्हीं का दूसरा पुत्र भूषण संयुक्त परिवार का कायल। विनोद विवाह से पूर्व नलिनी से प्रेम करता है और विवाहोपरान्त दोनों एक ही छत के नीचे रहते हुए भी पृथक-पृथक है। भूषण विवाह से पूर्व मीनाक्षी के रूप को वासना पाप और अनैतिकता का गमना देकर उस भारतीय परिवार की महिमा बताते हुए उस परिवार

---

६ गुठन—पृष्ठ ६

म सम्मिलित हान स पूव उसके परिवेश का समभने और तदनुसार अपने का उसके लिए मन, कम वचन स तयार करने की प्रेरणा देते हुए कहता है—'जस किसी समाज म रहने के लिए उस समाज का आचार विचार अपनाना पडता है वैस ही किसी परिवार म रहन के लिए उस परिवार के जीवन प्रकार को स्वीकार करना होता है। मन कलुषित हाने पर परिवार की भावना टूट जाती है। एक परिवार म रहो के लिए परस्पर स्नह, सहानुभूति और सहयागिता चाहिए।'[7] हिन्दू समाज की मूलभूत बात पर स्वामी शिवानन्द बताते है कि विचार की स्वतन्त्रता और व्यवहार पर स्मृति का नियत्रण ही इसकी रीढ है। हिन्दू समाज और हिन्दू परिवार त्याग, तप और आध्यात्मिक मूल्या को प्रश्रय दन के कारण श्रेष्ठ है और श्री गुरुदत्त उसके उपासक है। वे अपने उपन्यासा म यत्र तत्र सवत्र हिन्दू सस्कृति की वरीयता का प्रश्रय देते हैं।

आखिरी दाव—१६५०

आखिरी दाव और 'अपन खिलौने' लिख कर भगवती बाबू ने 'चित्रलेखा' और टेढे मेढे रास्ते द्वारा अर्जित ख्याति को ठेस लगाई। आखिरी दाव म लेखक ने फिल्मी ससार का वणन प्रस्तुत किया है परन्तु यह वणन सस्ते रोमास और स्वच्छन्दतावादी प्रेम के चक्र-जाल म फस कर रह गया। कथानक मे बिखराव अस्वाभाविक प्रसग एव ह्रासोन्मुख दाव-पच ही अधिकतर है। मानवीय सवेदना और आधुनिकता की चुनौती का इसमे नितान्त अभाव है। नायक रामेश्वर का जुए म सब कुछ हार कर सामाजिक विभीषिका का शिकार हाना और बम्बई जाकर फिल्मी ससार की सर करना अलिफ-लैला के किस्सो की याद दिलाता है। उधर नायिका चमेली का अपन पति के शोषण से तग आकर बम्बई भाग निकलना और एक युवक द्वारा ठगा जाना फिर रामेश्वर स भेट तिलस्मी कौतूहल और मनारजन की वृद्धि ता करते है परन्तु वे सामाजिक चेतना, जीवन की जटिलता और मानवीय सवेदना अथवा दाशनिकता के उस परिवेश की पृष्ठभूमि तयार नही करते जिसकी आशा पाठक 'चित्रलेखा' के लेखक स करता है।

चमेली का बम्बई म पान की दूकान खोल लेना एक नवीनता अवश्य है परन्तु यह उपन्यासकार की वह मौलिक उदभावना नही जो सजग बौद्धिक वग के हृदय को भिगो सके। चमेली के जीवन की घटित अनुभूतिया व सचित अनुभूतिया सामान्य ही है, विशिष्ट नहीं। उसके रूप यौवन पर मुग्ध बम्बईया समाज एक अति साधारण बात है जिस उपन्यासकार सहज ढग से वणनात्मक शिल्प म सयोजित करता तो सफल रहता, किन्तु फिल्म व्यवसायी सेठ शिवकुमार द्वारा चमेली के जीवन म प्रवेश का नाटकीय रूप दने की लेखक की चेष्टा कुचेष्टा बन कर रह गई। इससे लेखक की प्रतिष्ठा को आच लगी है। एक ओर चमेली सफल अभिनेत्री बनने के प्रयास म सलग्न है दूसरी ओर सेठ शिवकुमार के प्रेम चक्र म घूमती है तीसरी ओर रामेश्वर का अपना आराध्य मान मनोद्वन्द्व की अनुभूति करती है। इन तीनो रूपा म उपन्यासकार न वणनात्मक शिल्प को प्रश्रय दे सका, न नाटकी

---

७ गुठन—पृष्ठ १६० १६१

यता ला पाया और न विश्लेषणात्मक शिल्प का आश्रय लेकर पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्र ही खींच सका। चमेली एक वेश्या बन कर रह गई। सेठ ने उसे न केवल अपनी वासना तृप्ति का शिकार बनाया, अपितु दूसरे सेठों को चक्र म डाल कर उसका आर्थिक शोषण भी करना चाहा। अन्त म सेठ की हत्या और चमेली की मृत्यु दोनों विडम्बनापूर्ण प्रतीत होती है जो उपन्यास को एक सस्ते फिल्मी रोमांस या जासूसी कथा साहित्य की सूची म जोड सकने हैं, एक यथार्थपरक या आदर्शोन्मुख शिल्प सयोजित रचना बनने स वचित रख देती हैं।

अपने खिलौने—१९५७

अपने खिलौने पढ कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि यह उपन्यास एक खिलौने से अधिक नही जो पढ़ते ही टूटे खिलौने का प्रभाव पाठक पर छोडता है।

उपन्यास का आरम्भ जितना आकर्षण लिए है अन्त उतना ही अधिक विकर्षण। उपन्यासकार ने आरम्भिक पृष्ठों म नायिका मीना और उसके परिवार का वर्णनात्मक चित्र स्वय प्रस्तुत किया है। जसे— जी, तो मैं मीना का नख शिख बखान कर रहा था न। हा, नाक नुकीली और सुडौल। होठ लिपस्टिक स लाल इसलिए बिम्बाफल आदि की उपमा बेकार शात मोती जसे। जब हसती है, बिजली सी कौंध जाती है। कद न बहुत ऊचा न बहुत नीचा, यही जिसे हम मझोला कद कह दिया करते हैं यानी पाच फुट से कुछ निकलता हुआ। शरीर न हाड मास का ढाचा और न मुटापे से थलथल, यही जिसे हम गठा हुआ इकहरा बदन कह सकते हैं और उम्र[1] और भी ठीक इसी विधि का चरित्र चित्रण—"ठीक चार बजे प्रकाश गुप्ता की कार पोर्टिको म रुकी। प्रकाश गठे हुए बदन का मझोले स कद का नवयुवक था। उसकी अवस्था प्राय चौबीस पच्चीस साल की ही होगी। रग सावले स कुछ खुलता हुआ यानी जिसे हम गेहुआ रग कह दिया करते है। चेहरा न लम्बोतरा न गोल, न सुन्दर न बेडौल, यानी बिल्कुल साधारण। नाक-नक्शा ठीक। कलीन शेव बाल बड-बड और घुघराले। महीन खादी का चूडीदार पाजामा ।[2] ये वर्णनात्मक चरित्र चित्रण अपना ही आकर्षक लिए हैं। परन्तु जिस साज सज्जा स उपन्यास आरम्भ हुआ मध्य और अन्त के वर्णन न इस पर प्रश्न चिह्न लगाया।

कल्पित, भावुकतापूर्ण और अस्वाभाविक घटना क्रम ने उपन्यास के कथ्य और शिल्प को खोखला बना दिया। उपन्यास म वीरेश्वरप्रताप का आगमन एक अलौकिक चमत्कार लिए हुए है। इस पात्र स सबधित घटनाए उपन्यास म घटना कुतूहल की वद्धि मात्र करती हैं। प्रकाश मीना के प्रति भुवन के निश्छल प्रेम का एक उदाहरण है, परन्तु मीना वीरेश्वरप्रताप रामाम तथा अन्नपूर्णा-वीरेश्वरप्रताप प्रेम आधुनिकता को चुनौती को प्रखर रूप देने के लिए प्रस्तुत किए गए हैं। रामप्रकाश का कला भारती के नाम पर सांस्कृतिक

१ अपने खिलौने—पृष्ठ ४

२ वही—पृष्ठ १४

केन्द्रों को खोलने का प्रयास आधुनिक भारतीय जीवन में कला और संस्कृति के नाम पर नवयुवकों की कलाबाजियों का द्योतक है। ये संस्थाएं वैयक्तिक हितों की पोषक अधिक है, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन की उन्नायक कम।

उपन्यास में प्रदर्शनी भवन में गृहमंत्री वीरेश्वर के भाषण वर्णनात्मक शिल्प के उद्घाटक हैं। परन्तु करा वीरेश्वर रोमांश और दिलवर किशन जख्मी के शेर—जैसे 'मैं हुस्न से हूं आजिज, मैं इश्क से हूं हारा' इस रचना का सबसे दुर्बल पक्ष है। इस रचना में भगवती बाबू ने जख्मी के गीत पदों में लगता है अपने गीतिकार कवि के मन की उमस निकाली है जो इस रचना की औपन्यासिकता पर भारी प्रश्नचिह्न है। लखनऊ में जख्मी का सुधाकर, स्वच्छन्द आदि साहित्यकारों के बीच चहकना एक चिड़ियाघर का दृश्य प्रस्तुत करता है।

लखनऊ में कला भारती की स्थापना का दृश्य तो उखड़ा उखड़ा है ही शारदा और चट्टियार का मिल कर जख्मी को इटारसी से आगे चल कर अलग करना नागपुर पहुंचते पहुंचते चेट्टियार का अपने असली ढंग में आना और मीना पर हाथ साफ करने की योजना बनाना वर्धा पर जख्मी को विदा कर देना भी ऐसे दृश्य हैं। वह सब नाटकीय ढंग से करना चाहा, परन्तु उपन्यासकार इस प्रसंग में नाटकीयता लाने में बुरी तरह असफल हुआ है। जख्मी के द्वारा कोई विरोध न होना और उसके होश गुम किए देना किसी फिल्मी दृश्य में तो सम्भव है उपन्यास या मानवीय जीवन में यह घटना अप्रत्याशित और अस्वाभाविक मानी जाएगी। इस पर भी मीना और अन्नपूर्णा का जंजीर न खींचना और कोई विरोध प्रदर्शित न करना एक ऐसी अनहोनी घटना है जिसे लेखक किसी रूप में भी जस्टीफाइ नहीं कर सकता। वल्हासा की ओर बढ़ रही द्रुतगति वाली गाड़ी में मीना की घबराहट और अन्नपूर्णा की कठोरता चारित्रिक कोमलता या दृढ़ता का कोई विशेष प्रभाव पाठक के मन पर नहीं छोड़ती। रामास्वामी का ह्विस्की पीना, अन्नपूर्णा का विरोध, फिर रामास्वामी का शराब के नशे में अनाप शनाप बकना तथा अन्नपूर्णा का गोली चला देना और चारों का वल्हासा में हवालात में बन्द हो जाना तथा उधर बम्बई में मीना तथा अन्नपूर्णा की तलाश करते हुए अशोक तथा रामप्रकाश का शराब पीकर रेलवे प्लेटफार्म पर झगड़ पड़ना और सिपाहियों का उन्हें सार्जेण्ट आप्टे के पास ले जाना फिर वीरेश्वरप्रताप द्वारा उनकी रिहाई उपन्यास में एक जासूसी औपन्यासिक रचना विधान का प्रश्रय देती है। इनके द्वारा वैचारिक अन्वेषण दार्शनिक गवेषणा या सामाजिक सांस्कृतिक अथवा नैतिक चिन्तन के अन्वेषण का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। ये सब घटनाएं उपन्यास को नितान्त हल्के स्तर का बना देती हैं। जख्मी का बिना टिकट रेल में यात्रा करना टिकट चेकर के प्रश्न पूछने पर शेर-ओ-शायरी में उससे बातें करना यथा—

टिकट कटा था, मगर हमने कर लिया वापस
अभी तो, आया है सहरा में तेरा दीवाना। (पृष्ठ २१७)

उपन्यास के हल्के स्तर को और नीचे फेंक देने वाली बातें हैं। जहां तक संवाद योजना एवं वातावरण सर्जन का प्रश्न है वहां हमें और भी अधिक निराश होना पड़ता

है। वीरेश्वर-कथा में रोमानी वातावरण का प्रयास भी प्रसारित रहा है, यथा—मैं धन्य हो गई मेरे आराध्य मेरे देवता पृष्ठ ६१। कथाकार मीना वाला प्रयत्न साधारण और बचकानी लगती है, गम्भीरता अप्रपूर्णा वार्तालाप में गम्भीरता के लिए कहीं गुंजाइश नहीं रखी गई। पार्टी में मीना का सबको प्रभावित करने का स्वर फीका पड़ गया और इस वातावरण रसहीन हो गया। अपने खिलौने को हम Romantic Novel of Adventure) की संज्ञा दे सकते हैं यह सामाजिक उपन्यास की कोटि में नहीं रखा जा सकता। जग्गी भट और मोदनजी की आधुनिक सामाजिक संरचना और आर्थिक दृष्टिकोण से प्रभावित मानव वृत्ति की दासता की कहानी की पृष्ठभूमि तैयार करती है।

अन्तर्द्वन्द्वात्मक चित्रण का उपन्यास में कहीं कोई स्थान नहीं। उपन्यास के सब पात्र अन्तर्द्वन्द्व की भूमिका निभाने के लिए तैयार किए गए खिलौने हैं जो उपन्यासकार द्वारा कठपुतली की भाँति उछल-कूद कर लुक छिप जाते हैं। लगता है आमोद-प्रमोद छल कपट और एक दूसरे को नीचा दिखाना ही इन पात्रों के जीवन का लक्ष्य है। और इन पात्रों में चित्रलेखा जैसी नायिका का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। सभी पात्र अपने अपने दृष्टिकोण की विषमता में उलझे हैं और अपने अपने अस्तित्व और प्रगति एवं प्रणय की समस्या में संलग्न हैं। उपन्यास का खलनायक वीरेश्वरप्रताप एक ऐसा खिलौना है जिस पर बेरा माला और अन्नपूर्णा सभी लट्टू हैं। पर जहाँ वह खिलौना है वहाँ खिलौने गढ़ने वाला मोहन भी है जो किसी, मीना और अनेक रमणियों रूपी खिलौनों से खेल उन्हें तोड़ भाग जाना चाहता है पर अन्त में भाग्य की विडम्बना का शिकार होकर किसी द्वारा स्वयं तोड़ दिया जाता है जब उसकी कलई खुलती है।

उपन्यासान्त में पात्रों के चरित्र विकास कथावस्तु के सन्तुलन और उपन्यासकार के पूर्वनिश्चित उद्देश्य में बड़ी भारी असंगति और बिखराव आ गया है। जैसे जग्गी की काली करतूत (अपने स्वार्थ के लिए मीना और अन्नपूर्णा दोनों को दो फिल्मी आवारों के सुपुर्द कर देना) पर भी मीना और अन्नपूर्णा की उसकी ओर उपेक्षा की दृष्टि न दिखाना, अन्नपूर्णा व मीना का एक ही व्यक्ति (बारम्बर) पर मुग्ध भाव होने पर भी स्त्रियोचित ईर्ष्या के स्थान पर एक-दूसरी को अपना परम हितैषी मान पहलू दर पहलू जीवन-यात्रा करना और तीसरे सांस्कृतिक कला केन्द्रों के क्रमिक विकास में मानवीय संवेदना और लगन के महत्त्व का शिलान्यास रखने के स्थान पर या इन संस्थाओं के संस्थापकों की सामाजिक वैयक्तिक और नैतिक दुर्बलताओं का इतिवृत्तात्मक वर्णन प्रस्तुत करने के स्थान पर मात्र पात्रों की प्रेम लीला के पक्ष को उछाल कर भगवती बाबू ने अपने खिलौने को मात्र अपने मन बहलाव का साधन तो बना लिया है इसके द्वारा औपन्यासिक शिल्प या कलात्मकता का उत्कर्ष वे प्रस्तुत करने से वंचित रह गए जो आगे चलकर 'भूले बिसरे चित्र' में उपलब्ध होता है इस प्रबन्ध की परिधि रूपी लक्ष्मण रेखा से बाहर की वस्तु है।

राजेन्द्र शर्मा

'हेमा' श्री राजेन्द्र शर्मा का दूसरा उपन्यास है। इनका पहला उपन्यास 'कायर' विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की रचना है अतएव उसका विवेचना अगले अध्याय में की

जाएगी। आपने अपनी एक भेंट में मुझे बताया कि शिल्प साधन है, साध्य नहीं। अपनी उपन्यास योजना के विषय में आपने कहा—"मैं उपन्यास कोई पूर्व निश्चित योजना बना कर, नहीं लिखता हूँ। 'कायर' पहले कथा-संग्रह 'पत्ते हरे-पीले' की अन्तिम कथा 'राग विराग' का ही विस्तार है। लेखन इतना स्वाभाविक धर्म बन गया है कि आस-पास का वातावरण उस पर हावी नहीं हो पाता। 'कायर' लिखते समय मेरी छोटी बच्चियाँ कभी कभी पीठ पर भी आकर कूदती और खेलती रहती थीं, फिर भी इससे लेखन में या शिल्प में कहीं कोई व्यवधान नहीं आ सका। एक प्रवाह में लेखनी स्वतः बढ़ती चलती है और एक अदृश्य दैवी शक्ति उसका नियंत्रण करता है। 'कायर', हेमा के बाद लिखे अपने दो उपन्यासों में जो एक बार लिख लिया उसमें कोई हेर फेर फिर नहीं किया।'[1]

हेमा—१९५४

कायर के दो वर्ष पश्चात छपी हेमा वर्णनात्मक शिल्प विधि की रचना है। उपन्यासकार ने कथा सूत्र अपने हाथ में रखते हुए एक नये विषय से हिन्दी पाठक का साक्षात्कार अपने इस दूसरे उपन्यास में कराया है। यह शायद हिंदी का प्रथम उपन्यास है जिसकी नायिका मात्र सात वर्ष की अवस्था में पाठक के सामने आती है। उपन्यास का आरम्भ भले ही पाठक के लिए आकर्षक न हो परन्तु ज्यों ही वह कथा के मध्य में प्रवेश करता है उसे बहिर्मुखी घटनाओं का जाल अपनी ओर आकर्षित करने लगता है। सात वर्ष की भोली भाली बालिका हेमा का स्वभाव और व्यवहार पाठकीय आकर्षण का केन्द्र बनने लगता है। और फिर मध्यावस्था का अवसान कथा सोपान की चरम सीमा का केन्द्र बन जाता है। अपनी ही सर्जित कथा के प्रति कथाकार तटस्थ नहीं रह पाता। हेमा का अपहरण और अपहरण जनित परिस्थितियाँ एवं घटनाओं के प्रति वह अनासक्ति की त्यागपूर्ण आस्था के साथ चित्रित करने का दायित्व निभाता है।

हेमा का अपहरण नये परिप्रेक्ष्य में उसकी छटपटाहट, रेवा की दयालुता सेठ मगनलाल के साथ वृन्दावन में उसे नये वातावरण में ढालने का प्रयत्न जमुना साक्षात्कार से घबरा कर रेवा सेठ का हेमा को दिल्ली ले आना, सेठ द्वारा उसे गोद लेकर अपने सूने आंगन को आबाद करने का प्रयत्न, श्यामा का विरोध और अन्त में सेठ मगनलाल का उसे सम्पादक विश्वेश्वर बाबू के पास छोड़ जाना द्रुत गति से घटित घटनाएं हैं। ऐसा आभासित होता है कि इन्हें लिख रहा लेखक थका सा, टूटा सा बिखरा सा लिखने बैठ गया है, किन्तु उपन्यास के अन्तिम तीस पृष्ठ जमकर शांत मन स्थिति में लिखे गए प्रतीत होते हैं। तभी इन पृष्ठों के कथा शिल्प में गठन एवं उभार आ गया है। विपिन का विवशता से भरा चेहरा और सम्पादक से विनय कि वे उसे बम्बई न भेजें किन्तु सम्पादक का उसे बम्बई भेज कर नई परिस्थिति एवं पृष्ठभूमि तैयार करना विपिन की पत्नी अलका का पुत्री हेमा के वियोग में घुट घुटकर मरना और मृत्यु के समय विपिन की जेब में पांच रुपया के नोट का अभाव उसके लॉकेट बेचकर अंतिम संस्कार करने के दृश्य पर्याप्त करुणा एवं

१ श्री राजेन्द्र शर्मा से भेंट वार्ता दिनांक २८ ५ ६८

वर्णनात्मकता लिए हैं। अंतिम पृष्ठ का कथा मल्य सूनी होने पर भी सार्थक है। यह उपन्यासकार के परिष्कृत शिल्प का उदाहरण है।

कुशल शिल्पी ने इस रचना में मानव चरित्र के मात्र ऊपरी स्तर को छूकर ही अपने धर्म की इतिश्री नहीं समझ ली। हेमा के रूप में अपने एक प्रमुख पात्र को लेकर उस पर अधिकारपूर्ण रूप से लिखा है। हेमा के अपहरण के पश्चात् उसकी छोटी-मन-छोटी हरकत का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। उसका रेखा के चंगुल से भाग निकलने का प्रयत्न, बुढ़िया की छड़ी से उसकी पिटाई उसका अपने करुण रूप और म्हतनी बातों द्वारा रेखा को मोहित कर गये वातावरण से बाहर निकल जाने की योजना की पाठिका तैयार करना और वृन्दावन पहुँचने हा नये वातावरण में गा जाने की भरसक यास मनोविज्ञान के चितेर रूप है। स्पष्ट हा जाता है कि कथाकार यान मनोविज्ञान के तत्वान्वेषण और परीक्षण की प्रक्रिया में पूर्ण रूप से सफल हुआ है तभी तो वह इस पात्र का संचालन सहज रूप में प्रस्तुत कर सका। श्रा नामा ने हेमा का मात्र कुशलपूर्वक संचालन ही नहीं किया उसका पूर्ण निरीक्षण परीक्षण और गति विधि का अंकन भी किया है। उन्होंने मूल समस्या का पन स्पष्ट कर दिया है कि हेमा के अपहरण का दायित्व किस पर? भोली आठ वर्षीय हेमा पर या उसके संरक्षकों पर? संरक्षकों पर इसका दायित्व डालते हुए उपन्यास में लिखा गया है--- जिन बच्चों को माँ-बाप कठोर अनुशासन में रखते हैं वे तनिक सा दुलार पाते ही मा बाप को भूल भी जाते हैं।"[1] ये शब्द सुनते ही हेमा के पिता विपिन को लगा कि उसके कलेजे को तेज चाकू से छलनी कर दिया गया हो। मनुष्य अपने जन्म के बुरे कर्मों का फल कभी-कभी इसी जन्म में इसी धरा पर भोग लेता है। विपिन की बम्बई की जीवनी इस दार्शनिक विचारणा का ज्वलन्त उदाहरण है।

'हेमा' का विचार पक्ष भी प्रौढ़ है। उपन्यासकार ने बच्चों की समस्या को लेकर यह उपन्यास लिखा है। बच्चे संस्कार अनुरूप बनते या बिगड़ते हैं। उपन्यास का प्रथम वाक्य श्राम श्री राधायनम हेमा के हृदय पट पर अंकित हो चुका है। राधा कृष्ण की युगल जोड़ी उसकी उज्ज्वल चारित्रिकता का निर्माण कर चुकी है। वह वेश्या के घर जाकर डरी अवश्य, किन्तु उस वातावरण के प्रति हृदय से घृणा भी उसने की और उससे उबरने का उपाय सोचा। अन्त तक वह उच्च मन सात्विक विचारों की बालिका बनी रही। 'हेमा' के विचार पाठक के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था जागृत करते हैं जहां पश्चिम का गोरे फैशन की होड़ और वस्त्रालय में भी नशीली गंध नहीं उस वातावरण के प्रति अनासक्ति और उससे त्राण की चाहना रखा, हेमा दोनों में सम रूप से विद्यमान है।

हेमा की शैली आकर्षक एवं सहज है। लेखक का गद्य प्रसंगानुसार गम्भीर, भाव प्रवण और प्रवाहपूर्ण बनता गया है। जैसे--- और तब अलका की सोनापुर यात्रा आरम्भ हुई। विपिन लड़खड़ाते पैरों से अरथी को कंधे पर उठाये चला जा रहा था। चारों ओर खड़े मकान, मोटर ट्राम विक्टोरिया आने वाले जाने वाले सब जैसे उसकी दृष्टि में

---

[1] हेमा---पृष्ठ ११२

पत्थर थे, निर्जीव थ, निष्प्राण। और चारो ओर कुछ था तो वह थी भलवा। माना वह रहा हो— अब तुम मेरे साथ-साथ थोड ही जाओग।' विपिन बाहर से जड है सूना उदास। और भीतर से जस अश्रुओ का तालाब उमड कर उस गीला कर रहा है जिसकी तरलता म भी अग्नि है, लपटें है और लपटा न जब अनका की देह का अपने म लपटना आरम्भ किया तो पार्टी वाला का विपिन न दो-दो रुपया देकर विदा कर दिया।'' देखो भाव प्रवणता। एक विशाल नगरी, मगर सब अपरिचित और पाषाण हृदय। जहा अरथी को कधा दन वाले भी भाड के हो। यह जीवन की विडम्बना नही तो क्या है जिस पर लेखक न अधिकारपूण ढग स लिखा है।

मन्मथनाथ गुप्त बहता पानी—१९५५

पाश्चात्य देशा की तुलना म भारतवष म राजनतिक चितना तथा क्रान्तिकारी विचारा स परिपूण उपन्यास कम ही लिखे गए। इसम प्रमचन्द गुरुदत्त और यशपाल क अधिकाश उपन्यासा म राजनतिक विचार सघष और क्रान्ति क विभिन्न रूपा का वणन हुआ है। स्वातन्त्र्योत्तर काल म श्री मन्मथनाथ गुप्त और श्री भरवप्रसाद न सामाजिक जीवन को आधार बनाकर वणनात्मक शिल्प विधि के उपन्यास रचे है। श्री गुप्त का प्रथम उपन्यास बहता पानी जल से मुक्त हुए नायक सन्यसाची की क्रान्तिमूलक विचारणाओ को प्रतिपादित करन वाला उपन्यास है। इस का आरम्भ सव्यसाची के जेल म प्रवासकालीन स्मृतिया तथा जल म छूटन पर रेल यात्रा म सहयात्री महिला घमशीला के प्रथम परिचय और घनिष्ठता क साथ होता है। घमशीला सव्यसाची का पुत्र सम स्नेह दना चाहती है, परन्तु वह इस एकाकी आकस्मिक स्नेह को सहज ही स्वीकार करन म हिचकता है। उस इस दश की चिता अधिक है और इस बात पर खेद है कि सन् ४२ की क्रान्ति न ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर जो साघातिक प्रहार किया था सन् ४७ की स्वतन्त्रता मिलन पर राजनतिक लूट खसोट क कारण उसका ढाचा बुरी तरह छिन भिन्न होकर भू लुण्ठित होन लगा। भारत का राजनतिक स्वतन्त्रता मिली, मगर सामाजिक क्रान्ति की दिशा म वह एक इच आग न बढ सका। उस नौकरी सुविधा साधारण जीवन का मोह अपनी ओर आकृष्ट नही करता वरन् साधना, तप और क्रान्ति का जीवन प्रिय है। दशहित और विश्वहित क लिए वह अपने पूव क्रान्तिकारी परिचित बद्यनाथ के साथ मिलकर एक 'विप्लवकारी सघ' की स्थापना करता है, जिसका उद्देश्य सामाजिक रूढिया के प्रति क्रियावादी तत्त्वा तथा धार्मिक अन्धविश्वासा का उन्मूलन करना है।

सव्यसाची की सामाजिकता और क्रान्तिकारी प्रवत्ति का न्यास व्यापक है। इस उपन्यासकार न अपन उद्दश्यपूर्ति का आधार बनान क निमित्त वणनात्मक शिल्प विधि का आश्रय लकर उसकी अनुभतिया विचारणाओ और अपन प्रचार म एक सन्तुलन लाने का प्रयास किया है किन्तु अपन इस प्रयास म वह आशिक रूप म ही सफल हो सका है। उपन्यास म जितने विचार और मूल्य आए है व आरोपित दष्टिगत होते है वस्तु गठन

३ हेमा—पष्ठ १७३

से कहीं भी उनका सहज संबंध स्थापित नहीं हो पाता। नायक सव्यसाची क्रान्तिकारी मनोवृत्ति का उन्नायक है। जेल में इन्द्र हो यह दृढ़ संकल्प करता है कि बाहर कुलीगिरी कर लेगा किसी का आश्रय न लेगा, इसी विचार के फलस्वरूप धर्मशाला के पास प्रस्ताव कि उसके लड़के का संरक्षक व अध्यापक बनना स्वीकार करने से ठुकरा देता है। कानों आने पर व्यग्रता की अनुभूति कर धर्मशाला में फिर भगवान और फिर धर्मशाला के अनुनय पर उसके निजाम स्थान पर पहुँच जाता है। सुजाता परिचय पर उसके प्रति मुग्ध होता है परन्तु विवाह विरोधी विचारणा का समर्थक होने के नाते उसे पहले ठुकरा देता है फिर अपने ही मन के चार साथियों की प्रार्थना पर भवानन्द के स्थान पर स्वयं सरला से विवाह कर लेता है। विवाह के समय मंत्र उच्चारण भी कर लेता है। उसका परिस्थितियों से समझौता उपन्यास पर एक भारी प्रश्नचिह्न है। एक ओर यह सरला का तिरस्कार कर उसे रमिकलाल के पास भेजकर मौनव्रती और क्रान्तिकारी होने का ढिंढोरा पीटता है तो दूसरी ओर सुजाता के लौट आने पर उससे भी विवाह कर प्रतिक्रियावादियों का अगुआ बनता है। क्रान्तिकारी की कथनी और करनी समानधर्मा होती है परन्तु सव्यसाची की वाणी और कर्म में भारी अन्तराल है।

क्रान्तिकारियों के लिए चिन्तन स्वाधीनता और भावुकता पर बौद्धिक नियन्त्रण एक अनिवार्य शर्त है परन्तु इस उपन्यास में एक वचनाथ को छोड़कर शेष क्रान्तिकारी कथाकार की शिथिल कथा सरणी पर सम्मिलित हुए चिन्तन तथा स्वाधीनता के नाम पर असामाजिक तत्वों तथा भावुकता के शिकार हुए हैं। सव्यसाची के पश्चात् सुजाता को ही लीजिए। वह लाहौर में लौटते हुए शान्तिलाल चाहती है निकटता से मिलता है उसके रुपया बनने के कारणों को टटोलती है और स्व वेषण के आधार पर पत्र पत्रिकाओं में लेख भेजती है, किन्तु यही सुजाता किन्हीं परिस्थितियों में पड़कर भावुक सनक नारी बन जाता है। यौन-व्यापार की परम विरोधी यह पात्र हरिकिशन की प्रेम विनती में बहककर यौन वृत्ति का शिकार हो जाती है। वह यौन प्रवाह में इस गति से बहने लगती है कि एक ओर अपनी पुण्यशीला माता धर्मशीला की मृत्यु पर छोटे भाई को सान्त्वना देने के लिए काशी नहीं पहुँचती दूसरी ओर यौन व्यवस्था और प्रेम में अन्तर नहीं कर पाती। जब वह गर्भवती होती है तब द्वन्द्वात्मक बोध की अनुभूति करती है। यह द्वन्द्वात्मक बोध दो पात्रों की व्यक्तिगत समस्या नहीं है सामाजिक प्रश्न है। इसकी बड़ी ट्रेजडी यह है कि यौन क्षेत्र में स्त्री का सर्वनाश कर पुरुष अपने को निश्चिन्त, उत्तरदायित्वहीन और सहज समझ लेता है, जबकि स्त्री के सम्मुख जीवन की विकटतम स्थिति होती है। आवारा हरिकिशन सुजाता से जब सुनता है कि उससे उसके द्वारा गर्भ रह गया तब कोई आश्चर्य कोई चिन्ता, कोई आशंका उसने अनुभव नहीं की। भीषण ट्रेजडी तो यह कि उसके सर्वनाश के लिए अपने ऊपर कोई दायित्व वहन करने के मूल प्रश्न को ही नकार दिया। विवाह प्रस्ताव को गद्गद भावुकता की संज्ञा दी और अपने तर्क पर बौद्धिकता का आवरण डालते हुए मैंने कहा—देखो सुजाता तुम मेरे घर आकर रहो, बच्चा यहीं पैदा हो। तुम्हारी यह कैसी धारणा है कि सरकारी दफ्तर में जाकर एक खानापूरी करने के लिए कह रही हो जिसमें न तुम्हें फायदा है न मुझे न बच्चे का। हम जो है

सा ही रहेगा, वह भी जो होगा, सो होगा।"[1] हरिकिशन के ये शब्द समाजवादी विचारणा के प्रतीक है। पर इनसे किसी भी पात्र या समाज का उपकार होने की सम्भावना नहीं। सुजाता की ट्रेजेडी का प्रमाण है। इस उपन्यास में राजनीतिक रोमांस की परिकल्पना की गई है। पर सभी राजनीतिक चेतना के प्रतिनिधि सव्यसाची, सुजाता, हरिकिशन बुरी तरह विफल हुए हैं। राजनीति के नाम पर क्रान्ति और रोमांस के क्षेत्र में स्वच्छन्द यौन संबंध की समस्या को उभारने के लिए श्री गुप्त को घटनाओं को आकस्मिक मोड़ देना पड़ा है और पात्रों को एक विशेष सांचे में ढाला गया है जिसके फलस्वरूप गुप्त का लक्ष्य कथा या चरित्र चित्रण नहीं रह गया मात्र अपने विचारों का प्रचार रह गया है। वैद्यनाथ नामक क्रान्तिकारी खिरनी नाम की एक साधारण अशिक्षित युवती को अपने साथ ले आया है। नगर में और इस उपन्यास में इस पात्र की कोई उपयोगिता नहीं किन्तु श्री मन्मथ नाथ की वैचारिक टिप्पणियों के लिए यह पात्र परम सहायक सिद्ध हुई। इसे लक्ष्य कर वे टिप्पणी कर गए— सभ्यता की ठीक नाक के नीचे शिक्षा के गढ़ शहरों में जो सैकड़ों तरुण जीवनों का नाश हो रहा है हजारों खिरनियाँ हैं। उनका क्या ? एक आध खिरनी तो नहीं।'

यही क्रान्तिकारी मनोवृत्ति है। क्रान्तिकारी खण्डश दुनिया का उद्धार नहीं करना चाहता। एक दुःख में सैकड़ों दुःखों की चिंता में पड जाता है एक की दवा खोजने के लिए निकलकर वह सबके लिए संजीवनी की तलाश करता है। एक प्रदीप से वह सन्तुष्ट नहीं होता वह रात का एक अविच्छिन्न दिवाली कर देना चाहता है। समय के आगे रहता है। इसी में उसके जीवन की ट्रेजेडी है।[2]

वैचारिक टिप्पणियाँ मात्र लेखक ने ही स्वयं प्रस्तुत नहीं की। अवसर पड़ते ही वह पात्रों को भी कलम पकड़ा देता है। नायक सव्यसाची काशी में गंगा तट पर बैठ बहते पानी का साक्षात्कार कर टिप्पणी करता है— हम ऐसा मालूम होता है कि हम जो गंगाजी को, अनीश्वरवाद की लपट में आकर सब गौरव तथा पवित्रता से वंचित कर एक साधारण नहर या नदी में परिणत करने की कोशिश कर रहे हैं यह अन्त तक सफल नहीं होगी शायद यह सफल नहीं ही होगी आधा देश उसकी नदियों तथा नहरों से सींचा जा रहा है उस पर नाव खेकर और मछली पकड़कर हजारों लोग प्रतिपालित हो रहे हैं हमारा आधा इतिहास उसी के किनारों की घटना है। क्या इन सारी बातों का धर्म के अतिरिक्त कोई महत्त्व नहीं है ? क्या इसका एक सहजात महत्त्व तथा पवित्रता नहीं है ? जिस कारण से राइन जमना के निकट वोलगा रूसियों के निकट, नील नदी मिस्रियों के निकट पवित्र है। उसी कारण से गंगा हम लोगों के निकट पवित्र रहेगी। इसमें धर्म की कोई बात नहीं है। धर्म ने तो बल्कि गंगा की इस सहज पवित्रता का शोषण कर युग युग से मनुष्य के मन पर अपना जादू फैला रखा है। रूप, रस गन्ध वर्ण जीवन प्रेम मृत्यु में जहाँ भी जो कुछ आकर्षण है धर्म ने उसी को अपने मतलब के लिए दोहन कर

---

१ बहता पानी—पृष्ठ १७४

२ वही—पृष्ठ ५८

अपने को पुष्ट बनाया है।[3]

इस उपन्यास में दृष्टि न परिवेश पर केन्द्रित हुई न व्यक्ति पर, तभी तो घटनाओं की वाह्यात्मकता में भी बल नहीं तथा पात्र भी सशक्त नहीं। कोई बड़ा राजनैतिक आन्दोलन उपन्यास पटल पर नहीं उभर पाया। 'सामाजिक विप्लवकारी संघ' की मात्र एक उपलब्धि है—सवर्णों की एक छोटी टोली का ग्राम के स्थान पर लगना पृष्ठ ११२ पर लिखा गया कि मवादल का अब अधिक दिन दिल्ली रहना नहीं है। इसी प्रकार पृष्ठ ७० पर लिखता है कि लाहौर न केवल पंजाब में बल्कि भारतीय शहरों में एक विशेषता रखता है। सन पचपन में इस उपन्यास में इस प्रकार की भारी भूलें पाठक के मन को कचोटती है। सब मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रसिद्ध क्रान्तिकारी की कलम से सामाजिक यथार्थ का यह चित्रण उथला उथला ही रह गया है। यथार्थ जीवन-बोध की अनुभूति से सम्पन्न लेखक की कलम से इस प्रकार की साधारण सर्जना पाकर हम निराश होना पड़ा।

उपेन्द्रनाथ अश्क

वर्णनात्मक शिल्प विधि के उपन्यासकारों में उपेन्द्रनाथ अश्क का नाम उल्लेखनीय है। अधिकांश आलोचकों ने इनकी गणना प्रेमचन्द परम्परा के यथार्थवादी लेखकों में की है। कतिपय आलोचकों के मत उद्धृत किए जाते हैं—'उपेन्द्रनाथ अश्क भी प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा के उपन्यासकार हैं।[1]

प्रेमचन्द की-सा सूक्ष्म निरीक्षण एवं यथार्थ जीवनानुभव लेकर उपेन्द्रनाथ अश्क अवतरित हुए।[2]

'गिरती दीवारें' उनका अपेक्षाकृत प्रौढ़ उपन्यास है। स्वर्गीय प्रेमचन्द की परम्परा का यह एक अभिनव स्वरूप सा जान पड़ता है।[3]

कुछ आलोचक अश्क को नई कोटि का उपन्यासकार बताते हैं—'अश्क ने अपनी उपन्यास कला को यथार्थवादी स्पन्दन का प्रयास किया है और 'गिरती दीवारें' यथार्थवादी कसौटी पर परखा गया है और इस उपन्यास में यथार्थवाद व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन से प्रभावित है।[4]

अश्क जी के उपन्यासों में यथार्थ की प्रवृत्ति प्रकृतिवाद की सीमा पर नहीं पहुंचा है। परन्तु उनके उपन्यास भी मध्यवर्गीय समाज की गति विधि को विशेष दृष्टि से ही चित्रित करते हैं। उनके उपन्यासों में उनके समाज के ऐसे पहलू आए हैं जिनमें निष्क्रियता, उद्देश्यहीनता और हास विषाद की छाया पड़ी हुई है। इन रचनाओं के पढ़ने पर हम समाज के

---

३ बहता पानी—पृष्ठ ६० ६१

१ शिवदानसिंह चौहान — हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष—पृष्ठ १६८

२ शिवनारायण श्रीवास्तव — हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ ३३६

३ गंगा प्रसाद पांडेय — हिन्दी कथा साहित्य—पृष्ठ ३

४ डा० सुषमा धवन — हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ १८७

म हुवे रोमास की सृष्टि अधिक करता है यथार्थ समाज की अभिव्यक्ति कम होती है। उपन्यास का प्रत्येक दृश्य पत्र अश्लील वर्णना से भरा है। उपन्यास का नायक कुन्ती चन्दा नीता, प्रकाशा वेसर मनी की ओर वासनात्मक दृष्टि से देखता है। 'ननके पर पानी भरने के लिए आई प्रकाशा को वह भाव लता है चन्दा से विवाह हो जाने पर उसके स्वस्थ पहलुओं पर काम और यौन सम्बन्ध पर खुलकर प्रकाश डाला गया है। बीमारी में सेवा करने आई नीला का उसने चुम्बन लिया है। कमरे को पकड़कर कमरे में पलंग पर डालकर भी नपुंसकता का प्रदर्शन किया है।

उपन्यास का प्रारम्भ वर्णनात्मक शिल्प विधि द्वारा हुआ है। जालन्धर नगर के बस्ती गुजा और शीतला मन्दिर का वर्णन विवरणात्मक है। इसके पश्चात् चेतन के परिवार का पूरा ब्योरा दिया गया है। उपन्यास में अनेक स्थलों पर जहाँ सकेत से काम लिया जा सकता था वर्णन प्रस्तुत हुए हैं। एक स्थल पर चेतन अपने मित्र को पत्र लिखकर संकेत रूप में बताता है कि चन्दा से उसकी सगाई हो गई किन्तु इतना भर लिखकर उपन्यासकार को सन्तोष नहीं हुआ। उसने लिखा— वहाँ जो कुछ हुआ उसका विवरण यद्यपि चेतन ने उस पत्र में नहीं किया पर वह कुछ यों है ।[2] यहाँ कथा के बीच में कथाकार सीधे प्रवेश कर गया है। इस दृष्टि से इन्हें प्रेमचन्द प्रसाद और कौशिक की परम्परा से अलग नहीं रखा जा सकता। चेतन के जीवन का दूसरा छोर लाहौर से बंधा है। इसमें उसके महत्वाकांक्षी जीवन का विशाल वर्णन हुआ है। चेतन के जीवन की तीसरी धारा शिमला में प्रस्फुटित होती है जो आदि से अन्त तक वर्णनात्मक है। उपन्यास के मध्य में अनेक स्थलों पर उपन्यासकार प्रवेश करता है। यौन के विषय को लेकर वह लिखता है— हमारी इस निम्न मध्यवर्गीय संस्कृति में जब यौन सम्बन्धी किसी बात का ज्ञान युवा लड़की-लड़के के माता के पास तक ले जाना पाप समझा जाता है तो अपने सहज ज्ञान द्वारा के लिखत पशु पक्षियों को देख अपने ही तरह के अपने से अनजानी मित्रों या फूहड़ बाजारी वैद्य हकीमों से सुन सुनाकर या फिर छिपे छिपे कोकशास्त्र की तरह के ग्रन्थ पढ़ पढ़ाकर उन युवकों की वासना समय से पहले चाहे जग जाती हो पर सेक्स का उचित ज्ञान उन्हें प्राप्त नहीं होता।[3] विज्ञापनों के महत्त्व पर कथाकार ने खुलकर प्रकाश डाला है।[4]

गिरती दीवारें के चरित्र उपन्यासकार द्वारा वर्णित हैं। चेतन के पिता पंडित शादीराम उसके भाई डा० रामानन्द और कविराज रामदास के चरित्र का गठन एवं विकास प्रभावशाली है। चेतन दुर्बल चरित्र-नायक है किन्तु जोशी के नन्दकिशोर जैनेन्द्र के श्रीकान्त व अज्ञेय के शेखर से कहीं नीचे है। न उसका कोई जीवन दर्शन है न व्यक्तित्व। उपन्यासकार ने उसके जीवन का चक्रव्यूह की भांति घुमाया है। अनेक स्थलों पर उसे आन्तरिक सिद्ध करने का प्रयास किया है किन्तु उसकी आन्तरिकता का सूक्ष्म अन्वेषण

---

२ गिरती दीवारें—पृष्ठ १११, १६५, १८२, २८०, ३११, ४४५

३ वही—पृष्ठ १४५, १४८

४ वही—पृष्ठ ३६८, ३६६

अप्राप्य रहता है। उसके व्यवहार म अशिष्टता है स्वभाव म छिछोरपन है और विचारा म अपरिपक्वता। उसके तथा उसके परिवार के सभी सदस्या के चरित्र पर पूरा प्रकाश उपन्यासकार द्वारा डाला गया है।[५] लेखक द्वारा चित्रित शादीराम और चेतन के चरित्र के दो उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं— पडित शादीराम स्वभाव स क्रूर थ कठोर थे और अत्याचारी भी उन्हें कहा जा सकता। पर इसके साथ ही उनके मन म कहा-न-कही उदारता और कोमलता भी यथेष्ठ मात्रा म दबी पडी थी। इसी कोमलता के कारण वे अपने शत्रु का माफ कर देते थे, और इसी कोमलता के कारण जब किसी दिन अथवा निकट सम्बन्धी की बेवफाई उनके ममस्थल पर चोट पहुचाती थी तो व बच्चा की तरह फूट फूट कर रो पडते थे।"[६]

'चेतन के जीवन की ट्रेजेडी उसकी यही भाव प्रवणता और उसस जनित क्षोभ था। यदि अनजाने म उससे स्वय छल बन आता तो दूसरे ही क्षण अपने छल को जानकर आत्म ग्लानि से उसका हृदय भर जाता। निम्न मध्यवग म जो 'माटी खाल' पदा होती है—जो मान अपमान को सह जाती है। और बिना महसूस किए झूठ बोलती है खुशामद करती है रिश्वत लेती है, देती है और धोखा फरेब करती है वह चेतन के पास न थी।'[७]

इस प्रकार के अनेक चारित्रिक वणना स उपन्यास भरा पडा है। विश्लेषण का अवसर मिलने पर भी उपन्यासकार इस विधि से कन्नी काटकर आगे बढ गया है। एकस्थल पर नीला का चरित्र अकित करते हुए लिखा है— 'किन्तु नीला आगे थी।' उसे लेकर चेतन के मन म अन्तद्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती है। किन्तु उपन्यासकार उस द्वन्द्वात्मक स्थिति का विश्लेषण न करके चेतन द्वारा अनन्त को लिखे गए पत्रा मे चारित्रिक वणन प्रस्तुत कर गया है। 'और नीला'—यह लिखकर भी चारित्रिक विश्लेषण नही किया गया। एसे अचूक प्रसगा को लेखक की भूल माना जायगा। उसका वणनात्मक विधि के प्रति आग्रह कहा जाएगा। इस सबध म एक आलोचक ने ठीक कहा है— चेतन को केन्द्र मानकर उस जीवन की केन्द्रानुग तथा केन्द्रातिग परिस्थितियो का विशद चित्रण उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य जान पडता है। कला कला के लिए की तरह यह वणन कहा कही केवल वणन के लिए जान पडता है।[८] उपन्यास के अतिम सापान पर जी सिंह के सगीत कॉलेज का बखान, हर वल्लभ के मेले का विवरण डामेटिक क्लब के वणनात्मक किस्से न केवल उपन्यास की आकार वद्धि करते हैं अपितु उपन्यास की वणनात्मकता का प्रमाण भी जुटाते हैं। जालन्धर की बस्ती गुजा, लाहौर का चगड मुहल्ला तथा रल्टू भट्टा का समाज उपन्यास

५ गिरती दीवारें—पष्ठ ४७, ६१, ७१, ११४, १६६, २०२, २१०, २३१ ४६८, ४८८, ५१८, ६१०

६ वही—पृष्ठ २१०

७ वही—पष्ठ ४८८ ८६

८ वही—पष्ठ—२३१

९ गगाप्रसाद पाण्डेय हिन्दी कथा साहित्य—पृष्ठ २२३

को व्यक्तिपरक नहीं सामाजिक चिन्ता और आकांक्षा से भरपूर करता है। उपन्यास में चेतना से अधिक चिन्तन का विस्तृत्नी समाज चित्रण है। डा मैं इस आधार पर इस कथन से सहमत नहीं— वास्तव में उन्हीं के पक्ष व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं जिनकी उपन्यास दुनिया में व्यक्तिगत जीवन घटना व्यक्तिगत चरित्र व्यक्तिगत जीवन दर्शन अथवा व्यक्तिगत जीवन समस्या का निरूपण सर्वोपरि होता है।[१०] मेरे मतानुसार व्यक्तिवादी उपन्यासकार अन्तर्मुख विश्लेषणात्मक शिल्प विधि को अपनाता है जिसका प्रस्तुत में नितान्त अभाव है। उन्होंने सामाजिक व्यापकता को अपनाया है वैयक्तिक गुहा की गहनता में जाने से इन्कार कर दिया है।

इन्दुमती—१९५०

इन्दुमती सेठ गोविन्द दास रचित वर्णनात्मक शिल्प विधि का उपन्यास है। इसे मैं नव प्रतिमान समाजोन्मुखी राजनैतिक उपन्यास मानता हूँ। इसमें लेखक ने ६३४ पृष्ठों में भारतीय कांग्रेस के स्वतन्त्रता आन्दोलन की विस्तार चर्चा की है। सेठ जी का ध्यान राजनीति के साथ-साथ भारतीय समाज व नारी वर्ग की ओर भी केन्द्रित रहा है। इन्होंने उपन्यास की कथा नायिका इन्दुमती को केन्द्र में रखा है और उसके माध्यम से स्त्री वर्ग की स्वतन्त्रता तथा समस्याओं को बहिर्मुखी स्वरूप (Extrovert Form) देकर उसकी कोमल भावनाओं आवश्यकताओं तथा सिसकियों को वाणी दी है।[१]

उपन्यासकार ने उपन्यास में वे ही घटनाएं और विचार जुटाए हैं जिनका सीधा सम्बन्ध या तो इन्दुमती की जीवनी से है या फिर भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास से है। प्राचीन काल से ही स्त्री पुरुष सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में स्त्री प्रेम साहित्यकारों का प्रिय विषय रहा है। स्त्री प्रेम के अन्तर्गत स्त्री की भावनाओं की अन्तर्दशाओं का सूक्ष्म विश्लेषण सेठजी का स्पष्ट प्रतीत नहीं होता उन्होंने इन्दु के विचारों को बहिर्मुखी बनाते हुए रही स्वयं तो कहीं अन्य पात्रों द्वारा स्त्री समाज की वर्तमान यथार्थ परिस्थितियों का कच्चा चिट्ठा इस उपन्यास में खोलकर रख दिया है। उपन्यास का आरम्भ लेखक की इस टिप्पणी के साथ होता है— विश्व में निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है। जो अपने को ही केन्द्र मान सब कुछ अपने लिए करता है संसार की समस्त वस्तुओं को अपने आनन्द के लिए साधन मानता है उसी का जीवन सुखी और सफल होता है।" इस टिप्पणी के साथ ही उपन्यास का अन्त भी होता है।[२] इस विचारधारा के साथ ही कथा घूमती है और जीवन की हर विषम परिस्थिति में नायिका इन्दुमती इन शब्दों का स्मरण करती है।[३]

---

१० डा०सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ १२३

१ इन्दुमती—पृष्ठ १

२ वही—पृष्ठ ६३४,

३ वही—पृष्ठ ५५ ६२, १०३, १६२, १७५, ३२४, ४५३, ४६६, ५११, ५४५, ५६६, ५४१ ६२६, ६०७, ६२०

'इन्दुमती मात्र स्त्री पुरुष के सयोग वियोग की कहानी नही है यह भारतीय समाज और राजनीति की समस्याओं पर विचार भडकाने वाली कलाकृति है। इस दृष्टि से वणनात्मक शिल्प विधि का यह उपन्यास उद्देश्यनिष्ठ है। उद्देश्य है भारतीय नारी म व्यक्तित्व का निमाण करना, जिसमे कथाकार एक बडी सीमा तक सफल हुआ है। उपन्यास में अधिकतर वे घटनाए सयोजित हुई हैं जो पाठकीय आकषण रखती है वे विचार दिए गए है जिनस कथा की गति म माधुय बढा है। उपन्यास की कतिपय घटनाए तोडी मराडी आभासित हाती है जसे त्रिलाकीनाथ का इन्दुमती की ओर से निराश हो डाक्टरी पास करके सेवा काय म लग जाना ललित माहन की मृत्यु पर प्लाट का समाप्त प्राय लगना, इन्दु का वीरभद्र की ओर झुकाव पर आकस्मिक रूप से आग लगने की दुघटना पर उसका गिरफ्तार हो जाना फिर इन्दु का भारत पयटन तथा अमरीका जाकर नगिवाला बन हॉलीवुड पहुचना वहा मुरलीधर की ओर आकृष्ट हाना आदि घटनाए एक ओर आकस्मिक अस्वाभाविक काल्पनिक और विश्रृखल लगती है परन्तु दूसरी ओर य कथाकार के सामाजिक आदर्शों का पूर्ति करती है। नारी मगल की कामना से अभिभूत लेखक अपनी इन घटनाओ और कथा के द्वारा उपन्यास म एक नतिक ससार उडलने का प्रयास करता है। इसम किसी को कुछ आकस्मिक और आशा से ऊपर लगे ता उसकी उसे चिन्ता नही। नई पीढी के लिए एक नतिक आदश (Code) देना वह अपना घम समझता है। लगता है उसने श्री एच० लेगट के इन शब्दा को आत्मसात कर लिया है—कतिपय उपन्यासकार प्रत्येक युग म कुछ नतिक दशाओ को अथवा परिवर्तित नतिक मान्यताओ को पाठक पर थापने ही हैं, इसलिए नही कि व कोड रचिकर हो अथवा नवीनता लिए हो, बल्कि इसलिए कि विशेष रूप से पहिले वे कोड विषयक नई स्थापनाओ स पाठक को परिचित करा सकें तथा दूसरे पाठक से उनका तादात्म्य स्थापित कर उसे इस अवस्था तक पहुचा सकें जिसम वह उसका प्रशसक बने या उस आकषक मान।

इन्दुमती का कथानक निर्माण सेठ गाविन्द दास के साथ-साथ पात्र इन्दुमती के अधीन हो चला। उसका समूचा जीवन उसके जीवन की प्रमुख घटनाए, उसके काय व्यापार अपन आप म वस्तु विन्यास है। इन्दुमती की चरित्र स्थापना तथा नारी की करुण गाथा विषयक विचारणा म ही कथा सूत्र विकसित, सगठित और समन्वित हुए।

---

4 Besides the expression of Codes interesting for their novelty or unexpectedness a few novelists in every age more or less deliberately set out to impose fresh Codes or, more particularly, modifications of existing Codes upon their generation not by advocating them, but, in the first place, by familiarizing their readers with them, and secondly by associating such provocative notions with characters whom the reader cannot but admire or find attractive

"The Idea of Fiction P 76

का व्यक्तिपरक नहीं, सामाजिक चिंतना और वातावरण से भरपूर कर रहे हैं। उपन्यास में चेतन से अधिक अवचेतन का निरूपण करने वाले गैर समाज चित्रण है। मन मैं एक आलोचक के इस कथन से सहमत नहीं— वास्तव में उपेन्द्रनाथ अश्क व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं जिनकी उपन्यास कृतियों में व्यक्तिगत जीवन घटना, व्यक्तिगत चरित्र, व्यक्तिगत जीवन दर्शन अथवा व्यक्तिगत जीवन समस्या का निरूपण सर्वोपरि होता है।[१] मेरे मतानुसार व्यक्तिवादी उपन्यासकार अवश्य विश्लेषणात्मक शिल्प विधि को अपनाता है, जिसका अश्क में नितान्त अभाव है। उन्होंने सामाजिक यथार्थता को अपनाया है, व्यक्तित्व की गहनता में जाने से इन्कार कर दिया है।

इन्दुमती—१९८०

'इन्दुमती' सेठ गोविन्द दास रचित वर्णनात्मक शिल्प विधि का उपन्यास है। इसे मैं शत प्रतिशत समाजोन्मुखी राजनैतिक उपन्यास मानता हूँ। इसमें लेखक ने ६३४ पृष्ठों में भारतीय कांग्रेस के स्वतन्त्रता आन्दोलन की विस्तृत चर्चा की है। सेठ जी का ध्यान राजनीति के साथ-साथ भारतीय समाज के नारी वर्ग की ओर भी केन्द्रित रहा है। इन्होंने उपन्यास की कथा नायिका इन्दुमती को केन्द्र में रखा है और उसके माध्यम से स्त्री वर्ग की स्वतन्त्रता तथा समस्याओं को बहिर्मुखी रूपाकार (Extrovert Form) देकर उसकी कोमल भावनाओं, आवश्यकताओं तथा सिसकियों को वाणी दी है।

उपन्यासकार ने उपन्यास में वे ही घटनाएं और विचार जुटाए हैं जिनका सीधा संबंध या तो इन्दुमती की जीवनी से है या फिर भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास से है। प्राचीन काल से ही स्त्री-पुरुष संबंध के परिप्रेक्ष्य में स्त्री प्रेम साहित्यकारों का प्रिय विषय रहा है। स्त्री प्रेम के अन्तर्गत स्त्री की भावदशा की अन्तर्दशाओं का सूक्ष्म विश्लेषण सेठजी का दृष्ट प्रतीत नहीं होता। उन्होंने इन्दु की विचारणा को बहिर्मुखी बनाते हुए कहीं स्वयं तो कहीं अन्य पात्रों द्वारा स्त्री समाज की वर्तमान यथार्थ परिस्थितियों का कच्चा चिट्ठा इस उपन्यास में खोलकर रख दिया है। उपन्यास का आरम्भ लेखक की इस टिप्पणी के साथ होता है— 'विश्व में निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है। जो अपने को ही केन्द्र मान सब कुछ अपने लिए करता है संसार की समस्त वस्तुओं को अपने आनन्द के लिए साधन मानता है उसी का जीवन सुखी और सफल होता है।' इस टिप्पणी के साथ ही उपन्यास का अन्त भी होता है।[२] इस विचारणा के साथ ही कथा घूमती है और जीवन की हर विषम परिस्थिति में नायिका इन्दुमती इन शब्दों का स्मरण करती है।[३]

---

१० डा० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ १२३

१ इन्दुमती—पृष्ठ १

२ वही—पृष्ठ ६३४,

३ वही—पृष्ठ ५५ ६२, १०३, १६२, १७५, ३२४, ४५३, ४६६, ५११, ५६५, ५६६, ५७१ ६२६, ६०७, ६२०

'इन्दुमती मात्र स्त्री पुरुष के सयोग वियोग की कहानी नही ह यह भारतीय समाज और राजनीति की समस्याओ पर विचार भड़काने वाली कलाकृति है। इस दृष्टि से वणनात्मक शिल्प विधि का यह उपन्यास उद्देश्यनिष्ठ है। उद्देश्य है भारतीय नारी म व्यक्तित्व का निमाण करना, जिसम कथाकार एक बडी सीमा तक सफल हुआ है। उपन्यास में अधिकतर वे घटनाए सयोजित हुइ है जो पाठकीय आकषण रखती है, वे विचार दिए गए हैं जिनसे कथा की गति म माधुय बढा है। उपन्यास की कतिपय घटनाए तोगी मराडी आभासित हाता है, जसे त्रिलोकीनाथ का इन्दुमती की ओर से निराश हो डाक्टरी पास करके सेवा काय मे लग जाना, ललित मोहन की मृत्यु पर प्लाट का समाप्त प्राय लगना इ दु का वारभद्र की ओर झुकाव पर आकस्मिक रूप से आग लगने की दुघटना पर उसका गिरफ्तार हो जाना, फिर इन्दु का भारत पयटन तथा अमरीका जाकर शान्तिवाला बन हालीवुड पहुचना, वहा मुरलीधर की ओर आकृष्ट होना आदि घटनाए एक ओर आकस्मिक, अस्वाभाविक, काल्पनिक और विश्रृखल लगती है परन्तु दूसरी ओर य कथाकार के सामाजिक आदर्शों की पूर्ति करती हैं। नारी मगल की कामना से अभिभूत लखक अपनी इन घटनाओ और कथा के द्वारा उपन्यास म एक नतिक ससार उज्जलन का प्रयास करता है। इसम किसी को कुछ आकस्मिक और आशा स ऊपर लगे तो उसकी उसे चिन्ता नही। नई पीढी के लिए एक नतिक आदश (Code) देना वह अपना धम समझता है। लगता है उसन श्री एच० लवेट के इन शब्दो को आत्मसात कर लिया है— कतिपय उपन्यासकार प्रत्येक युग म कुछ नतिक दशाओ को अथवा परिवर्तित नतिक मान्यताओ को पाठक पर थोपते ही हैं, इसलिए नही कि व काड रुचिकर हो अथवा नवीनता लिए हो, बल्कि इसलिए कि विशेष रूप से पहिले वे कोड विषयक नइ स्थापनाओ से पाठक को परिचित करा सकें तथा दूसरे पाठक से उनका तादात्म्य स्थापित कर उस इस अवस्था तक पहुचा सक जिसम वह उसका प्रशसक बने या उसे आकषक माने।'

'इन्दुमती का कथानक निमाण सेठ गोविन्द दास के साथ-साथ पात्र इन्दुमती के अधीन हो चला। उसका समूचा जीवन, उसके जीवन की प्रमुख घटनाए उसके काय व्यापार अपन आप म वस्तु विन्यास है। इन्दुमती की चरित्र स्थापना तथा नारी की करुण गाथा विषयक विचारणा में ही कथा सूत्र विकसित, सगठित और समन्वित हुए।

---

4 Besides the expression of Codes interesting for their novelty or unexpectedness, a few novelists in every age more or less deliberately set out to impose fresh Codes or, more particularly, modifications of existing Codes upon their generation not by advocating them but in the first place by familiarizing their readers with them, and secondly by associating such provocative notions with characters whom the reader cannot but admire or find attractive

"The Idea of Fiction P 76

आकार की दृष्टि से कदाचित इन्दुमती रंगभूमि जितना विस्तृत उपन्यास है। इसका रूपाकार बहिर्मुखी शिल्प वर्णनात्मक है। 'इन्दुमती की जीवनी पहले समाजोन्मुखी फिर राजनीतिक फिर व्यक्तिपरक होते हुए अन्त में विश्वजनीन बनी। विधान की दृष्टि से स्थूल वर्णनात्मकता की प्रचुरता है तथा शिल्प की दृष्टि से इन्दु की जीवनी के चार भाग हैं। पहले भाग में वह एक पाडनी के रूप में कानन प्रवेश कर नये परिवेश की अनुभूतियाँ अर्जित करने वाली मुग्धा है। दूसरे भाग में वह ललित मोहन के सम्पर्क में आई रोमांस और प्रेममय जीवन को जीने वाली नायिका है। तीसरे खण्ड में वह वास्तविक तथा क्रियात्मक संघर्ष की प्रथम कला भाग रही युवती के रूप में हमारे सामने आती है। चौथे और अन्तिम सोपान में उसका जीवन संघर्ष कहीं बहिर्मुखी, कहीं अन्तर्मुखी बन समाज नैतिकता तथा राजनीति के आरोह अवरोह में निहित है। कथानक की यह व्यापकता समाजोन्मुखी राजनैतिक उपन्यास की विशेषता मानी जाएगी जो वर्णनात्मक शिल्प में इतिवृत्तात्मक रूप ग्रहण करती है।

इन्दुमती बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की विविधमुखी भारतीय समस्याओं को प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है। इसमें नारी जीवन की सामाजिक समस्याएं भी हैं भारतीय दासता की राजनैतिक समस्याएं भी हैं। इन्दुमती की विवाह नाम की संस्था में कोई आस्था ही नहीं है मगर वही इन्दु त्रिलोक को देख कर उसकी ओर आकृष्ट होती है, ललित मोहन को प्रथम दृष्टि में प्रेम कर बैठती है और उसकी मृत्यु पर वीरभद्र के साथ सहवास के लिए आतुर दिखाई गई है—यह कैसी विडम्बना है और यह सब 'विश्व में निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है'—की आड़ में पल्लवित होता है। उपन्यासकार ने सतीत्व पतिव्रत और मातृत्व पर नये नये प्रश्नचिह्न लगाए हैं। वह इन्दुमती के नैतिक एवं मानसिक पतन पर उसकी चिन्तना में नाना प्रश्न उभारता है। वही इन्दु जो देवी थी सीता-सम पवित्र थी—एकदम वीरभद्र को देख पागल हो उठी और सतीत्व पर व्यंग्यापात कर कह उठी— घृणित से घृणित जन्तु। और ऐसे मजबूर कर मेरी आलोचना एक उच्चात्मा की एक पवित्रात्मा की ऐसी गन्दी आलोचना पर पर मैं उसके पवित्र अब भी रही हूँ क्या? पवित्र? क्या नहीं क्यों नहीं? मैंने मैंने विवाह संस्था पर कभी विश्वास ही नहीं किया। समाज में पहले विवाह था ही नहीं। फिर ऐसा समय भी था जब एक नारी कई नरों और एक नर कई नारियों के साथ रहते थे। कैसी पतिपरायणता! कैसा पतिव्रत? ललितमोहन के बाद मैंने किसी के साथ विवाह इसलिए नहीं किया, मैं किसी के साथ इसलिए नहीं रही कि वैसा शारीरिक सम्पर्क किसी से रखना मुझे पसन्द न था। अब अब अगर वीरभद्र मुझे पसन्द है तो पर पाना जाहे इसमें क्या? पार्वती ने रहते भी वह कन्याओं के पास जाता है। साहित्य में भी जार नायक और परकीया नायिका का कितना वर्णन है[५]

प्रथम प्रेम पर आस्थावान सेंगर इसमें अधिक और लिखता भी क्या? मगर

---

५ इन्दुमती—पृष्ठ ६४

गोविन्ददास लोक मंगल में आस्था रखने वाले साहित्यकार हैं। अपनी इन्दुमती में उन्होंने एक भारतीय नारी के भावों और विचारों की ऊहापोह दिखाई है। सतीत्व में अनास्था दर्शाने वाली यही नायिका पवित्र प्रेम की पुजारिन रही है। इसके ललितमोहन के प्रति शुद्ध आकर्षण और प्रेम की व्याख्या सेठ गोविन्ददास इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं— 'दो सच्चे प्रेम पात्रों के प्रेम सम्भाषण के समान खुले हृदय का वार्तालाप कोई भी दो व्यक्ति किसी भी विषय पर नहीं कर सकते, एक दूसरे में विलीन किए बिना कोई सच्चे प्रेम पात्र हो ही नहीं सकते। इन्दुमती और ललितमोहन के हृदय कपाट सदा इसी समीर का आनन्द उठाने के लिए खुले रहते। फिर वे दोनों अक्षरों, शब्दों और वाक्यों के सिवा एक मूक भाषा में भी प्रायः बातें किया करते थे। ये बातें होती जो वाणी द्वारा तो न कही जाती पर हृदय में उठतीं और वाणी द्वारा न कहे जाने पर भी वे एक दूसरे की समझ में आ जातीं। ऐसे मूक सम्भाषणों में अनेक बार दोनों की आँखें अधखुली रहतीं, ओठ भी अधखुले रहते और अधखुले ओठों पर एक विचित्र प्रकार की मुस्कराहट रहती।... प्रेम मार्ग ऐसा मार्ग है जिसके पथिक अपने पथ पर उसे सदा नया समझते हुए चल सकते हैं। एक ही बात को बिना उसकी नवीनता नष्ट किए बार-बार कह सकते हैं, एक ही कृति को बिना ऊबे निरन्तर कर सकते हैं।

'दोनों अपने प्रेम को अपने सुख को इस दुनिया के वर्तमान युगलों से ही नहीं लेकिन भूत के सारे दम्पतियों से भी श्रेष्ठ मानते और फिर इसी दुनिया के नहीं पर स्वर्ग के त्रिलोकी के तथा चौदह भुवनों के युग्मों से बढ़ कर... केवल इस देश के नहीं, पर सारे संसार प्रेमी युगलों का प्रेम इन्हें अपने प्रेम के आगे तुच्छ दीखता। सावित्री और सत्यवान, उर्वशी और पुरूरवा, सीता और राम, नल और दमयन्ती, राधा और कृष्ण, सुभद्रा और अर्जुन, शकुन्तला और दुष्यन्त, शीरीं और फरहाद, लैला और मजनू, वामिक और अजरा, सोहनी और महीवाल, हीर और राँझा, ससी और पुन्नू, टायलस और क्रेसिडा, डाँटे और बीटिस, हीरो और लियान्डर, रोमियो और जूलियट, फर्डिनेन्ड और मिरान्डा आदि हरेक के प्रणय में इन्हें कोई न कोई दोष दीखता।

'दोनों के संगम का यह प्रेम धारा लहलहाती छलछलाती उछलती और अठखेलियाँ करती हुई बह रही थी।'[५] इस प्रकरण में कथाकार ने प्रेम की व्याख्या एक वर्णनात्मक शिल्पी की भाँति जुटा दी है। इतना ही नहीं अवसर मिलते ही वे प्रेमचन्द की भाँति किसी भी घटना के घटित होने पर अपनी ओर से टिप्पणी करना नहीं भूलते। *ललितमोहन की असाध्य बीमारी पर उन्होंने लिखा—'ललितमोहन की बीमारी अब* उस स्थिति का पहुँच गई थी जहाँ कष्ट की अपेक्षा मानसिक क्लेश अधिक हो जाता है। इस अवस्था में मनुष्य की हालत शायद पशु से भी अधिक खराब हो जाती है। मनुष्य में कल्पना करने की शक्ति होती है पशु में नहीं। चूँकि पशु में कल्पना की शक्ति नहीं होती अतः उसका मानसिक क्लेश कष्ट के परिमाण से बढ़ने नहीं पाता।'[६]

---

५ इन्दुमती—पृष्ठ २३४ २३७

६ वही—पृष्ठ ४४५

इन्दुमती की सबसे अधिक मार्मिक घटना अवधबिहारी तथा ललितमोहन की मृत्यु के घटित होने ही सेठ जी लिखते हैं— मृत्यु निष्क्रियता की सबसे बड़ी प्रतीक है। वह मृतक को तो निष्क्रिय बना ही देती है किन्तु जिस गृह में उसका आगमन होता है वहां भी निष्क्रियता का राज्य हो जाता है। मानसिक घाव भरने का सबसे बड़ा चिकित्सक समय है।[७]

सेठ गोविन्ददास ने विचार प्रदर्शन का कार्य मात्र अपने हाथ में ही नहीं पकड़े रखा। जहां उन्होंने अवधबिहारी की मृत्यु पर स्वयं टिप्पणी की, वहां मृत्यु के संबंध में प्रधान पात्रा इन्दु, त्रिलोकी, ललित आदि से भी कहलवाया। अवधबिहारी की अकाल मृत्यु देख उसकी पुत्री इन्दु कहती है— 'तो क्या यही मृत्यु है। पर पर किया क्या है इस मृत्यु ने? आत्मा आत्मा निकल गई शरीर में से। पर कैसी कैसी आत्मा? कोई चीज़ भी तो न दीखी निकलती हुई। आत्मा? कहां की आत्मा? ढकोसला है, बड़े से बड़ा ढकोसला। जिस तरह मशीन चलते चलते रुक जाती है, उसी तरह शरीर की मशीन भी रुक जाती है। दिल की धड़कन बन्द हो गई है यह शरीर क्या है? असंख्या कोषा कायाणा (सेल्स) का ही तो संग्रह है न? एक एक कोष में असंख्या परमाणु (एटम) होते हैं वैज्ञानिक इतना धन खर्च करके भी इतनी छोटी सी बात (मृत्यु पर विजय) नहीं कर सके।'[८]

ललित मोहन की मृत्यु विषयक विचारणा यह है— एक दिन सबको जाना है, मैं भी जा रहा हूं आज मरते मरते भी मैं यही मानता हूं। जीवन अस्थायी वस्तु है। अमर तो कोई रहता नहीं। हां, इस अस्थायी जीवन की अवधि कभी लम्बी रहती है और कभी छोटी लेकिन जीवन में जो पूर्णता का अनुभव कर पाते हैं उन्हें मैं धन्य मानता हूं। मृत्यु के समय यह भावना शायद बड़ी प्रबल रहती है कि जीवित रहते हुए जो कुछ किया है उसके किस अंश को मृत्यु मार न सकेगी।[९] ललित मोहन से अधिक वैज्ञानिक मीमांसा त्रिलोकीनाथ प्रस्तुत करते हैं— मृत्यु से आप ही डरते हैं ऐसा नहीं है सब डरते हैं। फिर जिस मृत्यु का भय कहते हैं वह यथार्थ में मृत्यु का भय न होकर जीवन का भय होता है। आखिर मृत्यु क्या है? कोई वस्तु सर्वथा नष्ट नहीं होती, उसका रूपांतर होता है यही विज्ञान कहता है। सारी सृष्टि ईश्वरमय है यह वेदान्त कहता है। अन्तर एक ही है कि विज्ञान इस तत्त्व को जड़ कहता है वेदान्त चैतन्य, पर वैज्ञानिक उस तत्त्व को अपने किसी यन्त्र से न देख सके हैं न जांच और न कभी देख सकेंगे, क्योंकि पार्थिव साधनों से जो जो पार्थिव नहीं है वह कैसे देखा और जांचा जा सकता है।[१०]

सेठ गोविन्ददास ने इस रचना में प्रेम विवाह सतीत्व और मृत्यु आदि

---

७ इन्दुमती—पृष्ठ ३३६

८ वही—पृष्ठ ३३२ ३३३

९ वही—पृष्ठ ४४६ ४५१

१० वही—पृष्ठ ४५५ ४५६

प्रश्ना के अतिरिक्त कुछ नतिक, सामाजिक और राजनतिक समस्याए भी उठाइ हैं। नतिक समस्या के अतगत इदुमती के वधव्य और सतान इच्छा की बलवती प्रश्नावली आती है। इदुमती कदाचित हिंदी का पहला उपन्यास है जिसमे कृत्रिम गर्भाधान के प्रश्न का लेकर विचार किया गया है। एक लेख का सक्षिप्तीकरण करते हुए सेठ जी इस सबध मे लिखते है— कृत्रिम गर्भाधान वह क्रिया है जिससे स्त्री वग के प्राणिया म पुरुष वग का वीय (Sperm) बिना शारीरिक सपक के पिचकारी द्वारा प्रविष्ट किया जाता है। कृत्रिम गभाधान का आधुनिक प्रयोग ससार के लिए एकदम नवीन वस्तु है और मानव उत्पत्ति म इसका प्रयाग कुछ लाग के विचार म मानवी उन्नति की पराकाष्ठा है तो कुछ लोगा के विचार म ईश्वरीय प्रकाप का आमन्त्रण ।" कथाकार न कृत्रिम गर्भाधान का एक विचार रूप म मान चचा का विषय बनाकर ही इतिश्री नहा कर दी अपितु इदुमती के मन म म इस सबध म जिज्ञासा और आस्था उत्पन्न कर इसम उत्पन्न समस्याओ का सफल प्रयाग भा किया है। इदुमती विवाह नीपक सस्था म अनास्था रखन तथा स्वय के व्यक्तित्व का सर्वोपरि मानन वाला नायिका कृत्रिम गभाधान धारण कर मयक माहन का जन्म दकर अनक छाटी माटी समस्याओ का आमन्त्रित कर लती है। सबस पहला प्रक्रिया उसक श्वसुर पर हुई जिन्हान इस घटना का सुनत ही उससे सबध ताड लिया। समाज क कटाक्षाघात न मात्र उस अपितु उसकी सतान का जीवन भर सहन पड। पति सम्भाग फलस्वरूप उत्पन्न न हान क कारण न उसका लगाव मयक के प्रति हुआ, न मयक न उस मा रूप म आदर दिया। बजारअली का यह कहना कि विनान एक स्त्री म सतान का प्रतिष्ठित कर सकता है मगर जजबात (मनाभाव) नही, अक्षरश सत्य है। अत उपन्यास इस कृत्रिम प्रयाग क फलस्वरूप उभरी समस्याओ से भरा पडा है। इदुमती क व्यक्ति और समाज म सघष होता है यह बहुमुखा सघष है, उसक अतमन म द्वद्व और वारभद्र के प्रति झुकाव हाता है यह अतमु खा सघष है। सब प्राप्य हान पर भी इदुमता का मानसिक पतन एक प्रश्नचिह्न है। कृत्रिम गभाधान आधुनिकता का चुनौता रूप म चित्रित है और उसका एकाकी जीवन मानवीय सवेदना स भीग गया है। इस दष्टि स कथाकार न इदुमती क उत्तराध जीवन के जा विवरण दिए हैं व आधुनिकता की चुनौती और मानवीय सवदना का अद्भुत मिश्रण लिए है। सेठ जा न इदुमता के मानसिक पतन के माध्यम स उस देवी बनन स बचा लिया, साथ ही स्त्रा म जा काम भावना, यौन आचार की मौलिक आवश्यकता है उसका चित्रण भी आपन कर दिया है। पावती की कथा क प्रसग द्वारा उसन वनिता आश्रम म हो रह व्यभिचार का पर्दाफाश किया है। पावता इदु स कहती है — 'बहन, वनिता आश्रम म कुछ हा दिन म उस जीवन का मैं अपन जीवन की तरह व्यतीत न कर सकी। तुम यह कल्पना भी नही कर सकती कि वनिता आश्रम किस कुचक्र के केन्द्र है। व भाग्य और परिस्थिति की सताया स्त्रिया क लिए शरण क स्थान नही किन्तु लाभी, झूठे, व्यभिचारी समाज के मनाविनाद के अड्डे है।'[12]

११ इदुमती पष्ठ—४६८
१२ वही—पष्ठ ८०६

राजनीति का समावेश 'इन्दुमती' के रचनाकार की सबसे बड़ी उपलब्धि है। सेठजी ने अपने उपन्यास शिल्प में कथा, घटना और चरित्र विकास की अपेक्षा विचार और अनुभूति को अधिक प्रश्रय दिया है। भारतीय कांग्रेस के इस सेनानी ने सन् १९१६ के कांग्रेस अधिवेशन से लेकर सन १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन तक की राजनीतिक घटनाओं का इतिहास ही लिख दिया और वह भी रोचक कथा के माध्यम से।" नायिका इन्दुमती स्वयं कांग्रेस की कर्मठ सदस्या है। वह कौंसिल की मेम्बर चुनी जाती है। उसके पति ललित मोहन तो जेल-जीवन की यातना के कारण बीमार होकर नगेशों की गिनती में शुमार होते हैं। इन्दुमती में मात्र कांग्रेस के स्वतन्त्रता आन्दोलन की भूमिका, संघर्ष और विचारणा का इतिहास ही वर्णित नहीं हुआ अपितु मजदूर संगठन, सोशलिस्ट आन्दोलन का चित्रण भी कर दिया गया है।

इन्दुमती की रचना करके सेठ जी ने किस उद्देश्य की पूर्ति की ? एक शिल्पगत प्रश्न है। वस्तुतः सेठ जी आस्थावादी लेखक हैं। भारतीय संस्कृति में आपकी अगाध श्रद्धा है। इन्दुमती द्वारा आपने भारतीय समाज की शक्ति, विचारणा और समस्या को प्रस्तुत कर दिया है। स्त्री स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष का विवरण, पुरुष स्त्री सम्बन्ध, नैतिक प्रश्न, सामाजिक समस्याएं और राजनीतिक प्रश्नों को लेकर कथाकार ने अखण्ड जीवन को प्रतिष्ठित करने का जो प्रयास किया है उसके कारण इन्दुमती एक महाकाव्य के पद पर आसीन होता है। इतनी बड़ी चित्रपटी (Canvass) पर एक बृहद् जीवन चित्र उतार लेना सहज नहीं। कथाकार ने भारत के सब प्रमुख नगरों लखनऊ, कानपुर, दिल्ली, बम्बई, मद्रास, जयपुर, श्रीनगर, बनारस आदि का स्मरण कर इसे वर्णनात्मक शिल्प से साकार किया है।

ब्रजेन्द्र शर्मा

निर्भीकता को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है।

विचित्र योग इनका पहला उपन्यास है। दो पाटू—१९४० में प्रकाशित वर्णनात्मक शिल्प विधि द्वारा चरित्रात्मक तथा हास्यात्मक शैली पर एक प्रश्नचिह्न लगाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति हित किए गए आन्दोलन का आधार लिए इसमें देश परखा जा सकता है। 'इन्सान' इनका बहुचर्चित उपन्यास है इसमें हिन्दू मुसलमान एकता कैसे स्थापित हो इस प्रश्न पर विचार किया गया है। इसके पश्चात् सिमान पथ, गार, चौथा रास्ता 'भुनिया की शादी', मधु, परिवार, महल' और मकान का प्रकाशन हुआ। ये सभी वर्णनात्मक शिल्प की रचनाएँ हैं। आपने उपन्यास साहित्य में शिल्प के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए मुझे बताया— 'शिल्प उपन्यास साहित्य का एक विशेष अंग है क्योंकि साहित्य सृजन शिल्प से ही तो एक अंग है। यदि साहित्य में से शिल्प को निकाल दिया जाए तो साहित्य का अस्तित्व ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाए फिर तो दूसरी सम्पूर्ण विधाओं का स्पष्टीकरण करना भी सम्भव न होगा। विधाओं का मूलाधार शिल्प ही तो है। मानवीय विश्लेषण के अन्तर्गत विचारकों ने इसे दो भागों में विभक्त किया है। एक अन्तर्जगत का विश्लेषण दूसरा बहिर्जगत का विश्लेषण। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो अन्तर्जगत का विश्लेषण बहिर्जगत के विश्लेषण की छाया मात्र है। मानव के चेतन मन और अवचेतन मन में जो विचार और भावनाएँ उद्वेलित होती हैं उनका निर्माण बहिर्जगत की यथार्थवादी परिस्थितियों के बिना सम्भव नहीं। किसी समय का यथार्थ ही कालान्तर में अचेतन और अवचेतन विचारों और भावनाओं का अंग बनता है। जिन विचारों और भावनाओं को भूतकाल में मानव अपने मस्तिष्क में स्थान देकर वर्तमान में उनका चिन्तन करता है वे सब वर्तमान यथार्थ में उपलब्ध रहते हैं इसलिए मानसिक विश्लेषण की जो प्रक्रियाएँ कुछ लेखक अपने चित्त में रखकर केवल कल्पना की खान प्रवाहित करने की बात सोचते हैं वे यथार्थ को धोखा देते हैं, अनिश्चित और कुछ नहीं है। यथार्थ ही वास्तव में मानवीय प्रेरणा का वह मूल आधार है जिसके अन्दर भूत, वर्तमान और भविष्य के सभी विचार और उनकी कल्पनाएँ निहित रहती हैं।'[1]

अन्तर्जगत के विश्लेषण को बहिर्जगत के विश्लेषण की मर्यादा देने वाले श्री शर्मा अपने उपन्यास साहित्य में अपने को बहिर्जगत की नाना लीलाओं तक सम्बद्ध रखते हैं। अपने 'भुनिया की शादी', 'रंगशाला' और 'दफ्तर' शीर्षक अन्यतम उपन्यासों में आप वर्गगत पात्रों को चुन कर उनके द्वारा ही कथा सूत्र देने को उत्सुक दीख पड़ते हैं। हिन्दी में चरित्र प्रधान उपन्यास लिखने का श्रेय यदि किसी कथाकार को दिया जा सकता है तो वह सर्वप्रथम श्री यज्ञदत्त शर्मा को दिया जाएगा। इनके चरित्र प्रधान उपन्यास वर्णनात्मक शिल्प विधि में रचे गए हैं।

भुनिया की शादी—१९५२

'भुनिया की शादी' प्रेमचन्द परम्परा का वर्णनात्मक शिल्प विधि का लघु उपन्यास है। यह दातादीन नामक एक निम्नवर्गीय किसान के जीवन की करुण गाथा है

१ लेखक की यज्ञदत्त शर्मा से एक भेंट-वार्ता—दिनांक २८ ५ ६८

और स्पष्ट है। स्वामी ज्ञानानन्द रूढ़िवादी साधु समाज के प्रतीक हैं, जिन्हें नारी स्वतन्त्रता, हिन्दू कोडबिल आदि नवीनताओं से चिढ़ है। ठाकुर राजबहादुर हर क्षण गिरगिट की भांति रंग बदलने वाले राजनीतिज्ञों के प्रतिनिधि हैं जिनका कार्य सुरा और सुन्दरी का सेवन करना है। ब्रह्मचारी आनन्दप्रकाश इन्हें कलयुगी वेश के नाम से स्मरण करते हैं। सेठ गूदड़मलजी की दृष्टि में हर मर्ज की दवा रुपया है। वे कभी स्वामी ज्ञानानन्द जी को एक-दो लाख देकर संतुष्ट कर देते हैं कभी धूर्त मक्खनप्रसाद को रुपया फेंक खरीदना चाहते हैं। एक वकील साहब हैं जो पचास वर्ष की आयु में विवाह कर प्रेमचन्द के वकील तोताराम का स्मरण कराते हैं, पर एक अन्तर के साथ तोताराम जितने सरल हैं ये उतने ही घाघ। उपन्यास के सबसे रोचक पात्र हैं मन्त्री मक्खनप्रसाद जो कूटनीतिज्ञता में अपने को चाणक्य का ही प्रगतिवादी अवतार मानते हैं और वकील साहब को सदैव मात देने की योजना बनाते रहते हैं। इनकी मन्त्रणा पर टिप्पणी देते हुए उपन्यासकार ने लिखा है—'इस समय दोनों के मस्तिष्क की दशाएं पृथक्-पृथक् थीं। वकील साहब सोच रहे थे कि उन्होंने एक ग्राहक फंसा लिया और मन्त्री जी समझ रहे थे कि उन्होंने सौ रुपया में वकील साहब का घर द्वार सब खरीद लिया। वकील साहब को अपनी सूझ बूझ और दुनियादारी के ज्ञान पर इस समय गर्व था और स्वामी ज्ञानानन्द की संकुचित बुद्धि और मन्त्री जी की गुणग्राहिता पर उनके मन में आनन्द की लहर उठ रही थी।

उपन्यासकार ने समस्त घटनाओं का संबंध समाज सुधार के पुनीत लक्ष्य को सामने रखकर किया है। इसके लिए उन्होंने वर्णनात्मक शिल्प का आश्रय लेकर पात्रों और घटनाओं में संघात प्रस्तुत करते हुए पात्रों के चारित्रिक पतन उत्थान और विकास क्रम को निर्धारित किया है। स्वामी ज्ञानानन्द एक ओर विरक्त से पर निर्लिप्त दिखाए गए हैं दूसरी ओर उन्हें मान प्रतिष्ठा की भूख है। जेल से लौटने पर भव्य स्वागत पाकर वे गद्गद हो गए और ब्रह्मचारी आनन्दप्रकाश के सरोज के पास चले जाने तथा सेठ मक्खनप्रसाद द्वारा बेला के अपहरण पर दुखी हुए। मन्त्री के इस आचरण की भर्त्सना प्राय सभी पात्रों ने की। पर ठाकुर राजबहादुर जैसे पात्र भी हैं जो इस घटना में रस लेते हैं और रस को बांट कर अपना भाग चाहते हैं। ठाकुर मन्त्री होड़ जो मुख्य रूप से बेला को लेकर चलती है उपन्यास आकर्षण का मुख्य केन्द्र है। परन्तु इस परिप्रेक्ष्य में समस्त कथा पढ़कर यही स्पष्ट होता है कि उपन्यासकार को कथा कहना इतना इष्ट नहीं जितना चरित्र वैचित्र्य का उद्घाटन करना। उसकी कला का मूल उद्देश्य चरित्र चित्रण है जो वर्णनात्मक शिल्प विधि द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। मन्त्री मक्खनप्रसाद के विषय में विभिन्न पात्र ये मत रखते हैं—

'उसने मेरे जीवन की शान्ति भंग कर दी। यह मक्खनप्रसाद का बच्चा बहुत बड़ा धूर्त निकला। (स्वामी ज्ञानानन्द)

मन्त्री जी का चरित्र बहुत ठोस है और प्रगतिशील भी। स्वार्थ मन्त्री जी की नस नस में भरा हुआ है। उनका कोई भी कार्य जीवन में ऐसा नहीं होता, जिसमें

---

१ रंगशाला—पृष्ठ १२८

स्वाथ न हो। या स्वाथ मानव मात्र का स्वभाव है परन्तु जब यह मनुष्य को मन्था बना देता है तब मनुष्य मनुष्य नही रहता।" (ब्रह्मचारी आनन्द प्रकाश)

"मत्री जी ! आदमी चाहे धूत ही सही परन्तु बुद्धि के दैत्य हैं।" (सरोज)

"बस भर पाए मत्री सकटाप्रसाद से। एसा जहरीला सप निकला ब्रह्मचारी जी कि बस क्या कहू ? मुझे तो उसने एसा डक मारा है कि जीवन भर याद रखूगा।"[२] (ठाकुर राजबहादुर)

पर चूकि श्री यज्ञदत्त शर्मा समाज सुधार म विश्वास रखते हैं अतएव उन्होने उपन्यास के अन्त मे इस पात्र का कायाकल्प प्रस्तुत कर दिया है। लगभग सभी पात्र मत्री के वाक चातुय, व्यवहार कुशलता के कायल हैं। जब नाटक होता है और सेठ गूदडमल तथा आचाय विशनचन्द अपने काले कारनामो का चिठठा खुलते देख बौखला कर नाटक का अभिनय बन्द करा देते हैं, तब मत्री राजघाट पर अभिनय करा कर सब की सहानुभूति का अदृश्य प्रभाव ग्रहण कर लेता है।

रगशाला म श्री शर्मा ने राजनीति के नाम अपना अपना घर भर विलासिता की रगशाला म प्रवेश करने वाले अधुनातम राजनीतिज्ञो तथा उनके तलवे सहला कर राता रात ख्याति प्राप्त कर लेने वाले नेताओ का भण्डाफोड करने तथा उनकी कथनी करनी के अन्तर को स्पष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया है। ऐसा करने म यत्र-तत्र उनकी लखनी तथा शिल्प की सीमाओ का उल्लघन भी कर गई है जसे सरोज ज्ञानानन्द विवाद का आरम्भिक रूप पाठक के मन म जो जिज्ञासा उत्पन्न करता है वह बिना किसी तक के या घटना के शान्त हो जाता है। उपन्यासकार का ध्यान धम और सुधार के नाम पर स्वामी ज्ञानानन्द की चरित्र मीमासा करना भी रहा है। हिन्दू कोड विरोध सबधी विचारणा का प्रचार सन ५० ५४ के बीच जिस तीव्र गति के साथ हुआ था, उपन्यास मे वह पूण रूप से नही उभर पाया। इसम तो लेखक कही स्वय, कही दूसरे पात्रो द्वारा विभिन्न पात्रो के शील, स्वभाव, व्यवहार और विचारो की आलोचना करते हुए चरित्र के विकास और चारित्रिक समस्याओ के महत्व पर खुल कर प्रकाश डालना गया है।

रगशाला म लेखक ने एक उल्लेखनीय और यथायपरक पात्र की सष्टि सकटा प्रसाद के रूप म की है जो जीवन की हर भटकन से कुछ पाता है हर सम्पक म आने वाले व्यक्ति और समाज को उल्लू बनाने की कला म सिद्धि प्राप्त करता है और यह वह एक अदम्य आत्मविश्वास के साथ करता है। उसने जीवन जिया है। शान के साथ गव के साथ दिल्ली के प्रतिष्ठित समाज म उसने जो स्थान बनाया, वह अपना शिक्षक स्वय हैं बनकर बनाया। वस्तुस्थिति यही है कि आज की विषम सामाजिक परिस्थितियो म ऐसे अवसरवादी, स्वार्थी व्यक्ति ही पनप रहे हैं। इस दष्टि से यह तथ्यपरक यथार्थोन्मुखी मध्यवर्गीय बौद्धिक वग के उस वग का प्रतिनिधि है जो जीवन की विषम राह म अपना माग स्वय बनाना जानता है। सकटा प्रसाद मानव भी है दानव भी। सरोज और कला की पुत्री को सजा देने वाला यह दुष्ट उसके लिए मन के एक कोने म कोमल स्थान भी

---

२ रगशाला—पृष्ठ २०५, २१५ २५२, २१३

रखता है, परन्तु अति बौद्धिकता और उन्नति के शिखर पर चढ़ने की लालसा के कारण प्रेम प्रस्ताव रखने का सुयोग कम ही पाता है। श्री शर्मा के उपन्यासों में इह लौकिक प्रेम प्रस्तावों की वह भूमि नहीं है जिस पर अन्य उपन्यासकारों के नायक नायिका नट बन नाचते हैं। अपने उपन्यास साहित्य में उन्होंने आदर्शवाद के आग्रह को नहीं त्यागा है।

दबदबा—१९५८

'दबदबा' एक चरित्र प्रधान उपन्यास है। वर्णनात्मक शिल्प विधि का अधिकांश उपन्यास साहित्य कथा प्रधान या वातावरण एवं विचार प्रधान रूप में प्रस्तुत हुआ है। 'दबदबा' इस दृष्टि से एक अपवाद है यह दीवान रामदयाल के दबदबे की वर्णनात्मक गाथा है। उपन्यास का प्रत्येक पृष्ठ रामदयाल के चरित्र पर प्रकाश डाल रहा है। उपन्यास का प्रारम्भ वर्णनात्मक विधि द्वारा हुआ है और प्रथम पृष्ठ पर ही रामदयाल का चरित्र अंकित कर दिया है। उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं। मरठ-पुलिस लाइन का ठाठ हिन्दुस्तान के सब ज़िलों की पुलिस लाइनों से निराला है। यहाँ के अफसर भी शौकीन हैं और सिपाही भी। अफसरों और सिपाहियों में आपसी मेल मुहब्बत भी कमाल की है। क्या मजाल जो यहाँ का कोई अफसर अपने किसी मातहत सिपाही को आँच आ जाने दे या कोई सिपाही अपने अफसर का हुकुम अदूली करे

सिपाही या एक से एक जीदार और रंगीला है लेकिन रामदयाल जरा अफसरों के ज्यादा सिर चढ़ा है ज्यादा मुँह लगा है। आजकल किसी खास कारगुजारी के लिए उसे लाइन सुपर्द कर दिया गया है लेकिन एस० पी० से लेकर अपने ऊपर के दीवान तक उसे याराना नजर से देखते हैं।[1]

रामदयाल का चरित्र ही उपन्यास का प्राणतत्व है। सारी कथा उसके चारों ओर चक्कर काटती रहती है। यह उपन्यास दो भागों में लिखा गया है। दोनों भागों के शिल्प में अन्तर है। उपन्यास के प्रथम भाग में कथाकार ही कथा सूत्र पकड़ कर पात्र संचालन करता है। दूसरे भाग में उसने पात्रों के व्यक्तित्व को स्वतन्त्रतापूर्वक उनके द्वारा उभरने की पूर्ण छूट दे दी है। प्रथम भाग में उपन्यासकार द्वारा रामदयाल के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है इस मत की पुष्टि में कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

'जब वह पुलिस-चौकी पर तैनात था और शहर के खास चौरास्ते पर उसकी ड्यूटी रहती थी तो वह एक रईस आदमी था बीड़ी नहीं वह सिग्रेट पीता था एक पैसे का नहीं दो पैसे का पान खाता था हर ताँगे वाला उसे सलाम करके निकलता हर शख्स उसके नाम से थर्राता था उससे याराना रखने के फिराक में रहता था। रामदयाल अपने को मरठ का बादशाह समझता है। उसकी नालुग़ा में यही बसता, उसकी शान के खिलाफ है।[2]

'रामदयाल ने आज तक किसी का नखरा बरदाश्त करना नहीं सीखा।[3]

१ दबदबा'—पृष्ठ १
२ वही—पृष्ठ ७
३ वही—पृष्ठ १०

"रामदयाल भी अपने पास आने वालों की इच्छा को खूब समझना है। किसी का जरा सा काम कर देने से पहले उसके बदले म अपने दस काम निकाल लेने की कला म वह माहिर होता जा रहा है।'[४]

'रामदयाल की खूबी यही है कि उसके झगडे उससे आगे बढन नहीं पाते। फिर मिल बाटकर खाने का वह शुरू से हामी रहा है। खुदगर्जी को इस मामले मे वह जरा भी पास तक फटकने नहीं देता। पसे को हाथ का मैल समझता है।''

वणन की कला म यनदत्त अतुलनीय हैं। रामदयाल के दीवान बनते ही वे केवल रामदयाल के बढ गए रुतबे और शक्ति का सकेत मात्र नहीं देते, अपितु दीवानगी की से शक्ति का सक्षिप्त वणन कर देते हैं—

'दीवान एक अफसर का ओहदा है, जिस पर बैठने का हुक्म पाकर रामदयाल का दिल न जाने आसमान म कहा से कहा पहुच गया।

'दीवान रोजनामचे का मालिक होता है। उसके हाथो म खुदा की कलम होती है। उसके लिखे को खुदा के फरिश्ते ही बदल सकते हैं। दुनिया की अदालतो के लिए वह खुदा का फरमान माना जाता है।'[५]

इस प्रसग मे प्रेमचन्द अवश्य ही एक छोटा मोटा भाषण दे डालते, किन्तु यनदत्त के हाथो म पडकर यह प्रसग अपने सक्षिप्त वणन और टिप्पणी के कारण अधिक खिल उठा है इसे पढ़कर ऊब उत्पन्न नही होती, उपन्यासकार इतना भर लिखकर पुन मुख्य पात्र की जीवनी लिखने मे जुट गया है, इस दष्टि से शर्मा की औपन्यासिक कला प्रेमचन्द कही आगे बढ गई है।

'दबदबा' मे लेखक ने रामदयाल के चरित्र के साथ साथ उसके व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला। उसमे चरित्रगत दुबलताए विद्यमान हैं किन्तु व्यक्तित्व उसका निखरा हुआ है। उसके दबदबे के कारण मेरठ मे उसके बिना हिलाए पत्ता भी नही हिलता। उसके एक सकेत पर सेठ दामोदर प्रसाद सरीखे सम्पन्न व्यक्ति कद कर लिए जाते हैं और बिना रिश्वत लिए बन्धन म पडे गरीब मुक्त कर दिए जाते हैं। दारोगा करीम बेग का तबादला उसके कारण होता है। एस० पी० और कलक्टर के घर म उसकी पहुच और धाक है। एस० पी० हामिदअली रामदयाल सघष म पराजय हामिदअली की ही होती है। एक बार वह रामदयाल से समझौता भी कर लेता है, किन्तु कलक्टर स उसको झूठी शिकायत कर समझौता तोडने का दण्ड भी पाता है। वह बदनाम कर दिया जाता है और उसका तबादला हो जाता है।

उपन्यासकार के अतिरिक्त दूसरे पात्र भी रामदयाल के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। एक स्थल पर रामप्यारी से वार्ता करता हुआ करीमखा कहता है—'रामदयाल और तरे यहा आएगा। तेरा दिमाग तो खराब नहीं हो गया है। तेरे हुस्न का जादू राम

---

४ दबदबा—पष्ठ ११

५ वही—पृष्ठ १३

६ वही—पृष्ठ ४४

ख्याल पर नहीं चल सकता। वह जितना रहमदिल इंसान है उतना ही संगदिल भी है। तूने उसे गलत समझा है। किसी भी आदमी को वह एक बार ही परख कर देखता है दो बार नहीं।" अनेक स्थानों पर रामदयाल अपने विषय में स्वयं अपने चरित्र का उद्घाटन करता है। दामोदर से वार्ता करता हुआ वह कहता है—'अपनी बेइज्जती के सामने मैं पागल हो जाता हूँ दामोदर प्रसाद। फिर सोचने समझने के लिए कोई बात नहीं रहती मेरे पास। मैं दो टूक बात करने वाला आदमी हूँ।'[८] "अपने से जिद बाँधने वाले को मिट्टी में मिलाने का इरादा लेकर मैं जिन्दगी में आज तक चला हूँ।'[९]

रामदयाल के इस वक्तव्य की पुष्टि दूसरे पात्रों द्वारा हुई है—'वह जानते थे कि दीवान रामदयाल किसी बात का एक बार इरादा करने के पश्चात उसे बदलना नहीं चाहते। अपने इरादे से एक इंच भी इधर उधर होता उसने उन्हें कभी जिन्दगी में नहीं देखा।'[१०] ये करीम खाँ के विचार हैं। रामदयाल के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उपन्यास के अन्त में लेखक लिखता है—'शेरदिल इंसान था वह। असली मर्द था और अपने वायदे को पूरा करने में अपने को मिटा देने वाला था। ईमान की कद्र करने वाला ही उसकी कद्र कर सकता है।'[११]

चरित्र चित्रण के व्यापक वर्णन के अतिरिक्त उपन्यास में सामयिक अवस्था का विवरण भी प्रस्तुत हुआ है। पुलिस जीवन में व्याप्त अवगुणों से तो यह उपन्यास भरा पड़ा है। पुलिस कर्मचारियों का प्रतिदिन शराब पीना, रिश्वत के नये-नये ढंग ढूंढना, कन्याओं द्वारा प्रतिदिन जश्न मनाना अंग्रेजी शासन से चली आ रही न्यायियां हैं जिनका विस्तृत वर्णन किया गया है। सन् ४२ की जनक्रान्ति का व्यापक चित्र भी पाठक देख ही लेता है और सन ४७ के नवोदित संस्कारों से भी भली भाँति परिचित हो जाता है। रामप्यारी का रामेश्वरी बनना नव जागरण का प्रतीक है।

दरम्या के प्रथम भाग के कथानक चरित्र चित्रण और वातावरण में पर्याप्त प्रवाह है। इसका कारण उपन्यासकार का कथा एवं पात्रों पर पूर्ण अधिकार है। दूसरे भाग में उपन्यासकार ने एक नवीन शिल्प प्रयोग किया है। उसने प्रथम भाग के सब पात्रों का साक्षात्कार किया है, उनसे बातें की हैं और उन्हें अपने विषय में स्वयं ही सब कुछ कहने की छूट दी है। एक आलोचक ने इसे शिल्पगत दोष कहा है। वे लिखते हैं—'उपन्यास में जो नया है वह है इसका कथा शिल्प। कथा शिल्प का अभिप्राय कथा से नहीं है। कथा तो उपन्यास की अत्यन्त सुगठित और नमिर है पर कथा की योजना उपन्यासकार का स्वयं उपन्यास का पात्र बन बैठने की इच्छा के कारण अत्यन्त विशृंखल हो उठी है।'[१२] प्रस्तुत प्रबन्धकार के मतानुसार रामप्यारे के लीडर होने पर मूल कथा ही

७ दरम्या—पृष्ठ १३
८ वही—पृष्ठ २७
९ वही—पृष्ठ २७७
१० वही—पृष्ठ ३६७
११ वही—पृष्ठ ३९६
१२ डॉ० त्रिभुवनसिंह हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—पृष्ठ ४२

समाप्त हो गई है, केवल अन्य पात्रा का विवरण देने के लिए कथा आगे बढाई गई है जिसम प्रवाह की गति अति मन्द पड जाती है। पात्र प्रत्यक परिच्छेद म सामने आ आकर अपनी अपनी उक्तिया कहन है उनके पास विचार तो हैं, कथा नहीं है। जीवन अनुभूतिया के विवरण तो है, जीवन रस की पूजी नही उसका स्रोत तो रामदयाल के वद्ध होते ही शुष्क हो जाता है। कहीं उपन्यासकार रामदयाल के साथ साथ अलीगढ पहुचकर कासिम मिर्जा की कथनी सुनता है कही रेल के डिब्बे म नेता पडित रामखिलावन स भेंट कर दावता के वणन सुनता है। उपन्यामकार का अत्यधिक पात्रो के बीच रहना पाठक क मन मे ऊब उत्पन्न कर देता है। पर सब मिलाकर एक प्रभाव, चरित्रगत प्रभाव की जो अमिट रेखा यज्ञदत्त शर्मा अपन उपन्यासा म खीच गये है, वह बहिरन्तरमुखी उपन्यास की एक उपलब्धि मानी जाएगी।

चौथा अध्याय

विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि के उपन्यास

श्री इलाचन्द्र जोशी रचित 'लज्जा' से लेकर श्री मती उषा देवी रचित 'नष्ट नीड' तक हिन्दी उपन्यास में जो विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं, उनका विवेचन इस अध्याय में किया जाएगा। आधुनिक हिन्दी के विश्लेषणात्मक उपन्यास का विवेचन करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इस शिल्प की मूलाधार प्रवृत्ति मनोविज्ञान का अध्ययन प्रस्तुत किया जाए और वर्णनात्मक शिल्प विधि से इसका अन्तर स्पष्ट किया जाए। वर्णनात्मक शिल्प विधि की रचनाओं में कथा निबन्धन (Plot Treatment) तथा चरित्र अंकन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसके साथ-साथ समाज चित्रण युग चेतना और राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक नैतिक समस्याओं का साकार अभिव्यक्ति मिलती है। पात्र प्राचुर्य तथा वैविध्य भी वहाँ हुआ उपलब्ध होता है, जबकि विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की रचनाओं में कथा तत्त्व का महत्त्व तो घट ही गया पात्रों की संख्या भी कम हो गई और उनकी अन्तस विषयक आनुभाविक व्यंजनाओं को कुशलतापूर्वक विश्लेषित किया गया। समाज का व्यापक वर्णन इन उपन्यासों में कम हुआ है इसका स्थान व्यक्तिवादी जीवन दर्शन ने ग्रहण किया है। वैयक्तिक पात्रों की वैयक्तिक समस्याओं का सूक्ष्म चित्रण ही विश्लेषणात्मक शिल्पी का अभिष्ट है।

उपन्यास शिल्प के इस अन्तर के संबंध में एक आलोचक लिखते हैं—'विभिन्न कारणों से आधुनिक उपन्यास ने वस्तु-तत्त्व के महत्त्व को गौण कर दिया है। एक ओर यह प्राकृतिकता की ओर अग्रसर होता है और कथानक के विस्तार को अनुभव के प्रतिकूल समझता है तो दूसरी ओर चरित्र अथवा स्वभाव पर बल देकर और व्यक्तित्व तथा वैयक्तिक विशेषताओं पर विश्वास रख कर उसने वस्तु रचना के कष्टदायी व्यापार को दूर कर दिया है।' नया उपन्यासकार हमें कथा नहीं बताता वह तो चरित्रों की मानसिकता में प्रवेश कराकर उसकी गतिविधि दिखाता है। उपन्यासकार नहीं पात्र हमारे सन्देह का

1 The modern novel for Various reasons minimizes the imp ontance of th plot On one hand it follows the naturalistic lead and considers the elaborations of plot false experience on the other hand with its emphasis upon character or whimsey, and its emphasis upon charm and mannerism it aviods the painful business of plot construction Carl H Grabo The technique of Novel ' p 29 30

निवारण करते हैं। कथाकार नहीं, जीवन स्थिति एव घटक ही स्वत चालने लगत हैं।

वणनात्मक शिल्प विधि के प्राय सभी उपन्यासकारा का ध्यान समाज के बहिमुख रूप पर केन्द्रित रहा है। इस दृष्टि से वह समाज और व्यक्ति के बहिर्जीवन और बहिर्लीलाओं को देखने, परखने और उनकी व्याख्या करन म ही अपनी सारी शक्ति लगा देता है। समाज सुधार की प्रगति उसकी दृष्टि का केन्द्रबिन्दु होती है। विश्लेषणात्मक शिल्प विधि क कथाकार की दृष्टि समाज की अपेक्षा व्यक्ति पर केन्द्रित होनी है फलस्वरूप वह उसके अन्तर्जीवन की गतिविधि के विश्लेषण म जुट जना है। उसम विशुद्ध आत्मनिष्ठता (Pure Subjectivity) प्रवेश कर लती है। आत्मनिष्ठ पात्र अन्तप्रयाण (Inward journey) की दिशा म अग्रसर होकर व्यक्ति के अन्तमन की पूरी गवेषणा कर डालते हैं। उपन्यास शिल्प म वतमान इस अन्तर क विषय म एक दूसरे आलोचक लिखते है— जेम्स ज्वाइस और वर्जिया वुल्फ जसे उपन्यासकारो म एक विशेष क्षण की हलचल का विशेष महत्त्व दिया गया है। इस हलचल की पुनर्विजय, या चेतना प्रवाह की गति का दृढ सूत्र अपने स्रष्टा के साथ रहना इन प्रभाववादी परम्परा के उपन्यासकारा की विशेषता है। नई यथार्थवादी—अन्तप्रयाण शिल्प विधि का यह उच्चतम सोपान चिह्न है।"[2] विश्लेषणात्म शिल्प विधि का लेखक अपन अन्तप्रयाण की इस यात्रा म वयक्तिक जीवन के क्षण-क्षण के भावोत्थान पतन तथा विचारणा का आलेखन मात्र करता है अत विद्वान आलोचक का अन्तप्रयाण शिल्प विधि से तात्पय अवश्य ही विश्लेपणात्मक शिल्प विधि का पर्यायवाचक माना जा सकता है।

मनोविज्ञान मन की क्रियाओ का विज्ञान माना गया है। मन की क्रियाए अपरिमित है अत मनोविज्ञान द्वारा उपन्यास की विषयवस्तु जुटाने की कोई कमी नही है। प्रेम, घृणा क्रोध ईर्ष्या, स्वाथ आदि मनोभावा के घात प्रतिघात के आधार पर स्थल वणन द्वारा किसी भी उपन्यास को मनोवैज्ञानिक पुट दिया जा सकता है यह मत आधुनिक मनोवज्ञानिका द्वारा स्वीकृत नहा रहा है। अब मनोविज्ञान न अन्य विज्ञाना की भाति उन्नति कर ली है अत मन की अवस्थाओ की बात नये कोण स कही जा रही है। इसे चेतन अचेतन और अधचेतन तीन भागो म विभाजित किया जा चुका है। आधुनिक मनोवज्ञानिको क विभिन्न सम्प्रदाय बन चुक हैं। स्वप्न दिवा स्वप्न और सस्मरणा का अधिक महत्त्व दिया जान लगा है। अत वज्ञानिक अध्ययन से पुष्ट मनोविज्ञान ही विश्लेपणात्मक विधि के उपन्यासा का आधार स्तम्भ बना है, साधारण मनोविज्ञान ता प्रमचन्द, प्रसाद आदि कथाकारा के वणनात्मक उपन्यासा मे भी उपलब्ध हा जाता है।

---

2 Sensation at a particular moment becomes most important thing for novelists like James Joyace aud Virginia woolf The victory of this Sensation or stream of consciousness remains with the author of this impressionistic school of novelists This may be called the hall mark of the new realistic technique—turning inward

Sinsir Chattopadhiaya The Technique of the modern English Novel P 79

फ्रायड, युग आदि मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिष्ठित अवचेतन की क्रियाओं का चित्रण वस्तु विष उपन्यासकारों ने किया है।

मनोवैज्ञानिकों ने मन के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की तीन विधियाँ मानी हैं—

१ अन्त प्रेक्षण विधि (Introspection)
२ बाह्य निरीक्षण विधि (Observation)
३ प्रयोग विधि (Experimental method)

विश्लेषणात्मक उपन्यास में अन्त प्रेक्षण विधि को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। इसमें पात्र अपना विश्लेषण स्वयं करता है। यह विधि अधिक वैज्ञानिक भी है क्योंकि मन में जो बात किसी विशेष समय में होती है उसका तथ्यपरक ज्ञान अपने से अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को नहीं हो सकता दूसरे के मन की अवस्था का तो केवल अनुमान किया जा सकता है।

अन्त प्रेक्षण विधि का विकसित रूप फ्रायड द्वारा प्रतिष्ठित मनोविश्लेषणात्मक विधि में प्रकट हुआ। फ्रायड ने मनोविश्लेषणात्मक विधि को समझने के लिए चार शब्दों का प्रयोग किया है—

१ अचेतन मस्तिष्क (Unconcious mind)
२ लिबिडो (Libido)
३ दमन (Repression)
४ इडिप्स-ग्रन्थि

फ्रायड ने मन की तीन स्थितियाँ मानी है। चेतन, अचेतन और अर्धचेतन। अचेतन की कल्पना फ्रायड की बडी भारी देन है। फ्रायड के मतानुसार अचेतन मन की शक्ति असीम और विस्फोटात्मक है। मानव मस्तिष्क का तीन चौथाई भाग इसी अचेतन की परिधि मे बद्ध रहता है। यही उसके चेतन स्वरूप को परिचालित करती है।

चेतन और अवचेतन के मध्य में अर्धचेतन मन माना गया है। यह अवचेतन की भाँति बिल्कुल अज्ञात नहीं होता। अर्धचेतन के मार्ग से ही अवचेतन की संचित अनुभूतियाँ चेतन मन तक आती हैं। फ्रायड ने चेतन और अवचेतन के मध्य एक प्रहरी (Censor) की कल्पना कर डाली है यह प्रहरी अवांछनीय विचारों का मार्ग बन्द रखता है। दमन (Repression) की क्रिया के साथ-साथ निरोध (Supression) की क्रिया भी महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान रूप से की गई रुकावट को उसने निरोध (Superssion) का नाम दिया है।

दमित काम वासना फ्रायडियन मनोविज्ञान में विशिष्ट स्थान रखती है। इस ही उसने लिबिडो नाम से पुकारा है। यह बड़ी शक्तिशाली है और बाहरी जीवन में अपनी अभिव्यक्ति चाहती है। इसी के द्वारा स्वरति (Self Libido) तथा परात्मक रति (Objective Libido) पैदा होती है। इडिप्स ग्रन्थि की कल्पना फ्रायड की मौलिक देन है। इसके अनुसार मनुष्य में कामग्रन्थि का जन्म शिशु अवस्था से ही हो जाता है। यही ग्रन्थि चेतन मन का विघटन करती है।

फ्रायड ने अहं भाव के भी दो रूप बताए हैं—अहं (Ego) और सुपर अहं (Super Ego)। इनमें से अहं (Ego) को व्यक्तित्व का चेतन अंश बतलाया है और सुपर अहं (Super Ego) को अन्धा और प्राणघातक कहा है। इसके कारण व्यक्ति के चेतन व्यवहार में विकृति उत्पन्न हो जाती है। मानव मन की विचित्रताओं के लिए कुछ पारिभाषिक शब्द लिए गए हैं। इनमे आरोपण (Projection), तादात्म्यीकरण, (Identification), स्थानान्तरीकरण (Transference) और बद्धत्व (Fixation) व उदात्तीकरण (Sub-limition) अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। आरोपण की प्रक्रिया तो मानव मात्र में विद्यमान है। मनुष्य अपने दोषों को छिपाता और दूसरों के गले मढ़ता आया है, यही मनोवृत्ति आरोपण कहलाती है। तादात्म्यीकरण की प्रक्रिया में मानव दूसरों के दोष अपने ऊपर ले लिया करता है। स्थानांतरीकरण में मनुष्य एक व्यक्ति से संबंधित ईर्ष्या घृणा या प्रेम को दूसरे पर लाद दिया करता है। बद्धत्व की अवस्था में व्यक्ति एक स्थिति विशेष से चिपक कर रह जाना चाहता है। दमित वासनाओं से छुटकारा पाने के लिए जो क्रिया प्रयुक्त होती है, वह तादात्म्यीकरण कहलाती है।

आधुनिक विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यास साहित्य में स्वप्नों तथा दिवा स्वप्नों की चर्चा भी चल पड़ी है। सबसे पहले फ्रायड ने ही यह सिद्ध किया था कि कोई भी स्वप्न व्यर्थ नहीं होता अपितु चेतनावस्था की संचित अनुभूतियों का निद्रा अवस्था में अप्रत्याभिज्ञान ही होता है। स्वप्न का उद्‌गम अवचेतन मन है किन्तु उनका वस्तु विधान चेतनावस्था की जीवनानुभूतियाँ ही हैं। स्वप्न पर सबसे अधिक कार्य फ्रायड के शिष्य स्टेकेल (William Stekal) ने किया। फ्रायड के ही एक शिष्य एडलर ने वैयक्तिक मनोविज्ञान की स्थापना की जिसमें हीनता की ग्रंथियों को प्रधानता दी उसने लिबिडो को काम मूलक मानने से इंकार कर दिया। युंग ने वैश्लेषिक मनोविज्ञान पर कार्य कर इसे दार्शनिक परिभाषा दी। उसने अचेतन के दो रूप बताए—वैयक्तिक अचेतन व समस्त अचेतन। उन्होंने मनुष्य को इस बात से परिचित कराया कि अवचेतन केवल व्यक्ति के जन्म काल की चीज नहीं है वह युग-युग की मानवीय भावनाओं की थाती है। युंग ने वैयक्तिक अवचेतना की अपेक्षा समस्त अथवा सामाहिक अवचेतन को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। उसके मतानुसार अवचेतन की अन्ध शक्तियों के सन्तुलन के लिए आध्यात्मिक शक्ति को जाग्रत रखने की आवश्यकता है।

युंग का सबसे प्रसिद्ध सिद्धांत मनोवैज्ञानिक आधार पर मनुष्य को दो कोटियों में विभाजित करने वाला सिद्धांत है। ये दो कोटियाँ हैं—

१ बहिर्मुखी मानव

२ अन्तर्मुखी मानव

युंग के मतानुसार बहिर्मुखी मनुष्य सर्वदा प्रसन्नवदन दीख पड़ता है वह संसार के कामों में उत्साह एवं रुचिपूर्ण ढंग से योग देता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति विचारशील और कल्पनात्मक वृत्ति वाला होता है। सामाजिकता की अपेक्षा उसमें वैयक्तिक प्रवृत्तियाँ अधिक होती हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत जर्मनी के गेस्टाल्ट सम्प्रदाय की जानकारी

भी आवश्यक है। इसके अनुसार किसी वस्तु का ज्ञान स्वत ही प्राप्त नहीं हो जाता। वह दूसरी वस्तुओं की सापेक्षता म ही सम्भव है। इस मत के अनुसार ससार की हर चीज म सम्पूर्णता नामक भाव की अवस्थिति होती है। पूर्णता ही वास्तविकता है। खण्ड भ्रम है। गस्टाल्टवाद की विशेष देन है—प्रतिभ ज्ञान (Intution) इसम किसी रहस्यमयी शक्ति द्वारा अचानक ही कोई विचार मस्तिष्क म कौंध जाता है जो हमारी समस्याओं का हल होता है।

वाटसन ने मनोविज्ञान के क्षेत्र म एक नई दिशा दी। १९१४ म उसकी पुस्तक (Behaviour) प्रकाशित हुई। उन्होंने उसम बताया है कि मनोविज्ञान मानव के अतमन म चलती रहने वाली प्रक्रिया नहीं है। वह मनुष्य के बाह्य आचरण, शारीरिक प्रक्रियाओं एव अनुभूतियों पर मनन करने वाला शास्त्र है। आगे चलकर वाटसन ने अपनी पुस्तक म शिशु मनोविज्ञान सबधी सिद्धान्त भी दिए हैं। जिनम भय क्रोध और प्रम वृत्ति को प्रधान्य दिया है। अन्त मे वाटसन का 'आचरणवाद' वातावरणवाद म परिणत हुआ।

मक्डूल ने मूलभूत मानसिक तत्त्वो (Instincts) को बताकर उनकी सख्या बारह स्थिर की। सहज प्रवृत्तियाँ परिवर्तित होकर भावगत हलचल (Sentiments) बन जाती हैं। य मनुष्य जीवन के समस्त कायकलाप इन मनोभावो (राग, द्वेष, क्रोध आदि) के अनुसार चलते हैं।

मनोवैज्ञानिक रचनाओं म 'काम्पलेक्स (Complex) का विशेष स्थान है। कभी-कभी केन्द्रीय प्रेरणा के कुदिशान्तरित हो जाने स जो रागात्मक अनुभव विचार और इच्छाए बनती हैं इन्ह ही, काम्प्लेक्स (Complex) कहते हैं। साधारणत लिबिडो के हर स्थायीकरण के पीछे कोई न कोई 'काम्पलेक्स' रहता है। फ्रायड, एडलर आदि मनोवैज्ञानिकों ने अधिकाश काम्पलेक्सो को अचेतन माना है। इसम अन्तर्निहित अचेतन इच्छाए हमारे चेतन नतिक आदर्शों स टकराती हैं। इसके द्वारा हमारे दनिक व्यवहार और चिन्तन म परिवतन होता रहता है।

काम्पलेक्स दो प्रकार के होते हैं—स्वस्थ और अस्वस्थ। मनोवैज्ञानिक रचनाओं म अधिकतर अस्वस्थ काम्पलेक्स (Morbid) का ही अधिक विश्लेषण हुआ है। आत्म हीनता (Inferiority complex) स ग्रस्त व्यक्ति अपने भीतर हीनता की भावना की अनुभूति करता हुआ सामाजिक व्यवहार म सकोच, कायक्षमता की लघुता दर्शाता है। इस प्रकार का प्राणी चिन्तन आदि ज्ञानात्मक व्यापारो म सलग्न रहकर प्रगति करता है। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि अपने अभावों चिन्ताओं, समस्याओं तथा दोषो म उलझा व्यक्ति अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा अपने प्रत्यक्षात्मक (Perceptual) दृष्टिकोण का बदल डालता है जिसम वह ससार भर को गलत समझता है। श्री इलाचन्द्र जोशी ने प्रेत और छाया म एक एम पात्र पारसनाथ के 'काम्पलेक्स' का विश्लेषण एव अन्वेषण प्रस्तुत किया है। कुछ काम्पलेक्स व्यक्ति म अपूर्ण रूप म वर्तमान रहते हैं। य व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण या ध्वस करते रहते हैं। काम्पलेक्स' सस्कार, वातावरण चेतना के साथ साथ परिवर्तित होकर व्यक्ति के दृष्टिकोण का भी परिवर्तित करते हैं। विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपयोग म इनका आधिक्य है।

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यास म सबसे अधिक चर्चा असन्तुलित व्यवहार वाले अप्रकृत (Abnormal) चरित्रों की हुई है। असन्तुलित व्यवहार करने वाले पात्र आत्म रुचि को प्रश्रय देकर अपने परिवेश म आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की रुचि एव इच्छा की अवहेलना करने लगते हैं—जसे जोशी के प्रसिद्ध उपन्यास 'सन्यासी' का नायक नन्द किशोर, शान्ति, जयन्ती आदि पात्रों की सतत अवहेलना करने के कारण अप्रकृत (Abnormal) कहलाता है। एसे पात्र अपने भीतर सतत तनाव (Tension) अनुभूति करते है। उसकी नतिक आतुरता (Moral anxity) का उदगम-स्थान (Super Ego) रहता है। अह (Ego) म पाप या अपराध भावना स आक्रान्त रहती है। अप्रकृत पात्र मानसिक रोगो (Psychoneroses) के शिकार होते है। युग के मतानुसार इनका प्रादुर्भाव व्यक्ति अचेतन (Personal unconscious) और उसम शामिल हुए अनुभवो से होना है।

इस विधि के उपन्यासो म कुछ दर्शन प्रधान विश्लेषण की रचनाए भी प्राप्य है जो जनेन्द्र अज्ञेय आदि लेखको द्वारा रचित हैं। इनम उपन्यासकार अपने विशिष्ट दृष्टि कोण को प्रतिपादित करता है। हिन्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान क अनुसार उपन्यास इसलिए स्थायी साहित्य नहीं है कि वह उपन्यास है बल्कि इसलिए कि उसके लेखक का एक अपना जबरदस्त मन है जिसकी सच्चाई के लिए उसे पूरा विश्वास है। वयक्तिक स्वतन्त्रता का यह सर्वोत्तम रूप है। उपन्यासकार, उपन्यासकार है ही नहीं यदि उसम वयक्तिक दृष्टि कोण न हो।[1] इस दृष्टि से विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का उपन्यासकार केवल सजक ही नहीं, विचारक भी है।

इलाचन्द जोशी

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की योजना हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक युगान्तकारी घटना है। इलाचन्द जोशी इस विधि के अग्रदूत हैं। शिल्प की इस नवीनता के कारण ये अपने पूववर्ती एव समसामयिक वर्णनात्मक विधि के उपन्यासकारो से असम्पृक्त होकर नव शिल्प विधि रचनाकारो की श्रेणी म आगे आ गए हैं। इनकी एक-दो रचनाए वर्णनात्मक शिल्प विधि म भले ही लिखी गई हो किन्तु प्रमुख उपन्यास विश्लेषणात्मक शिल्प विधि म रचे गए हैं। इस मत की पुष्ट्यर्थ दो आलोचको के विचार उद्धृत किए जाते है— मध्यवर्गीय संस्कृति अपने ह्रासोन्मुख काल म अतिशय अन्तर्मुखी और वयक्तिक हो जाती है। यह वग अपनी संस्कृति और सभ्यता के रोगो का निदान समाज का नाडी देखकर नहीं करता बल्कि व्यक्ति विशेष के अन्तर्मन के द्वारा एक्सरे अपना नुस्खा पेश करता है। मनोवज्ञानिक शब्दावली म इस मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली कहते हैं। जनेन्द्र म यह प्रणाली बहुत कुछ अस्पष्ट और अनिर्दिष्ट है। इस पद्धति को औपन्यासिक चोला पहनाने का ऐतिहासिक श्रेय इलाचन्द जोशी को है। इस पद्धति के अनुसार व्यक्ति के सारे कष्ट, अप्रसन्नता, निराशा, मलिनता आदि किसी न किसी कुण्ठा के कारण उत्पन्न

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिन्दी साहित्य—पृष्ठ ६

होते हैं। ये कुण्ठाएं व्यक्ति के अचेतन मन में प्रच्छन्न रूप से छिपी रहती हैं। जब कोई न्यूरोटिक चरित्र अपनी कुण्ठाओं का रहस्योद्घाटन कर लेता है तब वह रोग मुक्त हो जाता है। जोशी के उपन्यासों में विभिन्न प्रयोग का प्राय यही रूप दिखाई देता है।[1] हिन्दी उपन्यास में मनोविश्लेषण प्रणाली के प्रथम प्रयोक्ता इलाचन्द्र जोशी हैं। यद्यपि 'घृणामयी' नामक इनका उपन्यास १९२९ ई० में ही लिखा था किन्तु संन्यासी (१९४१) के द्वारा ही इन्हें वास्तविक ख्याति मिली और इनकी मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति उभर कर सामने आई।[2]

वर्णनात्मक शिल्प विधि का उपन्यासकार मानव जीवन का व्याख्याकार बनकर सामाजिक राजनैतिक धार्मिक ऐतिहासिक आंचलिक अथवा आर्थिक घटनाओं और परिस्थितियों का विवरण प्रस्तुत करता था। जोशी के मतानुसार वर्तमान युग की सब से बडी आवश्यकता उपन्यासकार के लिए शिल्प के क्षेत्र में विश्लेषणात्मक विधि को अपनाने की है। वे लिखते हैं— वर्तमान युग में अहंवाद और बुद्धिवाद का संघर्ष व्यक्तियों में भीषण रूप में चल रहा है जिस प्रकार बाह्य जगत में सामूहिक अहवाद और बुद्धिवाद का अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष इसलिए उपन्यासकार को अत्यन्त जटिल प्रकृत पात्रों का विश्लेषण अत्यन्त गहरे स्तर की मनोवैज्ञानिकता के आधार पर करना पडता है।"[3] जोशी केवल यह लिखकर ही सन्तुष्ट नहीं हो गए उन्होंने इसे रचनात्मक रूप में अपने उपन्यास साहित्य में अभिव्यक्ति भी दी। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में मनोविकारग्रस्त, अहं से त्रस्त अति बुद्धिवाद से पीडित पात्रों के असाधारण कार्यकलाप मानसिक ग्रन्थियों की वचित्र्यपूर्ण चेष्टाएं तथा आत्म लघुता (Inferiority Complex) की भावना से उत्पन्न प्रचण्ड विकृतियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। जोशी ने आधुनिक मनोविज्ञान वेत्ताओं का गहन अध्ययन करके लिखा है— फ्रायड युग और एडलर ने मनोविज्ञान से सबधित कुछ ऐसे नए सिद्धान्तों की खोज की जिसने मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक प्रचंड क्रान्ति की लहर उत्पन्न कर दी। इन नए सिद्धान्तों में सब से प्रमुख बात अवचेतन मन संबंधी खोज है।[4] जोशी मनोविश्लेषण को एक शिल्प विधि के रूप में अपनाते हैं और आत्मकेन्द्रित अहंवादी असामाजिक व्यक्तियों के अवचेतन का अन्वेषण प्रस्तुत करते हैं। इस अन्वेषण एवं विश्लेषण विधि में वे युग के निकट होते हुए भी आगे बढ़ गए हैं। इस तथ्य को स्वीकृत करते हुए वे कहते हैं— युग के मत का भाष्य मैंने अपने ढंग से किया है। मेरे मत से यह सिद्धान्त फ्रायडियन अवचेतन के सिद्धान्त से बहुत आगे बढा हुआ है। पर मैं अपने निजि अनुभवों से एक दूसरे ही सिद्धान्त पर पहुचा हू। मेरे मन से मानवीय मन का विभाजन केवल दो या तीन खडों में नहीं किया जा सकता। मनुष्य का मनोलोक

---

१ बचनसिंह आलोचना—उपन्यास विशेषांक 'मध्यवर्गीय वस्तु तत्व का विकास'—पृष्ठ १३१

२ शिव नारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ २९३

३ इलाचन्द्र जोशी विश्लेषण—पृष्ठ ८९

४ वही—पृष्ठ १०६

केवल सचेत प्रबुद्ध मन तथा प्रवचेतन मन तक ही सीमित नहीं है। वह प्रसंख्य स्तरों में विभक्त है, जिनमें से अधिकांश स्तर साधारण चेतना की अवस्था में हमारी अनुभूति के लिए अज्ञात रहते हैं। अन्तस्तल में निहित कौन स्तर कब और क्या उठकर तूफान मचा देगा, इसका कोई भी निश्चित नियम नहीं है। पर इतना संभव है कि यदि अन्त जीवन का अध्ययन उचित रूप से करने का अभ्यास डाला जाए और उसके विश्लेषण की समुचित विधि का ज्ञान हो जाए तो यह जाना जा सकता है कि किस विशेष मानसिक तूफान के अवसर पर किस विशेष कोटि के स्तर की कौन विशेष प्रवृत्तियां ऊपर हो उठी हैं। इस ज्ञान का फल यह देखा गया है कि वे व्यक्तिविनाशी अथवा समाजघाती तूफानी प्रवृत्तियां हमारे मन की संतुलित अवस्था में कोई विकार या विभीषिका उत्पन्न नहीं कर सकती। साहित्य में मनोविश्लेषण का मैं यही महत्त्व मानता हूं।'[५] जोशी ने मनोविश्लेषण के महत्त्व को स्वीकार करके अपने उपन्यासों में दुर्बल चरित्र नायकों की योजना की। इसे उन्होंने अपने उपन्यासों की विशेषता रूप में स्वीकार किया है। इसका कारण एक ओर मनोवैज्ञानिक यथार्थता है दूसरे आधुनिक परिस्थितियां जो व्यक्ति को वैयक्तिक और अन्तर्मुखी बनाती हैं। दुर्बल नायक का चरित्र चित्रण कथाकार से सूक्ष्म विश्लेषण की अपेक्षा रखता है। इस संबंध में जोशी का कथन है— 'दुर्बल नायक का चरित्र चित्रण करने में बहुत बारीक कला की आवश्यकता होती है पर तथाकथित 'सशक्त' और विराजोचित पात्र के चरित्र चित्रण में साधारण कला द्वारा भी अच्छा वातावरण तैयार किया जा सकता है।'[६]

जोशी के मतानुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व की निर्मात्री शक्ति अन्तःप्रकृति है जो एक धधकते हुए अग्निकुण्ड के समान है। इसमें असंख्य मूल प्रवृत्तियां वर्तमान रहता है। यह अन्तःप्रकृति हम लज्जा के पात्र लज्जा और राजन में, संन्यासी के नंदकिशोर जयन्ती और शान्ति में तथा प्रेत और छाया के पारसनाथ, नन्दिनी, मंजरी में और 'पर्दे की रानी' की निरंजना में तूफान मचाती दृष्टिगत होती है। इन पात्रों की अन्तर्लीलाएं समय समय पर उछलती, उबलती, बुदबुदाती नजर आती है। इनके पात्र विवाहोपरान्त जुड़ते हैं मिलते नहीं, मानो वे टूटने के लिए जुड़ते हैं। किसी भी क्षण उनके कुंठित हो जाने का भय बना रहता है। जोशी के नारी पात्र त्याग, सेवा और आत्मदान का नारीत्व की थाती मनाने को तैयार नहीं है, वे पुरुष पात्रों के अहं से टकराते, जूझते दृष्टिगोचर होते हैं। उनके संबंध में जोशी लिखते हैं—'मैंने ऐसे नारी पात्रों को लिया है जिन्हें जीवन की घनघोर संघर्षमयी परिस्थितियों से होकर गुजरना पड़ा है और जिनकी अवचेतना में निहित विद्रोह के बीज रूपी अणुओं में उन संकटाकुल परिस्थितियों के पारस्परिक संघर्ष के कारण रासायनिक प्रतिक्रिया स्वरूप भयंकर विस्फोट में परिणित होने की संभावना रही है।'[७] मेरे विचार में जोशी ने नारी पात्रों के अन्तर्मन में विद्रोह एवं विस्फोट को

---

५ इलाचन्द्र जोशी विश्लेषण—पृष्ठ १०६
६ इलाचन्द्र जोशी साहित्य चिंतन—पृष्ठ १०१
७ इलाचन्द्र जोशी विश्लेषण—पृष्ठ १७१

इसलिए निहित किया है कि उनका मनन और विश्लेषण सूक्ष्मतापूर्वक प्रस्तुत किया जा सके। यह विश्लेषण अन्तर्मन की द्वन्द्वात्मक स्थिति पर निर्भर है, चेतन मन की भावनाएं तो वर्णनात्मक विधि द्वारा व्याख्या पाती हैं। जोशी के नारी पात्र भी कम अहंवादी नहीं हैं। उनके अहं का सूक्ष्म विश्लेषण, यौन समस्या का गहन अन्वेषण और असाधारण व्यक्तित्व (Abnormal Personality) का विलक्षण चित्रण जोशी के कला-नैपुण्य का प्रमाण पत्र है।

मेरा दृढ़ मत है कि जोशी के सभी उपन्यास विश्लेषणात्मक नहीं हैं। 'सुबह के भूले' का परिचय लिखते हुए मैंने लिखा था—'सुबह के भूले इलाचन्द जोशी के औपन्यासिक कृतित्व का सप्तम सोपान है। मनोविज्ञान और विश्लेषण के कलाकार ने इस कृति में वैयक्तिक विश्लेषण के साथ साथ सामाजिक जगत का वर्णन भी किया है।'[8] अपने मत की पुष्टि में हिन्दी के एक प्रसिद्ध आलोचक के विचार भी उद्धृत करता हूं—"सुबह के भूले इलाचन्द्र जोशी का नया उपन्यास है। जोशी के सम्बन्ध में कहा गया है कि उन्होंने उपन्यासों में जीवन की यथार्थता का बिना किसी आवरण के प्रस्तुत करने की सदैव चेष्टा की है। मनोवैज्ञानिकता उनकी सब से बड़ी विशेषता है और उसी के कारण हिन्दी के आधुनिक उपन्यासकारों में उनका प्रमुख स्थान है। पर सुबह के भूले में उन्होंने एक बड़ी सरल कथा लिखी है।'[9] सरल कथा से आलोचक का अभिप्राय मनोविश्लेषणात्मक विधि से वंचित रहकर व्यावहारिक वर्णनात्मक विधि से है। उनके मतानुसार इसके पात्र साधारण हैं, उनका जीवन साधारण है और प्रेम तथा वासना की नाना प्रचंड अन्तर्लीलाओं से शून्य है। प्रस्तुत प्रबन्धकार के मतानुसार 'सुबह के भूले' के अतिरिक्त 'जिप्सी' 'मुक्ति पथ' और 'निर्वासित' में भी विश्लेषणात्मक शिल्प विधि को प्रश्रय नहीं मिला। 'लज्जा' 'संन्यासी' 'पर्दे की रानी' तथा 'प्रेत और छाया' में विश्लेषणात्मक विधि के कारण ही अन्तर्जीवन का अन्वेषण हुआ है। इन रचनाओं की घटनाएं और पात्र विश्लेषणात्मक विधि द्वारा अग्रसर हुए हैं। इस विधि में रचित उनके विविध उपन्यासों का शिल्पगत अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

'लज्जा'—१९२९

लज्जा को मैं विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का प्रथम सोपान मानता हूं। इस रचना में मूल केन्द्र लज्जा की कहानी नहीं है, कोई विशेष घटना भी प्रधानता नहीं रखती, सामाजिक समस्या भी वर्णित नहीं है, केवल लज्जा के अन्तर्मन से सम्बन्धित काममूलक ग्रन्थि ही प्रमुख है। इसके कारण उसकी दिनचर्या में, विचारधारा में असाधारणता (Abnormality) आ जाती है। एक आलोचक इस उपन्यास को अमनोवैज्ञानिक बताते हैं—"इस उपन्यास को मनोवैज्ञानिक कहने के लिए कोई उपयुक्त आधार नहीं है।"[1]

---

८ डॉ० प्रेम भटनागर : सुबह के भूले 'परिचय' से अवतरित
९ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी : हिन्दी कथा-साहित्य —पृष्ठ २१४
१ बलभद्र तिवारी : इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास—पृष्ठ ७८

उनका यह कथन असंगत है। अपनी पुस्तक में व अपने कथन का स्वयं ही खंडन कर देते हैं। पृष्ठ ८३ पर मनोवैज्ञानिक आशय में अन्तर्गत राजू और लज्जा की सन्धि कालीन वय में फायडियन दमित यौन भावना, स्व रति तथा परात्मक रति की चर्चा करते हैं। एक स्थल पर तो उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है— लज्जा का हम निरन्तर तरुणाई के रंगीन दिवा स्वप्नों में डूबते पाते हैं। इन स्वप्नों का चित्रण जोशी जी ने किशोर-वय और मनोविज्ञान की धारणाओं के अनुकूल ही किया है।'[1] इसी प्रकार अगले पृष्ठ पर लज्जा की रुग्णता को मानसिक बताया गया है। ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि 'लज्जा' का मूलाधार आधुनिक मनोविज्ञान है जिसके अभाव में विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की रचना हो ही नहीं सकती।

लज्जा में लज्जा के द्वारा लज्जा के अन्तर्मन की भरपूर खोज कराई गई है। उसके अन्तर्मन में एक अपूर्व द्वन्द्व चलता रहा है। इस द्वन्द्व का विश्लेषण ही जोशी की इस रचना का प्रमुख उद्देश्य है। इसका आरम्भ पूर्व-दीप्ति विधि अनुसार हुआ है। नायिका स्वयं कथा मंच पर आकर कथा सूत्र का साक्षात्कार पाठकों को कराती है। अपने अन्तर्मन की द्वन्द्वपूर्ण स्थिति और आत्म विगर्हणा के भाव को पूर्ण तीव्रता प्रदान करती हुई वह कहती है— "दुःख की ज्वाला से तप्त और पाप की यातनाओं से उत्तेजित इस पापिनी की राम कहानी को धैर्यपूर्वक सुनने वाले सहृदय पाठक कितने मिलेंगे? हाय जिस देश में मैंने जन्म लिया है, वहाँ पापियों के प्रति संवेदना प्रकट करना जघन्य पाप समझा जाता है। भगवान! तब क्या मैं इस पुण्य के भार से गुरु गम्भीर देश में उत्पन्न हुई? प्राचीन ग्रीस देश की उत्तप्त उत्तेजना से मेरा स्वभाव गठित हुआ है। इस उत्तेजना की प्रचण्ड अग्नि आज तक मेरी आत्मा के अतल गर्भ में समाधिस्थ थी। आज अचानक आग्नेय गिरि के विलोल प्लावन की तरह वह बाहर को फूट निकली है।[2] यह कहते ही वह अतीत संस्मरणों पर प्रकाश डालती है।

'लज्जा' की कथा अन्तर से बाहर की ओर, व्यक्ति से समाज की ओर प्रवाहित हुई है। यही विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की विशेष देन है। वैयक्तिक अनुभूति व्यक्ति विशेष तक ही सीमित नहीं रहती वह समाज के लिए एक शिक्षा और चेतावनी के रूप में सामने आती है। यही कि जीवन की अमुक स्थिति में पड़ने से बचाओ। मानसिक ग्रन्थियों विकृतियों तथा द्वन्द्वों से ग्रसित व्यक्ति का उचित ढंग से उपचार करो ताकि उसका तथा उसके निकटवर्ती समाज का कल्याण हो। प्रेम, घृणा, पीड़ा क्रोध की अवस्था मनुष्य के जीवन की साधारण अवस्था नहीं होती, वह असाधारण तत्त्वों से मिश्रित होती है उन असाधारण तत्त्वों का विश्लेषण ही 'लज्जा' की विशिष्ट देन है। प्रेम, घृणा और वेदना का प्रभाव शरीर और भविष्य पर अवश्य पड़ता है किन्तु इनका मूलाधार मन, विशेषकर अवचेतन मन की वर्तमान स्थिति होती है। सारी कथा सुनाते हुए लज्जा ने एक ही बात ध्यान में रखी है वह यह कि उसने अपने अतीत को लेकर भी उस अतीत

---

१ बलभद्र तिवारी इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास—पृष्ठ ८७

२ लज्जा—पृष्ठ ७

म वतमान मन स्थिति का म रेपण प्रस्तुत किया है।

लज्जा एक वयक्तिक चरित्र है, वह मपने को पहचानती है। तभी तो उसने अपनी दुबलताओं या मनोविकारों को कहीं भी छिपाने की चेष्टा नहीं की अपितु एक सत्य-वक्ता की भांति एक उपन्यासकार की तरह अपनी दमित वासनाओं का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। समय समय पर परिवर्तित स्वरति और पर रति का आकर्षण एक भारी प्रस्तुत का है। अपने बाल्यकाल म स्व रति और पर रति की मनुचित धारा म स्नान करती रहा किन्तु वयस्क की स्थिति म पर रति की धार उन्मुख हुई। रूपवान तो वह है हो पर पुरुषों को रिझाने और उनम रति सन का यत्न म भी सिद्ध हस्त है। पर पुरुषों म चुनाव की स्थिति क समय उसके मन म एक द्वन्द्व उठता है, उसका विश्लेषण करते हुए कहती है—

दोनों म अधिक रूपवान कौन है ? कन्हैयालाल हो मुझे जचते हैं। किशोरी मोहन भी दमन म सुन्दर है दमम सन्देह नहीं। पर डॉक्टर कन्हैयालाल क मुख का-सा तेज उनम कहां पाया जाता है। किशोरी मोहन मेरा रूप क भक्त है—ऐसे भक्तों की मुझे आवश्यकता है। पर डाक्टर साहब को तो मैं अपना हृदय अर्पित करूगी।[३]

लज्जा क सभी पात्र गत्यात्मक (Dynamic) है। उनम जीवनगत किसी भी स्थिति पर मनन करने कोई अवसर पाकर बौद्धिक वक्तव्य देने और विश्लेषण करने की क्षमता है। लज्जा केवल अपनी ही दुबलता अथवा शक्ति स परिचित नहीं है अपितु नारी मात्र की अवस्था का दयनीय चित्र इस विश्लेषणात्मक प्रसग म अभिव्यक्त कर देती है— यदि मेरी आत्मा म दृढ़ता काठिन्य और सहनशीलता क भाव वतमान होते तो मैं किसी भी बाहरी भय स कभी भयभीत न होती। अपने अकेलेपन स मन-ही मन गर्वित होकर डाक्टर साहब की सरक्षता का आनन्द लूटने की इच्छा कभी न करती। अकेले शांत और सयत भाव स अपने भीतर की समस्त भावनाओं को नारकता क साथ सहन करती चली जाती। पर नारी हृदय म दृढ़ता और सहनशीलता का होना एक प्रकार से असम्भव है। बात बात म सशय और भय की स्थिति एडलर क मतानुसार हीनता की ग्रंथि का परिणाम है। नारी जाति म हीनता की ग्रंथि उत्पन्न करने वाला पुरुष समाज है, जो अपनी स्वाथ सिद्धि के लिए नारी को अबला कहता और सिखाता आया है। इसी के कारण वह नीचता, दासत्व और पाप पक म निमग्न होती है। लज्जा की विश्लेपणात्मक कहानी इस तथ्य का उदघाटन कर रही है। उसकी दमित कामवासना भी हीन स्थिति का ही परिणाम है।[४]

सन्यासी—१९४१

वयक्तिक जीवन का अपूर्व जटिलताओं और विचित्रताओं के आधार पर सन्यासी की रचना हुई है। विश्लेपणात्मक शिल्प विधि के शास्त्रीय सिद्धान्तों का समावेश इसकी मौलिक विशेषता है। अवचेतन मन की क्रिया क्षतिपूर्ति प्रक्रिया और आश्चर्यजनक

---

३ लज्जा—पृष्ठ ३८

४ वही—पृष्ठ १०१

प्रतिक्रियाओं का पूर्ण अंकन इस रचना में प्राप्त होता है। वैयक्तिक पात्रों की दमित यौन वासनाओं उन्मादग्रस्त जीवन स्थितियों तथा अहम्मन्यतापूर्ण कृत्यों का विश्लेषण अनेक स्थलों पर उपलब्ध हो जाता है।

'संन्यासी' की रचना पूर्व-दीप्ति विधि (Flash Back Technique) के आधार पर हुई है। कथा का सूत्र स्वयं उपन्यासकार ने नहीं पकड़ा है अपितु कथा नायक को दे दिया गया है। वही आत्मकथात्मक शैली में अपनी अतीत स्मृतियों की गुफा में प्रकाश फेंककर दीप्त घटनाओं एवं सचेत विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। घटनाएं सीमित ही हैं, और जो हैं वे बहिर्जगत की अपेक्षा अन्तर्जगत में घटती हैं किन्तु विचारों की, विशेष कर द्वन्द्वात्मक भावों की इस उपन्यास में कोई कमी नहीं है। नायक जीवन कथा घटन के पश्चात हमारे सामने आया है। वह अपनी जीवन अनुभूतियों के विशिष्ट संस्मरण सुरक्षित रूप में संजोकर रखता है और पूर्व-दीप्ति विधि द्वारा प्रस्तुत कर देता है।

साल भर की सजा भुगतकर अभी लौटा हूं—उपन्यास की यह प्रथम पंक्ति पूर्व दीप्ति विधि अनुसार लिखी गई है इसे पढ़ते ही पाठक एक विचित्र, रहस्यमयी और कौतूहलवर्धक स्थिति में पड़ जाता है। फिर दूसरे ही पहरे में 'मैंने संन्यासी का वेश धारण किया है सन्देह नहीं। पर संन्यासी मैं न कभी था और न हूं' पढ़कर पाठक की जिज्ञासा बहुत कुछ जानने को तैयार हो जाती है। कथा की असाधारणता और व्यक्ति की विशिष्ट जीवनी के प्रति उसका विश्वास आरम्भ से ही दृढ़ करके उसने कहानी का संचालन किया है। फिर नायक द्वारा नायक की जीवनगत सात वर्षीय अनुभूतियों का सिंहावलोकन किया गया है।

'लज्जा' की भांति 'संन्यासी' में भी पूर्व दीप्ति विधि का समावेश पूर्णरूप में हुआ है। कथा नायक कथा के आरम्भ में जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है वह अन्त में भी कथा के पूर्ण विकास के पश्चात अपने पहले रूप से तादात्म्य स्थापित करता हुआ समाप्ति पर पहुंचता है। प्रारम्भ में वह कहता ही है— संन्यासी मैं कभी था और न हूं —किन्तु अन्त में तो वह बोझा भी उतार फेंका है जिसके कारण लोगों ने उसे संन्यासी समझा। वह कहता है— जेल से छूटने पर अपने संन्यास और नेतागिरी के ढोंग पर हंसी भी आई और दुख भी हुआ। मैंने दाढ़ी फिर घुटा ली है और बाल कटवा डाले हैं। गेरुआ वस्त्र पहनना भी छोड़ दिया है। अब मैं न संन्यासी हूं न नेता। लल्लन को देखने देहरादून गया था। मौसी के पास रहकर वह बड़ा सुखी है। वह न शान्ति के अभाव का अनुभव करता है न मेरे—पर मैं उन दोनों के अभाव का अनुभव कर रहा हूं और सम्भवतः जीवन भर करता रहूंगा।[1]

'संन्यासी' में कथा को सीमित कर दिया गया है। समस्त घटनाओं को बहिर्जगत से उठाकर नायक के अन्तर्जगत में बिठाया गया है। यह तो हुआ पहला काम। दूसरा काम नायक ने किया है। उसने अपनी अन्तश्चेतना को सक्रिय बनाकर अतीत की समस्त घटनाओं का विश्लेषणात्मक व्याख्या कर दी है। इस विधि को अपनाने के कारण

---

1 संन्यासी—पृष्ठ ४६१

एक ओर कथा समाप्त हो गई है तो दूसरी ओर उसमें मनोवैज्ञानिकता आ गई है। मन
चेतन धारा की स्थिति उनके सभी उपन्यासों विशेष रूप से [illegible]
में स्पष्ट [illegible] है। कथा के सूत्र में [illegible]
नहीं है एक युवक (शेखर) के मनोविकास द्वारा जीवन की एक विशिष्ट स्थिति
है जिसका मूल उसका बचपन में [illegible] कुण्ठित यौन भावना में है। मनोविश्लेषण
और यौन भावना से [illegible] है। उसके स्वप्न [illegible] उसके
समस्त कार्य व्यापार में एक अद्भुत अभिनय एवं [illegible] उत्पन्न कर देती है।
आगरा यात्रा के बाद मनोविश्लेषण का सारा क्रम पर उसकी यौन कुण्ठा नहीं, बल्कि
जाती है।

अन्तर्निरीक्षण उपन्यासों में आत्म प्रक्षेपण (Introspection) विधि का सर्वाधिक प्रयोग
किया जाता है। उपन्यासों में इस विधि का प्रयोग सबसे अधिक मात्रा में हुआ है। [illegible]
कहीं आत्मविश्लेषण [illegible] है। मनोविश्लेषण की अभिव्यक्ति का सामान्य
पाठक से पूर्व मनोविश्लेषण का [illegible] किया है। यहाँ आत्म प्रक्षेपण विधि द्वारा [illegible] समस्त
दुर्बलताओं, मनोविकारों एवं कामवासनाओं का विश्लेषण करके [illegible] के
चरित्र के रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। उपन्यासों के वही स्थल सर्वाधिक
तथा सर्वोत्कृष्ट हैं जहाँ मनोविश्लेषण के परिणामों द्वारा मनोविश्लेषण का मनोवैज्ञानिक
का सजीव चित्रण हुआ है। जहाँ पर भावनाओं का सूक्ष्म अभिव्यंजना हुई है वहाँ
कलात्मकता अपने प्रखर रूप में उभरकर उठी है जहाँ भी यह विस्तृत वर्णन [illegible]
हुई वहीं स्थल शिथिल पड़ गए। इसका भी कारण है—विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के
उपन्यासों में वर्णन औपचारिकता का परिचय मात्र होते हैं किन्तु वे साधन तारतम्य और
प्रभावपूर्ण समन्वय की दृष्टि से अनिवार्य होते हैं। इसलिए कम से कम वर्णन रखे गए
हैं। वर्णन की आवश्यकता तभी पड़ती है जब बाह्य निरीक्षण किया जाए। उपन्यासों के
पात्र बाह्य निरीक्षण करने की अपेक्षा अन्त प्रक्षेपण की ओर लौट आते हैं।

उपन्यासों में बाह्य निरीक्षण विधि (Observation) का सहारा बहुत कम मात्रा
में लिया गया है। पात्र एक दूसरे का ध्यान है उनकी मानसिकता पर यह निरीक्षण कुछ
प्रभाव भी छोड़ता है किन्तु दूसरे ही क्षण वे अपनी मानसिकता में डूब जाते हैं और अव
चेतन में हो रहे द्वन्द्व पर ही मनन करने लगते हैं। जयन्त का साक्षात्कार न केवल [illegible]
किशोर की रुद्ध काम-वासना के बाँध को ही तोड़ता है अपितु उसे बहिर्जगत से लाकर
अन्तर्जगत में ला पटकता है। पूजा पाठ पठन-पाठन आदि बाह्य कार्यों को तिलांजलि
देकर अन्तव त्तियों के बहाव में बहने लगता है। वह मनोविकार का रोगी बन जाता है।
आगरा से लौटने पर बनारस के बाजार में दो युवतियों के दर्शन मात्र से उसकी मनोदशा
किस दिशा में बहने लगी। अन्त प्रक्षण विधि द्वारा किया गया उसका विश्लेषण पठनीय
है— दोनों रमणियाँ कुछ दूर आगे बढ़कर बाईं तरफ की गली को मुड़ी और मुड़ते ही
वह खद्दर धारिणी फिर एक बार मुझे घूर गई। मेरा तो सिर चकराने लगा। इसका
कुछ अर्थ न समझा। कुछ दिनों से जिस घोर अवसाद का भाव मेरी छाती को जकड़
था उसकी प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई थी। मतवाले आदमियों की तरह मैं अपने आप में

नहीं था।'[१] नन्दकिशोर की यह विक्षिप्तता जयन्ती के प्रति दमित काम वासना (Repression) का परिणाम है।

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यासो में पात्रो की छोटी से छोटी क्रिया का भी स्पष्टीकरण किया जाता है। यह स्पष्टीकरण मनोवैज्ञानिक आधार पर खोज कर ही सम्पन्न होता है। 'संन्यासी' में नन्दकिशोर की हां नहीं शान्ति जयन्ती बलदेव और कलाश आदि पात्रो की सभी क्रियाओं का स्पष्टीकरण किया है। नन्दकिशोर की विक्षिप्तता, परपीडन, तत्परता तथा अहमन्यता का पूरा अन्वेषण किया है। वह शान्ति के मुख पर एक अलौकिक उल्लास की दीप्ति देखता है प्रतिक्रियास्वरूप उस सौन्दर्य आभा का सन्तुलित उपयोग नहीं करता, अपितु उसका कुण्ठित मन उसे (शान्ति) को भय और आशंका के वातावरण में डालने की योजनाएं बनाता है। वह शान्ति से पूछता है— 'रामेश्वरी को देखा कैसी विचित्र लड़की है।

शान्ति ने कहा— मैं तो उसका स्वभाव कुछ समझ न पाई। भीतर वह हम लोगो को सुनाते हुए काफी ऊंची आवाज में बड़ी-बड़ी बातें कह रही थी पर जब बाहर आई तब से अन्त तक एक शब्द भी उसने मुह से न निकाला। भीतर वैसी ढीठ और बाहर इतनी संकोचशील। तिसपर उसका स्वाभिमान देखा! सचमुच लड़की बड़ी विचित्र है।'[२] बस नन्दकिशोर का जादू चल जाता है। वह शान्ति को अत्यधिक कातर करने के लिए इस विचित्रता के स्पष्टीकरण की आड़ में शान्ति से यह कहता है—"तुमने अभी उसकी विचित्रता इसी हद तक देखी है। पर मुझे तो उसे देखकर एक ऐसे विकट भय और आतंक के भाव ने घर दबाया है कि मेरी दूसरी चिन्ताएं जो कुछ कम भयंकर नहीं है उसके नीचे दब सी गई है। न जाने क्यो एक अज्ञात संस्कार मुझमें कह रहा है कि इस लड़की के जीवन का परिणाम बड़ा दुखद होगा। ऐसा जान पड़ता है कि इसे हिस्टीरिया के से झटके बीच बीच में आते रहते हैं। इसीलिए वह कभी अत्यन्त उत्तेजित होकर बहुत बोलने लगती है और कभी एकदम संकुचित होकर बिल्कुल चुप हो जाती है। एक ओर आवश्यकता से अधिक स्वाभिमान और दूसरी ओर ऐसी असहनशीलता कि भाई को नई साड़ी न लाने के लिए कोसना—इस प्रकार की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियो के विकट द्वन्द्व का चक्र इस लड़की के भीतर चला करता है। ऐसे व्यक्तियो में मैंने देखा है कि उनके स्वार्थ की मात्रा चरम सीमा तक पहुंच जाती है और उनका त्याग भी वैसा ही प्रबल होता है। सच बात तो यह है कि ये बड़े आत्मगत जीव होते है मुझे उसमें कुछ उन्माद के लक्षण दीख पड़ते है।'[३] नन्दकिशोर की आकांक्षा फलीभूत होती है शान्ति आतंकित हो उठती है।

संन्यासी की सबसे बड़ी विशेषता वैयक्तिक पात्रो की उद्भावना है। ये पात्र वर्णनात्मक शिल्प विधि के सामाजिक पात्रो की भांति लेखक के हाथों नाचने वाले कठपुतली

---

२ संन्यासी—पृष्ठ ५०

३ वही—पृष्ठ २२६

४ वही—पृष्ठ २२७

पात्र नहीं है। इसका विशिष्ट व्यक्तित्व है। शान्ति और जयन्ती दोनों ही गत्यात्मक (Dynamic) प्रवृत्ति की नारियाँ हैं। दोनों ही समय-समय पर पात्र तथा नन्दकिशोर के व्यवहार का विश्लेषण करने लग जाती हैं। नन्दकिशोर ने शान्ति और जयन्ती का एक-एक भाव भंगिमा के प्रति प्रतिक्रिया में भी गौरव स्थिर किया है। उसकी एक-एक प्रवृत्ति पर वह नाना रीतियों से मनन करता है। वह उसके दर्शन में जयन्ती के मौलिक स्वभाव और सहयोगशील प्रवृत्ति । नन्दकिशोर के मन में एक द्वन्द्व मचा दिया है। कभी वह गौरव का एक सम्पूर्ण कल्प में लेकर जयन्ती की परिस्थिति हास भाव और ईर्ष्या भाव का विश्लेषण करता है कभी उस मौन को जयन्ती के गौरव रूप का कारण समझता है। बात वास्तव में यह है कि नन्दकिशोर स्वयं चार प्रकार का व्यक्ति है। वह अपनी असहायता के प्रति मन रहना चाहता है स्वीकृति आरोपण (Projection) की क्रिया द्वारा अपनी दुर्बलता का जयन्ती के मत्थे थोप कर संतोष की सांस लेता है।

व्यक्तित्व सम्बन्धी इन्हीं तत्त्वों के कारण संन्यासी के पात्रों का व्यक्तिगत दुर्बलताओं, सहमन्यताओं तथा स्वार्थों का उद्घाटन यहीं प्रायः विश्लेषणात्मक परात्म विश्लेषण प्रक्रिया द्वारा किया गया है। आत्म विश्लेषण करते ही नन्दकिशोर ने यह स्वीकार किया है कि वह एक असाधारण पात्र है उसका मन विकृत है विवाह जैसा उत्तरदायित्वपूर्ण कृत्य को वह मज़ाक और अपनी अहमन्यता का साधन समझता है। परात्म विश्लेषण विधि द्वारा शान्ति और जयन्ती नन्दकिशोर की अहमन्यता, स्वार्थपरता एवं ईर्ष्यालु प्रकृति का पर्दा फाश करता है। नन्दकिशोर के बाह्य-जीवन और बाह्याचरण में किसी प्रकार की दुरूहता नहीं है। प्रथम साक्षात्कार में ही कोई भी युवती उसको हृदय देना पसन्द करती है किन्तु उसके सम्पर्क में आकर ही उसके अन्तर्जीवन की विषम स्थिति से परिचित होकर नव्य अनुभूतियाँ अर्जित कर पाती है।

वस्तुतः उपन्यासकार केवल एक बात कह कर ही बस नहीं कर जाता। वह अन्तश्चेतना में बैठकर सतत चलने वाले द्वन्द्व के मूल को पकड़ता है। व्यक्तिक कुण्ठा की खोज करता है। संन्यासी के नायक नन्दकिशोर की असाधारण (Abnormal) मानसिक स्थिति दमित काम वासना (Repression) का परिणाम है। इसीके फल स्वरूप उसकी समस्त चारित्रिकता का निर्माण हुआ है। इस तथ्य पर वह विश्लेषणात्मक अन्वेषण करके पहुँचा है। वह कहता है— 'मेरे असंतोष का एक और कारण था। बचपन से ही मेरे मन में बड़े-बड़े हौसले पैदा हो गए थे। महत्त्वाकांक्षा के बीज मेरे मन में पहले से ही थे। पर कुछ बाहरी और कुछ भीतरी कारणों से मैं अपनी एक भी उच्चाकांक्षा की सफलता की ओर कदम न बढ़ा सका। पुरातत्त्व की ओर मेरा झुकाव सबसे अधिक था। यदि मेरे भीतर की दानवी शक्ति उचित मार्ग पर चलती तो मैं या तो पुरातत्त्व अथवा इतिहास के क्षेत्र में क्रान्ति मचाता या समाज सुधारक अथवा देशोद्धारक बन कर एक महान नेता के पद का प्रयासी होता। ऐसा होने से—मेरे भीतर के धुएँ को और आग की ज्वालाओं को बाहर निकलने का रास्ता मिल जाने से—मेरे जीवन में स्थिरता आ जाती। पर उस आग और धुएँ के बद्ध रहने से मैं अपनी अन्तरात्मा को जलाने और धुँधलेपन में समर्थ हुआ ज्वालाएँ मेरे ही भीतर बिखरकर रह गए। फल यह हुआ

कि अब मेरी दग्ध आत्मा जहां जहां भी अपना हाथ डालती थी, वहीं विध्वस की सम्भावना मुझे दिखाई देती थी।'[५]

'सन्यासी' में हमें जटिल से जटिल विचित्र से विचित्र पात्रों की जटिलता एवं वचित्र्यपूर्ण चारित्रिकता का रहस्य विश्लेषण विधि द्वारा ज्ञात हो गया है। किसी भी विशिष्ट प्रसग की अवतारणा में चरित्र की विशेष प्रवृत्तियों का ध्यान रखा गया है। उनके समस्त हाव भाव, क्रिया कलाप उनकी अन्तर प्रवृत्तियों से पूर्ण मेल रखते हैं, परन्तु अवसर अनुकूल रंग दिखाते हैं। कतिपय आलोचक इन पात्रों की गत्यात्मक स्थिति में ही सदेह रखते हैं। डा० *शिवनारायण श्रीवास्तव ने लिखा है—'ये चरित्र प्राय आदि से अन्त तक* एक रस रहते हैं। आरम्भ से ही इनमें एक पूर्णता तथा अपरिवर्तनशीलता रहती है पात्रों के गुण-दोष आदि उनमें आरम्भ से ही रहते हैं, वे नहीं बदलते।'[६] उनका यह कथन वश्लेषिक उपन्यासों के प्रति कितनी भ्रान्त धारणा फैलाने वाला है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वैश्लेषिक उपन्यास के पात्र गत्यात्मक होते हैं। 'सन्यासी' के नन्दकिशोर को ही लें। कहां लड़कियों से घबराने वाला किताबी कीड़ा नन्दकिशोर और कहां अहमन्यता, विलास और स्वार्थ में रत नन्द? नन्दकिशोर की अहमन्यता भी नाना रूप बदल कर सामने आई है। कभी वह जयन्ती से दूर रहने और उससे कदापि विवाह न करने का सकल्प करता है, कभी उसीके गर्व को चूर्ण करने के लिए हठीला बनकर स्वयं विवाह प्रस्ताव रखता है। जयन्ती के प्रति किए गए व्यवहार में भी परिवर्तन का मूल मन्त्र काम कर रहा है। आरम्भ में वह उसे प्रतिपल प्रसन्न रखना चाहता है किन्तु कलाश आगमन पर ही उसके अन्तर्मन का हिंसक राक्षस अहं हुंकार मारकर आक्रमक रूप धारण करता है।

बौद्धिकता का आग्रह भी 'सन्यासी' में कम नहीं है। नन्दकिशोर के मन और मस्तिष्क का सघर्ष इसे दीप्ति प्रदान करता है। जब नन्दकिशोर की अहंभावना सशययुक्त हो जाती है तब उसकी चेतन बुद्धि उस सशय को निर्मूल समझती है किन्तु उसका अवचेतन मन सदैव सशय भार से दबा रहा। अवचेतन ही चेतन को प्रचालित करता है अतएव उसके मन पर विवेक का कोई प्रभाव काम नहीं करता। शिमला पहुंचने पर नन्दकिशोर की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति और एकान्त सुविधा उसे मनन करने का अवसर देते हैं। पलग पर चित्त लेटकर वह सोचता है और कल्पनात्मक स्पन्दन से पुलक उठता है। पहाड़ी पर सैर करने निकलता है तो दिवास्वप्नों में खो जाता है। मायामयी कल्पना उसके मस्तिष्क को झकझोर डालती है वह उसी दशा में नयन्ती और शान्ति से स्वगत वार्तालाप करता है। यह सब अन्तर्जगत में ही घटित होता है बाहर तो केवल प्रकृति है, स्वस्थ निर्मल और भव्य प्रकृति।

'सन्यासी' की रचना आत्मकथात्मक (उत्तम पुरुष) शैली में हुई है। वास्तव में विश्लेषणात्मक शिल्प की कृति के लिए यह सबसे अधिक उपयुक्त शैली है। इसमें पात्रों को अन्तःप्रेक्षण विधि द्वारा या बाह्य निरीक्षण विधि द्वारा अन्तर्जीवन की समस्त क्रियाओं

---

५ सन्यासी—पृष्ठ ३५३ ५४

६ हिंदी उपन्यास—पृष्ठ ३०६

का विश्लेषण करने की सुविधा रहती है। 'सन्यासी' का नन्दकिशोर एक आत्मकेंद्रित (Introvert) व्यक्ति है। उसका अवचेतन मन जीवन के नाना प्रभावों को ग्रहण करता है। बाह्य रूप से तुच्छ हास्यास्पद और सक्रमणशील दीखने वाले भाव और क्रियाएं भी उसके अन्तमन में बहुत गहरी पैठ रख चुकी हैं। आत्मविश्लेषण की विधि द्वारा वह अतीत की समस्त स्मृतियों, कामनाओं एवं प्रतिक्रियाओं को चीर फाड कर हमारे सामने रख देता है।

जोशी की शैली मूलत एक भावुक कवि की शैली है, जिसमें गति है प्रवाह है और आकर्षण है। उन्होंने सन्यासी में भी इस शैली का प्रयोग किया है। बाह्य घटनाओं के कतिपय वर्णनों को छोड़कर आन्तरिक स्थिति का अन्वेषण ही सर्वत्र दीख पडता है। इन आन्तरिक स्थितियों का विश्लेषण भावपूर्ण शैली में हुआ है। भावनाओं की द्वन्द्वपूर्ण स्थिति के चित्रण की शैली में अपूर्व कौशल के दर्शन हम होते हैं। नन्दकिशोर शिमला पहुंच जाता है। वहां जयन्ती का साक्षात्कार उसकी मनोदशा बदल देता है। उस प्रतिक्रिया का मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण अप्रस्तुत विधान द्वारा दिया गया है। प्रकृति चित्रण के समय उनकी शैली ओजपूर्ण वेगवती और उदात्त हो गई है। चौथे परिच्छेद में जमुना तट पर खड़े होकर और सत्रहवें परिच्छेद में गंगा की तरंगों के निकट पहुंचकर नन्दकिशोर की मानसिकता सौन्दर्य मग्न अनुभूति का स्पर्श पाकर औपन्यासिक रूप के समस्त वातावरण को चीरकर अपनी आत्मा के पूरे वेग के साथ बह गई है। वहां गद्य में भी काव्यात्मकता दीख पड़ती है।

चरित्र चित्रण करते समय भी भाषा और शैली भावावेश से पूर्ण होकर प्रवाहित हुई है। शान्ति का चित्रण करते हुए नन्दकिशोर भावपूर्ण कवित्व शैली में कहता है—
लज्जा की भीनी पर्दी उसकी सहज तेजस्विता को ढकने की चेष्टा कर रही थी। पर जिस प्रकार रेडियम का भास्वर प्रकाश उसके भीतर न समा सकने के कारण ज्योतिकणों को बाहर बिखेरता रहता है। उसी प्रकार शान्ति की शुभ्र, समुज्जवल, सतेज पवित्रता उसके मुखमण्डल के प्रत्येक सूक्ष्मतम छिद्र से अदृश्य किरणों के रूप में बरबस निर्गत हो रही थी, जिस प्रकार एक अपूर्व, अकथनीय कवित्वमय भाव मेरे प्राणों के अणु अणु में सचरित होने लगा था।

आत्मकथात्मक शैली के अन्तर्गत बातचीत में पत्र योजना द्वारा पत्र शैली का

उपयोग भी किया है। ठीक है, यह रुपया समाप्त हो जाने के कारण विवशतावश किया गया है किन्तु उपन्यास की कथा में इसका विशेष महत्त्व है इस तार में नन्द का पता पढ़कर ही उसके भाई इलाहाबाद पहुचते है उनके वहा पहुचने के कारण (तथा नन्द की मानसिकता के कारण भी) नन्दकिशोर शाति प्रणय पर वज्रपात होता है।

शान्ति द्वारा बलदेव प्रसाद के नाम लिखा पत्र और लिफाफा देखकर नन्दकिशोर श्रीयुत बलदेवप्रसाद जी मेहरात्रा पढ़कर ईर्ष्या जनित वेदना की अनुभूति करता है किन्तु अन्दर प्रिय भाई बलदेवप्रसाद जी पढ़कर उसकी मानसिक स्थिति स्वस्थता की अवस्था प्राप्त करती है। मृत्यु से पूर्व नन्दकिशोर के नाम जयन्ती द्वारा लिखा गया पत्र भी महत्त्वपूर्ण है। पत्र पर्याप्त लम्बा है अन्तिम अभिनन्दन से आरम्भ होकर वह श्लेषिक अन्वेषण से पूर्ण होकर सामने आया है। इसमें नन्द कैलाश और जयन्ती आदि पात्रो के अवचेतन चेतन का स्पष्ट चित्र अकित हुआ है। पुरुष के पुरुषत्व और अह पर वज्र प्रहार भी इसी पत्र द्वारा हुआ है। इसकी अनुभूति पत्र पढ़ते ही नन्दकिशोर ने अपने सिर पर, हृदय पर, रीढ़ पर निरन्तर निष्ठुर निर्मम आघात के रूप में स्वीकार की है।

अन्तिम पत्र शाति ने नन्दकिशोर के लिए लिखा है। यह पत्र भी अपने ढग का वश्लेषिक पत्र है। जयन्ती के पत्र की तुलना में इसका विश्लेषिक पक्ष गौण है, किन्तु दार्शनिक पक्ष प्रबल है। शाति मुक्त पथ की पथिका बनती है जीवन की नाना कठिनाइयो से हारकर ही नही अपितु जीवन के उदात्त स्वरूप का साक्षात्कार एव अनुभूति प्राप्त करने की प्रेरणा से वशीभूत होकर वह अन्तद्वन्द्व, दुविधा मोह आदि सासारिक आकर्षणा तथा आघातो से ऊपर उठने के लिए यह पथ अपनाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ये पत्र आत्मकथात्मक शैली में पूर्णतया फिट बैठ गए हैं। इनके द्वारा पात्रो की अन्तश्चेतना का चित्र स्पष्ट हो गया है।

साधारणतया 'सन्यासी' की भाषा और शैली में एक बहाव रहा है किन्तु कही कही विचार वितर्कों के प्रसग में अवरोध भी प्रस्तुत हो गए हैं। इन अवरोधो को हम शैलीगत दोष नही मानते, अपितु विश्लेषिक शिल्प की प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार कर स्वाभाविक मानते हैं।

पर्दे की रानी—१६४१

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के अन्तर्गत पर्दे की रानी का भी विशिष्ट महत्त्व है। 'लज्जा' और सन्यासी दोनों की अपेक्षा इसमें मनोवैज्ञानिक तत्त्व का आधिक्य है। इसमें मनुष्य की अन्तश्चेतना में विराजमान मूल प्रवृत्तियो को पकड़ने का सफल प्रयास हुआ है। मानव मन की विचित्रता और जटिलता को केन्द्रस्थ रखकर समस्त कथा विधान की योजना हुई है। कथा के अन्तर्गत समस्त कार्य-कलाप विरोधाभास तथा द्वन्द्वपूर्ण स्थितियों का विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है।

आधुनिक मनोविज्ञान ने मनुष्य की घोर अहम्मन्यता, (Super ego) हीन भावना (Inferority Complex) और दमित काम वासना को वैयक्तिक विकृति की असाधारण अवस्था का मूल कारण सिद्ध कर दिया है। पर्दे की रानी में इन्हीं मना

विज्ञान सम्मत तथ्यों का उद्घाटन किया गया है। निरंजना और इन्द्रमोहन दोनों ही घोर अहवादी (Super egoist) प्रवृत्ति के पात्र हैं। दोनों का अहं भाव एक-दूसरे से होड़ लेने को तैयार बैठा है और द्वन्द्वात्मक स्थिति में एक दूसरे को पछाड़ने के निमित्त ही नाना योजनाएं बनाता है। इस अहं के कारण ही दोनों समय-समय पर हिंसा प्रतिहिंसा का रूप धारण करते चलते हैं। अहं का विकास ही विकृति को बढ़ाता है—इस तथ्य का उद्घाटन उपन्यासकार ने एक पात्र चन्द्रशेखर द्वारा कराया है। निरंजना वार्ता के प्रसंग में बौद्धिक युग के अहंकारी मानव का विश्लेषण करते हुए वह कहता है— जिन दुर्घटनाओं का उल्लेख तुमने किया है उनके मूल में है वर्तमान अहंवादी युग की कूट मनोवृत्ति। असल बात यह है कि आधुनिक बुद्धिवादी युग में मनुष्य ने अपने अहंभाव का विकास आवश्यकता से इतना अधिक कर लिया है कि उसके फलस्वरूप वह पौराणिक भस्मासुर की तरह विनाश के पथ की ओर बढ़ता चलता जाता है। मैं तुमको और इन्द्रमोहन को इस युग की विशेषता के दो चरम निदर्शन मानता हूं। तुम दोनों में अहंभाव हद दर्जे तक विकास को प्राप्त हुआ है ऐसा मेरा विश्वास है। तुम अपने को एक बदया माता और खूनी पिता की लड़की समझकर जो बेहद विचलित हो उठी हो, उसके मूल में तुम्हारा वही चरम विकास प्राप्त अहंभाव है। तुम्हारी ही तरह इन्द्रमोहनजी की अहं वृत्ति (और स्वभावतः आत्मचेतना भी) आवश्यकता से बहुत अधिक विकसित हो उठी थी। उसी वृत्ति का यह परिणाम था कि उनके अन्तर्मन ने उनके भीतर अज्ञात में यह भावना भर दी कि जिस नारी ने उनके हृदय में प्रेम की आग जलाई है और स्वयं बची हुई है उसके ऊपर हर हालत में विजय प्राप्त करनी होगी और उसे दण्डित करना होगा—चाहे उस दण्ड देने के लिए स्वयं क्यों न मरना पड़े। वर्तमान युग की अहंवादी मनोवृत्ति मुझे कभी-कभी बहुत ही विचित्र लगती है नीरा। वह हंस हंसकर आत्म विनाश के लिए तत्पर हो उठता है बशर्ते उसके उस आत्म विनाश द्वारा उसके अहंभाव की विजय प्रमाणित हो उठे। इन्द्रमोहन ने अहंवादी की इस विशेष मनोवृत्ति को चरितार्थ करके दिखाया है। यही मनोवृत्ति यदि इस प्रकार विकृत रूप में अपना प्रदर्शन न करके उन्नत पथ पकड़े तो समाज का कितना बड़ा कल्याण हो सकता है। अहंवादी यह बात नहीं सोचना चाहता।[1]

कथोपकथन उपन्यासकार की यह विशेषता है कि वह वर्णनात्मक कथाकार की अपेक्षा सीमित रूप में ही कथा में प्रवेश करता है। प्रथम रूप में तो करता ही नहीं—आत्मकथात्मक शैली द्वारा वह कथा का सूत्र ही पात्रों को प्रदान कर देता है। पर्दे की रानी भी पात्रमुखापेक्षित आत्मा कथा के रूप में प्रस्तुत की गई है। इसमें पात्रान्तस्थ मूल प्रवृत्तियां अन्तःप्रेक्षण विधि द्वारा व्यक्त की गई हैं। पात्र या तो अपना चरित्र विषयक विश्लेषण स्वयं करते हैं या दूसरे पात्रों की हृदयस्थ मनोग्रन्थियों का खोलते हैं। इस रचना में यह प्रतीत होता है कि पात्रों द्वारा विश्लेषण का अवसर जुटाने के लिए ही समस्त घटना विधान तैयार किया है। मनोवैज्ञानिक तत्व एकत्रित किए गए हैं। और

---

1 पर्दे की रानी—पृष्ठ २१६, २२०

अहवाद की चर्चा हो चुकी, अब हीन भावना की ग्रंथि को लें।

निरजना 'हीनता की भावना' से ग्रसित एक असाधारण पात्र के रूप मे प्रस्तुत की गई है। उसम हीनता की तीनो सरणिया (stages) वतमान है। एक वेश्या मा की पुत्री और खूनी पिता की सतान हाने का बोध उसे हीनता की ग्रंथि म जकड लेता है। फिर उसके सारे कृत्य हीनता जनित क्षति की पूर्ति के लिए प्रयुक्त हुए हैं। यह दो रूपो म सभव हुआ—पहले हीनताजनित क्षति पूर्ति की आकाक्षा उदय हुई, फिर उस आकाक्षा की पूर्ति हित शक्ति जुटाई गई। इस शक्ति को अर्जित करने के लिए ही वह प्रतिपल सचेष्ट रहती है, क्रियात्मक एव गत्यात्मक हो उठी है। हीन कहनेवाले या समझनेवाले मनमाहन के पुत्र इन्द्रमोहन के भीतर लालसा की आग भडकाने का काम भी इसी भावना का प्रतिफल है। स्वय विकृति की ओर झुकाव भी इसी ग्रंथि का परिणाम है।

आरोपण (Projection) की मनोवृत्ति का समावेश वदनेषिक उपन्यासो मे उपलब्ध होता है। निरजना अपनी स्थिति को स्पष्ट करती हुई शीला पर यह बात अभिव्यक्त करना चाहती है कि वह निर्दोष है शुद्ध हृदया है यदि दोषी है तो इन्द्रमोहन है जो मीठी मीठी बातो का भुलावा देकर तुम्हे तिल तिलकर मार रहा है। किन्तु वह न तो अपने को धोखा दे पाती है न शीला को ही अधिक देर तक धोखे की टट्टी मे रख सकती है। शीला खूब अच्छी तरह उसे पहचान चुकी है। वह उसकी आरोपण (Projection) लीला स परिचित है। उस पता है कि निरजना अपने दुष्कृत्यो को छिपाने भर के लिए पुरुष मात्र को बदनाम करती फिरती है। वह पुरुष को आत्मगत कहकर अपने अहवादी दृष्टिकोण को दूसरा पर आरोपित करके सुख की सास लेना चाहती है, किन्तु नही जानती कि अपने माग म बिछे काटे स्वय ही बो रही है।

पर्दे की रानी म भी अन्य वैश्लेषिक उपन्यासो की भाति वयक्तिक पात्रो की उदभावना हुई है। निरजना, इन्द्रमोहन और शीला प्रसिद्ध वयक्तिक चरित्र हैं। इनके माध्यम स मानव मन की नाना विकृतिया पर प्रकाश डाला गया है। आत्म विश्लेषण के साथ परात्म विश्लेषण की पक्तिया द्वारा इस उपन्यास के सभी पात्रो का चारित्रिक अन्वेषण सभव हो सका है। आत्म विश्लेषण करके ही निरजना न अपना चरित्रगत विकृतिया, असाधारण स्थितियो और दुविधा मूलक विरोधाभास का परिचय पाठक को दिया है। परात्म विश्लेषण विधि द्वारा ही गुप्तजी ने निरजना और इन्द्रमाहन के अहभाव के रुद्र रूप का चित्र खीचा है।

पर्दे की रानी के पात्र शून्य की सष्टि नही है। उनकी विशिष्ट मानसिकता की पूरी छान-बीन की गई है। उनकी विचित्रता, जटिलता, अस्थिरता व मनोविज्ञान सम्मत कारण खोज लिए गए है। इन्द्रमोहन ने शीला स विवाह क्यो किया निरजना ने इन्द्रमोहन को होटल म स्वय ले जाकर भी चरम अवसर के आ जाने पर क्यो ठुकराया, फिर अन्त म रल यात्रा म ही आत्म समपण—ये विचित्र और जटिल मनोवृत्तिया विश्लेषणात्मक शिल्प विधि द्वारा स्वय सुलती गई हैं। पात्रो की मुखाकृति भी उनके चारित्रिक अध्ययन की सामग्री जुटाती है। उनके अन्तर्द्वन्द्व मुख्य मुख्य घटनाओ के प्रेरक कहे जा सकते हैं। शीला का अन्तर्द्वन्द्व और मत्यु आलिंगन निरजना इन्द्रमाहन सामीप्य का मूल

केन्द्र है। कतिपय पात्रों का व्यक्तित्व उनकी दुरंगी चाल और दुहरे रूप में देखा जा सकता है। निरंजना तो दुहरे व्यक्तित्व की प्रतीक ही बन गई है।

वैयक्तिक तत्त्वों से परिपूर्ण, मनोवैज्ञानिक प्रसंगों से अन्वीत यह रचना दो पात्रों की आत्म-कथा को लेकर पात्रमुखोद्‌गीरित शैली में रची गई है। छोटी से छोटी घटना के अनन्तर पात्र मनोविश्लेषण प्रक्रिया में मग्न दृष्टिगोचर होते हैं। यह विश्लेषण प्रवृत्ति वैश्लेषिक शिल्प की विशेष देन है। 'पर्दे की रानी' के विश्लेषण अन्य कृतियों की अपेक्षा संख्या में ही अधिक नहीं हैं अपितु वैज्ञानिक और कार्य कारण शृंखला में तारतम्य स्थापित करनेवाले भी सिद्ध हुए हैं। इस रचना की वाक्य रचना में एक अद्भुत गठन है। कथोपकथन चुस्त और आकर्षक है।

प्रेत और छाया—१९४६

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यास सदैव आत्म कथात्मक शैली में ही नहीं लिखे जाया करते। इसका प्रमाण 'प्रेत और छाया' पढ़कर पाठक को मिल जाता है। अन्य पुरुष शैली में लिखा गया जोशी का पहला उपन्यास 'प्रेत और छाया' है। इस रचना में जोशी ने मनोवैज्ञानिक तत्त्वों को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे दिया है। इसी कारण इस पर 'केस हिस्ट्री' अथवा 'साइको-थेरपी' होने का आरोप लगाया जाता है। इस उपन्यास के केस हिस्ट्री बन जाने का भी कारण है। मूल कारण यही है कि जोशी ने इस उपन्यास की रचना केवल मात्र एक धारणा विशेष का प्रतिपादन करने के लिए की है।

जोशी की वह धारणा जो इस उपन्यास की केन्द्रस्थ धुरी है, उनके दृष्टिकोण का परिचायिका है इसी रचना की भूमिका में अवतरित की जाती है—'विश्व में तब तक अपेक्षाकृत (पूरी नहीं) शांति की स्थापना असंभव है, जब तक मानव समाज अन्तर्जीवन को उतना ही (बल्कि अधिक) महत्त्व नहीं देता जितना कि बाह्य जीवन को। क्योंकि इस बात के निश्चित प्रमाण जीवन की गहराई में दृष्टि डालनेवाले मनोवैज्ञानिकों को मिलते हैं कि सामूहिक सभ्य मानव के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन के युग युग में परिवर्तित पुनरावर्तित होनेवाले रूप उसकी सामूहिक अज्ञात चेतना में निहित प्रवृत्तियों के रहस्यमय परिचालन से बनते हैं और बिगड़ते हैं। इसलिए मानवता के लिए सबसे कल्याणकर उपाय यह है कि वह अपनी उस अज्ञात चेतना के गहरे और अधिक गहरे स्तरों में प्रवेश करके उसके भीतर जड़ जमानेवाली आदिकालीन पशु प्रवृत्तियों की छान बीन और विश्लेषण करे और उस पातालपुरी की नारकीय अन्धकार में बद्ध उन संस्कारों की यथार्थता स्वीकार करके ऐसी तरकीब निकालने का प्रयत्न करे जिससे गलत रास्ते से होकर उन बद्ध प्रवृत्तियों का विध्वंसकर विस्फोट न हो।'[1] अतः इस रचना को प्रकाश में लाने के लिए वह अन्तर्जीवन को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देकर चले हैं जिसके कारण मनोविश्लेषण ही प्रमुख हो गया है, अन्य तत्त्व कथा, चारित्रिकता, दर्शन आदि दब गए हैं।

---

१ प्रेत और छाया की भूमिका—तृतीय संस्करण—पृष्ठ ११, १२

'प्रेत और छाया' का आरम्भ पूर्व-दीप्ति विधि पर नहीं हुआ है किन्तु पांचवें अध्याय के आरम्भ में ही पारसनाथ की अतीत स्मृति उसके मानस पटल पर कौंधकर कथाकार की दीप्ति का आश्रय पाते ही गतानुभूतियों के अलबम में से कुछ चित्र प्रस्तुत करती है। इनमें से पहला चित्र दार्जिलिंग वाली पहाड़ी लड़की का है। कथाकार पहले *उसी की केस हिस्ट्री खोलता है। इस केस को सामने रखने पर भी उसने प्रमुख रूप से* पारसनाथ की अन्तर्वृत्तियों का विश्लेषण ही किया है। उसकी मन्द मधुर मुसकान शालीन समवेपपूर्ण अभिव्यक्ति बाह्य आचरण के पर्दे के पीछे अन्तर्मन में कुंडली डाले हुए काले सर्प की ओर संकेत किया है। आत्म समर्पण के पश्चात विवाह की चर्चा तो उस लड़की की मूर्खता रही इतनी भर कहानी और एक जीवनी नष्ट भ्रष्ट हो गई किन्तु वह पहाड़ी छोकरी मात्र ही नष्ट भ्रष्ट नहीं हुई, जासी ने वैश्लेषिक विधि द्वारा यह सिद्ध *किया है कि नष्ट भ्रष्ट तो पारसनाथ हुआ। क्या हुआ कैसे हुआ?* इस *क्या* और *कैसे* के उत्तर को पाने के निमित्त में ही पारसनाथ के अवचेतन मन का विश्लेषण कर दिया गया है। छठे अध्याय में ही उसके अन्तर्मन में जमी ग्रन्थि का कारण विश्लेषणात्मक ढंग से बनाया गया है यही कि वह जारज सन्तान है।

जारज सन्तान की कल्पना मात्र में पारसनाथ का मस्तिष्क भन्ना उठता है। उसका मन कुण्ठित हो जाता है और दिनचर्या की *दिशा ही बदल जाती है। अवैध सम्बंध* स्थापन ही उसका मनस बड़ा विनोद साधन है क्रिया है। जिस भयंकर घृणा और कुटिल प्रतिहिंसा की मुद्रा बनाकर यह बात कहा गई, वह भी पारस की अन्तश्चेतना को आंदोलित करती है और एक भयंकर रात में विकराल भौतिक छाया का रूप ग्रहण करके पारसनाथ के मस्तिष्क को जकड़ लेती है। पारस का चेतन मन सौ सौ उपाय करने पर भी उस *छाया से छुटकारा नहीं पाता। जिस नारी के सम्पर्क में वह आता है वही उसे उसकी* (मनोग्रन्थि की) प्रतिछाया रूप में दिखाई देता है। उसे रह रहकर एक ही विचार सताता रहता है। यदि उसकी मां कुलटा थी तो समस्त नारी समाज घृणित पतित, भोग्या है। काची मजरी, नन्दिनी सभी उसके उपभोग की सामग्री हैं, एक मात्र हीरा अपवाद बनती है वह भी तब, जब उसकी मनोग्रन्थि खुल जाती है।

प्रेत और छाया में मनोवैज्ञानिक विश्लेषणा तथा ब्योरों की बाढ़ कमी नहीं है। उपन्यास में कथा से अधिक मनोवैज्ञानिक वेश हैं और उनका विकास वैश्लेषिक विधि पर हुआ है। वसन्त के माधुर्य में पुष्पों की छाया में, नदी के तट पर तो हमने प्रणय लीला की बातें सुनी थी, किन्तु वर्षा की वेला में निर्जन घर में मृत शरीर के पास प्रेम क्रीड़ा की कल्पना प्रेत और छाया' की ही देन हैं, किन्तु यह प्रेम क्रीड़ा भी प्रसंगवश में कहा आती है। वैश्लेषिक कथाकार ने *विश्लेषण की सुविधा प्राप्त करने के लिए ये केस जोड़ दिए* हैं। ऐसी भयानक रात में ही नायक के अनल मन में जब उसका पशु जागृत होता है तभी कुछ अज्ञात और अव्यक्त शंकाएं उसके अन्तर्मन को जकड़ लेती हैं। उस अघड़ और अंधी रात्री की विकट और लोमहर्षक प्रेत छाया आतंक उत्पन्न करके पारसनाथ को जड़ीभूत कर देता है। वह मजरी की कथा सुनता है किन्तु डरता हुआ अज्ञात रहस्यमय भय से सिहरता हुआ। कथाकार ने यहां भी कथा कम कही है। मजरी की मां की संक्षिप्त कथा

जो दो पृष्ठों में आ सकती थी उसके लिए बहुत अधिक मनोवैज्ञानिक तत्त्व इकट्ठे कर पूरे तीन अध्याय और सतीस पृष्ठ (१४६ से १८६) लगा दिए गए हैं।

'प्रेत और छाया' में पारसनाथ का एक अवैध संबंध नन्दिनी नामक विवाहिता स्त्री से चलता है। इस अवैध संबंध में कथा तो नाम मात्र की ही दी गई है। वास्तव में यह आधुनिक मनोविज्ञान का ही एक नग्न रूप है जो पाश्चात्य उपन्यासकार डी०एच० लारेंस के उपन्यासों के मनोवैज्ञानिक केस से मिलता जुलता है। लारेंस के उपन्यासों में सुखी स्वस्थ दाम्पत्य जीवन का अभाव है। उनका जीवन पति पत्नी के माधुर्य का साधारण जीवन नहीं है, अपितु पशुओं की तरह नित्य संघर्षरत स्त्री और पुरुष का कटु जीवन है। लारेंस के नारी पात्र अपने पुरुष पति पात्रों के प्रति एक दुर्दान्त विकृत घृणा के भावों से ओतप्रोत हैं। इसी तरह प्रेत और छाया की नन्दिनी भुवरिया के विचार मात्र से नाक भौं चढ़ाती चित्रित की गई है। एक नपुंसक पति की पत्नी होने की कल्पना उसके मन और मस्तिष्क को आत्मग्लानि से पूरी मात्रा भर देती है। वह सुनसान अपने पति को गालियां देती है। पारसनाथ से वार्ता करते हुए एक दिन कहती है— 'आप नहीं जानते यह महाशय कितने बड़े अर्थ पिशाच हैं? रुपया की खातिर—अब आपसे क्या छिपाऊं—यह मेरी इज्जत तक उतारने पर उतारू हो गए थे। जिन राजा साहब का जिक्र मैंने अभी आपसे किया है उन्हीं के हाथ कुछ दिनों के लिए मुझे बचने की बात यह तय कर चुके थे श्मशान के किसी चाण्डाल के साथ मुझे रहना पड़ता है वह इस घात में बैठा है कि कब मैं मरूं और कब कफन उतारकर, उसे बेचकर जो कुछ भी रुपया मिले, उससे लाभ उठावे।

यह आधुनिक मनोविज्ञान का ही मायाचक्र है कि जिसने आधुनिक पति पत्नी के दाम्पत्य संबंधों के रहस्यों को खोला है। पति पत्नी ही क्या? प्रेमी और प्रेमिकाओं की की ग्रन्थियां, भाव भंगिमा, घात प्रतिघात और अन्तर्द्वन्द्वों का विश्लेषण भी किया है। प्रेत और छाया के नन्दिनी और भुवेरिया की बात ऊपर हो चुकी है, अब नन्दिनी और पारसनाथ के संबंध को ही ले लीजिए। शुरू में ही कुछ प्रणय व्यापार के पश्चात परस्पर विरोधी भाव प्रवणता (Ambivalence) का प्रवाह बहने लगता है। जब पारसनाथ नन्दिनी का भेद न जाना है और उस हाल हो जाता है कि वह तो वेश्या है पतिपरायणा सती सावित्री नहीं, तभी उसके मन में दो तरह की परस्पर विरोधिनी प्रवृत्तियां अति निकट रहकर बहने लगती हैं। उसे नन्दिनी जितनी प्रिय है उतनी घृणास्पद भी है। घृणा फिर भी प्यार—यह अपनी तरह का केस है जिसे जोशी ने मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा उद्घाटित किया है। पारसनाथ की मनःस्थिति का विश्लेषण जोशी ने इन शब्दों में किया है—'पारसनाथ भीतर ही भीतर जलभुनकर मन ही मन सिर धुनकर रह जाता था। मजा यह था कि नन्दिनी ज्यों ज्यों उसके जलने का कारण बनती थी त्यों-त्यों पारसनाथ के मन का लगाव उसके प्रति बढ़ता चला जाता था। पारसनाथ को इस बात का बड़ा आश्चर्य था कि जितना ही अधिक वह नन्दिनी से घृणा करना चाहता है उतना ही उसके

---

२ प्रेत और छाया—पृष्ठ १६८

ति आकर्षण क्या हुआ जाता है ? क्या ईर्ष्या म यह विशेषता ह कि वह प्रेमाकर्षण का ान पर चढा देती है ? इस अनुभूति के मूल म कौन-सी प्रवृत्ति काम कर रही है ? या यही वास्तविक प्रेम की वेदना है ? या यह ज्वलनशीलता उसके पराजित अह की तिक्रिया है ? ठीक है। '[3] इस प्रकार के वश्लेषिक उद्धरणो का ही उपन्यास म बाहुल्य । इनके द्वारा या तो अवचेतन म दबी काम-कुण्ठा का या हीनता की ग्रंथि का या अह ा विश्लेषण किया गया है। अत सिद्ध हो जाता है कि इस उपन्यास म मनोविज्ञान का ाग्रह ही प्रधान है।

प्रेत और छाया म एक असाधारण वयक्तिक पात्र की उद्भावना हुई है। इसका ारित्रिक पतन 'सन्यासी' के नन्दकिशोर से कही हय कोटि का है। नन्दकिशोर एक या ो स्त्रियो तक अपने यौन सबध को सीमित रखकर दूसरी स्त्री क साथ विवाह सबध जोड ता ह। वह भी मन की अपसाधारण स्थिति और भावना की पूर्ति के लिए क्या न जोडा ो, किन्तु पारसनाथ के लिए विवाह की कल्पना मात्र सक्रामक है। वह बुरी तरह से कडा हुआ रोगी है। उपन्यास म उस अनेक बार प्रेत और उसके सम्पर्क म आने वाली स्त्रयो को छाया क रूप म चित्रित किया गया है।

चरित्रो म बाह्य-द्वन्द्व गौण है। अन्तद्वन्द्व की अवस्था म पत्नी मजरी, नन्दिनी और ारसनाथ कथा क लिए भार बन गए है। यह ठीक है कि य पात्र गत्यात्मक ह स्थिर रहा, किन्तु मनोवज्ञानिकता क आग्रह ने इनको अनेक स्थलो पर कुण्ठित बनाने क साथ ाफी समय तक स्थिर भी बना दिया गया है। मजरी और नन्दिनी को ही ल। मजरी ातृ भक्त है, इसी मातृ प्रेम के कारण वह पारसनाथ के साथ उस समय तक चलने को तयार नही होती जब तक उसकी मत्यु न हो गई। मत्यु क पश्चात वह अनुभव करती है कि उसी मा न उसके जीवन की गति को रोक रखा था भीतर से उसकी मनोभावनाओ को गति नही मिल रही थी। जब नन्दिनी को पता चलता है कि पारसनाथ का यथार्थ स्वरूप क्या है और उसके जीवन म प्रवचना घटित हुई तो वह जडीभूत हो जाती है — मानसिक घात प्रतिघात के पश्चात पुरुष मात्र स घृणा करने लगती है। पात्रो क द्वन्द्वचक्रो क वश्लेषिक चित्रण की हामी स्वय जोशी ने भूमिका म भर ली है किन्तु य विश्लेषण अन्य पुरुष शैली अपनाने के कारण अधिकतर जोशी द्वारा ही प्रस्तुत हुए है यत्र-तत्र पारसनाथ मजरी आदि पात्र भी अपनी मन स्थिति पर मनन और विश्लेषण कर लेते हैं। पात्र द्वारा अन्य पात्रो का विश्लेषण भी इस रचना म उपलब्ध होता है।

वश्लेषिक पद्धविधि के उपन्यासो म कथा मनोविज्ञान क साथ-साथ दर्शनशास्त्र क प्रश्नो स भी आवृत रहती है। युग द्वारा प्रतिपादित सामूहिक अवचेतन के महत्त्व का सिद्धान्त केवल मात्र मनोविज्ञान की थाती ही नहीं है, यह स्वयमेव एक दार्शनिक सिद्धान्त है। सामूहिक अवचेतन जीवन को उचित दिशाओ म परिचालित करता है। इसम विच्छेद करने वाली वस्तु हो व्यक्ति को समाज से परे ले जाती ह, उस वस्तु के हटाने पर ही सामूहिक अवचेतन के साथ जीवन गति म अनुकूलता आती है। व्यक्ति विशेष अपनी

---

३ प्रेत और छाया—पृष्ठ ३१८

स्वाभाविक स्थिति प्राप्त करता है। 'प्रेत और छाया' में सामूहिक अज्ञात चेतन के साथ पारसनाथ तथा मंजरी आदि पात्रों की अन्तश्चेतना का सामंजस्य स्थापित करा कर ही दोनों को स्वस्थ जीवन दृष्टिकोण प्राप्त कराया गया है। वे आत्म कल्याण के साथ-साथ लोक कल्याण के आदर्श जीवन-दर्शन को अपनाकर कथा की इतिश्री में योग दान देते हैं।

प्रेत और छाया के पात्र समय असमय मानसिक चिन्तन में लगे दृष्टिगोचर होते हैं। यह भी युग विशेष की देन है। बौद्धिक युग का व्यक्ति पात्र कभी सजग होकर मनन करता है कभी बेसिर पैर की बातें सोचता है। पारसनाथ को ही लें। तरह-तरह की ऊटपटांग, बेसिर पैर की कल्पनाएं उनके मन और मस्तिष्क को घेर रखती हैं। ये क्षण में उदय होती हैं और लहर की भांति दूसरे क्षण में विलीन हो जाती हैं। विचित्र विचित्र से भय भयंकर भ्रान्तियां और जटिल दुश्चिन्ताएं उसके मस्तिष्क को आच्छादित रखती हैं। पारस मंजरी को यह कहकर चलता है कि डाक्टरनी को बुलाकर लाया किन्तु मस्तिष्क में उठी तूफानी हवाएं उसे नर्तकी के घर ले जाती हैं। उसका चेतन उससे एक कार्य कराना चाहता है किन्तु अवचेतन उसे दूसरी दिशा में ही ले जाकर पटक देता है।

जोशी के उपन्यास साहित्य में नाटकीयता देखने वाले आलोचक भी विद्यमान हैं। एक आलोचक लिखते हैं— 'इलाचन्द्र जोशी के निर्वासित और अन्य उपन्यास संन्यासी' 'पर्दे की रानी', प्रेत और छाया मनुष्य के आचरण को उपचेतन मन के प्रभाव से निर्धारित चित्रित करते हैं। यद्यपि अपने सभी उपन्यासों में श्री जोशी ने पात्रों की मानसिक चेष्टाओं और प्रवृत्तियों का विश्लेषण पात्रों द्वारा ही कराया है और यथासम्भव अपने व्यक्तित्व को अलग रखा है और इस प्रकार इन्होंने उपन्यास रचना में नाटकीय शैली को ग्रहण किया है और उसमें इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है।[४] प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक मतानुसार जोशी की रचनाओं में नाटकीयता का सर्वथा अभाव है। प्रमुख रचनाएं अन्तर्जीवन का चित्रण प्रस्तुत करती हैं इसके लिए विश्लेषणात्मक शिल्प विधि को अपनाया गया है। 'जहाज का पंछी' समन्वित शिल्प विधि की रचना है जिसकी चर्चा आगे की जाएगी।

जैनेन्द्रकुमार

जैनेन्द्रकुमार हिन्दी जगत में जैनेन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। जोशी के पश्चात ये विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के दूसरे प्रमुख कथाकार हैं। इस सम्बन्ध में एक आलोचक का कथन पठनीय है— जैनेन्द्रकुमार हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार हैं जिन्होंने मध्यवर्गीय समाज की नवीन चेतना को मुखरित किया है। उन्होंने व्यक्तित्व को मूलतः व्यक्ति मानकर उसकी मान्यताओं को वाणी देने का प्रयास किया है। वे व्यक्तिगत जीवन का चित्रण करते हुए बाहर से भीतर की ओर आए हैं सामाजिक समस्याओं के स्थान पर व्यक्तिगत उलझनों का विश्लेषण करने लगे हैं।[१] वैयक्तिक प्रश्नों का विश्लेषण ही जैनेन्द्र को इष्ट है। ये कथा निर्वाचन (Plot Treatment) चरित्र अंकन की अपेक्षा अपने

---

४ डा० रामअवध द्विवेदी : हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा—पृष्ठ २०६

१ डा० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ १६६

दृष्टिकोण के प्रति अधिक सचष्ट एव आग्रही दीख पडते ह। उपन्यास की विचार प्रधानता की इस प्रवृत्ति की ओर स्पष्ट सकेत करते हुए अग्रजी के प्रसिद्ध आलोचक श्री ग्रेबो लिखते हैं— स्पष्टत औपन्यासिक शिल्प म दृष्टिकोण मूल तत्त्व है। कोई दृष्टिकोण अपनाने पर ही कथानक चरित्र चित्रण, ध्वनि वणन आदि का रूप एक सीमा तक निश्चित होता है।[2] जनेन्द्र म विचारक कथाकार अपन कथात्मक कलाकार से ऊपर उभर आता है। जनेन्द्र प्रमचन्द की भाति अपन उपन्यासा मे समस्याए अवश्य उठात है किन्तु सवत्र उनका समाधान दने के लिए रुकने नही। उनके मतानुसार इससे औपन्यासिक शिल्प बिगड जाता है। व लिखन है—' कहानी लखक किसी घटना का, सत्य का या भाव को अनुभव करता है। और सहसा उसे पकड लेता है—वह उसक मन म पठ जाता ह। बस इसी बिन्दु स कहानी शुरू हुई जहा उस रोका टेक्नीक बिगड गई।[3] इस सबध म जनेन्द्र के शिल्प की प्रशसा करत हुए डा० दवराज उपाध्याय न भी लिखा है— जनेन्द्र किसी एक समस्या का समाधान दन का प्रयत्न नहा करते इसका कारण यह भी है कि उन्ह असख्य समस्याए दीखती है असख्य प्रश्न मानो जीवन समस्याओ और प्रश्न चिह्ना का ही समुदाय हो। *इतनी समस्याओ के सुलझान की आशा कहा तक की जाए।*'[4]

अपनी लखन प्रक्रिया और शिल्प तथा शली के विषय म पूछे गए मरे कुछ प्रश्ना का उत्तर आपन इन शब्दा म दिया— 'शली व्यक्तित्व मे गर्भित होती है जबकि शिल्प एक सचेत प्रक्रिया है। मेरी ओर स शिल्प यदि एक सचेत प्रक्रिया न भी हो तो भी उपन्यास के गुण मे बाधा आने का कारण नही है। कम स कम मैं अपन शिल्प के बारे म बेभान हू। लिखना मेरे लिए मजबूरी रही है। मैं अपनी प्ररणा से नही लिखता हू बाहरी विवशता से लिखता हू। व्यतीत और मुक्तिबोध दोनो प्रति सप्ताह आकाश वाणी से प्रसारित होने थे तदानुसार एक दिन पहले प्रति सप्ताह उसका परिच्छेद लिखा जाता था। जस 'मुक्तिबोध दस सामवारो को प्रसारित किया गया। इस तरह पुस्तक के दस परिच्छेद दस रविवारो का प्रात काल लिखाए गए। बीच के छ रोज शून्य बीतते थे। दूसरे उपन्यास भी इसी तरह बिखरे ढग स लिखे गए है। जयवधन एक बन्धु अपनी हठ से दस मील दूर से लिखने आया करत थे। नौकरी करत थे और रविवार ही उन्ह मिल पाता था। बीच म कभी-कभी रविवार भी छूट जाता था। ऐसे 'जयवधन का आरम्भ हुआ। इसी बीच लगभग दो मास के लिए मुझ यूरोप प्रवास के लिए जाना पड गया। आने पर हठात फिर सिलसिला शुरू हुआ और इस बार आग्रह रखने वाले दूसरे

---

2 The point of view it is apparant, is the fundemental principle of the Technique in the novel structure By the adoption of one or another point of view plot, characterization, tone description are all to some degree determined

—The Technique of Novel—P 81

३ साहित्य का श्रेय और प्रेय—पृष्ठ ३५६

४ साहित्य चिन्ता जनेन्द्र की उपन्यास कला शीर्षक निब ध से अवतरित

ही बधु थे जो निकट थे। तभी होती में आग ... मान में कि शिल्प का क्या होगा ?'

सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष वैयक्तिक विचारणा के प्रति आग्रह दार्शनिक प्रश्नों की ऊहा-पोह का विश्लेषण जैनेन्द्र की जानी-पहचानी बात है। त्याग-पत्र का प्रमोद सामाजिक मान्यताओं में अनास्था रखने के कारण त्याग-पत्र देता है। मृणाल वैयक्तिक विचारणा के पालन के कारण जीवन भर अशान्त रहती है और इनके उपन्यासों के प्राय सभी पात्र दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक प्रश्नों का समाधान खोजते दिखाई देते हैं।

परख—१९२९

परख की रचना प्रेमचन्द युग में हुई फिर भी यह तत्कालीन औपन्यासिक शिल्प के अनुसार नहीं लिखा गया। इस रचना में शिल्पगत नवीनता है। इसमें विस्तृत जीवन का वर्णन न करके जीवन की कुछ स्थितियों का विश्लेषण किया गया है। कथा के नाम पर जैनेन्द्र के पास कहने के लिए अधिक नहीं है कथा का आधार इतना मात्र भी नहीं है जब लिखने बैठते हैं तो अपना समस्त ध्यान जीवन की विशिष्ट स्थिति (Situation) पर केन्द्रित कर देते हैं फिर उसी स्थिति में सम्बन्धित अनेक स्थितियों का उन्मेष और विकास होता रहता है कहानी भी बढ़ती जाती है किन्तु इसका अधिक श्रेय उपन्यास के पात्रों को मिलता है वे ही उसे खींचे चले जाते हैं।

परख विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के अन्तर्गत आता है। कट्टो-सत्यधन में प्यार है—यही केन्द्रीय स्थिति है। कथा के पूर्वार्ध में इसी स्थिति का विश्लेषण किया गया है। कट्टो बाल विधवा है सत्यधन आदर्शवादी है दोनों एक ही ग्राम में पले हैं साथ साथ खेले हैं अतः प्रेम हो जाता है। इसी बीच परिस्थिति सत्यधन को गरिमा के निकट ले आती है—दोनों को लेकर सत्यधन के मन में द्वन्द्व होने लगता है। जैनेन्द्र ने इसका विश्लेषण दिया है कथा को पात्रों के हाथ में सौंप दिया है वे ही विशेष स्थिति एवं अन्य पात्रों का विश्लेषण करते हैं— फिर वह कट्टो के बारे में सोचने लगा। सोचा क्या दुखिया के प्रति हम निश्चिन्तों का कोई कर्तव्य नहीं है ? क्या संसार का सारा सुख हथिया लेना अन्याय नहीं है। उनके प्रति जिन्हें उसका कण भी नहीं मिल पाया है ? और कुछ नहीं तो उनके खातिर क्या हम अपना सुख कम नहीं कर सकते ? कट्टो को इसी तरह रहने देकर मैं दुष्ट कैसे विलास गर्त में डूब सकता हूं ?'[६]

पात्रों का मनन और विश्लेषण विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उपन्यासकार कुछ कहता ही नहीं। अपनी ओर से कुछ कहने का अधिकार नाटक में नाटककार को भले ही न हो किन्तु यह अधिकार उपन्यास में उपन्यासकार को प्राप्त है कि वह अपनी ओर से कुछ कहे। जैनेन्द्र ने भी कहीं-कहीं दार्शनिकों की-सी टिप्पणियां दी हैं। परख में आप लिखते हैं—पुरुष

---

५ श्री जैनेन्द्र से भेंट वार्ता दिनांक २९ ५ ६८

६ परख—पृष्ठ २०

बनाता है विधाता बिगाड़ देता है —अंग्रेजों की एक कहावत है। संशोधन कर यह भी कहा जा सकता है—पुरुष बनाता है स्त्री बिगाड़ देती है। तब भी कहावत में कम तथ्य या कम रस नहीं रहता। बात वास्तव में यह है कि पुरुष कम बनाता है या बिगाड़ता है। इसी तरह पुरुष कुछ नहीं बनाता बिगाड़ता जो कुछ बनाती और बिगाड़ती है, स्त्री ही है। स्त्री ही व्यक्ति को बनाती है घर को कुटुम्ब को बनाती है जाति और देश को भी मैं कहता हूं स्त्री ही बनाती है। फिर इन्हें बिगाड़ती भी वही है।"[२] यह टिप्पणी देकर जनेन्द्र ने इसे 'परख' के नायक सत्यधन पर लागू किया है। कट्टो और गरिमा के मध्य भग्न रहे सत्यधन की स्थिति को स्पष्ट किया है।

विश्लेषणात्मक विधि के उपन्यासों में कथाकार को बहिर्जीवन की अपेक्षा अंतर्जीवन में डुबकी लगाने की आवश्यकता रहती है। 'परख' में जनेन्द्र ने भीतर की ओर झांका है और जो कथा के भीतर है उसे बाहर लाए हैं केवल भीतर डूबकर नहीं रह गए। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में जनेन्द्र 'भीतर डूबकर रह गए हैं बाहरी अथवा सामाजिक स्थितियों का इंगित मात्र किया है।'[३] मेरे मतानुसार जनेन्द्र ने भीतर की झांकी अवश्य ली है, किन्तु वे उसमें लीन होकर नहीं रह गए अपितु जो भीतर है उसे बाहर लाए हैं। उन्होंने सामाजिक स्थितियों की ओर संकेत ही नहीं किया है अपितु उनका विश्लेषण भी किया है। हां उनकी व्याख्या में वे नहीं पड़े क्योंकि इस शिल्प के उपन्यासों में यह संभव नहीं है। जनेन्द्र ने प्रेम की स्थिति और विवाह की समस्या जैसे व्यापक सामाजिक प्रश्न को वैयक्तिक धरातल पर उभारा है। भगवदयाल के पत्र में प्रेम और विवाह की सीमाएं बताई हैं। स्पर्धा और श्रद्धा, ईर्ष्या और अर्चना जैसे प्रतिद्वन्द्वी भावों का एक आवरण तले मिलाया है। कुछ आलोचक इसे अति आदर्श या असमतावनानिक कहते हैं किन्तु जीवन में यह स्थिति भी संभव है और 'परख' में ऐसी स्थिति को गरिमा सत्यधन के विवाह अवसर पर दर्शाया गया है।

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यासों में चरित्रों की रूपात्मक और व्यापारात्मक व्याख्या नहीं होती अपितु उनका चरित्र विषयक विश्लेषण होता है। गरिमा के चरित्र को ही लें। गरिमा में अहं संबंधी प्रवृत्तियां (Egoistic tendencies) विद्यमान हैं—"वह गवार छोकरी मेरा मुकाबला करेगी—मेरा ? यह भाव उस दिन रात सुन गाए रहने लगा। —आगे जनेन्द्र ने गरिमा के अहं का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अहं जनित ईर्ष्या और स्पर्धा की बात उठाई है। जब उसका भाई बिहारी कहता है— हम वह बंध गए हैं मैंने विवाह किया है' तब गरिमा की चरित्रगत स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है— इसके लिए गरिमा तैयार नहीं थी। यह सौभाग्य क्या कट्टो के योग्य है? कट्टो को प्यार ना करेगी—करती पर यह एकदम इतना सौभाग्य! कट्टो ने यह अपनी योग्यता से कमाया नहीं है निम्नस्तर छल से प्राप्त कर लिया है—इतनी उसकी स्पर्धा।।[४]

---

२ 'परख'—पृष्ठ ४०

३ जनेन्द्र साहित्य और समीक्षा—पृष्ठ ५३

४ परख—पृष्ठ ८०

गरिमा का यह भाव उस पहचानने नहीं देता कि ,सार्दा जिस पात्र म है ? हा पाठक पहचान जाता है। वह कट्टो का त्यागमयी आदर्श कट्टो का पद चुका है। आगे चलकर गरिमा भी उसे पहचान लेती है— यह कट्टो ऐसी बात करती है कि कहीं स बचने की राह ही नहीं छोड़ती। सवाल भी करती है और जवाब भी अपने ही आप द देती है जिसस नहीं करने का मौका नहीं रहता। गरिमा इसकी यही बात देख देखकर अचरज कर रही है। गरिमा से जो चाहे करवा लेती है और हर बात म अपनी ही चलाती है पर एस ढग से कि कुछ कहते नहीं बनता बिलकुल असरता ही नहीं।"[5] "कट्टो को छोटा बनना आता है और जिसे छोटा बनना आता है उसे प्यार पाना आता है, जब इस तरह पीछे पड़ जाती है तो कट्टो का प्यार न देना कठिन हो जाता है।"[6]

सत्यधन कट्टो और बिहारी तीन प्रमुख पात्र है तीनो ही वयक्तिक है। सत्यधन जिस आदर्श की नीव पर जीवन आरम्भ करता है परिस्थितिया के फेर म पडकर विवाहो परान्त उनपर अडिग नहीं रह पाता, सम्पत्ति स उस मोह हो जाता है गरिमा के पिता अपने श्वसुर की मत्यु और वसीयत पर वह क्षुब्ध हो उठता है कट्टो के कहने पर उभ रता है। कट्टो इस उपन्यास की केन्द्रस्थ पात्र है जिसकी धुरी पर कथा घूमती है पात्र भी घूमते है। परिस्थिति अनुकूल वह केवल अपने को ही नहीं मोड लेती अपितु गरिमा बिहारी और सत्यधन को भी बदल डालती है। कट्टो अन्तर म ही नहीं डूबी रहती बाहर की परिस्थितिया और पात्रो का जीवन चर्या के साथ साथ घूमती है।

पात्र आत्मग्लान हो रहा है दूसरे के मन की गाठ भी खोल रहे हैं। बिहारी विनोदप्रिय साधारण सा लगने वाला पात्र सूक्ष्म द्रष्टा है। वह सत्यधन की अन्तश्चेतना म छिपी समस्त कामनाओ का विश्लेषण इन पक्तियो म कर डालता है— मैं तो यही कहूगा कि तुम आत्म प्रवचना करते हो और उसके साथ चलने वाली जो आत्म ग्लानि है उस अपनी मा और बाबूजी और गरिमा की ओर बढकर बचा जाना चाहते हो सो नहीं होगा सत्य। वास्तव म सत्यधन का आदर्शवाद विधवा कट्टो के प्रति आसक्ति आत्मप्रवचनामात्र है। वह दूसरो की ओट चाहता है भगवद्दयाल के पत्र को पाकर इतना प्रसन्न होता है कि मानो स्वर्ग का राज्य मिला हो। इस पत्र की आड म ही वह परिवर्तित रूप अपनाता है। उसके चरित्र म गति आती है। सत्यधन का चरित्र गत्यात्मक (Dynamic) है।

परख म पाठक को किसी प्रकार के राजनतिक आर्थिक सामाजिक या सास्कृतिक आन्दोलन का वर्णन उपलब्ध नहीं होता। यह वर्णनात्मकता स प्रधान की सूचना है। इसका ढग शिल्पगत योजना पर टिप्पणी करते हुए एक आलोचक ने कहा है— परख मात्र हृदय का उद्गार है। दार्शनिक चिन्तन के सूत्र मिलते हैं किन्तु उनकी दृष्टि लाघ भी मकता है। चरित्र चित्रण गुत्थी मार जटिलता स शून्य है।[8] परख की भाव प्रवणता

५ परख—पृष्ठ ८२

६ वही—पृष्ठ ८६ ८६

७ वही—पृष्ठ ४८

८ रघुनाथशरन झालानी जनेन्द्र और उनके उपन्यास—पृष्ठ ५४

को स्वय जनेन्द्र स्वीकार करते हैं—'परख में क्या श्रेय है और क्या प्रेय है—इसका उत्तर मे मुझे निश्चय है कि साहित्य का अध्यापक और विद्यार्थी अत्यन्त प्रामाणिक रूप में बहुत कुछ कह सकेगा। पर मैं इतना जानता हू कि उसके सत्यधन की व्यथता मेरी है और बिहारी की सफलता मेरी भावनाओं की है। और कट्टो वह है जिसने मुझे व्यथ किया और जिसमें मैं अपनी समस्त भावनाओं का वर्णन देना चाहता था।'[१] मैं समझता हू कि भाव प्रवणता के आधिक्य के कारण कोई रचना शिल्पगत महत्व नही खो देती। परख में जैनेन्द्र ने अपने पात्रों के मनोभावों का सूक्ष्मता के साथ देखा-परखा है। उनके मनोजगत का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके कौशलपूर्ण चित्रण किया है। पात्रों के मन की द्वन्द्वात्मक स्थिति पाठकीय आकर्षण रखती है। कट्टो विधवा है। यदि यह पात्र प्रेमचन्द द्वारा निर्मित होता तो वर्णनात्मक विधि द्वारा चित्रित होकर उसके सामाजिक रूप को अभिव्यक्त करता समस्या की व्याख्या पाता किन्तु जनेन्द्र के हाथों उसके मानसतत्व का विश्लेषण हुआ है। जोशी रचित लज्जा की तुलना में इसमें एक शिल्प एव शलीगत अभाव दृष्टिगोचर होता है। जहा पर जोशी विश्लेषणात्मक विधि को अपनाकर पात्रों को स्वतन्त्र विकास करने देते हैं और उन्हें ही एक दूसरे के विश्लेषण की पूर्ण सुविधा देते हैं वहा जनेन्द्र परख में उनके स्थलों पर पाठक को सम्बोधित करते हैं जैसे पृष्ठ १४, २०, १२८ पर व कथा में हस्तक्षेप करते हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा में भी इस त्रुटि का आधिक्य है।

सुनीता—१९३५

जनेन्द्र की सुनीता विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस उपन्यास की कथा विस्तृत न होकर सीमित रही है, अत छोटे कैनवास पर कुल पाच पात्रों में भी तीन ही प्रमुख हैं—श्रीकान्त उनकी पत्नी सुनीता और क्रान्तिकारी मित्र हरिप्रसन्न। इस उपन्यास की कथा दकहरी है।

कथा की गति अतीत की घटनाओं के रेखाचित्र द्वारा प्रस्फुटित हुई है। कथाकार को समस्त घटनाओं का विवरण देने की आवश्यकता ही नही पड़ी। उसने तो उस कथा में श्रीकान्त, हरिप्रसन्न और सुनीता से सबधित जीवन की कुछ स्थितियों को पकड़ा है और उनका विश्लेषण मात्र प्रस्तुत कर दिया है। पहली स्थिति सुनीता-श्रीकान्त के वैवाहिक जीवन की दुरूहता से सबधित है। तीन वर्ष के वैवाहिक जीवन में दोनों एक प्रकार की घुटन की अनुभूति करते हैं और प्रयाग की यात्रा कर भीतर से बाहर आने पर इस घुटन को दूरी अनुभव करते हैं। इसमें हमें एक अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता का परिचय मिलता है।

श्रीकान्त के रूप में एक चरित्र का पूरा विवरण नही है अपितु जीवन की एक विशेष स्थिति का विश्लेषण है। श्रीकान्त के मन में एक अभाव खटकता है जिसके कारण वह सन्तुष्ट नही है जीवन का माधुर्य (पत्नी-ससर्ग) भी इस अभाव की पूर्ति करने में असमर्थ है अतएव वह अपने जीवन में आए प्रिय मित्र हरिप्रसन्न के साहचर्य की कामना

---

१ साहित्य का श्रेय और प्रेय—पृष्ठ १३

करता है। इस कामना की पूर्ति के लिए [illegible] का [illegible] हो जाना दिखाया गया है। सुनीता के निमन्त्रण पर ही कथा की प्रगति और श्रीकान्त की दूसरी स्थिति (सुनीता के बीच विवाहित पत्नी की स्थिति) का [illegible] सम्भव हो सका है। एक स्थल पर सुनीता बेकाम स्नेह को [illegible] करने में लगी है कि इतने में हरिप्रसन्न के साथ [illegible] कमरे में प्रवेश करता है। दूसरे स्थल पर सुनीता पहेली बनी है कि [illegible] में हरिप्रसन्न आ जाता है। यह [illegible] है [illegible] है — [illegible] उसके पर [illegible] जाता है। फिर सुनीता में [illegible] होता है और [illegible] निकलता है— सुनीता [illegible] हो [illegible]। फिर भी [illegible]। वह अपने आपको अद्भुत मालूम हो रहा था।[1]

इस प्रकार की स्थितियाँ जीवन में नई नहीं हैं किन्तु इनका औपन्यासिक रूप अवश्य नया है। जैनेन्द्र ने सुनीता में कथा, पात्र, संवाद और शैली का [illegible] किया है। कथा में व्यापकता के स्थान पर गहराई है क्योंकि वह विश्लेषणात्मक विधि द्वारा गहरा [illegible] हुई और गति से न्यूनता की ओर अग्रसर हुई है। कथा शृंखला बीच में टूट गई है क्योंकि जीवन की कुछ स्थितियों का विश्लेषण ही कथाकार का ध्येय रहा है। उदाहरणतः सुनीता की कथा बीच में आ आकर अनेक बार टूटी है। हरिप्रसन्न को ठीक मार्ग पर लाने तथा स्वाभाविक रूप में जीवन यापन करने का दायित्व सुनीता को सौंपा गया है। कथा इसी सुनीता की ओर बढ़ती है और हरिप्रसन्न के लिए सुधार करने के उद्देश्य से लाई गई है किन्तु कथा के मध्य में यह एक लम्बे समय के लिए मुख्य कथानक से परे हटा दी गई है। केवल श्रीकान्त को अपने पर रोक रखने के लिए मन में हमारे सामने आती है वह भी अधूरी सी विचलित सी। इस शृंखला को तोड़ने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए एक आलोचक लिखते हैं— अतः जैनेन्द्र के उपन्यासों में कथा शृंखला टूटी सी, कथा भाग में बड़े बड़े रिक्त स्थान (gaps) हैं इसका एक मनोवैज्ञानिक आधार है कि पाठक का क्रियाशील मानस व्यापार इन खण्डों में भी पूर्णता देख सकता है।[2]

विश्लेषण के दो रूप हैं —दार्शनिक विश्लेषण तथा मनोविश्लेषण। सुनीता में जैनेन्द्र ने प्रथम रूप को प्राथमिकता दी है। सुनीता की कथा को दार्शनिक विश्लेषण के आधार पर गति दी गई है। कथा के बीच में आ आकर जैनेन्द्र अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का विश्लेषण करते हुए आगे बढ़े हैं। वर्णनात्मक उपन्यासों में लेखक किसी भी घटना पात्र अथवा दृश्य का विस्तृत वर्णन करके कथा को गति देता है तब कथा कुछ समय के लिए दूरवर्ती होती जाती है ठीक इसी प्रकार ही विश्लेषणात्मक उपन्यासों में होता है। सुनीता से दो उदाहरण लिए जाते हैं— जीवन के दो ढंग हैं एक तो यह कि बहुत सोचते विचारते हुए चला जाए। दूसरे यह कि अपने सहज भाव से चलते जाया जाए सोच विचार को पास कम से-कम बाँधकर अपने पास रखा जाए। अंग्रेजी का एक शब्द है सेल्फ कान्शस। अपने संबंध में जब हमारी चेतना हमारे भीतर रमी हुई, समाई हुई नहीं रहती एक पृथक पिण्ड की भाँति काम्पलेक्स गाँठ-सी बनी भीतर अनसमाई सी छलकती उछलती रहती

---

१ सुनीता—पृष्ठ ६६

२ डॉ० देवराज आधुनिक हिंदी कथा साहित्य और मनोविज्ञान—पृष्ठ १४०

है, तब आदमी को चैन नहीं पडता। मनुष्य नामक प्राणी म सोच विचार का सिलसिला या तो किस क्षण टूटता है वह तो चलता ही रहता है। किन्तु उस सोच विचार म मनुष्य का अहं बहुत मिला रहे तो गडबड होती है। उसी को कहते हैं सेल्फ का नाश। इस स्थिति म मनुष्य के व्यवहार का सरल भाव नष्ट हो जाता है।'[3] आगे चलकर अगले ही पृष्ठ पर कथाकार लिखता है— हम कहते हैं पति और पत्नी, प्रेमी और प्रेयसी माता और पुत्र बहिन और भाई। वह ठीक है। व तो स्त्री-पुरुष के मध्य परस्पर योगायोग के माग से बन नाना संबंधों के लिए हमारे नियोजित नामकरण है। किन्तु सर्वत्र कुछ बात तो सम भाव से व्यापी है। सब जगह स्त्री-पुरुष इन दोनों म परस्पर दीखता है आत्मिक समर्पण आशित्र स्पर्धा ? लेकिन हम कहानी कहें"—इस पंक्ति के साथ-साथ पुन कथा कही गई है।

कथा म जीवन की तीसरी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए श्रीकान्त को मुख्य कथावास से परे हटा दिया गया है। वह एक केस की आड म लाहौर चला जाता है। यहा आस्तिकता का प्रचार करने के हेतु जनेन्द्र ने हरिप्रसन्न सुनीता संवाद की योजना की है। हरि बंध कर रहना नहीं चाहता। सुनीता अपने पति की इच्छा पूर्ति हित उसे बांध कर रखने के साधन जुटाती है। सुनीता कहती है— देखो तुम भागल हो तो भागो। लेकिन अपने स कहा भागो ? भागना तो नरक से भी ठीक नहीं। क्योंकि नरक का भय फिर तुम पर सवार हो रहेगा। इससे आओ हरिप्रसन्न, हम दोनों परमात्मा का विश्वास पाए और उसकी प्रार्थना म से बल पाए।'[4] उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि जनेन्द्र की संवाद योजना भी विश्लेषणात्मक शिल्प विधि अनुकूल हुई है। इसम विवरण देकर लम्बे सम्भाषणों की योजना नहीं जुटाई गई, अपितु संकेत देकर दार्शनिक तथ्यों तथा सिद्धान्तों का विश्लेषण उपलब्ध होता है। यह उपन्यास प्रश्नों की जिज्ञासा म पल्लवित हुआ है।

जनेन्द्र का पात्र योजना के विषय म एक आलोचक लिखते है— जनेन्द्र के उपन्यास पात्र बहुल नहीं है। थोड़े स चरित्रों को लेकर वे चले हैं। मुख्य चरित्र तीन चार स अधिक नहीं है, शेष पद पूर्ति के लिए है। फलस्वरूप यहा प्रेमचन्द के उपन्यासों जसी भीड नहीं है। पूरक चरित्रों का तो पूरा परिचय भी हम नहीं मिलता।'[5] यह एक ऐसा तथ्य है जिसे सभी स्वीकार करेंगे। जनेन्द्र के उपन्यास विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के है अत उनम पात्रों की अधिकता तथा जीवन का ब्योरा ढूंढना व्यर्थ है व तो चरित्र की विशेष स्थिति का उद्घाटन करते हैं। पात्र को विशेष परिस्थिति म उभारते है और उनकी व्याख्या करने की बजाय विश्लेषण करते हैं।

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यासों म व्यक्ति का समाज के माध्यम से प्रस्तुत

---

३ सुनीता—पृष्ठ १३५
४ वही—पृष्ठ १३६ १३७
५ वही – पृष्ठ १६८
६ डॉ० रामरतन भटनागर जनेन्द्र साहित्य और समीक्षा—पृष्ठ १७०

नहीं किया जाता। यहां तो वैयक्तिक चरित्रों की उद्भावना हुआ करती है। सुनीता में सुनीता श्रीकान्त और हरिप्रसन्न प्रमुख पात्र हैं। तीनों ही वैयक्तिक चरित्र हैं। इनकी अपनी विशिष्ट सीमाएं हैं। सुनीता केन्द्रस्थ चरित्र है। पत्नि के रूप में श्रीकान्त और प्रेमी के रूप में हरिप्रसन्न दोनों का समान प्रभाव इसको प्राप्त हुआ है किन्तु यह गृहिणी कहां है ? से वे सिमटी रही है। कर्तव्यपरायणता और जीवन में यम नियम आदि पालन को ही उसने पूर्ण महत्त्व दिया है। किन्तु घर की चार दीवारों के बीच ही वे अन्तर्मुखी बन घर की सीमा में आबद्ध रही हैं किन्तु हरिप्रसन्न का सामीप्य उसकी वैयक्तिक प्रवृत्तियों को उभार कर उसे भीतर से बाहर ले आने में सहायक सिद्ध हुआ है। सुनीता आत्मरत रहना नहीं चाहती परिवार की सीमा को लांघना चाहती है क्योंकि गृहस्थी में वह न स्फूर्ति पाती है न रस। उसके जीवन में फीकापन है। मनन और चिन्तन की प्रतिभा उसमें उभर आती है— किन्तु सच परिवार ही क्या व्यक्तित्व की परिधि है ? क्या मैं इसी में बन्द ? क्या इसे तोड़कर लांघकर एक बड़े हित में खो जाना क्या मैं न चाहूं ? उस विस्तृत हित के लिए जिऊं उसी के लिए मरूं तो क्या यह अयुक्त है अधम है ? इसी चिन्तन की दिशा में उसके चरित्र का विकास होता है वह घर की सीमा से बाहर निकलती है। बाहर निकलकर कभी वह हरिप्रसन्न की जांघ पर लेटती है कभी उसे अपना नग्न रूप दिखाने को आतुर हो उठती है।

हरिप्रसन्न के चरित्र में मनोविश्लेषणात्मक प्रयोग प्राप्य है। श्रीकान्त-सुनीता दाम्पत्य जीवन को वह देखता है परखता और अनुभव करने लगता है। धीरे धीरे उसका अपना विश्वास डगमगा उठता है। उसका चित्त एक प्रकार के भय और आशंका से दबने लगता है। क्या वह गिर रहा है ? क्या दमित काम वासनाएं उभर रही हैं ? जैनेन्द्र उसके चरित्र का विश्लेषण करते हुए स्वयं कथा में लिखते हैं— हरि का चित्त मानो एक प्रकार की व्यथता के नीचे सकुचित हो रहता है। सकुचन में से ही अहंकार का उदय है भय की भीति है। मानो कुछ उसके भीतर से व्यंग्य करता हुआ उठता है—क्या तू अविजित है ? तू जयी है ? अरे तू तो अधम है अधम है। 'क्रान्तिकारी हिंसा मार्ग का अवलम्बी हरिप्रसन्न अहंमन्य उद्दण्ड और अतृप्त काम का शिकार है।

मेरी दृष्टि में हरिप्रसन्न का चरित्र भी वैयक्तिक है एक क्रान्तिकारी का प्रतीक नहीं। परिस्थिति अनुकूल उसने अपने को मोड़ा है। सुनीता-श्रीकान्त दाम्पत्य का सामीप्य पाकर वह अधिक संकुचित हो उठा है। इससे पूर्व वह जहां भी गया है अपने को फैलाता रहा है यहां के वातावरण में सकुचित, लज्जाशील और चिन्तित हो उठा है। श्रीकान्त के घर हटते ही पुनः उसने अपने को फैला लिया है जिसके कारण दूसरा चरित्र (सुनीता) भी फंसा है। सुनीता न तो अपने ऊपर से अपना अधिकार ही खो दिया है। वह सुनीता को सिनेमा ले जाता है। मानो संसार को दिखाने के लिए। सुनीता के सानिध्य से उसकी इन्द्रियों को अद्भुत उकसाहट और तृप्ति की अनुभूति होती है। हरिप्रसन्न पराक्षत अह

---

७ सुनीता—पृष्ठ १९०

८ वही—पृष्ठ १२६।

की ग्रन्थि से ग्रस्त पात्र है। उसके आचरण हिंसक एवं उग्र हैं।

सुनीता के पात्रों के यथार्थ रूप को जानने के लिए पाठक को बुद्धि पर अधिक बल देना पड़ता है। उनमें शिथिलता नहीं है कसावट है। पात्रों को कठिन से कठिन परीक्षा स्थली पर छोड़कर भी जैनेन्द्र ने उन्हें संभाल ही लिया है हरिप्रसन्न एकान्त स्थल पर सुनीता से समूची नारी की माँग करता है किन्तु उसके उस रूप को देख भर लेने का सामर्थ्य उसमें नहीं रह जाता चरित्रगत दृढ़ता लौट आती है। श्रीकान्त आवश्यकता से अधिक उदार होने पर भी मानवीय दुर्बलता से ओत प्रोत है जिस पथ पर सुनीता को अग्रसर होने का आदेश देता उसे उसी पथ पर बढ़ते देख रात को मकान पर ताला देखते ही दो मिनट का स्तब्ध रह जाता है किन्तु प्रातः ही जीवनगत स्वाभाविकता उसमें लौट आती है दाम्पत्य प्रेम का प्रवाह बह उठता है। ऐसे ही आनन्दमय वातावरण में उपन्यास का अन्त दिखाया है।

त्यागपत्र—१९३६

परख और सुनीता के पश्चात 'त्याग पत्र' में एक शैलीगत परिवर्तन दृष्टिगत होता है। यह पात्रमुखोदगीरित आत्म कथात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें प्रमोद और उसकी बुआ मृणाल के मन संताप का विश्लेषण हुआ है। आरम्भ पूर्व-दीप्ति विधि (Flash back Technique) के आधार पर हुआ है। नायक प्रमोद स्वयं उपन्यास मंच पर आकर कथा सूत्र को पकड़ता हुआ अपने अंतर्मन की द्वन्द्वपूर्ण स्थिति और आत्म विगर्हणा के भावों का विश्लेषण करता है— "नहीं भाई पाप पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी। जज हूँ कानून की तराजू की मर्यादा जानता हूँ। पर उस तराजू की मर्यादा भी जानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि जिनके ऊपर राई रत्ती नाप जोखकर पापी को पापी कहकर व्यवस्था देने का दायित्व है वे अपनी जानें। मेरी बुआ पापिष्ठा नहीं थी, यह भी कहनेवाला मैं कौन हूँ! पर आज मेरा जी अकेले में उन्हीं के लिए चार आँसू बहाता है। उन बुआ की याद जैसे मेरे सब कुछ को खट्टा बना देती है। क्या वह याद अब मुझे चैन लेने देगी याद किया होगा यह अनुमान करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।"[1] इतना कहते ही प्रमोद अपने अतीत की कथा विश्लेषणात्मक शिल्पविधि द्वारा प्रस्तुत करता है। पूर्व-दीप्ति का प्रयोग परख और 'सुनीता' में नहीं हुआ इसीलिए मैंने त्याग-पत्र में शैलीगत परिवर्तन बताया है। 'त्याग-पत्र' का यह आरम्भ जोशी रचित 'लज्जा'—१९२९ के आरम्भिक पूर्व-दीप्ति विधि पर आधारित विश्लेषण से मिलता-जुलता है।

मृणाल की कथा प्रमोद के मन के अन्तरतम प्रदेश पर छा चुकी है अतः उसके अन्तर से बाहर आने को आकुल है। कथा प्रवाह की इस विधि के सम्बन्ध में एक आलोचक लिखते हैं— "जैनेन्द्र ने भी कथा प्रवाह की वर्णनात्मक कथ्यकक्की प्रवृत्ति को, बहिर्मुखी प्रवृत्ति को, स्थूल प्रवृत्ति को मोड़कर दूसरी ओर अग्रसर करने की चेष्टा की है। जैनेन्द्र वर्णनात्मक से अधिक गवेषणात्मक है उनकी वृत्ति बाहर के प्रसार से अधिक अन्तर की

[1] त्यागपत्र—पृष्ठ ९

गहराई की थाह है, स्थूल से अधिक सूक्ष्म है। दूसरे शब्दों में ये मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं। 'प्रस्तुत प्रबन्धकार के मतानुसार जैनेन्द्र मनोवैज्ञानिक कथाकार तो हैं पर वे मन के भीतर डुबकी लगाकर ही नहीं रह जाते। वे तो उस बाहरी सतह को सदा प्रत्यक्ष करते हैं जो भीतर ही भीतर मानवीय धारा को द्वन्द्वात्मक स्थिति में रखकर कुरेदता रहता है। प्रमोद अपनी बाल्यकालीन स्मृतियों का विश्लेषण इन शब्दों में करता है— 'मैं आठवीं क्लास में पढ़ता था। तब मैं क्या समझता हूँगा, क्या नहीं समझता हूँगा। फिर भी यह बात मुझे बिलकुल अच्छी नहीं मालूम हो रही थी। जी में कुछ वमनाक गुस्सा भड़कता आता था। जी होता था कि कहीं से कहीं कोई दुस्सह अभिनय कर डालूँ। इस भाव की कोई वजह न थी, पर बाबूजी की कुछ दबी हुई स्थिति की भनक उनके चेहरे पर [illegible] बड़ी खीझ मालूम हो रही थी। पर जाने मुझे क्या चीज रोक रही थी कि मैं फट नहीं पड़ा।' प्रमोद मृणाल का भतीजा ही नहीं है बाल सखा भी है अतः बाहर और अन्दर रात और दिन उसकी गति विधि का अन्वेषण और विश्लेषण करता रहता है। उसकी स्थिति उसे अनेक बार विचलित करती है। वह विद्रोह पथ अपनाना चाहता है किन्तु मृणाल उसे ऐसा करने से रोकती है। वह मृणाल को प्रगल्भ पूजनीय मानकर भी उसके आगे अपने को अवश पाता है। और उसके स्नेह के सूत्र में बंधा है।

मृणाल का व्यक्तित्व उपन्यास की नवनीत है, आत्मा है। जैनेन्द्र का समस्त औपन्यासिक कौशल उसका निर्माण करने में लग गया है। हम उपन्यास की कथा को भूल सकते हैं, मृणाल के चरित्र को भुलाना हमारे वश की बात नहीं। इसके चारित्रिक प्रमुखत्व पर प्रकाश डालते हुए एक आलोचक लिखते हैं—'पूरे उपन्यास में मृणाल का चरित्र अपने असाधारण संकटों के कारण पाठक की दृष्टि को आकर्षित करता है। मृणाल के चरित्र में उस प्रकार का हल्कापन कहीं नहीं है जिस प्रकार का हल्कापन जैनेन्द्र के अन्य कतिपय नारी पात्रों में मिलता है। जैनेन्द्र के अन्य नारी पात्रों में पति की उपेक्षा करके पर-पुरुष के प्रति जो एक प्रच्छन्न आकर्षण मिलता है वह भी इस उपन्यास की नायिका मृणाल में व्यक्त नहीं है। जैनेन्द्र ने बड़े कौशल के साथ उसे एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे पुरुष से संबंधित किया है। पर यहाँ करुणा के आधिक्य के कारण पाठक की संवेदना मृणाल को ही मिलती है। इसे हम जैनेन्द्र का रचनात्मक कौशल कह सकते हैं। मृणाल के मन में विशिष्ट अन्तर्द्वन्द्व है। वह परस्पर विरोधी खिंचावों के भीतर जीवन-यापन करती है। इसका चरित्र वह केन्द्र बिन्दु है जिसके चारों ओर उपन्यास की कथा घूमती है। यह चरित्र पर्याप्त लचीला (Flexible) है। उपन्यासकार ने इसके द्वारा पत्नीत्व की नई व्याख्या प्रस्तुत की है। उसके मतानुसार आदर्श नारीत्व अथवा पत्नीत्व एक पति से बँध जाने में नहीं है। पति से विच्छिन्न रहकर सतीत्व की रक्षा करने

---

२ डा० देवराज उपाध्याय : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान पृष्ठ १४२

३ त्याग-पत्र—पृष्ठ ४०

४ नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य नये प्रश्न—पृष्ठ १९९

म भी नही है, अपितु आत्म पीडन म है। सज्जनता या दुजनता बाह्य व्यवहार म ही नही मानस के अन्तर्जीवन मे निवास करती है। प्रमोद को लिये अन्तिम पत्र म मणाल यह उदघाटित करती है कि दुजन से दुजन व्यक्ति की अन्तश्चतना म भी दूध सी श्वेत सत् भावना का स्रोत भरा रहता है।

प्रमोद का चरित्र भी कम महत्त्वपूण नही है। उसके द्वारा लखक की दाशनिक विचारधारा का स्रोत फट पडा है। उसने अनेक स्थलो पर सामाजिक विषमता, वयक्तिक कुण्ठा और नतिक प्रश्नो का विश्लेषण किया है। इस दष्टि मे यह कथावाहक पात्र है। कथा का सूत्र उपन्यासकार न इसी पात्र को सौंप दिया है। 'त्याग-पत्र' की शली मे वक्रता और तीखापन है। इस सबध म एक आलोचक के य विचार पठनीय है— मणाल म असाधारणता है। जीवन म सदा नकार पाने रहकर भी उसका मन अनिवाय सवदनशील हो गया है। ऐसी स्थिति म चुनाव का प्रश्न ही नही उठता। मणाल के साथ यह स्थिति विवशता के अतिरिक्त चुनौती भी हो सकती है। जनन्द्र की शली सचेत है जागरूक है। सर एम० दयाल का जजी से त्याग पत्र उपन्यास शिल्पी का अद्भुत कौशल है।'[५]

कल्याणी—१९३८

'कल्याणी' की रचना 'त्याग पत्र' के शिल्प (Pattern) पर हुइ है। यह विश्लेषणात्मक शिल्प विधि म लिखा गया आत्मकथात्मक शैली का उपन्यास है। इसम कल्याणी नामक नारी की करुण गाथा का विश्लेषण वकील साहब द्वारा सयोजित हुआ है। आरम्भ म पूव दीप्ति विधि (Flash back Tachnique) देखी जा सकती है। वकील साहब के अति निकट कुछ ऐसा घटित होता है जो उनके मानस के अन्तमन प्रदेश को छू गया है। उसका विश्लेषण वे इन शब्दो म करते हैं—' जब कभी उधर स निकलता हू। मन उदास हो जाता है। कोशिश तो करता हू कि फिर उधर जाऊ ही क्या ? लेकिन बेकार। सच बात यह है कि अगर मैं इस तरह एक एक राह मूदता चलू तो फिर खुली रहने के लिए दिशा किधर और कौन शेष रह जाएगी ! या सब रुक जाएगा। पर रुकना नाम जिन्दगी नही है। जिन्दगी नाम चलन का है।'[१] 'कल्याणी की मत्यु पर उसके घर को देखकर वकील साहब (कथा वाहक) के मानस म अद्भुत विचारो का प्रवाह मनोवनानिक है। यह विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यास की विशेषता कही जायगी।

मनोद्वन्द्व का सफल निवाह इस विधि के उपन्यास की कसौटी है। कल्याणी के मन का द्वन्द्व अति तीव्र एव भयावह है। उसका बाह्य जीवन उपन्यासकार के लिए इतना महत्त्वपूण नही है जितना आंतरिक सघष। इस सबध म एक आलोचक लिखते हैं— मनोविश्लेषणवादियो की दृष्टि म मनुष्य की अन्तस्थ और अज्ञात प्रवत्तिया ही सब कुछ होती हैं। मनोवनानिक उपन्यास हमारी चेतना के उस स्तर पर अपना कारबार छानना पसन्द करेगा जहा की धारा एकदम अस्पष्ट होती है नवीनी होती है असगठित

---

५ डा० नगेन्द्र विचार और अनुभूति—पृष्ठ १४० १४१

१ कल्याणी—पष्ठ ६

वस वह क्या हानी ह। पर मैं कुछ थी। निरी कन्या न थी डाक्टर थी। अब सवाल है मेरी शादी और मेरी डॉक्टरी मेरा पत्नीत्व और मेरा निजत्व। ये परस्पर कसे निभें ? [४]

कल्याणी का समस्त जीवन चरित्र द्वन्द्वपूर्ण है। पातिव्रत्य या सामाजिकता प्रेम की धूरी पर वह बलि हो जाती है। प्रीमियर और पाल की कहानी कल्याणी के चरित्र की दुविधापूर्ण स्थिति की प्रतीक है। देवलालीकर का प्रवेश उसके अचेतन मन की भयाकुल स्थिति का अन्वेषण प्रस्तुत करने के लिए लाया गया है। उपन्यास म जिस हत्या का वणन है वह कल्याणी की मानसिक स्थिति का उदघाटन है। कल्याणी न अपने जीवन म वह सभी कुछ किया जो असगत है असभव लगता है। शुरू म वह घोर आस्तिक है अन्त तक पहुचते पहुचते न केवल नशा ही पीती है धर्म और ईश्वर के अस्तित्व म भी शका प्रकट करती है। तभी तो कहती है — मैं नफरत करना चाहती हू। अपने स सबसे। ईश्वर से। ईश्वर प्रेम है और प्रेम प्रवचना है। इसस ईश्वर प्रवचना है। [५]

जनेन्द्र के कथाकार व्यक्तित्व म दार्शनिक कलाकार का मिला जुला रूप कल्याणी म भी देखा-परखा जा सकता है। दार्शनिक प्रश्न उपन्यास म अनेक स्थलो पर उठाए गए हैं, जिनम स्त्री की सामाजिक और पारिवारिक स्थिति भाग्य की विडम्बना ईश्वर के प्रति आस्था मनुष्य और विधि की सीमाए धन लिप्सा, प्रेम-तत्त्व और वैवाहिक जीवन आदि जीवनगत बातें विश्लेषण द्वारा चित्रित की गई हैं। [६]

व्यतीत—१९५३

जीवन को जी चुकने के पश्चात आत्म अनुभूति जीवन-तथ्य निरपेक्ष अकन क आधार पर स्मृतियो को पूर्व-दीप्ति विधि द्वारा आत्मकथात्मक शैली मे प्रस्तुत करने वाली यह रचना अद्वितीय है। उपन्यास के आरम्भ म ही कथा नायक कवि जयन्त अपनी पैतालीसवीं वषगाठ क अवसर पर आत्मविश्लेषण करता हुआ कहता है— व्यतीत। आज इस जन्म तिथि के दिन सवेरे ही सवेरे यह क्या शब्द उठकर मेरे सारे अन्तरग म समाता जा रहा है। क्या इस पैतालीस वर्ष की अवस्था म यही अनुभव करू कि मैं अब व्यतीत हू। यह सोचते अचरज होता है डर होता है। पैतालीस तो कोई अवस्था होती नहीं। इस वय म बीतकर रह जाने का क्या मतलब है। लकिन कुछ करू इस बोध स छुट्टी नहीं मिलती है कि अब मैं बीते पर ही हू आगे के लिए नहीं हू। सोचता हू कि यह क्या हो गया [१] अतीत की स्मृतिया म मधुरता सजाने वाला यह युवक भावुक है। अनेक स्थलो पर यह आत्म विश्लेषण की प्रक्रिया म सलग्न है। [२]

व्यतीत की कथा-योजना जनेन्द्रीय है। वही त्रिकोणात्मक प्रेम-कथा जो जयन्त

---

४ कल्याणी—पृष्ठ ३२

५ वही—पृष्ठ ९६

६ वही—पृष्ठ १४, १७ ३१, ७७, ११८ १२८

१ व्यतीत—पृष्ठ १

२ वही—पृष्ठ ४ ८, ९, १०, ११ २४ ३३, ५२ ५५, ६८, ६९, ७१ ८४

अनिता और मिस्टर पुरी के आसपास घूमती है। यह कथा विश्लेषणात्मक शिल्पविधि द्वारा संयोजित हुई है। इस संबंध में एक आलोचक लिखते हैं—' 'परख', 'तपोभूमि', 'सुनीता', 'कल्याणी', 'त्यागपत्र', 'सुखदा', 'विवर्त' और 'व्यतीत' सब उपन्यासों में एक निश्चित कथानक है लेकिन उस तरह से नहीं जैसा कि प्रेमचन्द के उपन्यासों में, बल्कि ये निश्चित कथानक जागरूक, प्रबुद्ध और संवेदनशील पाठक के मन में बनते हैं। उक्त उपन्यासों में कथा वस्तु के सभी सूत्र बिखेर दिए गए हैं। जहाँ जैसी गति चरित्र की है उसकी जैसी मनःस्थिति है भूत, वर्तमान और भविष्य में भागती हुई ठीक उसी अनुपात से कथावस्तु में निहित इतिवृत्त की विद्यमानता या अभाव है। उसमें आदि, मध्य और अन्त के विवाद की कोई व्यवस्था नहीं है। उपन्यासकार की दृष्टि एकान्त रूप से पात्रों में केन्द्रित है, वहाँ उसके साध्य हैं, उपन्यास के शेष तत्त्व केवल साधन मात्र हैं, उनका उपयोग वे करते चाहे जिस तरह, चाहे जितने रूप में न्यास भी कर लें।' 'व्यतीत' में भी इसी शिल्प का आश्रय लिया गया है। उपन्यासकार कथा को विशेष महत्त्व न देकर पात्रों के मनस्तत्त्व के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में तत्पर दीख पड़ता है।

प्रस्तुत उपन्यास का नायक जयन्त एक प्रकार के अस्वस्थ कामुकता (Morbid) का शिकार है। इस विषय में एक आलोचक का यह कथन तथ्यपरक है—'वास्तव में 'व्यतीत' एक पुरुष की एक स्त्री के प्रति—जयन्त की अनिता के प्रति—रुग्ण आसक्ति (Morbid fixation) की अवस्था में पुरुष की मनःस्थिति का लेखा है। इस आसक्ति के मूल में जयन्त की आहत काम चेतना अवस्थित है।' अनिता जयन्त के पिता की पुत्री और उससे दूर के रिश्ते की बड़ी होने पर भी उसे चाहता है किन्तु उसका विवाह इक्कीस वर्ष की आयु में मिस्टर पुरी से हो जाता है। जयन्त इस आघात को नहीं सह पाता। वह बाह्य जगत के प्रति उदासीन होकर अन्तर्मुखी बन बैठता है। कुल पचहत्तर रुपया मासिक पर एक स्थान पर वह सम्पादक का कार्य सँभाल कर समस्त उच्च आकांक्षाओं को तिलांजलि दे देता। उसकी विशिष्ट मानसिकता की प्रतीक घटनाएँ हैं। अनिता अनेक बार उसे समझाती है किन्तु वह निर्णय करने में असमर्थ है। वह उसका विवाह कराकर उसे बाँधना चाहती है, किन्तु जयन्त का मन उसे अस्वीकार करता है। अनिता से विवाह न होने के कारण उसके मन में हीनता की ग्रंथि जन्म ले लेती है। आत्महीनता (Inferiority complex) ग्रस्त यह व्यक्ति महत्त्वाकांक्षाओं की बलि देकर कुण्ठित हो जाता है। उसके व्यवहार में अप्रकृत घटनाएँ संयोजित हुई हैं। चन्द्रकान्त की पुत्री सुमिता के निकट सम्पर्क में आकर भी वह उसका न हो सका—'मैं अपना हूँ सुमिता'—उसका अहंकारात्मक उत्तर ही नहीं, उसकी अस्त व्यस्त मानसिक स्थिति का उद्घाटक तत्त्व है। सुमिता के अतिरिक्त बुधिया भी एक ऐसी नारी है जो उसकी ओर आत्मदान की भावना से देखती है, किन्तु जयन्त का मन उसे भी स्वीकार करने से इन्कार करता है।

जयन्त अपनी विचित्र वैयक्तिक परिस्थितियों में है। ठीक ऐसा ही है जैसा [illegible]

---

३ लक्ष्मीनारायण लाल : आलोचना उपन्यास विशेषांक—पृष्ठ १५८
४ रघुनाथशरण झालानी : जैनेन्द्र और उनके उपन्यास—पृष्ठ ८

'सन्यासी' में नन्दकिशोर जयन्ती विवाह—जो दोनों पक्षों की असाधारणता (Abnormality) के कारण असफल रहता है। जयन्ती को देखते ही उस नन्दकिशोर का अह फुफकार मारकर चीत्कार उठता है ठीक वैसी ही अवस्था चन्द्रकला को देखकर जयन्त की होती है। अपनी मन स्थिति का विश्लेषण करते हुए वह कहता है—"भाव विभोर होकर बाहर की सब ठोस सत्ता को धूमिल कुहासे में परिणित करके उसमें से तब चुनौती मिलती भी है। तादात्म्य सम्भव नहीं होता चन्द्रकला को देखकर नितान्त इस मुझ साथ हुए का भी मानो चोट देती हुई चुनौती मिला। मैंने चुनौती को नहीं जाना। मानो वहीं भीतर का भीतर दबा दिया ।"[5] किन्तु अह एवं वासना की आग दबाए नहीं दबती। वास्तविकता यह है कि चुनौती के कारण ही वह उससे विवाह करता है। अनिता के कारण दोनों का दाम्पत्य तितर बितर हो जाता है और अन्त में वह चन्द्री द्वारा त्याज्य रूप में विवश प्राणी मात्र रह जाता है। जयन्त की मानसिक स्थिति अति भयावह हो उठती है। उसकी आसक्ति अनिता के प्रति रही है और रहेगी। यह स्थिति उस अस्वस्थ काम्पलक्स (Morbid) अवस्था तक पहुचा देती है। निराश प्रेमी उसके अह को विकृत करके उसमें अप्राकृतिक मानव और असाधारण (Abnormal) व्यक्तित्व का प्रस्फुटन करता है। चन्द्रकान्ता के प्रति उसका व्यवहार अप्रत्याशित एवं असाधारण है। उस उसको मनोभावनाओं का कोई मान नहीं। उसे तो उसकी कोमलतम चेष्टाओं को भी कुचलने में आनन्द मिलता है। सन्यासी की जयन्ती की भांति इस उपन्यास की चन्द्रकला उसे अभिमान का पुतला कहती है।[6] उपन्यास में अन्त में वह कहता है—'लेकिन लगता है जीवन व्यर्थ भार ही है। क्या कहीं इस कभी देखकर मो नहीं सका, ताकि कुछ पा जाता और या भटकता न फिरता। लेकिन सुनता हू दूसरा भी जन्म है अब तो उसी में आस है।'[7] सन्यासी के नायक नन्दकिशोर की भांति गैरिक वस्त्र पहनकर वह जीवन को भार समझता है। विगत की स्मृतियां ही उसके जीवन का सम्बल बनती है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों का विवेचन करते हुए एक आलोचक लिखते हैं— इस प्रकार जैनेन्द्रकुमार के लगभग सभी उपन्यास अभिनव युग चेतना की अभिव्यंजना करने में सफल हुए है। इन उपन्यासों में जीवन का चित्रण, पात्रों का चयन, मान्यताओं का विश्लेषण समस्याओं का निरूपण तथा वातावरण की सृष्टि मध्यवर्गीय समाज से सबध रखती है जिसकी गतिविधि पूजीवादी संस्कृति की देन है। और परिणाम है जैनेन्द्र की कला का स्थान व्यक्तिवादी तथा मनोविश्लेषणवादी उपन्यास की कला है।"[8] प्रस्तुत प्रबन्धकार की दृष्टि में जैनेन्द्र विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के कलाकार है व्यक्तिवाद को इन्होंने प्रवृत्ति रूप में अपनाया है शिल्प रूप में नहीं।

---

५ व्यतीत—पृष्ठ ५५
६ वही—पृष्ठ ८८
७ वही—पृष्ठ १६६ १७०
८ डा० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ १६८

अज्ञेय

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यासकारों में अज्ञेय एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त वैयक्तिक कुण्ठा, निराशा, दिग्भ्रान्ति, निष्क्रियता तथा आत्मलीनता एवं अहं देखकर कतिपय आलोचकों के मन में इस विधि के प्रति असन्तोषात्मक तथा विद्रोहात्मक भावनाएं जागृत हुईं। एक आलोचक इन्हें उपन्यासकार से परे मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों का पोषक कह बैठे। वे लिखते हैं—'अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी' मनोविश्लेषणपूर्ण अत्यन्त सफल उपन्यास है और सूक्ष्म एवं अचेतन मन के चित्रण में कृतकार्य है। स्पष्टतः इनपर जॉयस, लॉरेंस प्रभृति पाश्चात्य उपन्यासकारों का गहरा प्रभाव है और मनोविश्लेषण की धारणाओं तथा मान्यताओं का इतना खुल्लमखुल्ला उपयोग किया गया है कि कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है कि लेखक का सरोकार उपन्यास रचना से भी अधिक मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों से है।'[1] मेरे विचार के अनुसार वैयक्तिकता और मनोविश्लेषण खतरनाक नहीं हैं, खतरनाक वह स्थिति है जो हमें वैयक्तिकता से खींचकर स्वार्थी, प्रमादी और आत्म केन्द्रित बनाती है। विश्लेषणात्मक शिल्प विधि द्वारा तो इस स्थिति का अन्वेषण प्रस्तुत होता है। 'शेखर : एक जीवनी' में शेखर क्यों व्यक्तिवादी के साथ-साथ अहंवादी एवं दिग्भ्रांत बनता है, इस तथ्य का उद्घाटन उसके शैशव से संबंधी एक घटना का विश्लेषण करके किया गया है। अज्ञेय घटनाओं के विश्लेषण में विश्वास रखते हैं किन्तु आत्मकथा लिखने में नहीं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के एक प्रश्न का लिखित उत्तर देते हुए उन्होंने इस मत की पुष्टि की है—'घटनाएं तो बहुत हैं जो याद आती हैं और एकान्त में रहने से उनका विश्लेषण करने का अवसर भी काफी मिलता रहा है, पर आत्मकथा तो नहीं कहने बैठा हूं। मानवेन्द्रनाथ राय से किसी ने आग्रह किया था कि आत्म-कथा लिखें, तो उन्होंने हंसकर टाल दिया था—नहीं, मेरा अहं इतना प्रबल नहीं है। इस दृष्टि से उनका अनुयायी हूं।'[2] अज्ञेय ने आत्म कथा नहीं लिखी किन्तु अपनी रचनाओं में पात्रों द्वारा आत्म विश्लेषण अवश्य कराया है। इनकी रचनाओं में पाश्चात्य मनोविज्ञान की छाप देखकर एक आलोचक कहते हैं—'अज्ञेय जैसे एकाध कलाकार द्वारा फ्रायड कुछ व्यवस्थित ढंग से हिन्दी उपन्यास में आए।'[3]

जैनेन्द्र की भांति अज्ञेय भी शिल्प और शैली में पर्याप्त अन्तर मानते हैं। अपनी एक भेंट में उन्होंने मुझे बताया—'शिल्प और शैली तो अलग अलग चीज़ें हैं ही। शिल्प में और भी बहुत सी चीज़ें हो सकती हैं। शैली का संबंध मुख्यतः भाषा से है, शिल्प का रचना से। कथ्य अपने शिल्प और शैली से अलग हो ही नहीं सकता। आखिर उपन्यास का कथ्य क्या है? यदि तीन उपन्यासकार एक ही कथ्य पर उपन्यास लिखें तो क्या वे समानधर्मा होंगे? शायद नहीं—उनका शिल्प भले ही एक हो शैली तो भिन्न रहेगी ही।

---

१ डॉ० रामअवध : हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा—पृष्ठ २०५

२ अज्ञेय : आत्मनेपद—पृष्ठ

३ डॉ० नगेन्द्र : विचार और

हिन्दी उपन्यास शिल्प के भविष्य के विषय में जब मैंने उनसे प्रश्न पूछा तो मुस्कराकर बोले—यदि इसकी बजाए हिन्दी के भविष्य के विषय में प्रश्न पूछते तो कैसा रहे। प्रश्न का सांकेतिक उत्तर मिल गया और मैंने एक और प्रश्न पूछा—"हिन्दी का आलोचक और पाठक बड़ी उत्सुकता से शेखर एक जीवनी के तीसरे और चौथे भाग की प्रतीक्षा कर रहा है।" हँसते हुए उन्होंने उत्तर दिया— बड़ी उलझन है—तीसरा भाग लिखा पड़ा है और इसी बीच एक चौथा लघु उपन्यास भी लिख लिया है। यही सोच रहा हूँ किसे पहले प्रकाशित कराऊँ? हिन्दी उर्दू उपन्यास शिल्प के सम्बन्ध में आपने बताया कि हिन्दी उपन्यास उर्दू से प्रभावित होकर पनपा परन्तु बीसवीं शताब्दी में उर्दू उपन्यास फीका पड़ गया, हिन्दी उपन्यास बल पकड़ता गया।

शेखर एक जीवनी—१९४०

शेखर एक जीवनी की रचना विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के आधार पर की गई है। कतिपय आलोचकों ने इसकी औपन्यासिकता पर सन्देह किया है। एक आलोचक कहते हैं— इसे हम उपन्यास भी नहीं कह सकते क्योंकि इसमें एक ही पात्र का चरित्र चित्रित किया है और वह भी नितान्त एक रस। घटनाएं और परिस्थितियां आती हैं और जाती हैं किन्तु शेखर अपनी ही गति से चलता है। आरम्भ से ही उसका चरित्र जिस ढांचे में ढल गया है अन्त तक वहां सांचा दिखलाई देता है। किन्तु जीवनी में बहुत से स्थल अऔपन्यासिक भी हैं। विशेषतः दूसरे भाग में—जैसे लाहौर कालेज जीवन के चित्र आदि। जीवनी में एक विशालता अवश्य है किन्तु औपन्यासिक विशालता नहीं। घटनाओं, परिस्थितियों और चरित्रों का संघर्ष किसी वर्धमान पर नहीं पाया जाता।"[1]

एक ही पात्र के एक रस चरित्र चित्रण के कारण उपन्यास को उपन्यास न मानना तर्कसंगत नहीं है। व्यक्तिवादी रचना में व्यक्ति प्रधान रहता है। विश्लेषणात्मक शिल्प विधि द्वारा उस व्यक्ति की प्रधानता, असाधारणता और आत्म चिन्तन का अन्वेषण किया जाता है। अज्ञेय ने भी अपनी पूर्ण शक्ति शेखर का निर्माण करने में लगा दी है, किन्तु उपन्यास में उसके प्रधान स्थान ग्रहण कर लेने पर औपन्यासिकता संदिग्ध नहीं हो जाती। शेखर को रचकर उसे प्रधान पात्र बनाकर उपन्यासकार में एक बड़े कलाकार की तटस्थता आई है इस तथ्य की स्वीकृति में अपने पात्र शेखर से एक बाना करते हुए वे लिखते हैं— रचना केवल अभिव्यक्ति नहीं है, वह सम्प्रेषण है। तब मैं केवल आपका अपेक्ष्य नहीं हूँ प्रत्येक पाठक प्रत्येक सहृदय मेरे रूप को बदलता है एक तटस्थता वह है जहां पहुंचकर लेखक कृतिकार बनता है दूसरी वह है जो उस पात्र को रचने के बाद मिलती है मुझे रचकर मेरे माध्यम से अपना संचित कुछ बिसरकर ही आप वास्तव में तटस्थ हो सके।[2] अब शेखर के रचयिता को इसलिए कोई पश्चाताप नहीं है कि

---

४ लेखक की श्री अज्ञेय से एक भेंट वार्ता दिनांक १४ ६ ६०

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य—पृष्ठ १७४

२ अज्ञेय आत्मनेपद—पृष्ठ ५९ ६०

उसने शेखर पर ही सारी शक्ति लगा दी। वास्तव में यही इस रचना का कीर्ति स्तम्भ है। घटनाएं और सामाजिक परिस्थितियां उपन्यासकार अज्ञेय की दृष्टि में गौण स्थान रखती हैं वह तो उसके जीवन की यातना का द्रष्टा एवं उसके अहं का विश्लेषक बन कर उपन्यास का स्रष्टा बनना चाहता है। शेखर की शक्ति उसके अदम्य अहं और असाधारण व्यक्ति की शक्ति है जिसे अज्ञेय ने नये शिल्प में प्रस्तुत किया है। यहीं एक प्रश्न उत्पन्न होता है—क्या 'शेखर : एक जीवनी' अज्ञेय के अपने ही जीवन का प्रत्यावलोकन तो नहीं है? एक आलोचक तो ऐसा मानते हुए स्पष्ट लिखते हैं—'शेखर : एक जीवनी अज्ञेय के अपने जीवन का प्रत्यावलोकन है।'[३] मेरे मतानुसार यह रचना लेखक की जीवनी नहीं है इसे हम कभी भी आत्मचरित्रात्मक रचना नहीं मान सकते। यह एक चरित्र विश्लेषण प्रधान रचना है जिसमें विश्लेषणात्मक शिल्प दृष्टिगत रख कर शेखर तथा अन्य पात्रों को प्रस्तुत किया है। यह विश्लेषणात्मक शिल्प वह है जिसके अंतर्गत मूलकेन्द्र चरित्र विशेष हुआ करता है। समस्त कथा और अन्य पात्र उसी को धुरी मानकर रचे जाते हैं और वह पात्र ही कथाकार का साध्य होता है। यह नहीं कि इस उपन्यास में शेखर को छोड़कर अन्य पात्रों का चरित्र चित्रण ही नहीं किया गया है। शेखर के पिता हैं, माता है, मित्र हैं और है सबसे बढ़कर शशि जिसके अस्तित्व के कारण ही शेखर शेखर है। इन पात्रों का यथास्थान वर्णन ही नहीं किया गया, अपितु चारित्रिक विश्लेषणों की प्रक्रिया द्वारा इसके मनोभावों और क्रिया-कलापों को उद्घाटित किया गया है किन्तु एक ही बात का ध्यान रखा गया है, वह यह कि इनका चारित्रिक विश्लेषण शेखर को बनाने या बिगाड़ने, दबाने या उछालने, घुटने या खुलने में पूर्ण सहायक हो, ताकि केन्द्र केन्द्र बना रहे। रही शेखर के एकरस रहने की बात वह भी ठीक नहीं। शेखर के चरित्र में एक गति है व्यक्तित्व है प्रवाह है। जिसमें एक अनिवार्य तीव्रता है। शेखर के चरित्र में एकरसता कहां रह जाती है? बचपन से ही उसमें जिज्ञासा के साथ बहुत कुछ कर सकने की संकल्पात्मक प्रवृत्ति भी है। किन्तु यह भी कहां रह जाता है। बहुत कुछ जान लेने और कर लेने, जल यात्रा प्राप्ति करने के उपरान्त क्या वह अंतर्मुखी नहीं हो जाता? बहिर्मुखी शक्ति ने उसे शान्त करने के साथ-साथ उसका ह्रास भी किया है किन्तु अन्तर्मुखी बन जाने के उपरांत वह संकुचित और लघु बन गया है। यह परिवर्तन नहीं, तो क्या कहेंगे? शेखर ने जीवन भर अपनी मां से घृणा की है क्या कहा है? इसका भी उत्तर हम मिलता है। शेखर का घर है जिसमें उसके माता पिता हैं किन्तु बड़ा भाई बाहर है। बाहर में ही उसके कॉलिज से भाग निकलने का समाचार मिलता है जिसे सुनते ही उसकी मां उसको प्यार दर्शित कर कहती है— सच पूछो तो मैं तो इसका भी विश्वास नहीं करती। यह एक ध्वनि मात्र शिशु शेखर के मन में द्वन्द्व मचा देती है रात भर उसे नींद नहीं आती। अपनी डायरी में वह लिखता है— अच्छा होता कि मैं कुत्ता होता घुन होता दुर्गन्धमय कीड़ा-कृमि होता—बनिस्बत इसके कि मैं ऐसा आत्मा

३ डॉ० नगेन्द्र विचार और अनुभूति—पृष्ठ १४६
४ शेखर : एक जीवनी (प्रथम खण्ड)—पृष्ठ २४

होना जिसका विश्वास नही है ।' 'यह स्मति मात्र शेखर म हीनता की ग्रन्थि उत्पन्न कर देती है और उसे मात विद्रोही बनाती है। मा की सरल से सरल बात को वह टेढे रूप मे लेता है, उसके बीमार पड जाने पर भी वह उसको देखने नही जाता, उसके मरने का समाचार पाकर भी नही रोता, किन्तु कब तक ? उसी समय तक जब तक स्मति बनी रहती है— *मुझे तो इसका भी विश्वास नही,' किन्तु मत्यु असह्य रोष को* ही नही धोती, उसकी हीनता की ग्रन्थि का भी जडमूल से खोद डालती है तभी वह सिर आले पर टक कर रोता है पिंजर का हिला देने वाला रुदन क्या उसकी चारित्रिक एक रसता को भग नही करता ? करता है और अवश्य करता है। वह बहिर्मुखी से अन्तमखी बनता है।

एक और उदाहरण। शेखर एक जीवनी के प्रथम भाग म हम शेखर के रूप मे एक अहवादी नायक के दर्शन होते है। शशव म वह उद्दण्ड बालक के रूप म हमारे सामने आता है। शक्ति स प्रथम भेंट म ही कहा सुनी और मार पीट—उसके माथ पर लाटा दे मारा। स्कूल म पहुचकर और लोग टाइप बनते है और वह बना व्यक्ति अहवादी व्यक्ति। मास्टर से झगडता है पिता से पिटता है। समवयस्क लडके से अग्रजी म बात ही नहीं करता करता है तो उस डाट देता है। उसकी हठवादिता, उसका रुदन, उसकी मानसिक अशाति और चारित्रिक विषमता (कभी ईमानदारी, कभी चोरी, कभी मौन कभी वाचालता) उसके अह के ही नाना रूप हैं। जीवनी के दूसरे भाग म अहमन्यता का परिष्कार हो जाता है। जेल के जीवन न उसके अन्तमन को सोचने का अवसर ही नहीं दिया है साथ ही उसकी दमित वासनाओ और अनियमित जीवना का एक दिशा भी दी है। अभिमान से भी बडा दद होता है और दद से भी बडा एक विश्वास है। इस एक पक्ति म उसे जीवन का नया सूत्र हाथ लगा है। उसके अह का उदात्तीकरण हो जाता है। भला कहा रह जाती है चारित्रिक एकरसता ? शेखर का अपना व्यक्तित्व है अपनी शक्ति और गति है उसम एकरसता नही है नही है।

वह अपनी गति से चलता है। इसलिए कि वह वश्लेषिक उपन्यास का व्यक्ति वादी नायक है अत उपन्यासकार का साध्य है शेष तत्त्व तो साधन मात्र हैं। घटनाए और परिस्थितिया उसस प्रेरणा ले रही हैं। फिर अज्ञेय का उद्देश्य उन्ही घटनाओ और परिस्थितियो की अवतारणा करना बन जाता है जो नायक की चित्तवृत्तिया से सामजस्य स्थापित कर सकें। अत इस शिल्प की कृति म घटनाओ, व्यापारो और बाह्य चित्रण की व्यापकता की चाह रखना बालू म जल की कल्पना करने वाली बात है। जीवनी म विशालता के दर्शन करके भी उस औपन्यासिक विशालता न मानना हठवादिता और पूर्वाग्रहता है। आज का उपन्यास बदल रहा है उसकी घटनाए परिस्थितिया और चरित्र बदल रहे हैं, अत उनके मूल्याकन का दृष्टिकोण भी बदलना होगा। वर्णनात्मक शिल्प विधि के उपन्यासो की तराजू पर ही उन्हे तोला जा सकता। व्यापकता, इतिवृत्तात्मकता और व्याख्या के स्थान पर सूक्ष्मता और विश्लेषण ही उसम उपलब्ध होगे। 'शेखर एक जीवनी

१ शेखर एक जीवनी—पृष्ठ २६

म भी इन्हें ही देखा परखा जा सकता है।

'शेखर : एक जीवनी म' विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के सभी रूप प्राप्य हैं। गौण होने पर भी कथा-तत्त्व इसमें विद्यमान है। चरित्र और समस्याएँ इसमें विश्लेषणात्मक विधि से प्रस्तुत की गई हैं। उपन्यास का आरम्भ फ्लेशबैक शिल्प की पूर्वदीप्ति विधि के अनुसार हुआ है। इसमें अतीत की घटनाओं का क्रमिक वर्णन नहीं है अपितु शेखर की अनुभूतियों का संस्मरणात्मक चित्रण है। उपन्यास की प्रत्येक पंक्ति में एक एक अनुभूति से सम्बंधित स्थिति का विश्लेषण किया गया है। उपन्यास की आरम्भिक और अन्तिम पंक्तियाँ भी ऐसी ही हैं। भूमिका का पहला शब्द है—'फाँसी !' इसे पढ़ते ही पाठक एक विचित्र स्थिति की कल्पना करता है—फाँसी क्या, किसे ? ये दो प्रश्न उसके मस्तिष्क में कौंध जाते हैं। कथाकार पाठक की जिज्ञासा को शान्त करने के निमित्त पाठकों के मस्तिष्क में उठी स्मृति-तरंगों के रूप में उपस्थित कर देता है—जैसे तरंगों का उठान और अवसान क्षणिक रहता है, वैसे ही ये संस्मरण एक तूफानी गति से उठते और गिरते रहते हैं। जीवनी की भूमिका में ही शेखर अपने जीवन का प्रत्यावलोकन करता है—सबसे पहले शशि, फिर माँ, मौसी विद्यावती, बन्दी बहन सरस्वती, आया, जिन्निया, नाकराना अत्ता, फूला, सावित्री, मिस प्रतिभा, शान्ति, शारदा और मिस मणिका स्वप्नवत् उसके सामने आती हैं और चली जाती हैं। इस भूमिका में शेखर आत्म-निरीक्षण विधि द्वारा अपनी आध्यात्मिक स्थिति का परिचय देता है। चवालीस पृष्ठों की भूमिका में शेखर आत्मकथात्मक शैली में अपनी जीवनी की प्रमुख अनुभूतियों का विश्लेषण कर पाया है।

उपन्यास के आरम्भ के अतिरिक्त इसका अवसान भी पूर्वदीप्ति विधि के अनुसार ही हुआ है। उपन्यास के मध्य में कहीं उत्तम पुरुष तो कहीं अन्य पुरुष शैली अपनाई गई है। इस विषय में अज्ञेय ने लिखा है—

कैसे लिखूँ ?

अपनी कहानी में अपने व्यक्तित्व की पूरी इच्छा शक्ति डालकर सब्जेक्टिव दृष्टि से विवेचना करते हुए एक दम्भ और आग का भरा ललकार दूँ।

या

अपने को अपनेपन से बाहर खींचकर एक बाह्य आब्जेक्टिव दृष्टि से अपने कर्मों को और उनके प्रेरणा स्रोतों की परीक्षा लेते हुए एक शान्त अनासक्त बौद्धिक सन्देश सुनाऊँ।

या

अपने जीवन को किसी नैसर्गिक शक्ति की दी हुई थाती समझकर, एक ऋणी की भाँति उसे लौटाते समय पूरा हिसाब चुकाते हुए किसी भूलचूक के लिए सफाई देते हुए एक ब्यौरेवार क्षमा प्रार्थी बयान पेश करूँ।

अपने व्यक्तित्व को मैं समझूँ या वह या तू ?

अब जिसकी कहानी में निहित सन्देश को मैं प्रकट करूँगा, वह वह ही है। उसका नाम है शेखर। वह इस समय मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है। उसी प्रतीक्षा में वह अपना अपनापन व्यक्त किए जा रहा है और मैं उसके जीवन के सत्यों को पढ़कर,

उनका निष्कर्ष निकालकर और सम्बद्ध करके छोड़े जा रहा हूँ।"[६]

किन्तु ग्रन्थ पुस्तक की सारी सार्थकता वहाँ समाप्त हो जाती है जहाँ शेखर बीच बीच में आकर स्वयं आत्म विश्लेषण करने के अतिरिक्त कथाकार से तादात्म्य स्थापित करना चाहता है। 'शेखर एक जीवनी' के दूसरे भाग में जब कथा अवसान की ओर अग्रसर होती है तभी कथाकार लिखता है—'मैं शेखर की कहानी लिख रहा हूँ क्योंकि मुझे उसमें से जीवन के अर्थ के सूत्र पाने हैं, किन्तु एक सीमा ऐसी आती है जिससे आगे मैं अपनी और शेखर की दूरी नहीं रख सकता—उस दिन का भोगनेवाला और आज का वृत्तकार दोनों एक हो जाते हैं, क्योंकि अन्तत उसके जीवन का अर्थ मेरे ही जीवन का तो अर्थ है और जो सूत्र मुझे पकड़ने हैं खोजने हैं और उनके प्रति मैं अनासक्त नहीं हूँ।"[७] इतना लिखकर भी अन्त शेखर से असम्पृक्त रहने में सफल हुए हैं।

और अवसान ? यह तो पूर्व-दीप्ति का उच्चतम कोटि का नमूना है। जीवन यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर पहुँचकर जीवन की भटकन और थकान की तनिक भी चिन्ता न करता हुआ शेखर कहता है—'प्रणाम यमुना प्रणाम पूर्वदिशा प्रणाम, वैशाख के फूले हुए पलाश और बबूल, प्रणाम, भाऊ के उजाड़ मर्मर और धूल के बगूले, प्रणाम, दो पैरों से लाख बार रौंदे हुए रेतील नदी-तट, प्रणाम वही हुई मुट्ठी भर राख मैं सोचता था कि यदि ऐसा न होकर वैसा होता और वैसा होता, और वैसा होता, तो पर आज सोचता हूँ कि नहीं आज लगभग मान रहा हूँ कि यदि फिर कुछ हो तो ऐसा ही हो, छाया, हम-तुम भी ऐसे ही हों—अलग परस्पर एक दूसरे की ओर अग्रसर होने में सचेष्ट, साधारण अभिधा में नर पर वास्तव में अखण्ड विराम में बंधे, धमनी के एक

छाया, तुम्हें भुलाया नहीं जाता तुम साथ चलो—पहले मौसी के पास और गौरा के पास, फिर—आगे, क्रम में विस्मरण नहीं है शक्ति क्रम में तुम हो, चिरन्तन प्रेरणा—चिरन्तन क्योंकि मुक्त और—मोक्षदा' यह अवसान केवल बौद्धिक भावहीन अवसान नहीं है, पाठक के मस्तिष्क को कुछ देर भावलोक में तैराने और सोचने की प्रेरणा देने वाला अवसान है।

जीवनी के दो भाग क्यों प्रस्तुत किए गए हैं ? यह प्रश्न भी स्वाभाविक है। जीवनी तो एक ही व्यक्ति की है, तब उस एक ही उपन्यास का रूप क्यों नहीं दिया गया? दोनों भागों में व्यक्ति एक है किन्तु उसके दो रूप प्रकट हुए हैं। पहले भाग में बाल रूप के संस्मरण हैं दूसरे में यौवन की अनुभूतियाँ हैं। पहले भाग में शेखर का बाल मनो विज्ञान मुक्त आसंग (Free Association) विधि द्वारा उद्घाटित किया गया है जिसमें आत्म निरीक्षण का बाहुल्य है, दूसरे भाग में विश्लेषण की प्रक्रिया घट गई है। कथा, घटनाएं और विवरण बढ़ गए हैं और युवक शेखर का चित्त विश्लेषण बाह्य निरीक्षण विधि (Observation) तथा प्रयोग विधि (Experimental Method) द्वारा प्रस्तुत हुआ है।

---

६ शेखर एक जीवनी भूमिका से अवतरित

७ वही—(दूसरा भाग) चतुर्थ संस्करण—पृष्ठ २४४

८ वही—अन्तिम पृष्ठ

भय ने उसे सामाजिक रूप दिया ।

अहंकार ने उसे राष्ट्र में संगठित किया ।

शेखर इन तीनों वृत्तियों पर अधिकार पाने के लिए सचेष्ट है। भय को उसने जीवन से निकाल फेंका है। दमित वासना का स्थान अंत तक पहुंचते पहुंचते शुद्ध प्रेम ने ले लिया है और अहं का भी उदात्तीकरण (Sublimation) हो गया है । वास्तव में शेखर की अहंता अपने प्रारम्भिक रूप में 'प्रेत और छाया' के नायक 'पारसनाथ' और 'संन्यासी' के नायक नन्दकिशोर की अहं भावना से किसी सीमा में भी कम नहीं रही। यह अहं हीनता की ग्रन्थि का परिणाम है। जब शेखर की मां कहती है 'इसका भी विश्वास नहीं' तभी वह उद्दण्ड और अहंकारी बन जाता है। मां के साथ साथ पिता की भी उपेक्षा करने लगता है किन्तु जीवनी के दूसरे भाग में उसका साक्षात्कार मदनसिंह और मोहसिन से होता है। व उसे वेदना की शक्ति का परिचय देते हैं। अभिमान से भी बड़ा दर्द और दर्द से बड़ा होता है विश्वास —मदनसिंह का यह सूत्र शेखर के अहं का उदात्तीकरण कर देता है और फिर शशि —उससे उसे वह मिलता है जिसके बिना उसका जीवन शून्य है, जिसे पाकर उसका अहं आत्म विश्वास में परिणत हुआ है। एक वह समय था जब उसकी अहमन्यता अभ्रभेदी त्रिशूल की भांति ऊपर की ओर उठती है। शशि उसे यथार्थ धरा पर लाकर अपने प्रेम के सौजन्य से सींचती दिखाई देती है।

जीवनी की सबसे बड़ी विशेषता है —शेखर का चरित्र। शेखर का चरित्र ही क्या बन गया है। शैशव से ही वह जिज्ञासु रहा है। उसकी जिज्ञासा एक क्षेत्र में सीमित नहीं है असीम है। वह व्यक्ति और समाज जीवन और जगत को जान लेना चाहता है। उसका व्यक्तित्व असाधारण है। जब उसे पढ़ाया जाता है वह विद्रोह कर देता है कान्वेंट का त्याग करने के अतिरिक्त घर पर आए अध्यापक को भी थुक्कू मास्टर की उपाधि देता है किन्तु जब उसे छोड़ दिया जाता है तब उसकी स्वाभाविक जिज्ञासा उसे बाध्य करती है उसके बड़े भाई जब अपने अध्यापक से पढ़ते, तब वह पीछे से जाकर समझने लगता है। और वह बहुत कुछ समझ लेता है। अच्छे बुरे की पहचान उसे हो गई है। एक दिन पिता के एक मित्र घर आते हैं। पिता पूछते हैं — क्या सोच रहे हो।"

बोला— मैं सोच रहा था कि बुरे के बगैर अच्छा नहीं होता।'

वे एकाएक समझे नहीं। बोले—'क्या मतलब?

'लोग बुरे को देखते हैं तभी उन्हें पता चलता है कि क्या अच्छा है। बुरा नहीं हो, तो क्या पता लगे कि अच्छा क्या है?' इस प्रकार के विश्लेषणात्मक प्रसंग उसकी तीव्र बुद्धि के परिचायक हैं, असाधारणता के परिचायक है।[१]

शेखर की जिज्ञासा का कोई ओर छोर ही नहीं है। शिशु अवस्था में ही वह सब कुछ जान लेना चाहता है जिसका बड़े बूढ़ों को भी ज्ञान नहीं। एक दिन वह डूबते डूबते बच गया। उसने युद्ध में अनेक सिपाहियों के मारे जाने की बात सुन रखी थी तभी से मन में जिज्ञासा थी कि जान जाए—मृत्यु क्या है? उसने अपनी बहन सरस्वती से पूछा—

---

१ शेखर एक जीवनी (प्रथम भाग)—चतुर्थ संस्करण—पृष्ठ ५८

'मरते क्यों है ?

'मर जाते है और क्या ?

मरकर क्या होता है ?

पागल ! जान नहीं रहती, चल फिर, बोल नहीं सकते तब से जाकर जला देते है।

'डूबने से ऐसे ही मर जाते हैं।

हां।

थोड़ी देर बाद शेखर ने फिर पूछा — जान आती कहां से है ?

ईश्वर से।

जाती कहां है ?

ईश्वर के पास।' [10]

ईश्वर ईश्वर ईश्वर सब कुछ ईश्वर तब बाल शेखर का मन ईश्वर के अस्तित्व को ही मानने से इन्कार कर देता है। बच्चे कैसे उत्पन्न होते हैं विवाह किसलिए किया जाता है आदि प्रश्न भी उसे चिंतित रखते हैं। वह एक ओर विद्रोही अनास्थावादी, अहंवादी है तो दूसरी ओर जिज्ञासु तथा बौद्धिक।

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि द्वारा लिखनेवाला कथाकार मात्र कथा ही नहीं लिखता अपितु वह तो एक एक पंक्ति में स्थिति के विश्लेषण का अवसर ढूंढता रहता है। शेखर की मानसिकता का निर्माण एक दिशा में ही नहीं हुआ। वह जीवन की नाना अनुभूतियों कार्य-व्यापारों और जीवन दर्शन का निचोड़ है। उसके क्रिया-कलाप में एक असाधारण स्थिति कार्य कर रही है जो अनपेक्षित घटित कर देती है। शेखर के पिता को अपने पुत्र पर मान हुआ तो सभी अतिथियों के सम्मुख उसके अहिंसात्मक सिद्धान्त का प्रदर्शन कराने लगे। एक दिन एक व्यक्ति आया (जिसे शेखर ने पहाड़ी चूहा समझा) तो कहने लगे —

'बेटा शेखर अगर कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ लगाए तो क्या करोगे ?

मैं उसके दोनों गालों पर लगाऊंगा। वाक्य अनपेक्षित है किन्तु विश्लेषण भी प्रस्तुत है — उसके स्वर में हिंसा थी दृष्टि में ताप, मानो वे काल्पनिक दो थप्पड़ वह बैरिस्टर साहब के पुष्ट गालों पर लगा रहा हो लेकिन बात कहते ही उसने जो लम्बी सांस ली उसमें कितनी गहरी हताशा कितना प्रगाढ़ नैराश्य था वह किसने समझा ?

'शेखर सीढ़ियां उतर रहा था जैसा काम उसने किया था उसके अनुरूप चाहिए था कि उसकी चाल में उद्धतता होती लेकिन वह ऐसे उतरा जैसे वर्षों का थका हो टूटा हो।'' [11]

उपन्यास में स्थल-स्थल पर नायक की मानसिक अवस्था को उभाड़कर उसकी असाधारण मनःस्थिति का चित्रण किया गया है। इस संबंध में डाक्टर देवराज का

---

१० शेखर एक जीवनी—पृष्ठ ८५

११ वही (भाग एक)—पृष्ठ १२६

यह कथन ठीक ही है—' बहुत हो गया। कहा तक उदाहरण दिए जाए। मालूम तो ऐसा ही होता है कि बाल मनोविज्ञान और चित्त विश्लेषणवादी बाल मनोविज्ञान को क्यात्मक और सजनात्मक रूप देने के प्रयत्न ही म शेखर का निर्माण हुआ है। फासी ही मानो चित्त विश्लेपण करनेवाला डॉक्टर है, कोठरी ही क्लिनीक है। वहा फासी न शेखर के सा ऐसी आत्मीयता का वातावरण स्थापित किया है कि उसके चित्त पर पडे सारे प्रतिरोध की पर्तें भङ्ग गई हैं और वह अपन ऊपर पडे सारे आवरणो को चीरकर अपने बाल जीवन उद्यान म प्रवेश कर वहा के दृश्या को साफ साफ देखने लग गया है। यहा तक कि कही कही तो स्पष्ट रूप से चित्त विश्लेषण के सिद्धान्तो की चर्चा होने लगी।'[12]

अज्ञेय की शैला म बौद्धिकता के आग्रह की कमी नही है। जीवनी का नायक शेखर कोठरी म बन्द है। घनीभूत वेदना की काली रात म देखे हुए वीजन (vision) का शब्द बद्ध करता हुआ वह बौद्धिक विश्लेषण द्वारा मत्यु और जीवन की व्याख्या करता है— 'शायद मत्यु का ज्ञान और जीवन की कामना एक ही चीज है? यह बहुत बार सुनने म आता है कि जीना वही जानता है जो मरना जानता है। यह नही सुना जाता कि जीवन सबसे अधिक प्यारा उसका होता है जो मरना जानता है, पर है यह भी ध्रुव सत्य। लाग समझते हैं कि जो जीवन को प्यार करते हैं, वे मत्यु स डरते हैं। बिल्कुल गलत। जो मत्यु से डरते है वे जीने से प्यार नही कर सकते क्योकि जीवन म उन्हे क्षण भर भी शान्ति नही मिल सकती। जीवन प्यारा है या नही, इसकी कसौटी यही है कि उसे बिना खेद के लुटा दिया जाए, क्योकि विराट प्रेम मौन ही हो सकता है, जो अपना प्यार कह सकते हैं उनका प्यार ओछा है '

The desultory of Death "

मत्यु के झटके हुए उदास पर द्वार-द्वार पर जाते है, और यौवन मुरझा जाता है और जीवन घुल जाता है और वेदना है अनन्त एक नीरवता का क्षण आता है, जिसम उन श्याम पखो की उडान का रव सुन पडता है जिन्ह देखना सो जाना है हर कोई ऊघता है और सो जाता है हर व्यक्ति और हर वस्तु, केवल यह तप्त न होने वाली भूख, यह किसी चरम ध्येय की पागल माग, यह मुक्ति का विवश आकर्षण, यह नही बस होता मत्यु के पख उस पर से बीत जाते हैं लेकिन उनकी छाया उस नही ग्रसती वसा ही उदास छोड जाती है

'मृत्यु के पखो म बसा है अनन्त निशीथ का अन्धकार, लेकिन मुक्ति है एक असह्य देदीप्यमान ज्वाला

'लेकिन मैं मरना नही चाहता मैं जीवन को प्यार करता हू मैं मरना नही चाहता।'[13]

शेखर का मानसिक उत्थान-पतन उसके विशिष्ट मानसिक स्थिति के अनुसार परिवर्तित होता है। कभी वह आदर्श, सकोचशील अहिंसावादी बन गया है, कभी उछ-

---

१२ आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान—पृष्ठ १६७

१३ शेखर एक जीवनी (प्रथम भाग, चतुर्थ सस्करण)—पृष्ठ १३१

सत्त उद्दण्ड कठोर विद्रोही। कभी उसका भावुक रूप सामने आता है तो कभी तार्किक। १०३ डिग्री बुखार में भी वह सरस्वती का विवाह देखना चाहता है और तार मिल जाने पर भी मत्त मा का समाचार पढ़कर रो नहीं पाता। जहां उसे वस्तु का ज्ञान नहीं होता वहीं जिज्ञासु बन उठता है जब जिज्ञासा शान्त नहीं होती, खीझ उठता है। सरस्वती के पुत्री हुई अठमासी थी पर मर गई। अठमासी लड़की क्या होती है ? दूसरा पता वह रसोइए से लगाता है अस्ती से पूछता है। यहीं से उसके जीवन में नारियां आती हैं— शारदा शशि और मणिका ही इनमें विशिष्ट स्थान रखती हैं। शारदा और मणिका तो बिजली की तरह चमककर चल देती हैं किन्तु शशि ? वह शशि जो एक का विवाहिता है दूसरे की प्रेमिका बनती है।

शशि की बात ही और है। शशि ने शेखर का निर्माण किया है। उसे स्थिरता दी है और गति भी दी है। वह स्थिरता जो शेखर के अशान्त चित्त को संयत कर देता है और वह गति जो उसे जीवन में प्रेरणा देती है—साहित्य निर्माण की ओर जीवन सच्चा लन की। लाहौर से वापसी पर वह एक नया उत्साह लेकर लौटता है। नव जागरण का सन्देश एक-एक युवक में भर देना चाहता है। अछूतों के लिए रात्रि का स्कूल खोलना है। पुरुष प्रधान सभ्यता के बोझ तले दबी घुटी और आक्रान्त नारी को मुक्त कराना चाहता है। इसके लिए सदाशिव आदि के साथ मिलकर समिति बनाता है। किन्तु शारदा के कारण क्षुब्ध होकर उसे भी तोड़ डालता है। शेखर एक जीवनी का चतुर्थ खण्ड केवल बिखरा बिखरा ही नहीं है उखड़ा उखड़ा भी है।

शेखर एक जीवनी दूसरा भाग एक स्वतन्त्र उपन्यास है। इसमें शेखर के यौवन की कहानी समन्वित शिल्प विधि द्वारा कही गई है। शैशव के मनोविश्लेषणात्मक प्रसंगों से यहां कथा को छुटकारा मिल गया है। दार्शनिक व्याख्याएं और मनोद्वन्द्वात्मक विश्लेषण अब पीछे रह गए हैं। जीवनी अधिक कथामयी और भावमयी बन गई है। इस भाग में शेखर के यौवनगत संस्मरण कालेज और जेल की अनुभूतियां और प्रणय की बात चित्रित की गई हैं। इसमें भी कॉलेज का जीवन तो साधारण है किन्तु जेल-जीवन की अनुभूतियां और शशि-संबंध के संस्मरण काफी लम्बे कथात्मक, और सजीव हैं। घटनाएं भी एक दूसरी में गुम्फित होने के लिए सचेष्ट है। सभी घटनाएं एक ही पात्र शेखर तक सीमित नहीं रहता अपितु मदनसिंह रामेश्वर तथा शशि को भी अपने दायरे में ले आती है। विशेषकर शेखर और शशि का प्रेम-संबंध कथा और शिल्प के क्षेत्र में नये प्रश्न उठाता है।

शेखर शशि संबंध वैयक्तिक रति की समस्या के अतिरिक्त सामाजिक कथा और समस्या के प्रश्न को उठाने वाला संबंध है। शिल्प की दिशा में भी इसने एक अन्तर प्रस्तुत किया है। यहां कथाकार वर्णनात्मक शिल्प के साथ साथ वर्णनात्मक शिल्प का सहारा लेता स्पष्ट देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ पत्र भी दिए गए हैं जो शशि द्वारा शेखर के लिए ही लिखे गए हैं। इन पत्रों में एक ओर शशि ने अपना मन उठाकर रख दिया है तो दूसरी ओर विश्लेषण के लिए सामग्री भी दे दी है।

पहला पत्र—शेखर को जेल में ही मिलता है। यह शशि ने लिखा है और इसमें

लिखे समाचार शशि का विवाह हो रहा था—और शशि नही चाहती विवाह' से ही पाठक और शेखर को परिचित कराया जाता है। साराश यह है कि पत्र का सवाद दे दिया गया है विवरण नही किन्तु यह पत्र जिस प्रकार की हलचल शेखर के मन म उत्पन्न कर देता है उस स्थिति का पूरा विश्लेषण किया गया है। पत्र पढा नही गया—जाना गया है। उसे दु ख का अधिकार नही है हा, नही है अधिकार अधिकार होता तो दु ख क्यो होता ? दुख उसको मेरी स्नेह की भेंट हैं जैसे बहिनापा उसका मुझ स्नेह का दान था ! नही है वह सहोदरा, वह सजाया है एक खण्डित आत्मा दो क्षेत्रों म अकुरित हुई है तभी तो शेखर अपने को देखता है और नही समझ पाता कि कहा वह अपग हो गया है—यद्यपि एक गहरी टीस उसम उठती है और एक मूछना भी उसके बचे हुए गात पर पर छाई जा रही है इसी प्रकार शशि के विवाह का समाचार और विश्लेषण फिर नायक का रुदण सिद्ध करते हैं कि दोनो प्रेमी प्रेमिका है और इनकी कथा दूसरे भाग म समन्वित शिल्प विधि पर रची गई है। जीवनी के दूसरे भाग के दूसरे खण्ड म शेखर को शशि का एक और पत्र मिलता है जिसम उसकी जडवत दशा का वणन है। इसे पढ कर शेखर शीघ्रातिशीघ्र उससे मिलने का उतावला हो जाता है। फिर तीसरे खण्ड म उनकी अनेक मुलाकातो का वणन किया गया है। हर भेंट के उपरान्त मन स्थिति का विश्लेषण भी प्राप्य है।

एक दिन शेखर शशि से कहता है—'कब से तुम्हे बहन कहता आया हू पर बहन जितनी पास होती है उतनी पास तुम नही हो इसीलिए वह जितनी दूर होती है—उतनी दूर भी तुम नही हो' (पृष्ठ १६४) यह पक्ति शशि को सामाजिक सीमा तक पहुचने पर विवश करती है। वह पति द्वारा परित्यक्त होती है, शेखर के साथ रहने लगती है।

चतुथ खण्ड म शेखर शशि सबध और मनोभावो का बडे विस्तार के साथ चित्रण किया गया है। विस्तृत कथा के साथ-साथ जीवन की गहराइ म उतरने का उपक्रम भी यही मिलता है। कथात्मक प्रवत्ति इतनी उबल पडी है कि पाठक पढते पढते अपने को पूणतया विस्मत करके शशि की नवीन परिस्थितियो, वृत्तियो की जानकारी शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करने के लिए उतावला हो जाता है। वह भ्रष्टा हैं—तो क्यो ? उसके चोट लगी तो कसे ? वह जब यह तक कह डालती है 'शेखर तुम मुझे बहन, माता भाई, बेटा कुछ मत समझो, क्योकि मैं अब—कुछ नही हू। एक छाया हू।' और शेखर को शशि स वह सब मिलता है जिसकी उसे भूख है। प्रेम, अखण्ड प्रेम के सब स्वप्न उस शशि द्वारा ही उपलब्ध होते है। आत्महत्या की भावना से मुक्ति और कम पथ की प्रेरणा शेखर को शशि स ही मिली है। इसी खण्ड म शशि का पूण चारित्रिक विकास हुआ है। वह सतत दु खिनी है, वेदना न उसकी आत्मा को ही उज्ज्वल नही किया, उसके सम्पक म आनेवाले शेखर को भी चमका दिया है। शशि म न विवेक की कमी है और न अनुराग की, न कतव्य की विस्मृति है, न प्रेम का अभाव। हिन्दी के एक लेखक अपने लेख प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास म इस चरित्र क विषय म लिखते हैं—' वह बडी उच्चमना है। अपने पति का अकारण अत्याचार सहती है और जीवन की वदना के लिए किसी को दायी नही ठहराती। शशि का प्यार बहुत गहराई म उतरकर जीवन की बहुत उचाई पर चलता है। इच्छा

होती है कि व्यक्ति की प्रमिता हो तो ऐसी ही हो।"

शशि प्राचीना भी है, आधुनिका भी। पतिव्रता भी है, पति द्रोही भी। उसने प्रेमी को पाकर भी पति को नहीं भुलाया, जो पति का भाग है, वह प्रेमी को कभी नहीं छूने दिया। उसे पति पर कोई भाव नहीं है, क्षोभ है अपने उस प्यार पर जो अवांछित पुरुष के लिए लुटा बैठी, जो नहीं लौट सकता। वह विद्रोहिनी भी है टूट तो सकती है, भुकती नहीं उसका मत है 'स्त्री हमेशा से अपनी को मिटाती आई है—नाश सब उसमे संचित है, जस धरती में चेतना पुरुष की प्रगति में स्त्री माध्यम है—और वही एक माध्यम है। (पृष्ठ २१६) शशि का यह जीवन दर्शन केवल कथन मात्र नहीं है उसका कृतित्व है—उसने अपने को मिटाया है तिल तिलकर समाप्त किया है किन्तु साथ ही शेखर का निर्माण भी किया है—इसने केवल इसने।

शशि अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी 'रोज़' (ग्रैंग्रीन) की नायिका मालती का ही विकसित रूप है जिसका मनोविश्लेषणपूर्ण चित्रण कथाकार ने इन शब्दों में किया था—मालती एक बिल्कुल अनिच्छुक अनुभूतिहीन, नीरस, यन्त्रवत स्वर वाली स्त्री—शशि, रामेश्वर की पत्नी शशि भी इसी प्रकार की नायिका है—किन्तु जीवनी में शशि का चरित्र विकसित हुआ है वह घर से बाहर आई है तो ऐच्छुक अनुभूतिशील सरस और गतिशील व्यक्तित्व लेकर ही बाहर आई है। उसने शेखर को साहित्यकार बनने की प्रेरणा दी है उसमें अहं का परिष्कार कर, विद्रोही व्यक्तित्व का संस्कार कर एक साहित्यिक प्रतिभा का सृजन किया है। सब परिस्थितियों का विद्रोही शेखर उनको सामीप्य स्वीकार कर परिस्थितियों से समझौता करना भी सीख गया है। बेकारी में अदम्य साहस शशि का ही वरदान है। अहिंसा का जो पाठ मन्मनसिंह ने उसे सिखाया है उसका प्रमाणात्मक रूप शशि की ही भेंट है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्लेषण के आग्रह द्वारा ही चरित्रों का विकास अज्ञेय के उपन्यासों में सर्वत्र मिलता है। इन्होंने मनोविश्लेषण आत्मविश्लेषण तथा सूक्ष्म अन्वेषण द्वारा मनुष्य के क्रिया-कलापों तथा मन स्थितियों का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

प्रभाकर माचवे

विश्लेषण के इस युग में उपन्यासकार की दृष्टि संश्लेषणात्मक जीवन के साथ साथ खण्ड जीवन पर पड़नी आरम्भ हुई। वह कथा वैविध्य की अपेक्षा चारित्रिक वैलक्षण्य तथा वैविध्य की खोज करने लगा। छायामापुग नैतिक मूल्यों का उसने विस्तार के साथ वर्णन न करके सूक्ष्मता तथा तीव्रता के साथ विश्लेषण ही किया है। यही परिवर्तित शिल्प प्रधान विश्लेषणात्मक शिल्प की विशेषता है। इसमें रेखाचित्रों द्वारा खण्ड जीवन का विश्लेषणात्मक आकलन होता है। प्रभाकर माचवे ने इस शिल्प विधि को अपनाया है।

---

१४ विश्वम्भर मानव शेखर एक जीवनी आलोचना उपन्यास विशेषांक—पृष्ठ ११४

विश्लेषणात्मक शिल्प विधान के अन्तर्गत मनोविश्लेषणात्मक पूर्व दीप्ति तथा चेतना प्रवाहवादी आदि विश्लेषणात्मक रचनाएं आती हैं। माचवे ने 'परन्तु' की रचना चेतना प्रवाहवादी विधि के अनुसार की है। इसमें वैयक्तिक चेतना और व्यक्तिगत प्रक्रियाओं का अध्ययन भावों के मुक्त संसग (Free association) के प्रयोग द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसमें इलाचन्द्र जोशी के 'प्रेत और छाया' तथा अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' की भांति पूर्ववृत्त (Case History) देकर मानसिक घटकों (Psychic Contents) का काम नहीं दिया गया और न ही 'सन्यासी' के नन्दकिशोर की भांति किसी एक व्यक्ति के असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal Psychology) का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है अपितु नाना पात्रों को लेकर उनके चरित्र प्रवाह को उद्घाटित किया गया है।

चेतना प्रवाह पद्धति ने आधुनिक उपन्यास को नया मोड़ दिया है। पश्चिम में तो इसके कारण वर्जिनिया वुल्फ तथा जेम्स ज्वायस (Virginia Woolf and James Joyace) ने नये दृष्टिकोण नये उपाय और नवीन रूप (*New form*) को लेकर उपन्यास क्षेत्र में क्रान्ति हो मचा दी। वस्तु चेतना प्रवाह (Stream of Consiousness) शब्द का प्रयोग सबसे पहले विलियम जेम्स ने किया था किन्तु समालोचना के क्षेत्र में इसका प्रथम प्रयोग मिस सिन्क्लेयर (Miss Sincleire) द्वारा मिस डारथी रिचर्डसन के प्रसिद्ध उपन्यास पाइन्टेड रूफ (Pointed Roof) १६१५ की आलोचना के समय सामने आया। चेतना प्रवाह पद्धति का सबसे प्रसिद्ध उपन्यास जेम्स ज्वायस कृत 'यूलिसिस' है। मनोविज्ञान ही इसकी प्रेरक शक्ति है। आन्तरिक जीवन की झांकी देना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। इसकी चर्चा करते हुए एक आलोचक कहते हैं—"इन लोगों के उपन्यासों में जीवन के मानसिक आन्तरिक जीवन प्रवाह के सांकेतिक इन्द्रिय वेदना संस्कार के विशुद्ध रूप के चित्रण का प्रयत्न हुआ है। उन्हें किसी कल्पनात्मक या बौद्धिक सांचे में, मोल्ड (Mould) या पटर्न (Pattern) में बैठाकर दर्शन का प्रयत्न नहीं है। स्नायु के विशुद्ध प्रकम्पन को ही पाठक के स्नायु की तरंगों में मिला देना है। वस्तु के उस विशुद्ध रूप को उपस्थित करना है जिसमें वह कुछ दूसरी न बन जाकर अपनी विशुद्ध सत्तात्मक रूप में अवस्थित रहती है। परिणाम यह होता है कि कोई समाहारकत्व रह *नहीं जाता। कोई प्रधान केन्द्र का प्रतिनिधि नहीं रहता* कोई न्यायकत्व नहीं रहता सबको घेर रखनेवाला चिन्तन दूर हो जाता है। अतः पहले की निरायत्त छोटी छोटी दुबकी पड़ी रहनेवाली उपान्त भावनाएं प्रमुख हो उठती हैं। जिन्हें हम पहले असंगतियां कहकर टाल देते थे चित्त में पड़ी हुई बेकार, फालतू, निरर्थक धब्बे समझकर छूते भी नहीं थे, वे ही अब प्रमुख स्थान ग्रहण कर लेते हैं।[१]

चेतना प्रवाहवादी उपन्यास में किसी पात्र को भी लें। उसके मस्तिष्क में एक ही समय में नाना भाव एक के बाद एक करके उठते और गिरते रहते हैं। वह वर्तमान में

---

१ डा० देवराज उपाध्याय आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान—पृष्ठ ३१५

[illegible] उप नाम [illegible] बन्धन परिवर्तन
रहता हुआ अतीत की भांति लग गया है भविष्य की कल्पना कर लेता है। बचपन म
प्रहित बिम्ब (Impression) किसी पुरानी स्मृति म सविष्ट होता है। ये पुरानी स्मृति
या स्मृतियां अचेतन (Unconscious) म विद्यमान रहती है और मनोविश्लेषण
(Introspection) द्वारा उपचेतन (Sub Conscious) म ले आई हुई बात मन म
हलचल मचाने लगती है। भावों क स्वच्छन्द गमन द्वारा अचेतन म विद्यमान प्राथमिक
इच्छाएं धारणाओं क साथ बाहर फूट पड़ती है। इनम मस्तिष्क का [illegible] परिवर्तित होने
का परिचय मिलता रहता है। एक ओर स [illegible] और उसम अनुभूत भावधारा का महत्व
[illegible] होता है।

साधारणत: घटना प्रवाहशाली उपन्यास का कथा [illegible] दुर्बल एव क्षीण होता है
मन इसम आधिकारिक और प्रासंगिक कथा विकास का प्रश्न ही नहीं उठता। बाह्य
घटना का अपेक्षा मानसिक घटना (Psychic Contents) का महत्व कई गुना अधिक
होता है। पूर्व अनुभूत घटना का स्मरण मात्र भावों क स्वच्छन्द गमन का मार्ग तैयार कर
देता है। एक बाह्य घटना नाना मानसिक घटना (Psychic Contents) का जन्म देता
है। परन्तु म—बाह्य घटनाएं केवल दो है एक विपिन हेम का मृत्यु लक्ष्मी द्वारा मनोज
हरण दूसरी मनीषा क विवाह की सूचना। इन दो घटनाओं पर ही उपन्यासकार ने नाना
मानसिक घटना का जाल सा बिछा दिया है। इतना हल्का घटना-तत्व प्रभाकर माचवे
के लिए पर्याप्त सिद्ध हुआ।

अपने उपन्यासों के शिल्प के बारे में डॉ० प्रभाकर माचवे लिखते हैं—

मैंने अब तक पाच उपन्यास लिखे हैं। १९५० से १९६५ तक क्रम से—परन्तु
'एकतारा' 'द्वाभा' 'साचा' और 'जो'। मेरे मन म कई बार और यह उपन्यास लिखने
की बात भी उठी। पर अधिकतर मैंने कई अध्याय लिखकर फाड़कर फेंक दिए—क्योंकि
मेरे मन का पूरा समाधान नहीं हुआ।

मैंने जब पहला उपन्यास लिखा तब तक मैं बहुत से हिन्दी भारतीय भाषाओं के
और अंग्रेजी और यूरोपीय उपन्यास पढ़ चुका था। मैं मनोविज्ञान का विद्यार्थी सन १९३२
से १९३८ तक रहा और १९३८ से १९४८ तक मैं मनोविज्ञान पढ़ाता भी रहा। मेरे
मत से मनोविज्ञान और समाजविज्ञान आज के दो महत्वपूर्ण शास्त्र हैं जिन्हें पूरी तरह
जाने बिना कोई साहित्य कला विषयक सृजनात्मक कृति प्रक्रिया या समीक्षा जानना
असंभव है। इसलिए मेरे मन म मनोविश्लेषण संबंधी बातें पहले से थी यह सही है। पर
उनके उदाहरण के तौर पर मैंने लम्बी कहानियां या छोटे उपन्यास नहीं लिखे। मेरे लिए
मनुष्य का मन और उसका परिवेश—दोनों के घटनात्मक ऋणात्मक संबंध परस्पर प्रभाव
एक अध्ययन की वस्तु रहे हैं। इसलिए मैंने अपने उपन्यासों म कई तरह के माध्यमों से
इन चीजों को देखा—पत्र डायरी के अंश स्वप्न फ्लैश-बैक चेतनाप्रवाह अध्यवासित
बिम्ब आदि अनेक माध्यम जैसे हैं वैसे ही अवचेतन की अलग भाषा को लिखने का भी
मैंने प्रयोग किया। जैसे 'साचा' म। इन सबके कारण मेरे उपन्यास लोकप्रिय कभी नहीं
हो सके। उनके दो दो संस्करण हुए परन्तु उनका कभी सही ढंग से कोई विचार हिन्दी
समीक्षकों ने नहीं व्यक्त किया। कुछ लोगों के लिए ये बौद्धिक व्यायाम मात्र थे। कुछ

[ले]गा न इह 'शिल्प' के प्रयोग माना।

उपन्यासकार या कवि के लिए 'शिल्प' का ज्ञाता होना, उस पर अधिकार प्राप्त [क]रना कोई बुरी बात है, ऐसा मैंने कभी नहीं माना पर आसकर वाइल्ड के अनुसार (Art [l]ies in Concealing the art) मानो कला छिपाने में ही कला है यह बात सही है। [स]हज रूप में जो व्यक्त हो जाए वही कला अधिक सुन्दर या आकर्षक होती है।

इसलिए मेरे मन में कलाकार की प्रामाणिकता और कलाकार की एक आवश्यक [गो]पन प्रियता या 'मुद्रा' (पाश्चर) में सदा द्वन्द्व बना रहा है। कलाकार को किसी न [कि]सी पाठक वर्ग के लिए या सामने कुछ प्रेषित करना है यह बहिर्वर्ती प्रेरणा है, परन्तु [क]हाँ तक वह अपने प्रति प्रामाणिक है या कहाँ तक वह अन्तर्गोपन कर सकता है यह उसका अपना प्रश्न है—और इन दोनों खिंचावों में कला का जन्म होता है। उसके शिल्प की अनिवार्यता का भी वही बिन्दु है।

इधर हिन्दी उपन्यासों में शिल्प को लेकर आलोचकों में काफी बहस हुई है और एक छोर के उपन्यास यानी सम्पूर्ण शिल्पहीनता का है, और दूसरा छोर हर एक छोटी बड़ी चीज को पूरी तरह से पूर्व नियोजित करके लिखनेवालों का भी दल है। प्रेमचन्द ने लिखा है और सियारामशरण गुप्त ने हमसे कहा था कि वे जैसे जैसे लिखते जाते थे उनके पात्र और कथानक अपना रूप ग्रहण करते जाते थे। वे अपने शिल्प के प्रति बिल्कुल सजग नहीं थे। भगवतीचरण वर्मा या अमृतलाल नागर भी प्रायः इसी सहजप्रवाही शैली को अपनाते हैं। परन्तु दूसरी ओर 'शेखर एक जीवनी', 'देशद्रोही' या 'झूठा सच' या, या 'सुनीता' या 'त्यागपत्र' का लेखक है जो कला से अधिक एक सांस्कृतिक, सामाजिक सोद्देश्यता को सामने रखे हुए है। प्रेमचन्द का अस्पष्ट समाज सुधार यशपाल तक आकर सहतुक समाज क्रान्ति में बदल जाता है। और प्रसाद के 'तितली' या 'कंकाल' अज्ञेय तक आकर 'अपने अपने अजनबी' बन जाते हैं—या 'घर की खोज' बनी रहती है। 'जहाज का पक्षी' फिर जहाज पर लौट आता है। इन सबके यहाँ भी कला या शिल्प साधन मात्र है या यों कहें कि उपादान है। परन्तु इसके बाद एक वर्ग उन लेखकों का भी आता है जो शिल्प के प्रति सजग है—भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' या 'रेणु' का 'परती परिकथा' इस तरह की शिल्प सचेतनता का परिचय देते हैं। नरेश मेहता के 'वह पथ बन्धु था' या शिवप्रसादसिंह की 'अलग अलग वैतरणी' में भी वह खोज जारी है। मैं अपने आपको न तो सामाजिक सोद्देश्यता से बंधा लेखक मानता हूँ। न व्यक्तित्व की खोज वाला लेखक। मेरा उपन्यास लेखक इस दृष्टि से अधिक आधुनिकता बोध लिए हुए है। मैं मनोविश्लेषण को भी अंतिम नहीं मानता, न मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद को। मैं मनुष्य के शरीर मन बुद्धि, अहंकार सारी तन्मात्राओं को प्रकृति-पुरुष के चिरंतन द्वन्द्व का एक प्रकट स्फुलिंग मानता हूँ। इसलिए जीवनी शक्ति के इस आत्मोपलब्धि और आत्म विलयन के समन्वित व्यापार में शिल्प और कथा एकाकार हो जाते हैं—शिव शक्ति जैसे। उनपर अलग अलग विचार प्रायः असम्भव है। दोनों समग्र हैं 'गेस्टाल्ट' है।

इस समग्रता में से एक और तथ्य उभरता है। क्या 'मूल्य' निरा मन का धोखा है? क्या वह केवल शब्द है? यदि हाँ तो शब्द का मूल्य क्या? अर्थ की इयत्ता कौन

सा ? क्या यह सम्भव है कि यक्ति पूणत असामाजिक का जाए। सात्र न इस अस्तित्व
और अनास्तित्व की समस्या कहकर साध्य और साधन म अन्तर किया है। हमार लिए
यह द्वन्द्व हमारे दशना म चिरतन काल स है। पाण्डुक्यपनिषद म दा पक्षी एक ही वक्ष
पर बठ हैं—एक दखता है एक खाता है। द्रष्टा और भाक्ता क अन्तर म शिल्प की स्थिति
म अन्तर माना जाता है। हमार यहा इसी अन्तर पर जार दिया गया है। पश्चिम म
इस कम स कम कहन से आलाचना भ्रमित हो गई है।

शिल्प और शली काई दो वस्तुए नही है। प्रत्यक यक्ति का अपनी मुस्कुरा
हाती है। बाल का या पुतली का रग होता है। चाल ढाल हाता है। वही है शली। जिस
पर लखक क यक्तित्व की मुहर स्वाभाविक है। परन्तु शिल्प कुछ बाहर वस्तु है
यक्तिगत नही जन्मजात नही—वह अर्जित भी किया जा सकता है। अनक लखका म
वह समान भी हा सकता है। विभिन्न भी। यह सब अध्ययन की वस्तु है।

डा० प्रम भटनागर न अपना थासिस म मर बार म क्या लिखा है। मैं नही
जानता। पर ऊपर प्रश्ना क सक्षिप्त उत्तर ऊपर है।[२]

परन्तु—१६४०

परन्तु म कुल पाच पात्र है—अविनाश अमिय अनीता हम और सठ लक्ष्मी
चन्द। इनका शीषक रूप म प्रस्तुत करक प्रत्यक अध्याय म इनक मस्तिष्क म ही भाना क
मुक्त समग का प्रवाह बहा दिया गया है मानो उपन्यास कला पात्रा क मानस म प्रवश
करक चतना का अनुभूत कर रही हो। हिन्दी उपन्यास साहित्य म यह एक बिल्कुल नया
दष्टिकोण है नया शिल्प विधान है। परन्तु क आरम्भ का ही ल। एक यक्ति है—नाम
है अविनाश—एक कालज का कमरा है उसम और लडका क साथ वह भी बठा है प्रा०
का भाषण राजनीति क विषय पर हा रहा है परन्तु अविनाश का मन और मस्तिष्क वहा
है ? वह ता चतना प्रवाह म लीन है — अविनाश का अन्तमन अपन गाव म लौट चला
क बचपन क दिन ठाकुर शा क दिन पुकूर की सीढिया पर चाण चुपक पढा हुआ बकिम
बाबू का कृष्णकान्त विल और उसम नायक नायिका का बहाश हान पर कम हाश म
लाता है शरत बाबू क स्वामी म वह फूल तोडन का प्रसग स वासी उपगुप्त—
रवि बाबू का वसन्त सना ठि साहित्य का यह रइसी विलास स भरा जजर अग—
श्रृगार और अन्त न यौवना उवशी (मसर) काना म श्रोफसर की आवाज की भनक—
मूडटन जमना का चकास्लोवाकिया म दावा —पय का दावा दावदार नही—दाव—'
श्रान्मि दावानल दाहन करिया विश्व श्रामि जहन्नमर आगर वनिया पुष्पर हाशी पुष्पा
(पुन अन्तचेतना का अबाधित प्रवाह) पुष्पा या रामा ? या हम गाव की बचपन का
साथिन मन एकत्र अध्ययन पुष्पा शरीर थी हम आत्मा—परन्तु वनभूपा रामा
का हा श्रष्ठा थी परन्तु हम की सावली मुद्रा म व रसभीनी श्राख मन्त्र मुग्ध कर डालन
वाल कामरूप क तान्त्रिक का अनजान जादू माना उनम बसा हो जब भा स्पष्ट याद है

---

२ लेखक का उपन्यासकार भेंट प्रश्ना का लिखित उत्तर ७ ६ ६८

वह बड़ी-बड़ी आखा स ढुलक पडनेवाले आसू और सच भी ता था, उसकी मा को मुझे इस तरह डाटना क्या चाहिए था, उसे क्या न बुरा लगा होगा, क्या मैंने कोई पाप किया था ? पाप (सतक) देखें अरविन्द घोष पाप के सबध म क्या कहते है। सामने रखी हुई अरविन्द की पुस्तकें पढन लगता है।[1] यह केवल एक उद्धरण दिया गया है, किन्तु उपन्यास के कुल ८४ पष्ठो म स २० पष्ठ एसे ही अनेका उद्धरणो से रगे गए है मानो चेतना के अबाधित प्रवाह क अतिरिक्त कुछ और कहन के लिए उपन्यासकार क पास सामग्री ही नहा है। अत कथानक भीना हा गया है। चरित्र उभर आए है। इन चरित्रा की अनुभूतिया वयक्तिक क्षेत्र से सामूहिक क्ष त्र की ओर गतिशील है। अविनाश अपने तक सिमट कर नही बैठा है वह हम, अमिय, अनीता और सेठ के क्रिया-कलाप, मनोविकार और मनाविज्ञान का अध्ययन और विश्लेषण करन क साथ साथ समाज की दुबलताओ और नतिक मान्यताओ का परिचय भी हमे देता है। उसकी भाव प्रवणता म हम की विवशता, सेठ की क्रूरता अमिय की शिथिलता, अनीता की रूप गर्विता तथा समाज की निष्ठुरता बडे सूक्ष्म और तीक्ष्ण आकार म दौडे है।

अविनाश तो उपन्यास का मूल केन्द्र है ही दूसरे पात्रो को लें तो उनमे भी चेतना प्रवाह तीव्र गति से प्रवाहित दष्टिगाचर होता है। अमिय क मस्तिष्क मे भावा के मुक्त ससग का वचित्र्य दखिए— अमिय के मन का कारवा चल रहा है तो बात यहा तक पहुच गई। यह है अविनाश बडा आत्म सयम और नतिकता की बातें करता है—दिल कमबख्त का अनीता की इयर रिंग म भनक रहा है। यह सब नैतिकता एक विराट ढाग है सत्य केवल एक है—रग और रेखा वण और विन्यास। हा अजन्ता भी देखा है—क्या फ्रेस्को के रग हैं शख श्वत अलक्तक, पीनलाहित सौराभ धूमच्छाय कपोताश्व, अतसी पुष्पाभ पाटल बभु र और क्या-क्या अनीता सुदर नाचती है उसने शाति निकेतन म इसकी शिक्षा पाई है तो क्या उसम अम्भुरी का उत्साह सिम्की की मुद्राए अना पावलोवा का पदक्रम भग है इसाडारा डकन ने अपनी आत्म कथा म लिखा है कि कसे-कसे राजनीति विशारद और ब्रह्मविद्यापटु उसके चरणा की गति पर सवस्वापण करने का उद्यत थे—रूप और अरूप की चर्चा व्यथ है।[2]

अविनाश, अमिय, अनीता और हम आदि पात्रो की चेतना प्रवाह द्वारा न केवल मुक्त भावो का ससग स्थापित हुआ है अपितु दूसरे पात्रो की चारित्रिक विशेषताए तथा दुबलताए भी विश्लेषणात्मक विधि द्वारा प्रकाश म आई है। यौन-वजनाओ यौन विकृतियो का मनोवज्ञानिक अध्ययन भी यहा प्रस्तुत हुआ है। अविनाश की काम-कुण्ठा दमित यौन भावना का परिणाम है जो सयम ब्रह्मचय व्यायाम सदाचार और आदशवाद का प्रचार कर स्थानान्तर (Transference) होने पर भी तप्त नही होती अपितु दिवा स्वप्न (Day dreaming) प्रवत्ति अपनाती है किन्तु फिर भी समायोजन (Adjustment) कहा हो पाया है ? हम का पुन साक्षात्कार उसके दिवा-स्वप्ना की पूर्ति

---

[1] परन्तु—पष्ठ ५ ६

[2] वही—पष्ठ १३ १४

(Compensation) हेतु संयोजित किया गया है वह उसको विन्तु परन्तु नहीं सुनना उसे साथ ले जाकर सिनेमा दिखाता है होटल में खाना खिलाता है वहाँ भी इन दोनों का वार्तालाप या प्रेम अभिनय इतना अधिक नहीं है जितना चेतना प्रवाह। अविनाश की एक कथा याद आ जाती है जो एक व्यक्ति की दुखान्त कहानी मात्र नहीं है उसके जीवन खण्ड का विश्लेषण है। जीवन से ऊब व्यक्ति की आत्महत्या करने से पूर्व आत्मकरुणा की चिन्तक वाणी है। हेम अविनाश को अपनी विवशता और सेठ की क्रूरता का परिचय देती है इसपर आदर्शवादी अविनाश का रक्त खौल उठता है और वह सेठ शम्भाचन्द की हत्या का प्रयत्न करता है किन्तु सिवाय घुटन और चेतना प्रवाह में उठने वाले बुलबुलों के उसके हाथ कुछ नहीं लगता। कथाकार ने कथा के अन्त में अविनाश की मनःस्थिति का जो चित्र खींचा है वह व्यक्तिगत जीवन की हार का चित्र नहीं है समाज के गतिरोध की समस्या का आह्वान है। प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में आने वाला '—' परन्तु समाज के गतिरोध का परिचायक है। समस्या की अभिव्यक्ति भावों के मुक्त संसर्ग द्वारा ही की गई है।

चेतना प्रवाह विधि के उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है—उपन्यासकार की तटस्थता। वर्णनात्मक कोटि का उपन्यासकार अपने उपन्यास में पग पग पर आकर अपने उद्देश्य की पूर्तिहित प्रचार-कार्य में संलग्न रहता था किन्तु वस्तुपरक कोटि का उपन्यासकार अपनी रचना में अपने को तटस्थ रखने का प्रयत्न करने लगा। चेतना प्रवाहवादी कलाकार अपने को अलग रखकर ही पात्रों के मस्तिष्क में चेतना का प्रवाह करा सकता है। यह ठीक है कि पात्रों के विचारों में युग का प्रतिबिम्ब होता है किन्तु यह आवश्यक नहीं कि पात्रों के वे विचार अवश्य ही उनके स्रष्टा के विचार हों। कलाकार प्रत्यक्ष रूप में या परोक्ष रूप में कहीं भी शासन पद्धति समाज नीति आर्थिक व्यवस्था अथवा धार्मिक मान्यताओं पर कटाक्ष नहीं करता है। पात्र ही कथा के वाहक होते हैं वे ही चरित्र समस्या अथवा दर्शन का विवेचन करते हैं। उनकी भाषा सांकेतिक होती है उनके सोचने और बोलने का ढंग विचित्र होता है। वे अन्तश्चेतना में विचरण करते हैं और अचेतन की गुत्थियों के विश्लेषण में ही सचेष्ट रहते हैं। परन्तु को अविनाश और अमिय प्रतिपल अन्तश्चेतना में लीन रहते हैं। अमिय अधिक आत्मलीन व्यक्ति है। उसके लिए कला ही सर्वस्व है। जनता से प्यार का कारण भी कला प्रियता है। दोनों का प्रणय कला की अभिवृद्धि का कारण होगा—यही उसका विचार है उसे भूखे भिखारी चिथड़ों में लिपटे नवकंकाल भी कला के निमित्त नृत्य के विषय ही दीख पड़ते हैं।

अमिय का चेतना प्रवाह अविनाश के चेतना प्रवाह की तुलना में कहीं सशक्त है। उसमें केवल वैयक्तिक चरित्र और समस्याओं का चित्र ही सामने नहीं आता अपितु एक साथ कला काम और कामदेव (शिव) पार्वती आदम और ईव के पतन पूर्व की स्मृति तथा पतनोपरान्त की अवस्था के दर्शन का विवेचन भी हुआ है। कला नारी है—और नारी रूप में सुन्दरी उर्वशी के नृत्य और विश्वामित्र की साधना के भंग होने का सांकेतिक वर्णन है। उसमें ही अनीता रूपी कस्तूरी मृग को ढूँढने का प्रयत्न हुआ है। भाव लोक में ही एक साथ गाना कुमारसंभव मिल्टन के पराडाइज लास्ट (Paradise Lost) तथा

शंकराचार्य शॉपनहावर और इलियट के दार्शनिक सिद्धान्तों का विश्लेपण किया गया है। बर्नर्ड शा के 'मैन एण्ड सुपरमैन' की भूमिका से भी उद्धरण दिए गए है।

'परन्तु' में कथोपकथन भी तार्किक हैं। अमिय अविनाश काम-वार्ता, युद्ध आदि विषयों पर सतत प्रकाश डालती है। इसके लिए नाटककारों आदि कलाकारों के उद्धरण देकर वार्ता को बढ़ाया गया है। कहीं कहीं पात्र स्वगतात्मकपूर्ण सम्भाषणा का आश्रय लेते देखे जाते है। अनीता के हृदयोद्गार स्वगत भाषण पद्धति द्वारा उद्धृत किए गए हैं। वह पढ़ने का प्रयत्न करती है किन्तु पढ़ नही पाती—अन्ततमन में अपने आप से बातें करने लगती है—'सुरत के घन माहि निधि मह श्याम ? इश्कारा व मुश्कारा (प्रेम और कस्तूरी)। यह वार्ता संक्षिप्त है किन्तु मनोद्वन्द्वपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर देने वाली है। अनीता का पूर्ण चरित्र ही द्वन्द्वात्मक है। वह अमिय को प्यार करती है किन्तु उस प्यार को अभिव्यक्त नही कर पाती। वह अमिय को पत्र लिखती है किन्तु डाल नही पाती, यह उसकी द्वन्द्वपूर्ण स्थिति को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। अन्य पात्रों की भांति इसका मन भी पुस्तकीय पाठ में न लगकर दीवार पर माता और शिशु के चित्र को देखकर या अन्य पूर्व स्मृति वर्धक दृश्यों का साक्षात्कार करके चेतना प्रवाह में लीन रहता है।

कलकत्ता नगर में पहुंचते ही हम का मन भी प्रवाह लोक में विचरण करने लगता है वह एक पोस्टर को देखते ही अविनाश के चित्र की कल्पनात्मक बाधा करती है। उसका मन पीछे भागकर विवाह के संस्मरणों का उद्घाटन करता है, जिसमें रति, कामदेव प्रणय आदि पर मनन और विश्लेपण प्राप्य है। सेठजी की क्रूरता समाज के ठेकेदारों के अनाचार की द्योतक है। यह कथांश इतना वहद नही है जितना समाज पर कसा गया व्यंग्य चित्र। यह तीव्र है और स्थायी प्रभावोत्पादक भी। हम अनीता और अन्य भारतीय युवतियों की ही नही, संसार की अधिकांश रमणियों की मान मर्यादा आज खतरे में है पूंजीवादी सभ्यता से इसकी रक्षा कैसे हो, यह एक बड़ा प्रश्न है जिसे प्रश्न रूप में रख कर इस चेतना प्रवाह पद्धति के उपन्यास का अन्त हुआ है।

द्वाभा—१९५५

'परन्तु' और 'साँचा' के पश्चात द्वाभा माचवे का एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यह भी विश्लेपणात्मक शिल्प विधि का उपन्यास है किन्तु इसमें मात्र चेतना प्रवाह विधि का ही प्रयोग नही हुआ जैसा कि हम परन्तु में देखने को मिला। 'द्वाभा' में चेतना प्रवाह विधि एवं पूर्व दीप्ति विधि का मिश्रित रूप अवलोकनीय है। उपन्यास का आरम्भ पूर्व दीप्ति विधि द्वारा होता है— सहसा उसके मन में पूर्व स्मृतियों के कई बिखरे-से टुकड़े भीड़ बनकर जमा होने लगे घरवालों के उल्लास भरे कहकहे भाई का बार-बार चिढ़ाना उन्नीस बरस की सलज्ज युवती आभा का उत्सुक धड़कता हुआ हृदय, शहनाई और बैंड के स्वर बंदनवार, फूलों के हार वरमालाएं या सिमटते मुलायम, गले से लिपट डसनेवाले अनचाहे नागपाश। बंगाली महिला के राजन ने उपहार में दी लाख की चूडियां बनारसी साड़ियां मिष्टान्न भोज, हंसी-ठट्ठा। श्री की चित्रशाला में वह गुलाबी केसरी सांझ, जब आभा ने कहा—'हां, आपके स्टूडियो में जैसे एक और चित्र वैसे ही मैं तुम्हारे

जीवन म प्रवेश कर रही हू न ? और श्री क उच्छ्वास भर मान्य गुर्गा नन आगमन
जो दुनिया क आरम्भ स अन्त तक हर तरुण अपनी अपनी प्रेमिका को देता आया है। वह
श्री के पहाडो म लम्बे-लम्बे सफर। जिनमें वे लम्बी-लम्बी उनींदी रातें। और उस
समय का भावुकता भरा पत्राचार। प्यार का वह प्रथम सन्तान की कोमलता भरी
आगमनी। और फिर सफर के सफर रास्ते क्या वे निरा सपना की तितलियां थीं, रग
विरगी चटक भडकाती। या भावुकता का सहज प्रकृति का रग दरग था। निठुर निमम
अमिट अपरिवर्तनीय।[1]

आभा का यह आरम्भ पूर्व-दीप्ति विधि का उदाहरण अवश्य है किन्तु उपन्यास
की नायिका की स्मृति न नाचद्र जागा या अन्त य का नायिकाओं की स्मृति क वहू
विश्लेषण रूप म प्रस्तुत नहीं हुई। माचवे न कथा को समेट लिया है और इस खण्ड-खण्ड
कर चेतना प्रवाह विधि द्वारा प्रस्तुत किया है। आभा के प्रत्येक पात्र के मस्तिष्क का
प्रत्यक निश्चित मूर्ति उसम स्वच्छन्दतापूर्वक प्रवाहित होनेवाले जल प्रवाह के रग म ढली
रहती है जिसम आत्मनिष्ठ जीवन का प्रवाह गतिमान है। लेकिन वर्णनात्मक शिल्पी की
भाति आभा का जीवनवृत्त एक इतिहासकार की भाति प्रस्तुत नहीं करता वह एक
चेतना प्रवाहवादी शिल्पी के नाते आभा श्री आदि पात्रों की चेतना के छोटे मोटे टुकड़ों
को बीच-बीच म उभारकर प्रस्तुत करता है। आभा ने जगल जिले बच्चों का पाठ पढ़ाना
है इसके लिए वह पुस्तक उठाकर पढ़ने लगती है प्रसग है— दुश्शील कामी या दुगुणी
वैसा भी पति क्या न हो साध्वी स्त्री को सतत पति को ईश्वर मानकर पूजना चाहिए।
परित्यक्ता आभा की विद्रोही चेतना बहिर्जगत (पुस्तक) स अन्तर्जगत (आत्मनिष्ठ
चेतना) की दिशा म प्रयाण कर पुन सिमटते अधकार के साथ अपने विचारों को भी
सजोने लगी   श्री काला सावला था उसकी आखों की पुतलियां किसी भ्रमर से कम
चचल नहीं थी। एक बार श्री ने उससे कहा था— यह बहुत पिटा पिटाया रूपक है
आभा कमल और भौरा। यह इन कवियों को कुछ सूझता नहीं भ्रमरवृत्ति जो उनके
मन म है तो क्या स्त्रियां भी तितलियों जैसी नहीं होती ? मन की और पारे की एक
जैसी गति है आभा। जैसे अभी तुम बात तो मुझ से कर रही हो पर सभव है कि तुम
ध्यान किसी और का भावरी भवर म पड गई नाव। बाबा ने नाव इस ठाव
बधु। हा भ्रमरगीतसार भी तो कल पढ़ाना है।[2] आभा की भाति श्री भी स्मृतियों
के ससार म खोया है। उसकी स्मृतियां भी साधारण नहीं असाधारण है जो उसकी चेतना
को प्रतिपल आन्दोलित करती रहती हैं— श्री के मन म विशृंखलित तसवीरें बनती
मिटती जा रही थी। उनकी एक झलक बम्बई का समुद्रतट, सुनसान जुहू की वालुका
राशि और दूर स आती हुई एक आभामयी नारी आकृति जितनी ऊची समुद्र तरग की
लावण्यमयी नील फुफकारती फेनिल जल राशि ताड और नारियल के पेडों की बिखरी
हुई कुन्तल राशि म स सरसराता हुआ सायकाल और सुनहरा गहरी लाल काली

---

१ आभा—पृष्ठ १ २
२ वही—पृष्ठ ६

सध्या की अनुभूति उस दुवारा हुई। पुरी के तट पर समुद्र की बात सोचते-सोचते उसे पहाड़ों की याद आई। ननीताल से बागश्वर जाते हुए वैजनाथ के पास शाम का देखा नन्दादेवी का त्रिशूल शिखर पर हिमवन्त की वह पारदर्शी चमचम रजताभ किंवा स्वर्णिम झाईवाली झाकी। और उसस भी अधिक सुदर था दार्जिलिंग म देखा हुआ काचनजघा शृग सुदर सफेद हाथियो के झुड स बादलो पर आरूढ राजसी शृखला बद्ध नेपाल भूटान तिब्बत की त्रिसीमा का प्रहरी पर्वत अचानक श्री नृत्य कला की पुस्तक देखने लगा और उसका मन समुद्र और पहाड़ स लौटकर चित्र की नारी आकृति की नीली आखो और लिलित प्राय स्तनमडल पर अटक गया। केतकी क घर पार्टी थी ''

आभा श्री श्यामा सत्यकाम अलताफ आदि पात्रो के मन की ट्रासपैरेंसी का प्रमुखता देन के कारण इसस सबधित कथा की इतिवृत्तात्मकता तथा शृखला का लेखक गौण बनाता हुआ अनक स्थलो पर शून्य की सीमा तक पहुचा देता है। पाठक क मन म कथा शृखला को जानने की जो उत्सुकता बनी रहती है उसे नये शिल्प के सहारे माचवे ने कही पत्रो कहा स्मृतियो तो कही डायरी शली का सहारा लिया है। इनम भी चेतना प्रवाह विधि का प्रमुखता देने के कारण लखक पूव स्मृतियो को अधिक महत्त्व देता है। अधिकाश पात्र पूव-स्मृतियो के जाल म फस हैं मानो स्मृति चक्र-व्यूह म व अभिमन्यु की भाति चल ते जाते है उनम निकलना नही जानते। परित्यक्ता आभा के जीवन म श्री के पश्चात सत्यकाम आया और उसे एक पुत्र देकर चलता बना। उसे स्मरण कर उसकी चेतना म छायावृष्ठित ज्योति उभर आई। वह विचारने लगी कि स्त्री क साथ यह सलूक राम दुष्यन्त नल और बुद्ध तक ने किया। अनात अकारण अस्पष्ट उद्देश्यहीन दुश्चिता जब उसके मन का खण्ड-खण्ड करन लगता है तब वह इस स्मृति पर व्यग करती हुई कहती है— दिवा स्वप्नो म या डूबते डूबते वह सहसा सोचने लगी कि मनुष्य की सबस बडी शत्रु यह स्मृति है। यदि यह सम्भव होता कि पुराना सब भूल सकें तो कितना अच्छा होता। तब कोइ मुश्किल नही रहती।[3] आभा का यह कथन यथार्थपरक है। उपन्यास साहित्य म मनोविश्लेषण और बौद्धिक तत्वो के अकन के साथ साथ जहा कथा सिमट गई वहा मन की शत शत समस्याए उभर आई। व्यक्ति बहिर्जगत म लीन की अपेक्षा अन्तमन की चिन्ता म घुटन लगा। आभा की यही अवस्था है। उसके मन म द्वद्व है अन्तश्चेतना म अपार सघर्ष है। वह जितना मन को समेटना चाहता है उतना ही वह बिखरता है। वह एकाग्र मन पढ नही सकती बाह्य जगत म गौरव के साथ विचरण नही कर सकती। उसकी करुण दशा का चित्र डा० सुषमा धवन ने इन शब्दो म खीचा है— वह परित्यक्ता नारी है जिसस उसके पति श्री विमुख हो चुके हैं और जिसके लिए समाज और जीवन दोनो शून्य बन चुके है। वह पुरातन और नवीन मान्यताओं क बीच मझधार म नौका की भाति डोलती रहती है। उसके लिए केवल एक किनारा है—मरण और वह क्षय रोग से ग्रसित होकर अपने प्राणो का परित्याग कर देती है।[5] आभा का

३ आभा—पृष्ठ २४ २८

४ वही—पृष्ठ ६५

५ हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ २७१

मत्यु वरण होने के साथ साथ मामुच गर प्रश्नचिह्न है। माधुनिक विघटनात्मक परिवेश म स्वतन्त्रोत्तर समाज म नारी स्वतन्त्रता का क्या मूल्य है ? मुक्त सहयोग चिंतन म पुरुष की उन्मुक्तता पर कहीं कोई रोक थाम नहीं, वह श्री वन श्यामा श्यामा, गी-पुनू का भोगकर मल कपड की तरह उतारकर फेंक सकता है, पर नारी मात्र आभा के रूप म मानसिक तनाव की स्थिति म जकडन के लिए और पूर्व-स्मृतियों का स्मरण कर तिल तिल गल मरने के लिए ही उत्पन्न हुई है क्या ? आभा का निरन्तर प्रति क्षण क्षीण हो रहा तेज एक प्रश्नचिह्न बनकर हमारे सामने आता है। अपने अन्तिम पत्र म श्री म वह कहती है— क्या मुझ जैसी परित्यक्ताओं के लिए समाज म कोई स्थान नहीं है ? क्या मेरे जीवन की वन्दना की उत्तरदायिनी केवल मैं ही हूँ ? क्या ऐसा होता है कि समाज म सूने माथे से प्रतिष्ठा और गौरव से लदे वे लोग घूमते हैं जो स्त्रियों के साथ जिम्मेदारी का व्यवहार नहीं करते जो नारी को निरा खिलौना समझते हैं और पापिनी कहलाती हैं बेचारी स्त्रियाँ।[६]

आभा ही नहीं सत्यकाम और श्री भी अतीत मोह पूर्व-स्मृति विश्लेषक पात्र है। बेनकी के घर पार्टी है किन्तु श्री श्यामा के घर बैठा पूर्व स्मृतियों की चेतना प्रवाह म बहा रहा है। श्यामा के पास सत्यकाम का फोटो देखकर वह खीझ उठता है। सत्यकाम श्यामा मुक्त व्यवहार कतवा का उन्मुक्त जीवन, श्री श्यामा स्वच्छाचार, पात्रों के व्यक्तित्व को खंडित करनेवाले तत्त्व हैं। खण्डित जीवन का दायित्व एक से विवाह और अनेक से प्रेम आचरण का आडम्बर है जिसका अन्त दु खद ही है। आभा के ललाम के प्रति आकृष्ट जीवन म निरन्तर दो स्थितियाँ उत्पन्न हुई—वह स्वयं स्वीकारते हुए कहती है—'एक प्रकाश मिट रहा है दूसरा उठ रहा है—दोनों के बीच द्वाभा'[७] जीवन की उच्छृंखलता भोग श्यामा मत्यु का वरण करती है। श्री ने पहले आभा को त्यागा, दूसरी को विवाह का वचन देकर उसे तोड़ा, तीसरी के प्रति इसलिए प्रेम दिखलाया कि उसके द्वारा ऊँची नौकरी की आशा थी श्यामा को भी ठगा और अन्त म चीनी लड़की शी चुन से सहवास किया—पर सब मृगतृष्णा प्रमाणित हुआ अन्त म आभा के प्रति झुकाव और गत के प्रति क्षमा-याचना की भावना कथा म आदर्शवाद और भारतीय जीवन पद्धति के प्रति आस्था जगाने के लिए नियोजित तत्त्व है।

वस्तुत माचवे 'परन्तु' की अपेक्षा 'द्वाभा' म चेतना प्रवाह तथा पूर्व-दीप्ति विधि के सूक्ष्म निर्देशन म अधिक सफल हुए है। कथा म कार्य-कारण संबंध भले ही न हो और यह इस शिल्प विधि म सम्भव भी नहीं है फिर भी 'द्वाभा' म नैतिक मानवीय संवेदना उभरने तथा आधुनिकता की चुनौती का चित्रित करने म पूर्ण सफल हुआ है। इसम आधुनिक भारत के तथाकथित शिक्षित मध्यवर्ग की मान्यताओं, प्रवचनाओं तथा नव मूल्यों का स्थापन करने म लेखक पूर्ण सफल हुआ है। चेतना प्रवाह धारा के कारण उपन्यास उद्धरणों से भरा पड़ा है और इसम बौद्धिकता का मिश्रण भी प्रशंसनीय है। इस

६ द्वाभा—पृष्ठ ८६
७ वही—पृष्ठ ६६

बौद्धिकता को विश्लेषणात्मक शिल्प विधि द्वारा नियोजित किया गया है। इस संबंध में डॉ० सुषमा धवन का यह कथन द्रष्टव्य है—'इसमें नारी की चिरंतन समस्या को मनोविश्लेषणात्मक शैली में उठाया गया है।'[8] इस उपन्यास में आभा, श्री, श्यामा, सत्यकाम आदि पात्रों की जीवनी नहीं, जीवन घटनाओं का विश्लेषण ही उपलब्ध होता है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने अब तक तीस उपन्यास लिखे हैं। इनके आरम्भिक उपन्यास वर्णनात्मक शिल्प के अन्तर्गत आते हैं। 'प्रेमपथ', 'मीठी चुटकी', 'अनाथ पत्नी', 'त्यागमयी', 'लालिमा' और 'प्रेम निर्वाह' सन् १९२५ से १९३५ के बीच लिखे गए उपन्यास हैं। इनका शिल्पगत महत्त्व नकारात्मक है। सन् १९३६ में इनका उपन्यास 'पतिता की साधना' प्रकाशित हुआ। यह प्रेमचन्द परम्परा का उपन्यास है। इसमें वर्णनात्मकता का आधिक्य है तथा कथाकार द्वारा कथा के बीच में आकर हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणतः लेखक लिखता है—'इन्हीं दो वर्षों में एक दुर्घटना और हो गई है। हम उस दुर्घटना की चर्चा न करते किन्तु क्या किया जाए वह ऐसी साधारण बात तो है नहीं, जो पचा ली जा सके। अब आज इस गाँव में ही नहीं, निरंजन बाबू के नाम से परिचित निकट के अनेक गाँवों के सहस्रों निवासी उस बात को जानते हैं, तो हम ही उसको छिपाकर क्या करेंगे?'[9] इसके पश्चात् नन्दा के वैधव्य की करुण गाथा का वर्णन ही उपन्यास में किया गया है। इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवार का चित्रण वर्णनात्मक शिल्प विधि के अनुसार हुआ है।

'पतिता की साधना' के पश्चात् 'पिपासा' और 'दो बहनें' नामक उपन्यास प्रकाशित हुए। इनमें वाजपेयी ने प्रेमचन्द परम्परा से खिंचाव प्रकट करके विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की ओर अभियान किया है। 'पिपासा' का नायक कमलनयन एक बेकार ग्रेजुएट है। उसके मित्र नरेन्द्र की पत्नी शकुन्तला उसे चाहती है। पति प्रेम और प्रेमी की चाह का द्वन्द्व ही इस उपन्यास का मूल केन्द्र है। इसे मध्यस्थ रखकर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है किन्तु पात्र कथाकार के हाथ की कठपुतली बनकर रह गए हैं। उनका व्यक्तित्व उभर नहीं पाया, उनका मनोद्वन्द्व चमक नहीं पाया। 'दो बहनें' में पात्रों के घात प्रतिघात का विश्लेषण 'पिपासा' की अपेक्षा अधिक सफल रहा है।

निमंत्रण—१९४२

'दो बहनें' (१९४०) के पश्चात् 'निमंत्रण' (१९४२) का प्रकाशन हुआ। यह विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक विचारों की प्रमुखता है। परिस्थितियों और पात्रों का सफल विश्लेषण हुआ है। वातावरण प्रभावशाली है। इस संबंध में आचार्य नन्ददुलारे का यह कथन ठीक ही है—

---

८ हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ २७१

९ पतिता की साधना—पृष्ठ १६

"भगवतीप्रसादजी प्रारम्भ में प्रेमचन्दजी की मानसिक प्रभाव लेकर चले थे, पर शीघ्र ही उनके उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक दृष्टि चित्रों की प्रमुखता होने लगी और पात्रों और परिस्थितियों का अन्तर्द्वन्द्व दिखाया जाने लगा। यह एक नया उपक्रम था जो हिन्दी उपन्यास को वैयक्तिक चरित्र सृष्टि और मनोवैज्ञानिक भूमिका पर ले आया। यह एक दृष्टि से पुरानी विवरणपूर्ण सामाजिक उपन्यासों की पद्धति से आगे बढ़ा हुआ प्रयास है पर दूसरी दृष्टि से इसमें एक अनिवार्य दुर्बलता भी है। जब कभी ये उपन्यास सामाजिक प्रगति की भूमि को छोड़कर ऐकान्तिक मनोवैज्ञानिक ऊहापोह में लग जाते हैं तब न तो सच्चे अर्थ में नया चरित्र निर्माण ही हो पाता है, और न उपन्यास का सामाजिक उपादेयता ही रह जाती है। जो पात्र और परिस्थितियाँ इन उपन्यासों में चित्रित होती हैं, वे कभी-कभी दर्शन और मनोविज्ञान के नाम पर निरुद्देश्य भावुकता या चारित्रिक दुर्बलता को ही अंकित करती हैं।[1] एक अन्य आलोचक इसके संबंध में यही विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं--- भगवती प्रसाद बाजपेयी पहले तो प्रेमचन्द की पद्धति पर चले, पर धीरे धीरे मनोविश्लेषणवादी बनते गए और अन्तर्द्वन्द्व चित्रण की ओर बढ़ते गए हैं।"[2]

इन आलोचकों का यह कथन निमंत्रण पर लागू करके परखें। इस रचना का प्रत्येक अध्याय किसी न किसी दार्शनिक अथवा मनोवैज्ञानिक तथ्य की उद्घाटक पंक्तियों के साथ-साथ होता है फिर उस अध्याय की कथा उसके पात्र कथोपकथन सभी उस कथन की सार्थकता सिद्ध करने में तत्पर दृष्टिगोचर होते हैं। इस उपन्यास में विचार ही प्रमुख हो गया है घटना विधान पात्र योजना और संभाषण सभी विचारों के साथ साथ घूमते हैं। उपन्यास के आरम्भ में ही नायक गिरधारीलाल विचारों की दुनिया में लीन बैठा है। उसका पुत्र बीमार है अतः पत्नी संतप्त है किन्तु उसे इनकी कोई चिन्ता ही नहीं चिन्ता है तो अपने विचारों की---मनुष्य आदर्श के लिए लड़ रहा है चलना तो गति नहीं है। यह तो घसीटना है---दुर्गति दुर्गति से कैसे बचा जाए सम्पादकीय लिखना है आदि विचार नायक के मस्तिष्क में खलबली मचाते दिखाए गए हैं। घटना भी मस्तिष्क में होती है, स्मृतियों के चयन के रूप में सामने आता है। संयोग तथा अनायास परिस्थिति और घटनाओं को क्षण में बदलते देखा जा सकता है। दूसरे अध्याय में अचानक ही मालती गिरधारी भेंट--- विरल अवसर आते हैं और व्यक्ति को अपना पूरक मिल जाता है---विचार की पूरक भेंट है, पूर्व नियोजित, शृंखलाबद्ध स्वाभाविक मुलाकात नहीं।

और शृंखला आए भी कैसे ? इस उपन्यास का कथा तत्त्व ही अत्यन्त झीना है, क्योंकि यह विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की कृति है। कथानक के नाम पर गिरधारी परिवार और मालती के प्रवेश की द्वन्द्वपूर्ण स्थिति ही सर्वस्व है। गिरधारी और रेणु की वैवाहिक यात्रा सुखद नहीं कही जा सकती तभी उसमें मालती का प्रवेश हो जाता है।

---

1 नया साहित्य नये प्रश्न---पृष्ठ १७७

2 डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास---

मालती एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है जिसको विश्लेषणात्मक शिल्प विधि द्वारा हल किया गया है। रेणु गिरधारी दाम्पत्य की शुष्कता उपन्यास की केन्द्रस्थ स्थिति नही है, गिरधारी मालती मनोद्वन्द्व ही वह धुरी है जिसके चारो ओर सभी घटनाए और पात्र घूमते दृष्टिगोचर होते हैं। गिरधारी मालती भेंट के पश्चात ही उपन्यास म सक्रियता आई है। पात्रो के व्यवहार मे अदभुत वैचित्र्य और जटिलता प्रविष्ट हुई है। कथाकार ने गिरधारी मालती और रेणु के अन्तर्मन की तिल तिल खोज बीन की है उनकी मनोभावनाओ, क्रिया-कलापो, विचारो और सवेगो का विश्लेषण किया है।

डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' का यह कथन बिल्कुल ठीक है जिसम व कहत हैं—'व सघपरत कार्यकर्ता है पर उनका मानसिक द्वन्द्व भी कम महत्त्वपूर्ण नही। और यह कहना असत्य नही होगा कि निमत्रण म मानसिक द्वन्द्व ही प्रमुख हो गया है। हम सहज ही इस उपन्यास को अन्तद्वन्द्व प्रधान उपन्यास कह सकते ह।'[१] अन्तद्वन्द्वपूर्ण स्थिति ही विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यास की आत्मा है। अत निमन्त्रण के अन्तद्वन्द्वपूर्ण स्थलो की खोज ही हमारा लक्ष्य है। 'निमत्रण' म एसे स्थलो की भरमार है जहा पात्र अन्तर्मन मे द्वन्द्व की अनुभूति करते है। सबसे पहले नायक गिरधारी को ही ल। वह एक विवाहित उत्तरदायित्वपूर्ण सामाजिक प्राणी है। किन्तु मालती का साक्षात्कार उसके मर्म म एक द्वन्द्वपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर देता है, वह उसके निमत्रण पर झट उसके साथ चल पडता है और मालती के ये शब्द—'तो मैं जीवन भर के लिए निमत्रण देती हू। आपको कही जाने की आवश्यकता न होगी (पृष्ठ १४) उसके कान म गूजने लगते है उसकी मनोदशा ही बदल देते हैं वह उत्तरदायित्वहीन व्यक्ति बनकर रह जाता है उसकी सामाजिकता का लोप होने लगता है वैयक्तिकता का विकास हो जाता है।

'सुबह के भूले' की नायिका जब ठाठबाट पलेट देखकर आती है तब उसके मन म हीनता की ग्रन्थि जम जाती है। उसकी समस्त मानसिकता ही बदल जाती है वह घर की चीजें बिखेर डालती है निमन्त्रण म मालती की मनोदशा भी कम विकृत नही होती, उसे शर्माजी (गिरधारीजी) का सामाजिक मान एक नई प्रेरणा देता है—क्या मैं ऐसा नही बन सकती ?' और दूसरे दिन उसके घरवाले देखते हैं कि वह रेशमी साडियो के स्थान पर खद्दर की साडिया ला लाकर घर भर देती है। उसके मन के अन्तर्तम कोन म यह भाव जम गया है— गिरधारी को पराभूत करना है।' उसे खद्दर की साडी म देख कर गिरधारी के आश्चर्य के साथ साथ पाठक के विस्मय की भी सीमा नही रहती। मालती प्रिय अप्रिय अनुचित सब करने को तैयार है। उसकी उच्छृखलता सामाजिक मर्यादाओ के बधन तोडकर वह जाने को तत्पर है। उसकी वयक्तिकता चरित्र की नव मीमासा करती है।

मैं आजाद हू—मैं पुरुषो के बीच रहती हू—उनस स्वतत्रतापूर्वक मिलती हू। बस इसलिए मैं चरित्रहीन हू। और घरो के अन्दर सीता और सावित्री जसी सती,

---

१ निमत्रण एक अध्ययन—पृष्ठ १७७ साहित्यकार प० भगवतीप्रसाद वाजपेयी म सगृहीत लेख से अवतरित

शकुन्तला और उसकी जैसी सुन्दर स्त्रियाँ का पाने हुए भी जो लोग केप्ट प्रास्टीच्यूट (रखैल वेश्या) रखते हैं, वे क्या हैं? रह गई चरित्र की बात, सो वह केवल शरीर के ही स्थूल व्यापारों तक सीमित है मैं नहीं मानती। चरित्र मानसिक सदाचार का दूसरा नाम है। जो लोग दुनिया भर के झूठ-सच, छल प्रपंच कपट, धूर्तता तथा ईर्ष्या-द्वेष के खून से रंगे रहते हैं जो मनुष्य के साथ शुद्ध का सा व्यवहार करने नहीं लजाते, जो सत्य और न्याय से दूर रहकर एकमात्र स्वार्थों में ही संलग्न रहते हैं पैसे के बल पर जो जमीन और जायदाद स्त्री और प्रयसी के लिए भाई और पुत्र तक का छिपकर सत्यानाश कर सकते हैं जो समाज उन्हें चरित्रहीन नहीं मानता मैं ऐसे समाज को नहीं मानती।[२]

यह द्रोह समाज के प्रति ही नहीं है, शिल्प के प्रति भी नया दृष्टिकोण है। आज का उपन्यास बदल रहा है। समाज के प्रति चरित्र के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण बदल रहा है और यह परिवर्तित दृष्टिकोण नये शिल्प में अपना स्थान पा रहा है किन्तु इसकी अपनी सीमाएं भी है। सीमाओं का अतिक्रमण किसी को भी मान्य नहीं हो सकता। नये शिल्प में एक ही विचार की पुनरावृत्ति हम ही नहीं प्रत्येक पाठक को खटकेगी। 'निमन्त्रण' में चरित्र शब्द को लेकर ही दो बार विश्लेषण किया गया है और लगभग उन्हीं शब्दों में किया गया है। ऊपर मालती के द्वारा चरित्र शब्द का विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है आगे चलकर कथाकार विचार प्रतिपादन के लिए बारहवें अध्याय में पुनः चरित्र शब्द को लेकर इसकी चीर फाड करने लगता है—

चरित्र का मूल्यांकन करते समय हम प्रायः शरीर धर्म की ओर ही अपनी दृष्टि रखते है। किन्तु पुरुष और स्त्री के मिलन को जहा तक वह शरीर धर्म से सम्बद्ध है चरित्र के मूल्यांकन में अधिक महत्त्व देने का अर्थ है—छल कपट अविश्वास कृतघ्नता दम्भ तथा आडम्बर आदि उन वृत्तियों की अपेक्षा करना जिनका नियन्त्रण मानवता के विकास के लिए आवश्यक है।[३]

यह ठीक है कि उपन्यास मानव चरित्र का चित्र है, किन्तु मानव चरित्र का चित्र है चरित्र शब्द का चित्र नहीं। 'निमन्त्रण' में दिए गए चरित्र शब्द के अर्थ और विश्लेषण अति की सीमा का भी उल्लंघन कर गए है। विचारों की इस ऊहापोह में चरित्रों का स्वाभाविक विकास रुक गया है। वे विचारों की कठपुतली बनकर रह गए है। चरित्र की व्याख्या प्रसारात्मक नहीं है अपितु प्रेम प्रवचना और पीडा तक सीमित होकर रह गई है। मालती सोचती है कि प्रेम के बदले उसे प्रवचना मिली है। गिरधारी मालती के आह्वानों की अवहेलना करने पर भी अनन्त पीडा की अनुभूति करता है। यह पीडा भी दो मुखी है पीडित के साथ साथ पीडक को भी त्रस्त करती है और विश्लेषण की प्रक्रिया के लिए तयार करती है। वैवाहिक जीवन की अभिशप्त दशा का विश्लेषण करते हुए गिरधारी कहता है— विवाह का अभिशाप भोगते भोगते स्वस्थ से स्वस्थ और सुन्दर से सुन्दर स्त्री दस वर्ष के अन्दर प्रायः सूखकर अमचूर हो जाती है गृहस्थी का भार उसकी

---

२ निमन्त्रण—पृष्ठ २९

३ वही—पृष्ठ १००

समस्त महत्त्वाकांक्षाओं को धूल में मिला देता है। उसका सारा दिन केवल खाना बनाने बच्चों की देखभाल करने और दैनिक आवश्यकताओं के अनुसार घर को पूर्ण और तत्पर रखने में बीत जाता है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य सौन्दर्य और मानसिक विकास के रक्षण और उन्नयन का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। चारों ओर से घिरकर, विवश होकर वह पति की सहचरी न रहकर सर्वांश में एक अनुचरी हो जाती है।"[४]

विनायक का आगमन ही उपन्यास की एकमात्र बड़ी घटना है जो कथा को गिरधारी रेणु मालती त्रयी से ऊपर उठाती दृष्टिगोचर होती है। अन्यथा सर्वत्र विचार और मनोद्वन्द्वपूर्ण स्थितियाँ ही फली हुई हैं। बीमार पत्नी रेणु को गिरधारी विचारों की दवा से रोगमुक्त करना चाहता है। विनायक भी कथा में प्रवेश करके विचारवाहक का कार्य करता। तीन विषयों (दर्शन, संस्कृत और इतिहास) में एम० ए० करने पर भी बेकार हैं। स्त्री की महानता में इनका विश्वास है तभी तो कहता है—'स्त्री में मैंने पाया है वह हृदय जो सब कुछ खोकर भी रिक्त नहीं होता, जो अजेय होकर भी सदा पराजित असमर्थ होकर भी सदा आत्मदान में तत्पर रहता है।" (पृष्ठ ५४) आगे चलकर विनायक मालती सम्बन्ध विवाद में परिणत हो जाता है।

विपिन एक कमठ किन्तु विपन्न युवक है। इसका प्रवेश एक कथा का उद्घाटन मात्र नहीं करता स्त्री पुरुष के वैवाहिक जीवन की विषम विकृति पर प्रकाश डालता है। विपिन की पत्नी शरीर से ही असुन्दर नहीं है मन में भी विकृत है तभी तो एक कहार से अनुचित सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। 'निमन्त्रण' का यह अंश मनोवैज्ञानिक केस है। मालती प्रवेश के कारण गिरधारी रेणु दाम्पत्य में कटुता आती है, उधर कहार से पत्नी के अनुचित सम्बन्ध की कल्पना कर विपिन विषपान करता है। 'निमन्त्रण' में भी प्रेत और छाया की तरह के कुछ विश्लेषण विद्यमान हैं। जो पति पत्नी के दूरस्थ हो रहे सम्बन्धों के रहस्य पर प्रकाश डालते हैं। एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य है—

क्या इसमें कोई सन्देह है कि मैंने इनके पीछे अपनी समस्त महत्त्वाकांक्षा को मिट्टी में मिला दिया है? कुछ न कुछ तो मैं भी हो ही सकती थी। मैं कविता नहीं लिख सकती थी? कहानी लेखिका होना मेरे लिए कौन मुश्किल था? आज जो यश मालती पा रही है, क्या मैं उसकी अधिकारिणी नहीं हो सकती थी? वय में वह मुझसे सिर्फ दो वर्ष छोटी है। किन्तु मेरे और उसके बीच कितनी गहरी खाई है। वह पास आ जाती है तो उसे छाती से लगा लेने को जी आतुर हो उठता है। अपनी एक एक भाव भंगिमा से वह कितना आकृष्ट करती है। क्या ये मेरा निर्माण ऐसे उत्तम ढंग से नहीं कर सकते थे कि घर की चहारदीवारी के बाहर भी मैं आ जा सकती? इन्हीं दीवारों के भीतर निरन्तर बन्द रखकर इन्होंने मुझे क्या दिया? और तब, जब मैं उत्तरोत्तर मरण की ओर जा रही हूँ, ये पूछते हैं—मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ।[५]

आत्म विश्लेषण के साथ पर विश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा गिरधारी का चरित्र

---

४ निमन्त्रण—पृष्ठ ४४
५ वही—पृष्ठ ८०

चन है। यथार्थ स्थिति के सम्मुख व वस्तेपिक प्रक्रिया द्वारा विजय प्राप्त करना चाहत है। इन पात्रो का व्यक्तित्व बडी सूक्ष्मता स अकित किया गया है—जसे गिरधारी क सबध म लेखक इतना भर लिखकर भी बहुत कुछ कह गया है—गिरधारी अवस्था चालीस के लगभग वण गहुग्रा। लम्बी नाक पर सुनहरे फ्रेम के चश्म का ब्रिज। गाढा का कुरता पहनत हैं। परा म अक्सर चप्पल रहता है कभी-कभी लाल महाराष्ट्र जूता, जिसकी एडी मुडी हुइ है। पदल जरा तज चलत है। काम के समय मजाक स चिढत है। हाथ म छाता छडी कुछ नही रखत। सिर प्राय खुला रहता है। बालो का एक गुच्छा कभी-कभी दाइ भौह तक आ जाता है। ' इसी प्रकार का एक शब्द चित्र विनायक द्वारा पूर्णिमा क सौन्दय के सबध म पष्ठ १३७ पर दिया गया है। इस प्रकार के सूक्ष्म चित्रण वस्तेपिक शिल्प के उपन्यासो म ही सभव हुए है।

कायर—१९५१

श्री राजेन्द्र शर्मा रचित 'कायर विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का उपन्यास है। इसका नायक प्रोफेसर शशिनाथ असामाजिक पात्र है जो एक अशिक्षित पत्नी रमा को पाकर निराश और दु खी रहता है। कथाकार समस्त कथा म उसके अस्वस्थ काम्पलक्स (Morbid) का ही विश्लेषण करता है। आत्मक्षुद्रता (Inferiority Complex) स ग्रस्त शशिनाथ अपनी छात्रा सुमन को टयूशन पढाने पढाते आत्मगौरव की अनुभूति क स्थान पर एक अदभुत कायरता की अनुभूति करता है। सुमन उसपर समय असमय कटाक्ष कर कहती है कि पुरुष की कायरता नारी के लिए सदव हास्यास्पद रही है और रहेगी।

शशिनाथ के जीवन म उभरी समस्याए उसके असामाजिक एव भीरु व्यक्तित्व का प्रतिफलन है। वह स्वय को सामाजिक विधान के अनुकूल ढाल न सका। सुमन के प्रति अपने आकर्षण को वह जितना नकारता है उसकी अन्तश्चेतना म अन्तर्निहित अचेतन इच्छाए उसके चेतन नतिक आदर्शो से उसी प्रबल वग के साथ टकराती हैं और उसके दनिक व्यवहार तथा चिन्तन क्षत्र म द्वन्द्वात्मक स्थिति उत्पन्न करती हैं। परिणामस्वरूप उसकी चेतना भी ह्रासोन्मुखी होने लगती है और वह अपने को कायर मान आत्म विश्लेषण करता है—'मन का चोर कायरता किसी को सफाइ देने की आवश्यकता नही रहती। रमा का तात्पय क्या है? क्या मेरे मन म कोई चोर है? क्या मैं कायर हू कायर? इस समय सुमन का खिलखिलाता चेहरा उनके सामने आया वह कह क्या रही थी—पुरुष की कायरता नारी के लिए सदव हास्यास्पद है और रहेगी प्रोफेसर साहब। तो क्या मैं वास्तव म कायर हू? नही, नही—मैं कायर नही हू—' ' शशिनाथ का यह अस्वीकारना कि वह कायर नही है, महान आत्मप्रवचना है। वह जितना ही स्थिति को सुलझाने क लिए सबल बनने का उपक्रम रचता है वह उतना ही उलझता जाता है। सुमन के पिता नारायणबाबू द्वारा अपने साथ सुमन क खिचे फोटो का दस्तखत

---

८ निमत्रण—पृष्ठ ५

९ कायर—पृष्ठ ४४

उठता है और नारायण बाबू का यह कहना है कि "आप यहाँ से छोड़ जाइए, इस स्थिति से मुक्ति का प्रयास करूँगा। शशिनाथ इसके लिए प्रयास करता भी है किन्तु वह जीवन में स्फूर्ति लाकर उस ऊर्ध्वगामी बनाने के स्थान पर रमा रवि परिस्थिति में जकड़ा जाता है और अपने पारिवारिक जीवन के भीतरी स्तरों को छानने में पुनः संलग्न रहता है।

अपने जीवन की विफलता देख शशिनाथ पुनः तड़प उठता है और आत्मविश्लेषण कर कहता है— "क्या मेरे तनिक से निश्चय ने तमाम जीवन के लिए मेरे मुख पर कालिमा लगा दी है? यदि छात्रों की भावनाओं को अनसुनी करके मैं सुमन को पढ़ाता रहता तो क्या बिगड़ जाता?" तभी अन्दर से कोई बोल पड़ा— "नहीं, तुम गिर रहे थे। सुमन का ट्यूशन छोड़कर अच्छा किया। पर आग तुममें बाहर से भी न सकी। तुम डरपोक हो कायर, निकम्मे, पौरुषविहीन। तुम्हारे मन में चोर है काला, हाँ तुम्हारे चरित्र में ही कुछ है। राजाराम सुमन को साथ देखकर मेरे मन में दूषित भावना क्या आ गई, दोष मेरा है, दोष मेरा है। रमा, तुम जहाँ कहीं भी हो लौट आओ, मेरे अपराध का तुमने बहुत बड़ा दंड दे दिया है। मुझे क्षमा करो, क्षमा करो।"[२] शशिनाथ की यह आत्म स्वीकृति एवं आत्म प्रताड़ना एक भारी प्रश्नचिह्न है। प्रश्न वैयक्तिक भी है, नैतिक और सामाजिक भी है।

इधर सन १९२९ में 'लज्जा' लिखकर श्री इलाचन्द्र जोशी ने असाधारण (Abnormal) और कायर आत्मक्षुद्रताग्रस्त चरित्र (Coward and Character of Inferiority Complex) की जो सर्जना आरम्भ की, 'कायर' उसी परम्परा की रचना है। अन्य विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की रचनाओं की भाँति 'कायर' का वस्तु तत्त्व नाना रूप स्वरूप है। चरित्र चित्रण विश्लेषणात्मक है और पात्रों का व्यवहार कहीं असन्तुलित, कहीं अप्राकृतिक, कहीं एक प्रयोग बन गया है। प्रो० शशिनाथ का समस्त व्यवहार असन्तुलित तथा असामयिक है। रमा शशिनाथ सबके अस्वस्थ एवं अप्राकृतिक तथा असामान्य होते गए हैं और सुमन राजाराम तो जीवन को एक प्रयोग मानकर कार्य योजना बनाते ही हैं। जैसे सुमन का एक स्वतन्त्र चेता, व्यक्तिवादी प्रतिक्रियावादी नारी बन पुरुष द्वारा अपमानित, पददलित और भूलुण्ठित बनने के स्थान पर उसे शापित करने की विडम्बना रचने की भूमिका तैयार करना। शशिनाथ तो प्रतिक्षण अपने भीतर तनाव की अनुभूति करता ही है परन्तु अशिक्षित सामान्य आचरणगामी पतिव्रता रमा भी सौत की भयंकरता की परिकल्पना मात्र से असामान्य मनःस्थिति का उपक्रम रचती है।

'कायर' उपन्यास का वातावरण बाह्य घटनाओं के स्थान पर चिन्तना से परिपूर्ण है। इसके लगभग सभी पात्र शशिनाथ, रवि, रमा, सुमन, राजाराम, गौरी, नारायणबाबू अपने जीवन में आई परिस्थितियों तथा घटनाओं पर मनन एवं विश्लेषण करते दर्शाए गए हैं। सब परिस्थितियों का दायित्व शशिनाथ पर डालते हुए उनका छात्र राजाराम विश्लेषणात्मक शब्दों में कहता है— "आपके मन के पाप ने ही आपके वातावरण की पवित्रता को नष्ट किया है। सुमन का शुचितम स्नेह और रमा का पावनतम त्याग आप

---

२ कायर—पृष्ठ ८६

समझ नही सके और समझ नही सकते यदि समझ गए होते तो आज यह स्थिति न होती।[3] विश्लेपणात्मक विचार सजना के कारण 'कायर' मे अभिव्यक्ति का सयम रखा गया है। उपन्यासकार कही भी पात्रो के शील अशील व्यवहार या चिन्तना के सबध म अपनी ओर स टीका टिप्पणी नही करता। उसने पात्रो के कार्यों और उनसे उदभूत अन्तद्वन्द्व को उन्ही के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यही प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'कायर' की मूल समस्या क्या है? मेरे विचार से कायर की मूल समस्या आधुनिक स्त्री पुरुष सबध के परिप्रेक्ष्य म भारतीय पत्नी की वेदना है। कायर के समस्त कथा सूत्र रमा की ट्रेजेडी को अभिव्यक्ति देने के लिए बुने गए हैं। नारी अशिक्षित हुई तो क्या? एक स्थल पर वह अवश्य मुखरित और श्रान्त हो उठती है। सौत को वह अपनी छाती पर कभी सवार नही देख सकती। सीधी-सरल दीखने वाली रमा भी समय आने पर कहती है—"नारी अपने को पददलित समझे ही क्यो? यह तो समाज के ठेकेदारो का ढकोसला है। जिस दायित्व की डोर से पति पत्नी को बाध दिया जाता है उसे ये ठेकेदार समझते है कि हम एक चरणदासी की नकेल डालकर ले आए। जब तक मन स्वीकार करता है कि पति दान कर रहा है इसलिए प्रतिदान का भागी है तब तक नारी भी अपना कर्त्तव्य पूरा करती चले और जब दान नही, तो प्रतिदान कहा? यहा पर आता है त्याग। यह कोई आदर्श नही कि पति तो तुम्हारे लिए बन जाए पत्थर और तुम उसे मनुष्य मानकर उसकी सेवा करती रहो। ऐसे पति को बारम्बार नमस्कार है।[4] कायर म उपन्यासकार इस दृष्टि से सफल हुआ कि उसने सशक्त पात्रो की बजाय रमा शशि जैसे दुबल मना नायक प्रस्तुत कर उनमे चरित्र के साथ साथ व्यक्तित्व का निर्माण किया है। वस्तुत दुबल चरित्र नायक का चरित्र चित्रण प्रस्तुत करने के लिए जिस सूक्ष्म दृष्टि और विश्लेपणात्मक शिल्प विधि की आवश्यकता है वह श्री शर्मा म वर्तमान है।

रामेश्वर शुक्ल अचल

रामेश्वर शुक्ल अचल हिन्दी म कवि के रूप म प्रसिद्ध है किन्तु इन्होने कई सामाजिक और व्यक्तिवादी उपन्यास लिखकर वर्णनात्मक और विश्लेपणात्मक शिल्प का सहारा लिया है। एक आलोचक के मतानुसार इनकी रचनाओ म यौवन की तृपा, रूप की लालसा एव प्रेम की मादक अनुभूति का अकन हुआ है।[1] अपने प्रथम दो उपन्यासो 'चढ़ती धूप (१९४५) तथा नई इमारत' (१९४६) म लेखक ने सामाजिक जीवन की कतिपय महत्त्वपूर्ण समस्याए चित्रित की है। 'चढ़ती धूप की ममता और नई इमारत की आरती आधुनिक सामाजिक चेतना म होने वाले विकास सूत्रो की परिचायक है किन्तु अपने तीसरे उपन्यास उल्का म लेखक ने नारी की वैयक्तिक गाथा को उसके विभिन्न आयामो म चित्रित करके विश्लेपणात्मक शिल्प विधि की ओर पग बढ़ाए हैं।

---

३ कायर—पृष्ठ ९३
४ वही—पृष्ठ १०४
१ डा० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ १२९

उल्का—१९४७

उल्का की विश्लेषणात्मकता एवं वैयक्तिक चेतना असंदिग्ध है। इस संबंध में एक आलोचक का कथन है— इस उपन्यास की नायिका मंजु के माध्यम से लेखक ने आधुनिक चेतना से अनुप्राणित एक ऐसी नारी की सृष्टि की है जो अपने अंतर्द्वन्द्व के रूप में परिस्थितियों का चित्रण करती है।'[2] मंजु में चरित्र नहीं है पर व्यक्तित्व है। यह व्यक्तित्व अंतर्द्वन्द्व के क्षणों में पनपता है और यही इसे विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की श्रेणी में ले आता है।

उल्का आत्मचरितात्मक शैली में रचित उपन्यास है। इसकी नायिका मंजु स्वयं अपने मन की गहराइयों में प्रवेश कर अन्त प्रेक्षण विधि द्वारा अपने चरित्र एवं व्यक्तित्व का निरूपण करती है। वह एक निम्न मध्यवर्ग में पली युवती है जिसका विवाह किशोर से होता है। किशोर एक असभ्य अमानवीय तथा कामुक व्यक्ति है जिसे मंजु आंतरिक स्तर पर स्वीकार करने को तैयार नहीं है। किशोर की क्षुद्रता क्रूरता तथा आदर्शहीनता मंजु को चारु नामक मृदुभाषी सुसंस्कृत युवक की ओर अग्रसर होने का परिवेश तैयार करता है। मंजु अनेकश अपनी परावलम्बिता तथा निःस्वता अवस्था का विश्लेषण करते हुए कहती है— मेरा शरीर स्त्री का शरीर है। मेरा मन लाचारी का मन है जो मिलता है मिलेगा। मुझे तो जन्मावधि सहते जाना है। चाहने न चाहने का कोई मूल्य ही नहीं है।'[3] अनेक स्थलों पर हम देखते हैं कि मंजु की आस्था डिगने लगती है। वह धीर बन परिस्थितियों के संघात सहना चाहती है किन्तु परिवेश बड़ी निर्ममता से उसे कुचलता है। किशोर मंजु को वासनापूर्ति के खिलौने से अधिक कुछ नहीं समझता जबकि मंजु इस परिस्थिति से पीड़ित है। उसकी मां कहती है कि नारी केवल शरीर नहीं—केवल स्थूल क्षुधा और तृषा की गठरी नहीं। किशोर को मंजु का पर पुरुष के सम्पर्क में आना अच्छा नहीं लगता पर वह उसी के भतीजे प्रकाश से भी प्रेम संबंध स्थापित करने को आतुर है। यहां स्त्री-पुरुष संबंध उनकी सहज प्रस्फुटन तथा प्रतिफलन जर्जर सामाजिक मान्यताओं तथा नवीन नैतिक स्थापनाओं के लिए एक प्रश्नचिह्न बनकर सामने आता है। प्रश्न है कि क्या मंजु कामुक किशोर से बंधी रहकर घुटन कुण्ठा और असहाय स्थिति को सहने के लिए जाए या विवाह करके प्रकाश व्यक्ति के को उभारे। उल्का का कथाकार मंजु द्वारा नारी अधु नातन नारी के विवाह को तीव्र व्यापक और सामान्य रूप में विश्लेषित करता हुआ रूढ़िग्रस्त अंधानिराश्रित सामाजिक पीढ़ी के लिए एक प्रश्नचिह्न लगाता चलता है। विवाही प्रकाश कहता है— विवाह कहां किया के लगाने से लगता है या करवाने से होता है उसे मैं विवाह न। केवल परम्परा का गुलामी और घटिया पतन मानता हूं।'[4] इस प्रकार के चिन्तन द्वारा मंजु पति गृह भी त्यागती है रूढ़िवादी सामाजिक मान्यताएं भी।

२ डॉ० प्रतापनारायण टंडन हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास— पृष्ठ ४०६

३ उल्का पृष्ठ ७०

४ वही— पृष्ठ १०९

अनुभूति की सूक्ष्मता के साथ-साथ विश्लेषण की परिक्रमा पूरी करने के लिए अचल मंजु को नई परिस्थितियों में नये साक्षात्कार कराते हैं। इधर जब मंजु प्रकाश व्यक्तिनिष्ठ संबंध परिपक्व अवस्था में भव्य रूप धारण करने लगते हैं और दोनों नव जीवन यापनहित एक होटल में पहुंचते हैं तो वहां मंजु का पति किशोर अपनी महरी की लड़की छविया के साथ देखा जाता है। शिकार में पुनः मंजु को आक्रान्त करने की चाहना बलवती हो जाती है वह मंजु के साथ पुनः दुर्व्यवहार की कल्पना करता है किन्तु भावाभिभूत और उद्दीप्त प्रेम मन प्रकाश मरने मारने को तैयार हो जाता है। मंजु की भयावह भविष्य कल्पना का बोध ही उसे शक्ति देता है किन्तु इसी क्षण मंजु का बीच-बचाव और प्रकाश को भाई कहना स्त्री-पुरुष के संबंधों का भारतीय भूमि पर पनपने के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करता है। उपन्यासकार यदि चाहता तो इस प्रसंग में गहरे स्तर की स्थापना कर सकता था किन्तु एक ओर नवीनता, स्वतंत्रता, व्यक्तित्व, विद्रोह आदि आकर्षक शब्दों के नारे देकर पात्रों को उनके परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने का उपक्रम करना दूसरी ओर अनुभूतियों के नये आयामों पर प्रतिबन्ध लगाकर अन्त में कथा और पात्रों को प्राचीन स्थापनाओं की ओर अभिमुखरित करना एक अन्तर्विरोध का परिचायक है जिस ओर अन्तप्रयाण कर लेखक इस रचना को सुनीता या 'पर्दे की रानी' सम बनाने से वंचित रह जाता है।

डा० देवराज

डा० देवराज दर्शनशास्त्र के ममन प्रोफेसर व हिन्दी उपन्यास के सफल रचयिता हैं। इनके अधिकतर उपन्यास विश्लेषणात्मक शिल्प विधि में रचे गये हैं। इस संबंध में डा० सुषमा धवन लिखती है—'डा० देवराज की मूल भावना यक्तिवादी जीवन दर्शन की मनोविश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति है परन्तु व्यक्तिवादी आत्मकेन्द्रित तथा आत्मनिष्ठ चेतना से बाहर निकलकर लेखक उन नई मान्यताओं की ओर संकेत करता है जो भौतिक आदर्शों तथा प्रगतिशील शक्तियों से अनुप्राणित है।'[1] डा० देवराज की कला का मूल उद्देश्य समाज कल्याण न होकर जीवन दर्शन व व्यक्ति मनोविज्ञान का चित्रण है जो विश्लेषणात्मक शिल्प विधि द्वारा ही संभव है। इस विषय में एक आलोचक स्वीकारते हैं—'काशी और प्रयाग विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने विश्वविद्यालय स्तर पर दर्शनशास्त्र का अध्यापन का कार्य किया। बौद्धिकता से आगृहीत और दार्शनिक जटिलता से युक्त होने के साथ-साथ वैयक्तिक चेतना का सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निरूपण करने वाले उपन्यासकारों में डॉ० देवराज का नाम उल्लेखनीय है।'[2] दार्शनिकता के प्रति आग्रह और व्यक्ति मन विश्लेषण ही दो ऐसे तत्व है जिनके प्रति डॉ० देवराज आकृष्ट दृष्टिगोचर होते है। इन दोनों तत्वों का सफल निर्वाह आपके उपन्यासों की विशेषता है।

१ हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ ५२

२ डा० प्रतापनारायण टंडन हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास—पृष्ठ ४५०

पथ की खोज—१९५१

पथ की खोज डा० देवराज का प्रथम उपन्यास है जो दो खण्डों में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का नायक चन्द्रनाथ एम० ए० में प्रथम श्रेणी प्राप्त कर एक रिसर्च छात्र के रूप में पाठक के सामने आता है। वह जीवन और साहित्य में आदर्शवाद का पोषक है। उसके जीवन में एक साथ तीन नारियाँ आती है—सुशीला साधना और आशा —सुशीला पत्नी बनकर साधना उसकी बौद्धिक अन्तश्चेतना की प्रेरक बनकर और आशा उसकी दूसरी पत्नी बनकर उसके पथ के अन्वेषण का साधन बनती है। सुशीला से उसे वह सब मिलता है जो एक सुन्दर मधुर आदर्श पत्नी दे सकती है। पर वह उसे बौद्धिक चेतना नहीं दे पाती इस दृष्टि से असंस्कृतिक और अल्पज्ञ दिखाई देती है और उसका झुकाव सचेत बौद्धिक नारी साधना की ओर हो जाता है। यही से विश्लेषण आरम्भ होता है।

पथ की खोज में उपन्यासकार नायक चन्द्रनाथ और साधना की द्वन्द्वात्मक मनःस्थिति का विश्लेषण करने में सफल होता है। चन्द्रनाथ विवाहित है पर उसकी अन्तश्चेतना साधना को लेकर नाना प्रश्न करती है। आदर्शवादी चन्द्रनाथ साधना के प्रति अपने प्रेम को प्लेटोनिक रखना चाहता है परन्तु यथार्थ परिवेश इसे प्लेटोनिक बने रहने में अवरोध प्रस्तुत करता है। उसके व्यक्तित्व पर साधना का प्रभाव आधुनिक स्त्री पुरुष सम्बन्धों की विभीषिका उगलता है। अपनी पत्नी सुशीला से वह एकात्मकता स्थापित करने से वंचित रह जाता है तो इस प्रकार की विभीषिका को दूर कर देती है। इसके विपरीत वह शालीनता का आश्रय लेकर कतिपय मौलिक प्रश्नों में अपना त्राण पाना चाहता है—प्रश्न है स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध क्या शारीरिक है? दाम्पत्य जीवन का आधार क्या प्रेम है? क्या स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण ही प्रेम का आधार है? क्या विवाह का आधार वैयक्तिक वरण होना चाहिए या सामाजिक घटना? पाप और पुण्य का मूलाधार क्या है? धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है? साहित्य का उद्देश्य क्या है? क्या पतनोन्मुख ही प्रेम है? व्यक्ति से भिन्न भी क्या समाज की सत्ता है? क्या लोकाचार ही मनुष्य की शान्ति का सबसे बड़ा शत्रु है? वासना और प्रेम में क्या अन्तर है? क्या पति और पत्नी के सम्बन्ध में आर्थिक लाभ ही मूलाधार है? क्या भारतीय नारी अपने पति को छोड़ सकती है? क्या आर्थिक दृष्टि से स्त्रियों को स्वावलम्बी होना चाहिए? क्या विवाह से बाहर स्नेह का आधार हो सकता है? क्या स्थायी प्रेम सम्भव है?[1] इन प्रश्नों के निराकरण प्रयत्न ही शाश्वतिक है? चन्द्रनाथ के अन्तर्मन में उठे ये प्रश्न अपनी गूढ़ता में अभिव्यक्त क्रिया प्रतिक्रियाओं पात्र प्रतिपात्रों की प्रधानता के कारण कथा का स्तर सूक्ष्मतर भी अन्तर्मुखी लगता है। पथ की खोज की कथा सूक्ष्म व अस्पष्ट न होकर गूढ़ और रहस्यमय हो गई है। नायक के मन में उठे मानसिक और शाश्वत प्रश्नों की उलझनों में कथानक की अस्पष्टता को ठेस पहुँचा है और इनके समाधान का न देकर कथाकार ने विश्लेषण को ही विस्तार दिया गया है। साधना का सारा

१ पथ की खोज—पृष्ठ ५ ११ ६५ १०७ १३१ १४३ १६५ ३०८ ३२७ ३३१ (दूसरा भाग) पृष्ठ २१४, २३८ २५०

चन्द्रनाथ बराबर मनन और विश्लेषण करता है। उसका प्रथम पत्र पाकर वह उत्फुल्ल हो जाता है। साधना का अरुणकुमार से विवाह संबंध निश्चित जान उसकी अन्तश्चेतना फुत्कार उठती है। उसे ज्वर हो आता है। और जब साधना उसे देखने जाती है तो वह उसके सम्मुख अपने मन के सब विकार विश्लेषित कर रख देता है। उसे बहन कहकर उसके अधरों पर चुम्बन जड़ देता है। यह चुम्बन हमें एक बार फिर शेखर द्वारा शशि के मुख पर जड़ित चुम्बन का स्मरण करा देता है। इसी के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक स्त्री-पुरुष संबंधों के मुक्त आचरण का नैतिक प्रश्न उठता है। व्यक्तिवादी चिंतक के लिए यह व्यवहार सहज और अनिवार्य है, जबकि रूढ़िवादी सामाजिक दार्शनिकों के लिए जीवन की व्यर्थता और घोर पाप का सूचक है। डा० देवराज इस चुम्बन को वात्सल्य की संज्ञा देकर अपनी दार्शनिकता और भारतीय संस्कृति में आस्था की धाक जमाना चाहते हैं जो एक आवरण ही माना जाएगा।

'पथ की खोज' में साधना का व्यक्तित्व सबसे अधिक प्रखर और प्रभावशाली है। वह आद्योपान्त उपन्यास के हर पात्र पर छाई रहती है। सुशीला में चरित्रगत दृढ़ता है पर व्यक्तित्व नहीं, चन्द्रनाथ में अन्तर्द्वन्द्व और आदर्शवाद उसके चरित्र और व्यक्तित्व दोनों को कुंठित कर देता है। एक आशा ही ऐसी पात्र है जिसमें चरित्र और व्यक्तित्व सक्रिय रूप से गठित होकर उभरा है, किन्तु साधना के सामने वह भी निष्क्रिय निस्तेज, फीकी, नीरस और प्राणहीन लगती है बस उसका प्रखर और तेजोमय रूप जो चन्द्रनाथ को दूसरे खण्ड में पत्र व्यवहार द्वारा पता चलता है कथा का न्यास भी करता है। इस कथांश में चन्द्रनाथ परम्परागत नैतिक मूल्यों के प्रति आकृष्ट होकर अपने जीवन का पुनर्विश्लेषण कर आशा से विवाह करने में ही अपना कल्याण देखता है। उसे आशा में शालीनता संवेदनशीलता तथा ईमानदारी नजर आई, तभी तो उसने उसे स्वीकारा क्योंकि साधना के प्रबल व्यक्तित्व ने उसे नकारा है उसकी उपेक्षा की है।

पथ की खोज में नैतिक प्रश्नों के साथ-साथ आर्थिक प्रश्नावली भी जुड़ी है। भारतीय संयुक्त परिवार की आर्थिक और नैतिक समस्याएँ भारतीय विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के प्रांगणों में साहित्यिक और सांस्कृतिक आयोजनों में युवक युवतियों का पारस्परिक सामीप्य, आकर्षण और फिर अन्तर्द्वन्द्व भोगना, पूंजीपति प्रकाशकों का लेखकों को उत्पीड़ित करना आदि अनेक प्रश्नों पर लेखक अधिकारपूर्वक लिखता गया है। मूल रूप से लेखक इस उपन्यास में विश्लेषणात्मक शिल्प विधि द्वारा मध्यवर्गीय युवक-युवतियों की अन्तश्चेतना में वर्तमान अन्तर्द्वन्द्व को ही चित्रित करता है। इस संबंध में श्री बचनसिंह लिखते हैं— डा० देवराज के उपन्यास पथ की खोज में मध्यवर्गों के ध्वंसोन्मुख आदर्शों का संयत मनोवैज्ञानिक तथा कलापूर्ण चित्र उकेरा गया है। इस उपन्यास में 'गिरती दीवारें' की बेबसी हार लाचारी तथा विकृत यौन ग्रन्थियाँ नहीं है वहाँ का मात्र ध्वंस भी नहीं है ध्वंस है लेकिन ध्वंस या नाश में सृजन की एक प्रेरणा है। यदि इस उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन दर्शन की मूल भावना व्यक्तिवाद का ही आकलन किया गया होता तो यह भी अपने में जड़, स्थिर और अगतिमान होता किन्तु इसमें वह 'व्यक्तिगत प्रश्नों की चेतना से अपने वर्ग की समस्याओं की चेतना की ओर और फिर

मेवा करके नारीत्व को सार्थक मानती है। पिया की विधवा निलिमा सुकान्त के भोजन आदि की व्यवस्था कर परम संतोष एवं तृप्ति की अनुभूति करती हुई अपने नारीत्व को चरितार्थ करती है। इसी उपन्यास की यमुना दुख में पिसकर निश्चिन्त हो गई है किन्तु स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखने वाले समाज विद्रोही नारी पात्रा की भी इन्होंने योजना जुटाई है। 'पिया' की नायिका पिया स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखती है। वह केवल सुन्दरी और गुणवती ही नहीं है सती और साहसी भी है। *नारी उसकी दृष्टि में पुरुष की सहयोगिनी है क्रीत दासी नहीं।* उसका प्रेम उदात्त कोटि का है। विवाह से उसे घृणा है। विवाह के पश्चात उसकी राय में प्रेम कदाचित कुत्सित और विकलांग हो जाता है। इस दृष्टि से वह असाधारण नारी है। लेखिका ने उपन्यास में उसके मानसिक द्वन्द्व का विश्लेषण अनेक स्थलों पर किया है। उपन्यास के अन्त में वह देश सेविका के रूप में रूपायित हुई है। निशीथ के द्वार पर उसकी मृत्यु हृदय विदारक है।

'वचन का मोल'—१६३६

'वचन का मोल' उषादेवी की प्रथम औपन्यासिक रचना है। यह विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के आधार पर निर्मित हुई। इसमें कथा के विवरण नहीं दिये गये, संकेत भर जुटाए गए हैं। कजरी इस उपन्यास की केन्द्र बिन्दु है। सरोज नाम के युवक को वह भाई मान कर स्नेह करती है किन्तु वह इस मृत्यु समय विवाह कर पत्नी कहला लेता है और कजरी आजीवन अविवाहित रहने का वचन दे देती है। विनय नाम के युवक से उसे प्रीत है किन्तु इसे सात्विक प्रेम कह सकते हैं। कजरी की ओर से हताश होकर विनय मनिका नाम की युवती से विवाह कर लेता है किन्तु उससे असंतुष्ट रहता है। उपन्यास में अनेक स्थलों पर पात्रों की मन स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। जैसे— मन ही मन मनि हँसी छी छी। *कैसी गन्दी है उसकी रुचि। मनिका घृणा से सकुचित हुई। वह* विचारने लगी और विनय? विनय की बात याद आते ही मन में आनन्द की लहर बह चली, सुन्दर दर्शन, श्रीमान युवक कल्चर्ड (सभ्य) भी है। मन में प्रश्नों की झड़ी लग गई। सरोज के लिए उसने कुछ भी न किया था। और आज भी चेष्टा नहीं कर रही है। नहीं —वह ज़ोर के साथ अस्वीकार करने लगी। किन्तु कजरी! अच्छा क्या है उस लड़की में? ज़रा सा खटका, अन्तर्वेदना रह ही जाती है। सरोज ने उसकी माला फेंक दी भूली-सी बात की याद से मनिका का मुँह काला पड़ गया। नारी की यह पराजय, ऐसा अपमान न आदमी है विनय। गत रात्रि की घटनायें कैसी मधुर मोहक है वह स्मृति।"[1]

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि की यह विशेषता है कि इसमें वयक्तिक जीवन या व्यक्तिवादी पात्रों की मनःस्थितियों का विश्लेषण और अन्वेषण सुविधा पूर्वक किया जाता है। पात्र अन्तर्मुखी होकर मनोद्वन्द्व का विश्लेषण करते हैं। एक एक प्रसंग में दो दो तीन तीन पात्रों का तुलनात्मक चरित्र चित्रण भी इस विधि द्वारा सम्भव है। 'वचन

---

1 वचन का मोल—पृष्ठ ३३ ३४

का मोल' में एक पात्र विनय रुग्ण अवस्था में पड़ा हुआ कजरी के अकस्मात बिन बुलाए चले आने पर मनन एवं विश्लेषण करता है— 'जमहनाथ विस्मय से विनय के नेत्र विस्फारित हुए। वह सोचने लगा— जिससे कभी मनि की समानता न हुई थी छोटे छोटे विषयों पर परिहास एवं व्यंग ही चलते थे जिसके पिता के मरने के बाद भी खबर लेना आवश्यक न समझा गया था जिसे नेत्र मनि के साथ सदा परिहास ही हुआ करता था, आज ऐसे दर्दिन में सबप्रथम वही आई। सबर मनि को बुलाया था सिर दर्द के बहाने यहां आने से इकार कर दिया। सब कुछ जान बूझकर भी वह नहीं आई आई वही —अवहेलना के साथ जिसे दूर हटा रखा था जीवन तुच्छ कर बिना बुलाए आई वही— सेवा के लिए। क्या यह कहीं स्वप्न तो नहीं है? किन्तु नहीं यह स्वप्न नहीं है। वास्तविकता है। संगीत-सी निर्मल और पुष्प सी कोमल कजरी के चरित्र का विश्लेषण है। वचन बद्ध कजरी सेवा त्याग और मानव की अनुभूत मनुष्यता का अनमोल रत्न है। वह आजीवन अविवाहित रहकर अपने उदात्त एवं महान चरित्र का परिचय देती है। कजरी के चरित्र को छोड़कर उपन्यास का शेष भाग तेजस्विता एवं गहनता शून्य है। इसका कारण लेखिका का प्रथम प्रयत्न है।

'पिया'—१९३७

पिया में पर्याप्त गहनता और तेजस्विता वर्तमान है। इसमें एक साथ दो नारी पात्रों के हृदय तल को पकड़कर उनका विश्लेषण किया गया है। नीलिमा और पिया दोनों ही विधवा हैं किन्तु हृदय में प्रेम के कोमल तन्तु सजाए हैं। नीलिमा विधुर सुकान्त के प्रति आकृष्ट है और पिया विवाहित पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट निशीथ पर मुग्ध है। यौवन पदार्पण पर नारी की मानसिक स्थिति का विश्लेषण नारी द्वारा ही सफलीभूत हो पाया है— 'रूप! रूप! ऐसा रूप!!! एक अचम्भे से गम्भीर तन्मयता से उस जीवित को वह देखने लगी किन्तु फिर भी अन्तर अतृप्त रह ही गया हृदय ग्रंथि शिथिल हो पड़ी। रूपसी वह कभी रूपसा?—तो यह साम्राज्ञी इतने दिन तक इस छोटे से शरीर में छिप कर कहां उठी था? किन्तु जब निकलकर बाहर आ गई तब उससे परिचय के प्रथम अवसर में जा ऐसा क्या घबरा रहा है। एक अनास्वादित अनन्त आकांक्षा जाने कैसी कल्पना एक हाहाकार ने उसके शरीर की नस नस को त्रस्त ग्रस्त मथित कर डाला।'[1] साथ ही प्रेम के उद्भव पर स्त्री की मन प्रवृत्ति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण कीजिए— 'उस विधवा के जीवन के लिए उतना समय और अर्थ दुनिया को यों ही कहां जो डाक्टर वैद्य बुलाए जाने या दवा पथ्य दिए जाते? और कब? कब उस सामान्य ज्वर के लिए डाक्टर आया दवा आई। स्वयं जमींदार द्वार पर दस दस बार पूछ-पाछ कर गए। उस दिन में और आज में कितना अन्तर है। कितना? कितना? न थोड़ा न कम। पृथ्वी और आकाश में जितना अन्तर है बस उतना ही तो है। उस दिन थी वह पृथ्वी की अवजना

---

२ वचन का मोल—पृष्ठ ७४ ७५
१ पिया—पृष्ठ ८ ९

अनाहूता उपेक्षिता, पातालपुर की वंदिनी जहां तो न सूर्य की किरण थी, न पवन के गीत। और जो आज है वह पृथ्वी ही का एक जीव उसका अपना निजी व्यक्ति अपना परिचय देने योग्य आज उसके निकट भाव है, गीत है और है बहुत कुछ।[2]

प्रिया का लेकर निशीथ की पत्नी मणाल के मन की ईर्ष्या का भी सूक्ष्म निदर्शन हुआ है। उपन्यास के अंत में प्रिया के प्रेम में सात्विकता और मणाल में पाशविकता का उन्मेष हुआ है। प्रिया स्वप्रेरणा से निशीथ के पथ से हटकर राष्ट्र सेवा की पथिका बन जाती है किन्तु मणाल उसे एकदम गलत समझ कर शीतमयी रात्रि में मत्यु की ओर धकेल देती है। इस रचना में जोशी रचित पर्दे की रानी और जैनेन्द्र रचित कल्याणी' सी गहनता भले ही न हो किन्तु वचन का मोल की अपेक्षा इसकी तेजस्विता सूक्ष्मता एव विश्लेषणात्मकता कई गुणा बढ़ गई है।

'नष्ट नीड'—१६५५

'प्रिया के पश्चात जीवन की मुस्कान 'सोहनी आदि उपन्यासों की रचना करके उषादेवी ने विश्लेषण विधि को अपनाए रखा। जीवन की मुस्कान 'वचन का मोल की आवृत्ति मात्र है। इसकी नायिका सविता कमलेश के अन्यत्र विवाह हो जाने पर आजीवन अविवाहित रहती है। उसकी हृदय ग्रंथि अतीव व्यथा से निपीडित होने लगती है, जिसके विश्लेषण में उपन्यासकार ने सारी शक्ति लगा दी है। सोहनी (१६४६) की नायिका सोहनी नारीत्व के गौरव की प्रतीक है। नष्ट नीड में भी नारी के करुणा विश्लेषणात्मक रूप में प्रवाहित हुई है। पाकिस्तान से निवासित सुनन्दा इसकी नायिका है जो कलकत्ता आकर सुप्रकाश के साथ रहने लगती है। उसका व्यक्तित्व इतना दृढ एवं उच्च कोटि का है कि वह सामाजिक मान्यताओं एवं रूढ़ियों की चिन्ता न करके भी सुप्रकाश के साथ रहती है। नारी के मन की प्रवृत्तियों का विश्लेषण वह इन शब्दों में करती है — बालों को काट कर ओठों को रंगकर शरीर को कस कर पिचके हुए गालों पर क्रीम, पाउडर मलकर वह अब भी अपने को एक दर्शनीय आकर्षण बनाकर रखना चाहती है? वय प्राप्त संतान के आगे पहले आप ही किशोर बनना चाहती है। नकल द्वारा वह वास्तविक को अस्वीकार करना चाहती है। इस प्रवृत्ति का आदि और अन्त कहां है? उत्तर आया उसके मन प्राण से—नहीं नहीं नारी मात्र की यह प्रवृत्ति, यह मनोवृत्ति और प्रकृति नहीं है। उसके कई रूप हैं न जाने अवस्था के साथ-साथ क्रमशः विकसित होते हैं। किशोरी में जीवन का उन्मादक स्वभाव सिद्ध होता है। युवती बन जाता है प्रमिका। तब आगमन है माता का प्रौढत्व तो मातृ भाव का सम वय कर रहता है, संसार के हर पहलू से, हर दिशा में मातृ स्नेह से ओतप्रोत जो है प्रौढत्व। वृद्धत्व भक्ति रस को उभारता है।'[3] सुनन्दा में ही नारीत्व को पहचानने की तीक्ष्ण दृष्टि नहीं है। लेखिका में विश्लेषण की अद्भुत क्षमता है, जिसके द्वारा अंत में वह सुनन्दा और उसके पति रवीन्द्र का रहस्य खोल देती है?

२ प्रिया—पृष्ठ ६२ ६२

३ नष्ट नीड—पृष्ठ ४३

पाँचवाँ अध्याय

प्रतीकात्मक शिल्प-विधि के उपन्यास

प्रेमचन्दोत्तर-युग के कथा साहित्य में एक ओर विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का विकास हुआ दूसरी ओर उसका बहुत-सा प्रतीकात्मक हो गया। अज्ञेय ने अपनी दूसरी रचना 'नदी के द्वीप' में प्रतीकात्मक शिल्प विधि का आश्रय लिया। धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', लक्ष्मीनारायणलाल का 'बया का घोंसला और साँप', 'काले फूल का पौधा', नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल', गिरिधर गोपाल का 'चाँदनी के खंडहर', अमृतलाल नागर का 'बूँद और समुद्र', भिक्खु का 'भँवरजाल' आदि उपन्यास इस शिल्प की परिपक्वता के सूचक ग्रन्थ हैं। प्रतीकवाद शिल्प का वह भेद है जो हमें दृश्यमान वास्तविकता से परे ले जाकर स्वप्नों तथा व्यक्ति के अर्द्ध जागृत चेतन की अवस्थाओं से परिचित कराता है। इस शिल्प विधि के उपन्यासों में सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की बाह्यात्मकता तथा आन्तरिकता में संतुलन रख के प्रतीकों द्वारा उनके अलौकिक या घिनौने स्वरूप की व्याख्या की जाती है। इन उपन्यासों को पढ़कर कई बार वास्तविकता का भ्रम (Illusion of Reality) तो होता है किन्तु इस भ्रम को अन्त तक भ्रम बनाए रखने में ही उपन्यासकार का कौशल है।

प्रतीकात्मक शिल्प विधि में उपन्यासकार कथा को ठोस बनाने पर इतना बल नहीं देता जितना जीवन से उसकी अनुरूपता दिखाने का प्रयत्न। तुच्छ हास्यास्पद और व्यर्थ दीख पड़नेवाले दृश्य पात्र और शब्द भी असत्य दीप्त अर्थ रखते हैं। इसके पात्र वस्तु-जगत के पात्रों से कहीं अधिक सशक्त होते हैं। इस संबंध में एक आलोचक लिखते हैं— वे (पात्र) उस प्रकार के मनुष्य होते हैं जिनका रहस्यमय जीवन द्रष्टव्य होता है या होने की सम्भावना रहती है और हम ऐसे मनुष्य हैं जिनका रहस्यमय जीवन अदृश्य रहता है।[1] यह कथन इस शिल्प विधि के उपन्यासों पर पूर्णतया लागू होता है। 'नदी के द्वीप', 'डूबते मस्तूल', 'बूँद और समुद्र' आदि उपन्यासों के पात्र अपने गूढ़ से गूढ़तर रहस्यों को स्पष्ट करने में ही अपनी सारी शक्ति लगा रहे प्रतीत होते हैं। रेखा, रंजना और वनकन्या और नीना जैसे नाना पात्रों का यथार्थ जीवन में देखकर भी हम अनदेखा कर

---

1 They are the people whose Secret lives are visible or might be visible we are people whose secret lives are invisible

—E M Forster Aspects of the Novel' P 62

देते हैं किन्तु उपन्यास म पढकर हम मानवीय रूपा के इन प्रतीको पर मुग्ध हुए बिना नही रह सकते।

नदी के द्वीप—१६५२

अन्तश्चेतना का प्रतीकात्मक निर्वाह 'नदी के द्वीप की शिल्पगत विशेषता है। इस रचना म अज्ञेय ने पात्रा की चेतना के अन्तसूत्रा को प्रतीका द्वारा पकडा है। भुवन, गौरा, रेखा और चन्द्रमाधव ये चार पात्र थोडे थाडे अन्तराल के पश्चात सामने आकर अपनी अन्तश्चेतना म विराजमान मूल सूत्रा का उदघाटन करत हैं। प्रतीकात्मक शिल्प विधि की रचना होने के कारण इसम स्थूल कथात्मकता की अभिव्यक्ति नहा हो पाई। लेखक की ओर से कथा के किसी भाग को भी पाठक के मस्तिष्क म उडेलने का प्रयत्न इसम नही हुआ। यह भी कही नही कहा गया कि रेखा भुवन रामास अमुक सीमा तक पहुच गया है या रेखा के स्वास्थ्य म सामयिक चिन्तनीयता कट गई है। पात्रा की अन्तश्चेतना सकेता द्वारा सब कुछ कह देती है, और जो शेष रह जाता है वह पाठक को अतिरिक्त अनुमान द्वारा ग्राह्य हो जाता है।

अपनी गहन अनुभूति और तीव्र बुद्धि के आधार पर अज्ञेय न जीवन का एक रूपक म आबद्ध करके नदी के द्वीप मे प्रस्तुत किया है। जीवन सरिता का प्रवाह ही वह रूपक है, भुवन और रेखा उसके दो कूल है उनका पारम्परिक आकर्षण ही वह सेतु है जो एक-दूसरे का कभी-कभी निकट ल आता है उनका मनोद्वद्व ही वह लहर है जो उन्हें दूर फेंक देती है। य दो पात्र अपने आप म प्रतीक हैं। लखनऊ क एक काफी हाउस म बैठकर जो वार्ता करते हैं वह साधारण प्रेमी प्रेमिका की प्रेमवार्ता नही है जीवन के सूनेपन और व्यक्ति के क्षुद्र रूप की परिचायक प्रतीक वाणी है। भुवन द्वारा जीवन सरिता पर पुल बाधे जाने की बात का उत्तर वह इन शब्दो म देती है—"हा मगर सच मुच सेतु बन सकें तो दोना ओर स रौंदे जाने मे भी सुख है, और रौंदे जाकर टूटकर प्रवाह म गिर पडने म भी सिद्धि। पर मैं तो कह रही हू कि मैं ता उतनी कल्पना भी नहा कर पाती—मैं तो समझती हू—हम अधिक से अधिक इस प्रवाह म छोटे छाटे द्वीप है उस प्रवाह से कटे हुए भी, भूमि से बधे हुए और स्थिर भी, पर प्रवाह म सवदा असहाय भी।[1] जीवन की चचल सरिता म प्रवाहमान ये पात्र केवल तैर ही नही रहे है डूबते स, उभरते से, कूल तक पहुचकर पुन मनोद्वन्द्व की लहरा स जूझने दृष्टिगोचर होते हैं। भुवन को रेखा मे नाना अवसरा पर निरन्तस्पर्शी प्रवाह मे तर रहे सकडा छाटे छोटे द्वीप नजर आते हैं ये द्वीप उसकी मनोग्र थिया के प्रतीक हैं और रेखा—उस ता जीवन म प्रतिपल य द्वीप दष्टिगत हाते रहते हैं। वह बात बात म भुवन का कहती है कि उसके साथ कुछ ही दिना म उस सवत्र द्वीप दीखने लगगे। वह अपने का अयान व्यक्ति का मानवता के सागर म विद्यमान एक क्षुद्र सा द्वीप मानती है। उसे केवल मध्यवर्गीय नारी का प्रतीक भी नही कहा जा सकता। वह तो सार्वभौमिक नारीत्व की प्रतीक है, जो पूर्ण

१ नदी के द्वीप—पृष्ठ १४

समपण के बिना उखडी-सी झिझकती-सी, बिखरी सी प्रतीत होती है अवसर मिलते ही वह भुवन से कहती है— मैं तुम्हारी हूँ भुवन, मुझे लो।[2] इस पक्ति म नारीत्व के सम्पूर्ण आवेगो का स्पष्ट संकेत है। नारी बिना सम्पूर्ण समपण के अधूरी है बिना यौन तृप्ति के उसके कुण्ठित यत्र अन्तर्मुखी और विनाशमुखी हो जाने का पूरा पूरा भय बना रहता है। रेखा के समपण को भी प्रतीकात्मक शब्द दिए गए हैं— मानो कहती नाव म वह सोया था अवश हाथ जिन्हे वह हिला भी नही सकता अवश देह लेकिन एक स्निग्ध गरमाई की गोद म अवश— चादनी वह अधिक पी गया—चान्दनी मदमाती उन्मादनी।[3] यह चादनी रेखा की संचित रूप किरण है जिसका भुवन के प्रति अपण उसे उन्माद से लबालब भर देता है। हेमेन्द्र को पुरुष करके उसने कभी न जाना।

कनानिज नाथ का अध्यवसायी भुवन मध्यवर्गीय विवशताओ और कुण्ठाओ का शिकार है अत मनोद्वन्द्वो से ग्रस्त व्यक्तित्व का प्रतीक है। इसके सबध म एक आलोचक का कथन है— डा० भुवन की उपलब्धिया उसकी आतरिक प्रेरणा और शक्तिमत्ता के कारण नही बल्कि हीनता की ग्रंथियो की उच्चमार्गीय परिणति हैं। गौरा के प्रति जो उसका प्राथमिक स्फुरण था वह सामाजिक स्तरो की भिन्नता के कारण उभर न सका था और सामाजिक स्तर की उस हीनता के निराकरण के लिए भुवन की चेष्टाए पी एच० डी० की उपाधि की ओर अग्रसर करती थी। बौद्धिकता और ज्ञान के सहजानुभूति जन्य आधार की स्पष्ट रेखाए इस चरित्र म मिलती है। डा० भुवन मानव के उस विकास का संकेत देता है जिसम बुद्धि मानो तीव्र संवेदना के साथ गुथी हुई थी भुवन म इस विकास का अभाव ही रह गया क्योकि बौद्धिकता की वाग्धारा उसे अतिरोमाचक बनने से बचा नही पाती। इस अभाव की सम्पूर्ति उस रेखा के व्यक्तित्व म मिलती है जिसम रूप भी है और बुद्धि भी।[4] मेरे विचार म भुवन विकास पथ पर अग्रसर जीवन प्रवाह की लहरो से जूझ रहा एक प्रतीक है। वह मध्यवर्गीय सामाजिक सास्कृतिक परिवेश से सम्पृक्त वतमान म गृहीत बिम्ब प्रतिबिम्बो के प्रति आसक्त अतीत की स्मृतियो के विश्लेषक बुद्धिवादी व्यक्तित्व को सार्थक कर रहा है।

चन्द्रमाधव और गौरा भी प्रतीकात्मक पात्र है। चन्द्रमाधव आधुनिक अलट्रा माडन कहे जाने वाले वास्तविक जीवन प्रवाह का एक प्लवनकारी उदाहरण है। अपनी एकरस तुष्ट पतिव्रता स्त्री से असंतुष्ट और बाहर तथा भीतर दोनो प्रकार से चिर दग्ध रहने और भटकने वाली रेखा गौरा आदि के प्रति आकृष्ट यह व्यक्ति पुरुष की मधुप वृत्ति का प्रतीक है। अन्तश्चेतना का प्रतीकात्मक निर्वाह भी इस पात्र द्वारा सम्पन्न हुआ है। एक उदाहरण देखिए— हेमेन्द्र कहा होगा हेमेन्द्र अब ? चन्द्र ने कोशिश की रेखा और हेमेन्द्र की साथ कल्पना करे पर उसमे किसी तरह सफलता नही मिली हेमेन्द्र

---

२ नदी के द्वीप—पृष्ठ १२७
३ वही—पृष्ठ १४५
४ डा० रामलखन पांडेय "पात्रो का निर्माण और विकास होरी बलचनमा और भुवन आलोचना (१३)—पृष्ठ १५०

की गवीह वह किसी तरह सामने लाना तो रेखा की बजाए गौरा आ जाती फिर वह सकल्प पूर्वक उसे हटाकर रेखा को सामने लाता तो हेमेन्द्र की बजाए भुवन सामने आ जाता।"[5] ये सब चित्र उसकी अन्तश्चेतना की मधुप वृत्ति के प्रतीक हैं। रेखा और फिर गौरा! गौरा और फिर रेखा और इनके पश्चात फिर वही कौशल्या—वह जो जरा सा खीचन पर भुक जाती है। चौंकना नहीं विराग नहीं कोई रोमाच नहीं—और चन्द्रमाधव के भाव बिखर जाते हैं। ये बिखरे हुए भाव व सकेत हैं जो ऐसे दुष्ट, छली व्यक्तियों के अन्तर आप में छिपी भाव उर्मियों को अभिव्यक्त करते हैं। चन्द्रमाधव मनुष्य की पशु वृत्ति का मूर्त रूप है। भुवन के भाग्य से इसे ईर्ष्या है। रेखा और गौरा दोनों पर वह आसक्त है। पर दोनों से वंचित रहता है।

भुवन और चन्द्रमाधव की तुलना में रेखा और गौरा की अन्तश्चेतना का प्रवाह अधिक तीव्र गति से प्रवाहित हुआ है। ये दोनों पात्र मामले क्रम और मानसिक अधिक हैं रेखा तो मानसिक उद्वेलना से भरी पडी है। रेखा के मस्तिष्क में भावो एव विचारो की शृंखला का मुक्त प्रवाह अवलोकनीय है अतः उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है—"उसे सहसा लगा कि पत्र में लिखने को कुछ नहीं है क्योंकि बहुत अधिक कुछ है, अगर वह सब वह कहने बैठ ही जायगी तो फिर रुक नहीं सकेगी और उधर भुवन का काम असम्भव हो जायगा पत्र में जान बूझकर उसने अपनी बात न कहकर इधर उधर की कहना आरम्भ किया था, गौरा से भेंट की बात लिखने लगी थी पर उसी के अध बीच में रुक गई थी। नहीं, गौरा की बात वह भुवन को नहीं लिखेगी। भुवन का मन वह नहीं जानती लेकिन गौरा का भुवन गौरा का मन जानता है कि नहीं, यह भी नहीं जानती पर जहाँ भी गहरा कुछ मूल्यवान कुछ आलोकमय कुछ हो, वहाँ दब-पाव ही जाना चाहिए वह कहीं हस्तक्षेप नहीं करेगी कुछ बिगाडना नहीं चाहती नदी में द्वीप तिरते हैं टिमटिमाते हुए, उन्हें बहने दो अपनी नियति की ओर अपनी निष्पत्ति की ओर, नदी के पानी को वह आलोडित नहीं करेगी। वह केवल अपना मन जानती है अपना समर्पित, विह्वल, एकोन्मुख आहत मन उसे वह भुवन तक प्रेषित भी कर सकती है पर नहीं—भुवन से उसने कहा था वह अपने स्वस्थ और स्वाधीन पहलू से ही उसे प्यार करेगी और गौरा से उसने कहा पर यह कैसे सभव है कि एक साथ ही समूचे व्यक्तित्व से भी प्यार किया जाए और उसके केवल एक अंग से भी ' वह सब की सब समर्पित है स्वस्थ भी और *आहत* भी—बल्कि समर्पण में ही तो वह स्वस्थ है अविकल है बन्धनमुक्त है भुवन भुवन मेरे भुवन '[6] चेतना के इस प्रवाह में भी प्रतीक योजना जुटा दी गई है।

इन पात्रों के विश्लेषण में चेतन प्रवाह के सहारे तो इस *प्यार कथा की गति* बनी ही है किन्तु मध्य में अन्तराल में दिए गए पत्रों द्वारा भी कथानक के विकास में बडी सहायता मिली है। प्रथम अन्तराल में रेखा द्वारा लिखा गया प्रथम पत्र जो चन्द्रमाधव के नाम है केवल शिष्टाचारसूचक है किन्तु इसी पात्र द्वारा भुवन को लिखे पत्र में सात्विक

---

५ नदी के द्वीप—पृष्ठ १७६

६ वही—पृष्ठ १८१

आत्मीयता तथा कथानक की गहराई का पता चल जाता है। इसी प्रकार तीसरे पत्र में जो भुवन द्वारा रेखा को लिखा गया है निकटता, श्रद्धा तथा साहचर्य की इच्छा के दर्शन होते हैं किन्तु भुवन द्वारा चन्द्रमाधव को लिखे गए पत्र में केवल मैत्री भावना का साधारण स्वरूप अंकित हुआ है। इसी अंतराल में दिए गए अन्य पत्र साधारण होते हुए भी कथानक को सुनियोजित करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। दूसरे अन्तराल में दिए गए पत्रों की संख्या भी अधिक है और न केवल कथानक की टूटी शृंखलाओं को ही नहीं जोड़ते अपितु चरित्रों की करुण स्थिति, पात्रों की मानसिक दशा और मान्यताओं का उद्घाटन भी करते हैं। इनमें सर्वाधिक पत्र वियोगिनी रेखा द्वारा भुवन को लिखे गए हैं, जिनमें उसकी मर्मस्पर्शी करुण अवस्था का चित्रण हुआ है। भुवन द्वारा लिखे गए पत्र उसके आत्म दमन एवं अन्तर्द्वन्द्व के उद्घाटक सिद्ध होते हैं। गौरा के पत्र उसके चारित्रिक उत्थान, संयम, त्याग आदि विशेषताओं के प्रतीक हैं। रेखा के एक पत्र में भुवन के लिए प्रेरणा, आशावाद, शान्ति का संदेश भी निहित है जैसे—'यह सब मैं सोच लगी भुवन! अभी मेरे मन में तुम्हारे भविष्य का विश्वास उमड़ आया है और मैं तुम्हें आशीर्वाद दे रही हूँ। तुम्हारे पिछले पत्रों में जो गहरी निराशा थी उसे मैं नहीं स्वीकार करती, तुम उसमें से निकल आओगे। जिस चौराहे की, जिस दीवार की बात तुमने कही है उससे भी तुम ऊँचे उठोगे। मुझे छूने के लिए नहीं—मैं गिनती में नहीं हूँ—अपनी बाँहों में दुनिया को घेरने के लिए। निराश मत होवो भुवन, अपने जीवन को परास्त भाव से नहीं स्रष्टा भाव से ग्रहण करो, एक विशाल पटल है, तुम्हें बुनना है, तुम्हारी प्रत्येक अनुभूति उसका एक अंग है, प्रत्येक व्यथा एक-एक तार—लाल, सुनहला, नीला, मैं—मैं भी उसी ताने बाने के तारों का एक पुंज हूँ—मेरा आशीर्वाद लो भुवन, और आगे बढ़ो, जहाँ भी तुम जाओ जो भी करो मेरा प्यार और आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। मेरा विश्वास तुम में अडिग है।[1]

यौन वर्जनाओं, यौन विकृतियों, यौन कुण्ठाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी विभिन्न पात्रों के प्रतीकात्मक विश्लेषण द्वारा प्रस्तुत हुआ है। भुवन की काम कुण्ठा दमित यौन भावना का परिणाम है जो संयम, ब्रह्मचर्य, सतत वैज्ञानिक अध्ययन एवं अर्पण और नारी से दूर रहने के थोथे आदर्शवाद में स्थानान्तर (Transference) रहने पर भी तृप्त नहीं होती। रेखा का सम्मिलित परिचय उसके दिवा स्वप्नों की पूर्ति (Compensation) हेतु संयोजित हुआ है। इस पात्र ने भुवन में यौन भावना के प्रति आकर्षण प्रस्तुत किया है, उसके संयम तथा अन्तर्मुखी दृष्टिकोण को एक मोड़ दिया है। रेखा और गौरा को लेकर भुवन के एकांगी जीवन में जो अन्तर्द्वन्द्व दर्शाया गया है वही उपन्यास का प्राण तत्त्व है। रेखा को पाकर भी उसने उसे खो दिया है और गौरा को अपना प्रिय लिया। गौरा का साक्षात्कार भी पाया है। गर्भपात की चरम पीड़ा, रेखा की स्वेच्छा से स्वीकृत मर्मस्पर्शी पीड़ा है किन्तु भुवन का अन्तर्मन कहता है कि रेखा मूल कारण भी वही है—यदि वह गर्भ दिनों के लिए कश्मीर छोड़कर कागज न लौट आता तो शायद

---

1 नदी के द्वीप—पृष्ठ १८१

ऐसा न होता। इस विषय को लेकर वह मन में अनन्त पीड़ा ग्लानि एवं पश्चाताप की अनुभूति करता है। गौरा को खो खोकर, उससे दूर भाग भाग कर भी वह उसका रहा है। उसकी अज्ञात कल्पित अन्तश्चेतना उसे बार-बार गौरा मिलन के लिए दबाव करती है वह विदेश में अपने एकाकीपन के बोझ से ऊब जाता है, सूनापन, उच्चाटन उत्कंठा और आन्तरिक संघर्ष उसे नोच खसोट लेते हैं। इन सब तथ्यों का उद्घाटन वह अपने पत्रों द्वारा गौरा को ही नहीं, पाठक को भी देता है।

प्रतीकात्मक चेतना प्रवाहवादी विधि को अपनाने वाला उपन्यासकार स्वयं तटस्थ रहकर पात्रों के जीवन का अवलोकन करता और कराता है। उसकी कृति में वह नहीं, पात्र मुखरित हुआ करता है। 'नदी के द्वीप' में अज्ञेय नहीं भुवन चन्द्रमाधव रेखा और गौरा बोले हैं। इस संबंध में एक आलोचक का निम्नलिखित कथन अक्षरशः उचित है— पर अज्ञेय का ध्येय स्थूल कथात्मकता की अभिव्यक्ति रहा ही कब है उन्होंने तो कथा कही ही नहीं है। उपन्यास में दो अंग होते हैं स्थूल और सूक्ष्म। कथात्मकता को हम स्थूल अंग कह सकते हैं पर उपन्यास में अभिव्यक्त पात्रों के भाव विचार उनकी मानसिक प्रतिक्रिया, जीवन संबंधी दृष्टिकोण घटनाओं को अर्थ प्रदान करने वाली जीवन दृष्टि ये सब उपन्यास के सूक्ष्म अंश कहलावेंगे। ये सूक्ष्म अंश अज्ञेय के उपन्यासों के आधार हैं। हेनरी जेम्स के कुछ शब्दों के सहारे कह तो कहूँ कि अज्ञेय (Seated man of information) अर्थात् कथा की जमी हुई घनीभूत राशि खड़ी करने वाले कथाकार नहीं हैं। उनका संबंध पात्रों के मनोविज्ञान से है। कथा की छोटी सी गुठली है भी तो वह भावना विचार और अनुचिंतन की पाचक रस की दरिया में तैर रही है।[८]

इस उपन्यास के शिल्प के संबंध में मान्य आलोचक ने अपने शोध प्रबन्ध में एक स्थान पर लिखा है— ''नदी के द्वीप के चारों पात्रों का दृष्टिकोण पृथक्-पृथक् है प्रत्येक अपने अपने दृष्टिकोण की विचित्रता के कारण घटना प्रवाह के उस अंग को देखता है जो दूसरे पात्र नहीं देख सकते प्रत्येक द्वारा घटना के विशेष अंग पर ही प्रकाश पड़ता है और शेष भाग अन्धकारमय ही रहता है जिस आगे चलकर दूसरे पात्रों की किरण उद्भासित करती है —अतः नदी के द्वीप के चार दृष्टिकोणों की सीमा में कथा को धर देने से उपन्यास में एक विचित्र व्यवस्था, नियम और संगठन की योजना संभव हो सकी है और यह उपन्यास हिन्दी का एक अत्यन्त गठित और सौष्ठवयुक्त उपन्यास हो सका है। इस उपन्यास के शिल्प का जहाँ तक प्रश्न है अज्ञेय कुछ कुछ उसी ऊँचाई तथा गम्भीरता तक उठ सके हैं जिसको प्रेमचन्द ने अपने टेकनीक के क्षेत्र में प्राप्त किया था।[९] विद्वान आलोचक के इस कथन से मैं पूर्णतः सहमत हूँ, प्रस्तुत उपन्यास शिल्प के क्षेत्र में एक गौरवपूर्ण उपलब्धि है। इसमें उपन्यासकार तटस्थ हो गया है। वह पाठक से इस रचना के लिए

---

८ डा० देवराज उपाध्याय आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान—पृष्ठ १६२

९ डा० देवराज उपाध्याय आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान—पृष्ठ १८१

अतिरिक्त लगन और एकाग्र चिन्तनपूर्ण अध्ययन की आशा रखता है। वह हम किस्सा के साथ यह नही बताता कि रसान्दमन्द म कहता कब बने और किस्सा भाषा म बसी बस इतना सकेत करता है कि रसा ने उसे कभी पुरा करके नहीं जाना। पात्रो के पत्र वार्तालाप विश्लेषण स्वप्न सब पाठा से मजगता के साथ साथ सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति की माग करते है। इसम बौद्धिकता और प्रतीकात्मकता का सहज आग्रह हो रही है, पूण पराकाष्ठा है। एक आनाचर के रूप म नदी के द्वीप के आधार पर मानव जीवन की आधुनिक परिस्थितियो को प्रस्तुत करता है।' प्रस्तुत उपयास म विद्वान लेखक ने पद्याना की भरमार कर दी है। रवि बाबू ब्राउन्ट टनर प्रसाद टी० एस० इलियट क्रिस्टिना रासेटी वाइनिंग और शैली के श्रेष्ठतम पद्य म परिपूर्ण यह उपयास वास्तव म एक प्रतीकात्मक चित्र को प्रस्तुत करता है।

अमृतलाल नागर

नागर जी की प्रसिद्धि का मात्र कारण इनका सशक्त सवेदनशील व्यक्तित्व और यथार्थ का मिश्रित रूप है। नागर समाज की प्राचीन दकियानूसी विचारणाओ अध विश्वासो के प्रति विद्रोही स्वर उभार कर नये के स्वस्थ मुखर और प्राचीन के मगल मय भावो और विचारो का समन्वयात्मक विकास चाहते हैं। व्यक्ति और समष्टि का बूद और समुद्र जैसा मान आपने बूद से बूद और लहर से लहर (व्यक्ति से व्यक्ति और व्यक्ति से समाज) की कडियो को जोडकर जीवन के घात प्रतिघातो को अपने उपयास साहित्य म प्रतिध्वनित किया है। व्यक्ति समाज के इस समन्वय पर दृष्टिपात करते हुए एक आलोचक इनके विषय म लिखती हैं— समूह एव समाज की अनिवार्यताओ को स्वीकार करती हुई उनकी कला व्यक्ति की गरिमा की अवहेलना न कर व्यक्ति तथा समष्टि की पारस्परिक सापेक्षता को जीवन के विकास का मूल सिद्धान्त मानने म प्रवृत्त हुई है। व्यक्ति स्वय केवल व्यक्ति सत्य नही है वरन जीवन एव समाज से सम्बद्ध भी है।'

नागर जी ने पहला उपयास महाकाल —१९४७ म लिखा। यह वणनात्मक शिल्प की रचना है और इसम लेखक बगाल के दुर्भिक्ष का आखो देखा हाल वणन करता है। इनके दूसरे उपयास सेठ बाकेलाल म इनकी व्यग्यात्मक शैली निखरने लगी है और यह इस शैली की श्रेष्ठ रचना है। परन्तु नागर की विशिष्ट उपलब्धि है— बूद और समुद्र जिसका अवलोकन कर मैं इस निष्कष पर पहुचा हू कि यह नदी के द्वीप के पश्चात प्रतीकात्मक शिल्प की दूसरी प्रमुख कृति है।

बूद और समुद्र— १९५६

अपनी गहन अनुभूति और प्रतिभा के आधार पर अमृतलाल नागर ने जीवन को

---

१० डा० सुषमा धवन हिन्दी उपयास—पृष्ठ ३५१

१ डा० सुषमा धवन हिन्दी उपयास—पृष्ठ ७०

र रूपक में आबद्ध करके 'बूंद और समुद्र' में प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज ही वह मुद्र है जो नाना व्यक्तियों और वर्गों के सम्मिलित विश्वासों, मान्यताओं, विवशताओं या लीलाओं रूपी बूंदों का विराट स्वरूप है। जीवन सागर में डुबकी लेने वाले कथा र ने महिपाल, कर्नल सज्जन वनकन्या ताई कल्याणी जैसी महत्त्वपूर्ण बूंदें न जुटाए हैं। इसमें भारतीय समाज के नागरिक वर्ग का जीवन जैसा जिया गया Life as lived) प्रतीकात्मक महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। राजनैतिक उछल र प्रचार षडयन्त्र तथा नाना प्रपंच, सामाजिक रहन सहन, आचार विचार दृष्टिकोण व स्थाएं, वैयक्तिक प्रेम, पारिवारिक द्वेष धार्मिक विश्वास नैतिक अंधविश्वास रूढ़ियां, ांस्कृतिक समारोह तथा प्रदर्शनियां इस बृहद् रूपक में यथेष्ठ स्थान पर गौरवान्वित है। स तथ्य को लेखक ने उपन्यास की भूमिका में स्वीकार किया है—'इस उपन्यास में मैंने पना और आपका—अपने देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का गुण-दोष भरा चित्र या को त्यों आंकने की यथामति यथासाध्य प्रयत्न किया है अपने और आपके चरित्रों इन पात्रों को गढ़ा है।—उपन्यास के क्षेत्र के रूप में मैंने लखनऊ और उसमें भी खास ौर पर चौक को ही उठाया है।"[1] इसमें एक जीवन व्यवस्था टूट रही है और दूसरी न्म ले रही दिखाई गई है।

'बूंद और समुद्र' की रूपकात्मकता असंदिग्ध है। लखनऊ का चौक ही समस्त कथा ा केन्द्र है। यह वह धुरा है जिसके चारों ओर भारतीय समाज रूपी सागर ठाठें मारता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस विषय में एक आलोचक का कहना है—'यह मुहल्ला एक बूंद की तरह है जिसमें समुद्र की तरह विशाल भारतीय जीवन के दर्शन होते हैं। शहर के विभिन्न स्तरों का जीवन कैसा है इसका पता तो उपन्यास से लगता ही है गांवों में भी जनता के संस्कार कैसे हैं, इसका परिचय बहुत कुछ मिल जाता है। उपन्यास के नाम की यही सार्थकता है। एक मुहल्ले के चित्र में लेखक ने भारतीय समाज के बहुत से रूपों के दर्शन करा दिए हैं। वैसे तो भारतीय समाज हिन्द महासागर है और उसका चित्रण करने के लिए यह समुद्र भी छोटा है।'[2] प्रस्तुत उपन्यास के नाना पात्र अपने को क्षुद्र बूंद समझने हुए व्यापक जन समूह रूपी सागर में मिल जाना चाहते हैं जन सागर में अपनी निरीहता का अनुभूति करता हुआ महिपाल अपने को 'दुनिया में मैं अकेला फुटबेल हूं' कहता हुआ घोर क्रन्दन करता है। वनकन्या भी अपने को निरुपाय एवं निस्सहाय समझती है। उसकी समस्या, उसका चिंतन उपन्यास को रूपकात्मक बनाते हैं। वह कहता है—'कैसे यह बूंद अपने आपको महासागर अनुभव करे? इस महान जन सागर में वह नितान्त अकेली है। उसका कोई अपना नहीं। ऐसा लगता है जैसे उसके चारों ओर सागर सीमा बांधकर लहरा रहा है और वह एक बूंद सागर में अलग रेत में घुलती चली जा रही है। और केवल उसकी ही यह हालत हो सो बात भी नहीं। हर व्यक्ति आम तौर पर इसी तरह अपनी बहुत छोटी छोटी सीमाओं में रहता हुआ एक दूसरे से अलग है तब यह सागर

१ अमृतलाल नागर 'बूंद और समुद्र' 'पाठकों से' से अवतरित
२ डा० रामविलास शर्मा आस्था और सौंदर्य—पृष्ठ १३४

बसा है जिसमें हर बूद अलग है ? व्यक्ति यदि इतना ही अलग है तो समाज क्योंकर बनता है ? कथा का घर—उसके माता पिता भाई भावज, सब एक दूसरे से भयकर विरोध क्यों रखते हैं। वह नैतिक दृष्टि से समाज के जिस मध्यवर्गीय घर में पली हुई है पली बढ़ी है वह घर केवल एक ही तो नहीं बहुत से हैं। एक समाज में जिसमें जन जीवन महासागर की उपमा पाता है जहां मान्यता अभय मानी जाती है उन घरों का रहना क्योंकर संभव है ? आत्म का महत्त्व है तो सबके लिए। उसका मूल्य समान हो यह क्योंकर संभव नहीं ? बड़ो बूढ़ा हो छोटी बहू हो, नानी जगा बूढ़ा क्यों न हो यह छोटाई बड़ाई नैतिक मापदण्ड के लिए कोई मूल्य नहीं रखती। और भी बहुत से घर इस परिभाषा में आते हैं पर तु आम तौर पर ऐसा वातावरण कम ही मिलता है कुछ को छोड़कर समाज में कुलीन और आबरूदार कहलाने वाले मतवर पिछत्तर फीसदी लोग इसी तरह उन स्थापनाओं का प्रतिक्षण अपने व्यवहार में ताड़ते रहते हैं जि हें समाज ने आदर्श माना है। यह विरोधाभास लेकर मानव का सामूहिक जीवन चल ही कैसे सकता है ?—बूद बूद का उपयोग हो बस हो ?[3] इस 'बस हो' का प्रत्युत्तर कथाकार ने उपन्यास में अनुभूति प्रधान पात्र महिपाल के द्वारा कथा के अत में इन शब्दों में दिलाया है— व्यक्ति व्यक्ति अवश्य रहे पर उसके व्यक्तिवादी चिंतन में भी सामाजिक दृष्टिकोण का रहना अनिवार्य हो।—मैं अकेला भी हूं पर बहुजन के साथ में हूं। दुख सुख, शान्ति अशान्ति व्यक्तिगत अनुभव हैं पर ये समाज में प्रत्येक व्यक्ति के हैं अतएव हमें यह मानना चाहिए कि समाज एक है व्यक्ति तो अनेक हैं।[4] अनेकता में एकता की भावना, वैयक्तिक प्रवृत्तियों का समाज सापेक्ष होकर चलने में विश्वास दिलाना ही इस उपन्यास के विषय का विस्तार योग है। सारी कथा का ढाचा व्यक्ति और समाज के संबंध की प्रतीकात्मक योजना पर खड़ा किया गया है।

स्वच्छ एवं स्वस्थ समाज निर्माणहित कथाकार ने समाज के अस्वस्थ वातावरण का चित्र विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है जिसमें स्वेच्छाचारी व्यक्ति ही समाज कल्याण और देशहित की आड़ लेकर विभिन्न राजनैतिक दलों तथा समाजोद्धारक संस्थाओं की छत्रछाया में निर्द्वन्द्व अपनी उछल-कूद में रत रहते हैं। बूद और समुद्र में लखनऊ के नागरिक जीवन को कथा का आधार बनाया अवश्य गया है पर यह तो कथा का टिकान का स्थल मात्र है अन्यथा लखनऊ की यह कथा देश के किसी भी नगर की वास्तविक कथा कही जा सकती है इसमें प्रस्तुत राजनैतिक सामाजिक अथवा सांस्कृतिक हलचल देश व्यापी नगरों की हलचल है। उपन्यासकार ने बटवारे के पश्चात् स्वतंत्र भारत के वर्तमान समाज में से कुछ विशिष्ट नागरिक पात्रों को सजाकर उनसे संबंधित विविध घटना चक्रों एवं कार्य-व्यापारों के माध्यम से कथा-सूत्र को घुमाया है। प्रत्येक घटना के मूल में समाज की यथार्थ दशा चित्रित करने का ध्येय स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण उपन्यास में प्रसंगों की भरमार है और कथानक भीना पड़ गया है, उसमें शृंखला टूटी-सी, बिखरी

३ 'बूद और समुद्र'—पृष्ठ ३८८-८९
४ वही—पृष्ठ ६०३

सी, साईं-सी दृष्टिगोचर होती है। महिपाल-कल्याणी शीला कथा सज्जन चित्रा वनकन्या कथा की तुलना म वर्मा-तारा उपकथा कभी विरहन रोमांस कथा यहीं सी लुटी-सी खाई-सी प्रतीत होती है इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि उपन्यासकार का ध्येय एक शृंखला बद्ध कथा प्रधान उपन्यास लिखना नहीं रहा अपितु भारतीय समाज के नागरिक जीवन का प्रतीकात्मक चित्र प्रस्तुत करना रहा है। इस मत की पुष्टिहित हिन्दी उपन्यास के एक प्रसिद्ध आलोचक का कथन प्रस्तुत है— वास्तव म यह विभिन्न मानसिक एव सामाजिक अवस्था के स्त्री-पुरुषों के बोल चाल, रहन सहन, आचार-व्यवहार तथा कार्यकलाप आदि के वर्णन को लक्ष्य बना कर लिखा गया है इस बृहद् उपन्यास म कहानी का अन्त अतिसूक्ष्म है, पात्रों की बहुलता है और वातावरण चित्रण पर भी अधिक आग्रह है। एक विस्तृत पट पर विभिन्न परिपार्श्व एव दृष्टिकोण से देखे गए अनगिनत रूप चित्रों को एकत्र कर एक चित्र प्रदर्शनी सी उपस्थित कर दी गई है।[५]

महिपाल-कल्याणी शीला त्रयी की तुलना म सज्जन चित्रा वनकन्या त्रयी की कथा कुछ क्रमिक विकास तथा उपन्यासकार की अधिक सहानुभूति पाने पर भी कथा शिल्प की दृष्टि से आधिकारिक कथा नहीं कही जा सकती। वास्तव म 'बूद और समुद्र' म हम सगठित वस्तु विधान (Organic Plot) का अभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। घटनाओं का कलात्मक कौशल के साथ सयोजित करने के स्थान पर उपन्यासकार ने अनेक पात्रों म सबधित नाना घटनाओं को विभिन्न स्थलों पर बिखर दिया है। इस कारण कथानक सौष्ठव नष्ट प्राय हो गया है। शीला को लेकर महिपाल के जीवन म और चित्रा को लेकर सज्जन के जीवन म पर्याप्त उथल पुथल प्रस्तुत की गई हैं, किन्तु इन्हीं पात्रों के सहारे जो घटनाएं वर्णित है उनम क्रमिक विकास और समीकरण के गुण का अभाव है। इसका कारण उपन्यासकार का दृष्टिकोण है। उसने मानव जीवन के नाना चित्रों को चित्रित करने का उद्देश्य रख कर यह रचना प्रस्तुत की है। अतएव समस्त कथानक उद्देश्यमूलक बन गया है और समस्त घटनाए किसी न किसी आदर्श सिद्धान्त अथवा सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के लिए सयोजित हुई है। उपन्यास के प्रथम डेढ सौ पृष्ठों तक तो कथा-वस्तु का पता ही नहीं चलता। उपन्यास म नाना पात्र आ आकर समाज और राजनीति पर अपना अपना मत कह सुन कर विदा लेते, फिर आते और जाते दिखाये गए हैं। इन डेढ सौ पृष्ठों म एक छोटी-सी घटना मास्टर जगदम्बा सहाय की विधवा भतीज बहू की आत्महत्या की चर्चा ही बढा चढा कर वर्णन की गई है। इस आत्महत्या के प्रसग को लेकर प्रसिद्ध पात्र सज्जन से लेकर राधेश्याम जैसे अप्रसिद्ध पात्र भी अपना मत प्रदर्शित करते हैं। वे इस घटना का विवरण न देकर परिचय भर दे उस सामाजिक समस्या का सविस्तार वर्णन करते है जिसके अन्तर्गत पुरुष वर्ग की बर्बरता, व्यभिचार वृत्ति धार्मिक आडम्बर और आर्थिक शोषण प्रतीक बन कर सामने आए है। एक पात्र के मतानुसार पुरुष वर्ग इसी ताक म लगा रहता है कि मुहल्ले म कब कोई विधवा हो और पत्र व्यवहार प्रेमालाप शुरू कर।[६]

५ डा० शिवनारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ ३७५

६ 'बूद और समुद्र'—पृष्ठ ६३

बूंद और समुद्र प्रतीकात्मक शिल्प विधि का उपयोग है अतएव इसके अधि
काश पात्र प्रतीक हैं। ये अवश्य ही किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। ताई
को ही लें। यह भारतीय समाज में नारी वर्ग के उस उत्पीडित विवश और हीन समझे
जाने वाले समाज का प्रतिनिधित्व कर रही है जिसे शताब्दियों से पुरुष ने सामाजिक,
आर्थिक और मानसिक रूप से त्रस्त रखकर हीनता की भावना में जकड लिया है पागल
बना दिया है या आत्मसात कर लिया है। कहने को ताई भी नीम पागल है, जिसका अधि
काश जीवन बडबडाहट और जादू-टोना के हेर फेर में व्यतीत हुआ है। यह बडबडाहट
क्या ? इस क्या का उत्तर उसके घना मानी समझे जाने वाले पति राजा बहादुर द्वारका
दास अग्रवाल है जो उसके यौवन का रस चूसकर उसकी एक लडकी की मृत्यु के पश्चात्
उसे निःसतान रहने के दण्ड स्वरूप उपेक्षित रूप में अपनी एक हवेली में छोड देते है।
वहा का एकान्त पति की उपेक्षा जीवन की निराशा उसके जीवन में चिडचिडाहट बड
बडाहट और एक अजीब सा बौखलाहट भर देते है। समाज से उसे घृणा है और अपनी
सौत से ईर्ष्या। ताई से सम्बन्धित बडबडाहट का चित्रण उपन्यासकार ने प्रतीकात्मक शिल्प
विधि के साथ प्रस्तुत किया है— अगर ताई की जीवन भर की बडबडाहट का रस्सा बटा
जाए तो हनुमान जी अपनी दुम का नाप कर थक जाएंगे मगर दुम से रस्सा बडा
निकलेगा। ताई को सारी दुनिया से शिकायत है हरदम शिकायत है फिर बडबडाहट
का अन्त क्योंकर हो? भम्मन बजाज की छत पर जोर जोर से हसती हुई लडकिया
बहुएं ताई की सात जन्म की दुश्मन हैं—निगोडिया के गले दाई ने बास से खोले थे जब
देखो तब हा हा हा। फिर मुडीरे पर ताई के निगोडे खसम सा कौआ बैठकर बीट
कर गया फिर आस पास के रेडियो खुल गए— हम तुम से मुहब्बत करके सनम भाड
में जाए निगोडे सनम गुनो पुरतानी की छत पर होने वाली सास बहू की काव काव
से कान पक गए— राड की जबान बुढापे में भी कतर कतर-कतर। ऊह लाल दलाल
का लडका अपनी छत पर चिल्ला उठा— अरे साबुन दे नई नई चुन्नी? हमारा पानी
ठडा हुआ जाए रहा हैगा।— हाय हाय। कइसे चिल्लाय है निगोडे डाकू जैसे इस
प्रकार के अनेक वर्णन शब्द चित्र हैं जो ताई की चारित्रिक दशा के साथ साथ समाज की
यथार्थ अवस्था का चित्र भी प्रस्तुत करते हैं—और फिर ताई के चरित्र का एक पक्ष ही
कथाकार ने चित्रित नहीं किया है अपितु उसके मन का कोमल पक्ष भी उद्घाटित कर
दिया है। मन एक आलोचक ने उसे हिंसा और मानव प्रेम का अद्भुत मिश्रण कहा है।[८]
वयोवृद्धा ताई जब बिल्ली के तीन बच्चों को बाहर फेकने जाती है तभी उसके
हृदय के कोमल तन्तु झनझना उठते हैं उसे अपनी सूनी गोद और मृत कन्या की स्मृति
कचोट डालती है और वह तीनो बच्चो की मा का वात्सल्य देकर पालने लगती है यहा
तक नहीं वही तारा जिसके गर्भ को मिटाने के लिए वह जादू टोना करती है समय आने
पर स्वय उसके घर जाकर उसकी सेवा कर सुगमता से उस बच्चा जनने में परम सहायक

---

७ बूद और समुद्र —पृष्ठ ४

८ डा० रामविलास शर्मा आस्था और सौन्दर्य—पृष्ठ १३६

सिद्ध होती है और उसका छटी की दावत भा बडी धूम धाम स करता है, इतना होन पर भी उपन्यासकार न नाई क रौद्र रूप का वणन ही विस्तार के साथ किया है। उसके बाह्य आपे का चित्र अकित करते हुए वह लिखता है—'कसाईखाने के पास से उडती हुई दुग ध की तरह इसानी भाषा और भाव जिबह होकर ताई के मुख म चमक रहे थे। जितना ही उनका दम फूलता था, उतना ही उसका कस वन भी बढता जाता था। ताई की अपरा जिता हिंसा लठिया पटक-पटक गालिया फटकार रही थी। टिल्लु से नीच ही भागत बना। ताई जब गुस्से म पूरी तरह मदहोश हो जाती है तब उनकी आखो से सचमुच चिगारिया छूटने लगता है। मुह म भाग फिचकुर आखो म चिगारिया, चेहर की एक एक झुर्री तल वार की तरह खिची हुई कच्चे पक्के बिखरे बाल लठिया उठाए लपट की तरफ हर तरफ बढती हुई—'ताई का यह परम रूप अच्छे अच्छा के औसान खता कर दता है।"[१]

'बूद और समुद्र' म स्त्री पात्रा का चरित्र चित्रण पुरुष पात्रा की तुलना म अधिक सशक्त तथा विस्तार के साथ चित्रित किया गया है। ताई का चरित्र तो आरम्भ से लेकर अन्त तक सारे उपन्यास पर छाया हा है किन्तु वनकन्या का चरित्र भी कम महत्त्वपूण नही है। वनकन्या एक प्रतीक पात्र है जो भारत के नगर की मध्यवर्गीय शिक्षित एव विद्राही नारी का प्रतिनिधित्व करती है। लखनऊ के एक मध्यवर्गीय मास्टर जगदम्बा सहाय की यह लडकी पुरुष-वग की बबरता क प्रति प्रतिकार की भावना लिए उपन्यास म प्रवेश करती है। इसके पिता इसकी भाभी पर बलात्कार करके सुखी रहे यह इसे सहन नहीं नारी केवल भोग की सामग्री है यह मत भी इसे मान्य नही। पुरुष वर्गीय उपक्षा बबरता एव शोषण का प्रतिकार लेने के लिए वह आदर्शवादी सज्जन का आश्रय लेती है। किन्तु शुरू शुरू म उसे उसके प्रति भी विश्वास आदर, शका भय, चिन्ता आदि की मिली-जुली भावनाओ न घेरकर खदेडा है। वनकन्या के स्वभाव तथा उसम विद्यमान इन भावनाओ का चित्रण उपन्यासकार द्वारा किया गया है। अन इस वणनात्मक चरित्र विधि के अन्तगत रखेंग। वनकन्या के चरित्र का सविस्तार वणन करते हुए उपन्यासकार लिखता है—"कन्या अहकारिणी है। नतिकता की शक्ति उसके अहकार का पोषण करती है। घर के गन्दे वातावरण की प्रतिक्रिया म उसका बडा भाई और वह आतम नज स लिप्त होकर बालिग हुए। अपने विवाह की ट्रेजेडी के बाद उसके बडे भाई तो जिन्दगी स जूझते जूझत थक कर बौरा गए कन्या न उनके दिमागी असतुलन स भी नसीहत लेकर अपनी नतिकता को अधिक कसा। हा इतना प्रभाव अवश्य पडा कि उसका आन्तरिक विद्रोह अधिक मुखर हो उठा। वह खुले शब्दा म अपन घर क गुरुजना के कुकृत्यो की उनके मुह पर निन्दा करने लगी। अपनी एक प्रगतिशाली सहपाठिनी क उत्साह स उसका लगाव इण्डियन पीपुल्स थियटर कम्युनिस्ट पार्टी के लोगा और माक्सवाद स भी होन लगा। उसकी विद्रोहात्मक वत्ति को इसस बल मिला। परन्तु अपने गुरु और बड भाई की छत्र छाया म उसके साथ ही साथ बालिग होन वाली आस्तिकता विद्राह करन पर भी उसके मन स न गई। इस तरह जहा तक मन के विद्राह को सतोष देने की बात थी, वहा तक तो वह प्रगतिशील

---

१ बूद और समुद्र—पष्ठ १५६

जीवन की तरह ही होता है। उपन्यास म नए फशन और नई शिक्षा से दीक्षित पात्रा, हिस्टीरिया से पीडित युवतियो की कोई कमी नही है किन्तु उपन्यासकार न उन्ह प्रतीक रूप म सयोजित करके इनके रेखा चित्रा का समृद्ध रूप म अकित किया है वह एक विश्लेषणात्मक उपन्यासकार बनकर इनकी काम कुठाओ का विश्लेषण करन नही बठ गया अपितु प्रतीकात्मक कथाकार बनकर शब्द चित्र देता है।

प्रस्तुत उपन्यास के नारी पात्र शक्तिमान प्रतिभासम्पन्न आस्था के प्रतीक हैं किन्तु पुरुष पात्र आस्थाहीन है। पुरुष पात्रा म सब से अधिक प्रभावशाली पात्र महिपाल है, किन्तु उसकी आस्था डावाडोल है। अपनी एक निष्ठ पत्नी कल्याणी से वह असतुष्ट है और समाजभीरु होने के कारण डॉ० शीला से अनतिक सबध रखने हुए भी उससे दूर भागता है। जिस सामाजिक व्यवस्था म वह रहता है उसी के प्रति क्षुब्ध है। उसे वह महाजनी सभ्यता की सज्ञा देता है जो व्यक्ति को असामाजिक, शक्तिमान और स्वार्थी बनाती हुई उसके स्वाभाविक विकास को रुद्ध कर डालती है। दुर्बल मन महिपाल आधुनिक कलाकार का ही प्रतिनिधि नहा है उस वतमान युग के व्यक्ति का घुटन का प्रतीक कहा जा सकता है। आज की विषम परिस्थितियो म व्यक्ति बूद से भी गया बीता है। बूद सागर म मिल कर सागरमय तो हो जाती है किन्तु आज के व्यक्ति को न तो समाज म मिलन की सुविधा है न अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापित करन की। जीवन की नवीनतम सुविधाए मिलने पर भी महिपाल की अन्तश्चेतना पीडित है आहत है। इतने मित्रा मगियो नात दारो के रहते भी वह एकाकी है। अपने आहत किन्तु दुर्दम अह को रक्षित रखने म अपन सिद्धान्तो और विश्वासो का गला घोट डालता है। इतने पर भी सतुष्ट न होकर उसका अह ईर्ष्या म परिणत होता है। सज्जन के प्रति निगूढ ईर्ष्या उसकी अनास्था दिग्भ्रान्ति एव विवशता की प्रतीक है। उपन्यासकार ने इसका अन्त आत्महत्या कराकर किया है। यह आत्महत्या समस्या का कोई समाधान न होकर जीवन से पलायन है। महिपाल का जीवन अभाव की लम्बी कहानी है। रूपरत्न के सम्पर्क म आकर आर्थिक रूप से सम्पन्न होने पर भी वह मानसिक रूप से जजर है। आन्तरिक और बहिर्मुखी सघर्ष उसके धय सयम और उदात्त गुणो पर कुठारा जमाकर उसे सशय अविश्वास और अनास्था के पथ पर एकाकी छोड देन हैं। महिपाल जन जीवन के सागर म मिली बूद न होकर बालू पर गिर कर झुलस गई एक ऐसी ओस बूद है जिस पर सज्जन ही नही, उपन्यास का प्रत्यक पात्र मुग्ध है।

और सज्जन! वह भी आरम्भ म अनास्था का प्रतीक है। महिपाल का चरित्र उसे विशेष प्रभावित करता है उसकी आत्महत्या पर उस लगता है मानो देश ही आत्म हत्या कर रहा हो। वह मानता है कि यदि महिपाल जसी परिस्थितियो म वह रहा होता तो अवश्य आत्महत्या कर लेता सज्जन सम्पन्न होने पर भी विपन्न है। उसम कमठता का अभाव है। व्यक्तिगत श्रम स वह सत्व बचता रहा है किन्तु महिपाल की मृत्यु उसके ज्ञान चक्षु खोलती है। वह और कन्या घर घर जाकर लोगो की समस्याओ की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त कर उसके समाधान के लिए जुट जाते हैं। उसे महिपाल की बात याद आती है जो जीवन को आस्थावान बनाने वाली और प्रतीकात्मक हैं— व्यक्ति केवल

अपने कमरे में रहता, सोचता और कर्म करता है। ऐसा लगता है जैसे हर व्यक्ति एक नए द्वीप में अकेला बसता है। क्या यह मनुष्य की प्राकृतिक स्थिति है?—नहीं। मनुष्य को आत्मविश्वास जगाना चाहिए, उसके भीतर में आस्था जगानी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है, विचारों के भेद से संघर्ष दृढ़ होता है और उससे उत्तरोत्तर उनका समन्वयात्मक विकास भी। पर जरूरी यह है कि सुख दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट संबंध बना रहे—जैसे बूंद जुड़ी रहती है—लहर से लहर। लहरों से समुद्र बनता है—इस तरह बूंद में समुद्र समाया है।[12] लेखक कहता है कि महिपाल के लिए यह विचार विचार भर रहा और उसका अपना जीवन के अन्तिम सोपान में इस विचार की बजाय असमंजसमय हो गया। बूंद समुद्रमय हो गई। महिपाल के लिए बूंद बूंद ही बनी रही और मिट गई। उसका अपने में आस्था का प्रतीक बन जाता है।

मनोविश्लेषण शिल्प विधि के उपयोग में कथाकार जिस समाज में रहता है उसका रूप चित्र उतारने का प्रयास किया करता है। बूंद और समुद्र में इस प्रकार का प्रयोग हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों की होड़ पूर, चुनाव की तैयारियां, पोस्टरबाजी किसी भी घटना को राजनीतिक रूप देने के प्रयासों का कच्चा चिट्ठा हम पढ़ने को मिलता है। उपन्यासकार के शब्दों में गली गली वोट लो। वोट दो की पुकार भारत के प्रथम चुनाव समय की स्थिति उस बुखार की तरह है जो जूड़ी की बढ़ती हुई कपकपी की तरह रोगी के निकट पहुंचता है। विभिन्न दलों के निशान उनके जलूस, सारी जनता में हो-हल्ला, झूठ प्रलोभन और निजी स्वार्थों की पूर्ति ही इनका लक्ष्य होता है। वोट लेने और देने के अतिरिक्त राजनीति का अन्य कोई महत्त्व नहीं, और भारत की आधी के लगभग आबादी (स्त्री वर्ग) वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में इस अधिकार का सदुपयोग करने में असमर्थ है इसका कारण सामाजिक विषमता का साम्राज्य है। इस विषमता पर दृष्टिपात करते हुए वनकन्या सोचती है— नारी होना आज की सामाजिक स्थिति में अभिशाप है। स्त्री और पुरुष आम तौर पर एक दूसरे की इज्जत नहीं करते हैं। स्त्री आम तौर पर आर्थिक दृष्टि से पुरुष की आश्रिता है, उसका व्यक्तित्व स्वतंत्र नहीं। इस देश की स्त्रियां सदा से यह दुख भार उठाती आई हैं। सीता को भी सहना पड़ा था, द्रौपदी को भी।[13] नारी विषयक यह दृष्टिकोण केवल वनकन्या का ही नहीं है महिपाल सज्जन कर्नल मण्डली के भी यही विचार हैं। महिपाल अपने लेखों, पुस्तकों और भाषणों तक में नारी जीवन की दयनीय दशा के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है। उसे इस बात का क्षोभ है कि भारतीय शास्त्रों में स्त्री प्रथम स्थान पाकर भी भारतीय समाज और व्यवहार में वह दासी से भी गया बीता जीवन व्यतीत करती है। इस दृष्टि से लेखक ने यथार्थवादी और वस्तुपरक दृष्टिकोण अपनाया है।

'बूंद और समुद्र' में समाज संबंधी विचारों एवं समस्याओं का वाहक उपन्यास

---

१२ बूंद और समुद्र—पृष्ठ ६०६
१३ वही—पृष्ठ ४३७

कार नही है, अपितु उपन्यास के पात्र है। राजनीति व्यक्ति और समूह, धर्म, समाज अर्थ नीति आदि पर महिपाल सज्जन और वनकन्या चुन कर वार्ता करते हैं भाषण देते हैं और लेख लिखते हैं। महिपाल अपनी पुस्तका द्वारा, सज्जन अपने तर्कों द्वारा और वन कन्या छुट-पुट वार्ताओ तथा पैम्फलेट द्वारा स्त्री समाज प्रेम और विवाह आदि समस्याओ पर अपने विचार अभिव्यक्त करते देखे गए हैं। विभिन्न पात्रो द्वारा कह गए इन समस्याओ स सबधित कुछ विचार नाचे दिए जाते हैं—'य विधवाए तो सच पूछो प्रामा स भी ज्यादा बुरी होती है। प्राम बाजार म कोठ पर बठती है तो सब जानते तो हैं कि रडी है, और य लोग तो भली बनकर सत्तर घर घालती हैं डायने।'[१४] मैं तो इसी नतीजे पर पहुची हू कि शादी का रिवाज इमाना म धोखा घडी भूठ और अत्याचारो को जगाता है। इस हटा दीजिए औरतो को आर्थिक रूप से आजाद कर दीजिए फिर देखिए, औरत मद के रिश्ते कितने जल्दी नामल हो जाएगे।[१५] स्त्री पुरुष जीवन म सिफ एक ही बार एक दूसरे को पाते हैं मेरा इस बात म दृढ विश्वास है। और पाने के लिए उन्ह आपस म अपने आपको अनेक कसौटियो पर कसना होता है। यह जिम्मेदारी का नाता है—रईसो, कलाकारो, मनचलो के दिलबहलाव का खेल नही।[१६] 'प्रेम थ्योरी नही, प्रक्टिस है, जितना ज्यादा प्यार करो, रिश्ता उतना ही गहरा पडता है और रिश्ता जितना ही पुराना होता है उसम रोज उतनी ही नई ताजगी आती है।[१७] 'पति-पत्नी के रूप म स्त्री-पुरुष की सहज जोडी देश-काल से परे है। वह नित्य है उसका अन्त नही।[१८] कन्या की एक धारणा यह भी निश्चित हो गई थी कि कोई कितना ही अधिक सभ्य और सुसस्कृत क्यो न हो जाए पर स्त्री के प्रति पुरुष मात्र का व्यवहार एक जगह बबरता भरा होता ही है।

विवाह नामक अति सशक्त सस्था को बडे पुराने जमाने स आज तक स्त्री पुरुष के अनतिक नातों ने अनगिनत आघात पहुचाए है। फिर भी यह सच है कि विवाह की प्रथा आज तक किसी के द्वारा भी तोड न टूट सकी। विवाह की प्रथा सतीत्व सिद्धान्त की जननी है। और सतीत्व का आदश सदा एकागी रूप से ही समाज पर लागू हुआ है। यह एकागी सतीत्व ही विवाह प्रथा को अधिकाश म अर्थहीन और लकवा पीडित-सा लुज बताया है।[१९]

कुटुम्ब व्यक्तिगत प्रेम स बडी वस्तु है। ववाहिक कुटुम्ब समाज को सुसबद्ध बनाए रखने के लिए एक शक्तिशाली परम्परा है, व्यक्तिगत प्रम से समाज क बधन ढीे पड जाएग। कुटुम्ब की भावना नष्ट हो जाएगी।"

१४ बूद और समुद्र—पृष्ठ ६३
१५ वही—पृष्ठ ६६
१६ वही—पृष्ठ २१२
१७ वही—पृष्ठ २४८
१८ वही—पृष्ठ २८४
१६ वही—पृष्ठ ५०२
२० वही—पृष्ठ ५१८

'बूद और समुद्र' के शिल्प सबध म एक आलोचक लिखते है—'जहा तक इस शिल्प की नूतनता का प्रश्न है इसम हम तीन बातें मिलती हैं—(१) चेतना प्रवाह (Stream of Consciousness) (२) कथाक्रम और काल क्रम म उलटफेर (Time shift) (३) और भाषा सबधी नूतनता।" "प्रस्तुत प्रबन्ध म नागर मतानुसार इस रचना म चेतना प्रवाह (Stream of Consciousness) द्वारा कथा वर्णित नहीं हुई अपितु प्रतीकात्मक शिल्प विधि को अपनाया गया है। चेतना प्रवाह के जो उदाहरण विद्वान आलोचक ने दिए हैं वे भी तक सगत नही है। नागर चेतना के अन्तसूत्रो को प्रतीको द्वारा पकडते हैं। उपन्यास का प्रत्येक पात्र आधुनिक जीवन और चेतना का प्रतीक बनकर सामने आता है। विद्वान लेखक इस उपन्यास के २७ वें परिच्छेद को चेतना प्रवाह विधि का उदाहरण बताते हैं।" यह ठीक है कि इस अध्याय म महिपाल के मस्तिष्क म नाना विचारधाराए कौंध जाती हैं जिनम उसका वयक्तिक जीवन, पारिवारिक हलचल, सास्कृतिक परम्परा महाजनी सभ्यता की चर्चा हुई है, किन्तु इतने भर से समस्त उपन्यास को चेतना प्रवाह विधि की रचना कह डालना सत्यपरक नही है। मैं समझता हू कि इस अध्याय म एक पात्र की अन्तश्चेतना का प्रतीकात्मक निर्वाह हुआ है। शेष उपन्यास म पात्रो की प्रतीकात्मकता कथा का रूपकात्मक निर्वाह एव वातावरण म सकेत ही प्रमुख रूप स सामने आए हैं। कथाक्रम म उलटफेर कोई स्वतत्र शिल्प विधि नही है। भाषा के नूतन प्रयोग से भी उपन्यास म शिल्पगत नवीनता नहीं आ जाती। यदि ऐसा होता तो समस्त आचलिक साहित्य नूतन शिल्प विधि के अन्तगत आ जाता, किन्तु ऐसा नही हुआ और न होने की सभावना ही है। अत हम इस रचना को प्रतीकात्मक शिल्प विधि की रचना कहेगे। यह रचना प्रखर अनुभूति और सूक्ष्म कलात्मकता के कारण हिन्दी के श्रेष्ठतम उपन्यासो की एक कडी मानी जाएगी।

डा० धर्मवीर भारती

भारती हिन्दी जगत म नई धारा के कवि के रूप म पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके है। इधर इनके दो उपन्यास 'सूरज का सातवा घोडा तथा गुनाहो का देवता' क्रमश प्रतीकात्मक एव नाटकीय शिल्प विधि की रचनाए प्रकाशित हुई। इन दोनो का उपन्यास साहित्य को योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 'सूरज का सातवा घोडा तो अपने नितान्त नूतन शिल्प प्रयोग के कारण बहुत लम्बे समय तक हिन्दी पाठको और आलोचको की चर्चा परिचर्चा का विषय बना। नवीन रूपाकार के स्तर की पहचान ने डा० भारती की ख्याति म चार चाद लगाए। अनेक कथाओ का एक वाचक (Narrator) माणिक मुल्ला रोमाटिक प्रेम की नई दिशाओ और नई सभावनाओ की ओर सकेतात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। स्त्री-पुरुष सबध की स्वाभाविकता, इनम प्रस्तुत आर्थिक, सामाजिक

---

२१ डा० विश्वामित्र 'बूद और समुद्र' एक अनुशीलन समालोचक' सितम्बर, ५६—पष्ठ २४

२२ वही—पष्ठ २५

और नैतिक प्रश्नावली आधुनिक व्यक्ति के सामने नई प्रश्नावली प्रस्तुत करते हैं। उपन्यासकार इस प्रश्नावली को नए परिवेश में नया आयाम देने में पूर्ण सफल हुआ है।

सूरज का सातवा घोडा—१९५२

सूरज का सातवा घोडा प्रतीकात्मक शिल्प विधि की रचना है। यह एक लघु उपन्यास है जिसमें सात दिनों में सात कथाएं उपन्यास के ही एक प्रसिद्ध पात्र माणिक मुल्ला के द्वारा ही कहलाई गई हैं—ये सात कहानियां अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हुई भी एक अविच्छिन्न लघु उपन्यास की सामग्री जुटाती हैं। इस उपन्यास की भूमिका में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यह एक नये ढंग का लघु उपन्यास है—"सबसे पहली बात है उसकी गठन, बहुत सीधी, बहुत सादी पुराने ढंग की—बहुत पुराने, जैसा आप बचपन से जानते हैं—*अलफ-लैला वाला ढंग, पचन्त्र वाला ढंग बार्कैच्छिया वाला ढंग* जिसमें रोज किस्सागोई की मजलिस जुटती है फिर कहानी में से कहानी निकलती है मौलिकता अभूतपूर्व, पूर्ण शृंखला विहीन नयेपन में नहीं पुराने में नई जान डालने में है (और कभी पुरानी जान को नई काया देने में भी) और भारती ने इस ऊपर से पुराने जान पडने वाले ढंग को भी बिल्कुल नया और हिन्दी में अनूठा उपयोग किया है। और वह केवल प्रयोग कौतुक के लिए नहीं इसलिए कि वह जो कहना चाहते हैं, उसके लिए यह उपयुक्त ढंग है।"[1]

प्रस्तुत उपन्यास का यह नवीन कथा प्रयोग पूर्णरूपेण प्रतीकात्मक है। इसका शीर्षक तो प्रतीकात्मक है ही, इस शीर्षक के साथ-साथ कथा निर्वाह भी सांकेतिक है। कथा चक्र में दिनों की संख्या सात रखने का प्रमुख कारण सूरज के सात घोडे है। सूरज का सातवा घोडा ही माणिक मुल्ला का स्वप्न स्रष्टा है। ये स्वप्न वास्तव में प्रतीकात्मक हैं। माणिक मुल्ला के अर्द्धसुप्त मन में असम्बद्ध स्वप्न विचारों का क्रम बधा है। स्वर्ग का फाटक, फाटक पर रामधन, अन्दर जमुना श्वेत वसना और शांत ये सब माणिक मुल्ला के जागृत मन की अर्जित अनुभूतियों के प्रतिबिम्ब हैं। श्वेत वसना नारी का स्वप्न उसके वैधव्य का परिचायक है। तन्ना के कटे पाव और टांगा पर आर० एम० एस०के रजिस्टर उसके कारुणिक जीवन और विषम परिस्थितियों के स्पष्ट संकेत है। फाटक का पुनः खुलना तन्ना का बिन पांव अन्दर जाना और बिस्तुइया की कटी पूछ की तरह छटपटाना, उसकी मृत्युसूचक बातें हैं। डाकगाडी का छूट जाना, जीवन वंचना का प्रतीक है। वास्तव में स्वप्न झूठे नहीं हुआ करते। उनके पीछे एक इतिहास हुआ करता है जीवन अनुभूति होता है, भविष्य का संकेत हुआ करता है। इस विषय में आलोचक का यह कथन सत्य परक है— यह एक आत्म स्वीकृति है। दमित शक्ति का पुनर्जागरण तथा अचेतन मन में छिपे सत्य का निरावरण है। स्वप्न वस्तुतः भावात्मक संघर्ष का चित्रात्मक प्रतीक होता है जो स्वप्नवेता के अचेतन से एक सुझाव देता है कि वह इस संघर्ष से किस प्रकार

---

१ अज्ञेय सूरज का सातवां घोडा—भूमिका—पृष्ठ ११ १२

जिनमें।[1] मुन्ना के स्वप्न की मन्तव्य के आधार पर यह कथन सार्थक सिद्ध हो जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास के पात्र बहुत भी नहीं हैं। केवल तीन स्मरणीय नारी पात्र गुंथे गए हैं—जमुना, लिली और सती तथा पुरुष पात्रों में तन्ना और स्वयं माणिक मुल्ला (जो कथा वाचक भी है) पाठक के मन पर अमिट रेखा खींचते हैं। माणिक मुल्ला जमुना कथा में भिन्न भिन्न भय आकांक्षा और निराशा आज के निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की निराशा, घुटन और कुण्ठा के प्रतीक हैं। माणिक की कायरता और भावुकता मध्यवर्गीय युवक वर्ग की जानी-पहचानी बातें हैं जिनमें साहस, कर्मण्यता और दृढ़ता का अभाव है। उसे रंगीन स्वप्न तो पसन्द आते हैं किन्तु प्रेम पथ की बाधाएँ प्रतिरोध के सामने भूख में से निकल कर सांप और बिच्छू की भांति कचोटने लगते हैं जिनसे [illegible] उस [illegible] छूट जाता है। कारण यह कि समाज की विषम परिस्थितियाँ और वातावरण आज के युवक को उन्मुक्त रूप से सोचने नहीं देते। प्रेम का हल्का सा भाव हुआ आर्थिक विषमता के यथार्थ परिवेश में वह इतना घुट जाता है कि एक दिन पूर्णतया कुण्ठित हो जाता है। उपन्यासकार आज के मध्यवर्गीय व्यक्ति के हृदय में कहीं न कहीं माणिक मुल्ला और देवदास का अंश पाता है। उसका पात्र श्याम [illegible] की [illegible] कथा सुनकर उस पर अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करता हुआ कहता है — "नहीं मैं जमुना को नहीं जानता लेकिन आज ९० प्रतिशत लड़कियाँ जमुना की ही परिस्थितियों में हैं।"[2] एक पात्र प्रकाश के मतानुसार जमुना निम्न मध्यवर्ग की एक भयानक समस्या है मन से भावुक स्वप्न द्रष्टा और आर्थिक रूप से खोखला। वह समाज की नित प्रति क्षण खोखली हो रही व्यवस्था की प्रतीक है। उपन्यास में एक प्रश्नचिह्न बन गया है—अनैतिकता का कारण वह है या सामाजिक व्यवस्था?

नैतिक विकृति की समस्या का समाधान भी कथाकार ने प्रतीकात्मक ढंग से किया है। अन्तिम कथा में माणिक मुल्ला कहते हैं—सूरज के घोड़े वे हैं जो स्वप्न भंजन हैं सूर्य को आगे बढ़ाते हैं। उनका पूरा प्रवचन उदाहरणत प्रस्तुत है— देखो ये कहानियाँ वास्तव में प्रेम नहीं वरन् उस जिन्दगी का चित्रण करती हैं जिसे आज का निम्न मध्यवर्ग जी रहा है। उसमें प्रेम से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष नैतिक विशृंखलता, और इसीलिए इतना अनाचार निराशा कटुता और अंधेरा मध्यवर्ग पर छा गया है। पर कोई न कोई ऐसी चीज है जिसने हमेशा अंधेरा चीरकर आगे

---

1 It is a Confession a resurrection of the suppressed and an out Cropping of the hidden truth in our unconscious mind A dream is in Fact a pictorial representation of the emotional Conflict of the dreamer with a Suggestion from the uuconscious mind as to how the Conflict may be dealt with

The Psychology of Dream Interpretation by Dr D Mehto
From Illustrated weekly—Dated 4 3 62

२ डा० धर्मवीर भारती सूरज का सातवां घोड़ा— पृष्ठ २७

बदने समाज व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुन स्थापित करने की प्ररणा और ताकत दी है, चाहे उसे आत्मा कह लो चाहे कुछ और। और विश्वास साहस, सत्य के प्रति निष्ठा, उस प्रकाशवाही आत्मा को उसी तरह आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े सूर्य को आगे बढ़ा ले चलते है।[१] कितनी भव्यता के साथ प्रतीकात्मक शिल्प विधि द्वारा कथा का अवसान किया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास म विचारो की बहुलता है। प्रत्येक कथा के पश्चात दिया गया अनध्याय या विराम तो विचार सामग्री जुटाता ही है किन्तु कथा के मध्य म विद्यमान माणिक मुल्ला का प्रवचन भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। वह चौथी कथा म प्रेम के विषय म अपनी मान्यता प्रस्तुत करता है। उसे रूढ़ियों और सामाजिक मान्यताओं के बन्धन अत्यधिक कम हुए प्रतीत होते हैं। साहस और दृढ़ता का अभाव स्वस्थ सामाजिकता का अवरोधक लगता है। कथा प्रसग से परे हटकर बीच बीच म मुल्ला कहानी की टेक्नीक पर भी अपने विचार अभिव्यक्त करता है और फ्लोबेयर तथा मोपासा को सफल शिल्पी बताता है। शिल्प की दृष्टि से यह प्रवचन अप्रासंगिक और अस्वाभाविक है। टेक्नीक की बात करते हुए स्वयं सीधे मार्ग से भटक जाना भारती सदृश महान कलाकार के लिए शोभा देनेवाली बात नही है। उपन्यास म सारी कथा पात्र द्वारा कहलाई गई है केवल माणिक मुल्ला रोमास गाथा लेखक द्वारा वर्णित हुई है।

कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु'

कृष्णचन्द्र शर्मा हिन्दी उपन्यास जगत म भिक्खु के नाम से प्रसिद्ध है। रूप शिल्प तथा विषय-वस्तु के नवीन प्रयोग के लिए आपने विशेष ख्याति अर्जित की है। इनके नवीन रूप शिल्प पर मोहित हो जब मैं इनसे मिलने गया तो उपन्यास विषयक चर्चा आरम्भ होते ही बोले— आप पहले आलोचक हैं जिनसे प्रशसा पा रहा हूँ—अन्यथा आलोचकों द्वारा मेरी कृतियो के साथ न्याय नही हुआ।" मैंने प्रश्न किया— आप लिखते क्यों है? अत्यन्त सहज बनते हुए उत्तर दिया—'आत्म-तुष्टि के लिए लिखकर आत्म अर्पण करता हूँ। मेरे शिल्प सबधी किए गए प्रश्नो का उत्तर आपने इन शब्दों म दिया—'पात्रो को स्वय भोगना चाहिए। मैं उपन्यास लिखने से पूर्व किसी योजना म जुटता ही नही। पहला सूत्र निकालिए फिर दूसरा तीसरा चौथा निकलता जाएगा। उपन्यासकार को तो लिखने से पूर्व एक मन स्थिति तयार करनी होती है। उसके सम्मुख मूल थीम स्पष्ट रहनी चाहिए। वह यदि उसे आदोलित किए रहती है तो स्वत ही उपन्यास प्रभावशाली रचा जाएगा। शिल्प न साधन है, न साध्य। वह तो आत्मानुभूति का सहज रूप है अभिव्यक्ति का सहज रूप है। मैंने कोई उपन्यास छ सप्ताह से अधिक लेकर नही लिखा। मेरे पात्र सदैव मुझे घेरे रखते हैं। मन से सदव उनमे लिप्त रहता हूँ। विश्व म जो सौन्दर्य है यदि उसे सही परिप्रेक्ष्य म सजोया जाए तो उसकी बहुत-सी समस्याएं उपन्यास द्वारा हल हो सकती हैं।[१]

३ सूरज का सातवां घोडा—पृष्ठ १२५ २६

१ डा० प्रेम भटनागर भिक्खु भेंट-वार्ता दिनाक २५ ५ ६८

चना का साधक करते है। तमोगुण का प्रतीक रामचरण सब से पहिले कथा सूत्र का सचालन करता है। उपन्यासकार परोक्ष म चला गया है। उसने उपन्यास म दार्शनिकता का स्रोत ही उडेल दिया है पर स्वय अनुपस्थित रह कर, कही भी उसने अपने को पाठक पर थोपन का प्रयास नही किया। न ही तथ्यो को ताडन का प्रयास किया। पहिले रामचरण, फिर रजोगुणी प्रतीक बलराज और अन्त सतोगुणी निशिनाथ कथा-सूत्र पकड कर यथाथ का उद्घाटन करते है।

'भवरजाल' के पात्र निर्विरोध रूप से कथा कहते है। कथा जो अपने आप म पूरी भी है अधूरी भी, स्वाभाविक भी है, साकेतिक भी स्थूल भी है, सूक्ष्म भी। पर कथात तक पहुचते-पहुचते पाठक पाता है कि इसम अधूरापन समाप्त हो गया है स्वाभाविकता खिल उठी है, साकेतिक प्रसग खुल गए है, स्थलता उभर आई है और सूक्ष्मता का पूर्ण अन्वेषण हो गया है। पाठक जान गया है कि स्त्री पुरुष प्रसग म रामचरण-सत्या, बलराज हर्मोश्मा, निशिनाथ-वारुणा रामास की गति विधि किस रूपकात्मकता की परिचायक है। अपने गहन अध्ययन सूक्ष्म अन्वेषण के आधार पर भिक्खु ने 'भवरजाल' का एक प्रतीक-कथा सूत्र म पिरोकर स्त्री पुरुष सबधो के अधुनातम आयामो पर जो आलोक डाला है वह प्रशसनीय है। ऊपर स शालीन दृष्टिगोचर होन वाला रामचरण सत्या निशिनाथ के काल्पनिक रोमास चित्र की परिकल्पना म अन्तद्वन्द्व की अनुभूति करते हुए अपने ही परम मित्र (निशिनाथ) की मृत्यु की कामना करता है जीवन की कितनी भारी विडम्बना है। पुलिस की गोली चलती है और निशि बच जाता है पर राम प्रसन्न होन के स्थान पर उदासीन है। यह जीवन का अट्टहास है, क्रूरता है उपक्रम है। जिसे हम चाहते है उसे ही अनचाहा करते है जिनकी स्मृति मात्र मन म मीठी पीडा उत्पन्न करने वाली होती है, उन्हे ही अनचिह्ना कर देते है। उस निशि के शब्दो म प्रेम, पुलकन, शान्ति और शुभ के स्थान पर सदेह भय और सत्रास दृष्टिगत हुआ यह उसका रजोगुणी सस्कार है जिसका विश्लेषण वह स्वय करता है— मुझे लगा कि निशि इसी तरह बोलता रहा तो मेरी आत्मा को नग्न कर देगा। उस आवरण को बनाए रखने के प्रयत्न म मैंने कहा—तुम भी निरे बुद्धि व्यवसाई हो ठीक बलराज जसे। तुम लोग अपने तर्कों से आदर्शों की हत्या करने म नही चूकते। नग्नता के उपासक।" यह आरोपण है। अपनी कायरता पशुपन और रजोगुणी चचलता को दूसरो पर डाल आप साफ बच निकलने का प्रयास। पर इसम भी रामचरण को सफलता नही मिली। निशि की मृत्यु (उसे डूबने देख मृतक समझा पर वह मरा नही) पर सुनहरी मछली (सत्या) को फसा जान उस ओर लपका, पर वह भी हाथ से निकल गई। तब क्या बचा, मात्र जीवन की विडम्बना का इतिहास—जीवन का बिखर छिछला रुला देने वाले दम घोट देने वाले जीवन का टूटा जाल—जिसस मुह छिपाने को रामचरण भूत की हवेली म आश्रय लेता है।

और बलराज[1] वह तो अपने प्रतीकमय जीवन को दार्शनिकता के आवरण म

---

४ भवरजाल—पृष्ठ ५१

दिनप्रतिदिन बढ़ता ही है— हर बाढ़ आ रही है। एक मुहावरा में दूसरा मुहावरा में बदल हाकर यह दूसरा ऐसा अधा है जिसकी मुस्कराहट मात्र मदन आगा से ऊपर उठकर और कुछ देख ही नहीं पाती। इसमें मनन है कुम्हार मानकर उसने जिन्दगी का पूर्व-प्रवाह का कौतुक मान भाग्य को उसका सूत्रधार बना लिया है। पर इनमें प्रमुख एक जिन्दगी को हलचल के रूप में लेता है। यह हलचल है बड़ा रहने और बड़ा रहने की। इस तरह यह तीसरा न केवल अपनी जिन्दगी जीता है बल्कि अपनी मौत भी मरता है। मेरा आदर्श यही है।' जीवन को एक हलचल मानने वाला बलराज वस्तुतः उपन्यास में हलचल मचाता है। रजोगुणी बलराज में चरित्र आस्था, नैतिकता के प्रति आग्रह भले ही न हो, मगर इसका व्यक्तित्व विचारणीय है। किनारा को चूमने वाली लहरों के लिए जैसा बल राज बन का राजा है। देश की स्वतन्त्रता की शृंखला से मुक्ति दिलाने के लिए दृढ़ संकल्प बलराज जज की (देशभक्तों को फाँसी का दण्ड देने वाले जज) हत्या करता है एवं लोग की स्थापना करता है हमीदा से प्यार करता है। हमीदा-बलराज संबंध स्त्री-पुरुष संबंध पर एक प्रश्न चिह्न है। जो यह कहते हैं कि स्त्री-पुरुष सामान्य भोग भी जैसा प्रभाव रखता है यह प्रसंग उनके लिए एक चुनौती है। तमोगुणी बलराज एक दिन हमीदा का चुम्बन लेता है—उसने कोई विरोध नहीं किया, पर इस निर्विरोध प्रणय मूक भाव ले नहीं बनने दिया। हमीदा के ये संक्षिप्त वचन—ये जूठे होंठ हैं। देवता के भोग के लायक नहीं। आप देवता हैं। देवता को जूठन पर गिरने न दूँगी। चिन्तन की सामग्री लिए हैं। स्त्री मात्र भोग्या नहीं है, प्रेरक भी है। वह मात्र पुरुष को स्वार्थी भोगी पतित ही नहीं बनाती मनुष्य का देवत्व की ओर भी अग्रसर करती है। हमीदा का बलिदान बलराम में तमोगुण को धोकर महत्तर देव बनने की प्रेरणा दे गया। तभी उसने स्वीकारा हत्या पाप है और पश्चाताप ही इसके त्राण का मात्र उपाय है। इसीलिए जज की हत्या को स्वीकारते हुए मृत्यु को वरीयता देता है पाप के त्राण के लिए तथा सतोगुणी प्रेम की उप लब्धि के लिए।

निशिनाथ अदृश्य की लीला का व्याख्याता है। अपनी कथा कहने से पूर्व वह एक दार्शनिक प्रश्न पर मनन करता दर्शाया गया है—' मैंने प्रायः विचार किया है कि व्यक्ति अपने जीवन का अन्त स्वतः निर्मित करता है या वह पूर्व निर्मित होता है। हम परिस्थिति चक्र के विभु बनकर जीते हैं या दास। हमारा कर्म-पराक्रम ही सब कुछ है अथवा अदृष्ट के क्रीडनक मात्र पर मैं न विभु बनकर जी रहा हूँ न दास ही। लगता है भाग्य की इस जीवनक्रीडा में मेरा भी कुछ भाग है कुछ स्थान है।' अपने इस सिद्धान्त के प्रति अतिशय सतर्कता के साथ प्रकाश डालते हुए उपन्यास के प्रथम निशिनाथ अपनी कहानी कह गया हैं। वह जीवन के गूढ़ से गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों और रहस्यों को खोलता हुआ अपनी साथ कथा खोजता है। वह वेश्या का बच्चा अपने पिता की मृत्यु पर उनके अन्तिम शब्द वाणों को प्रणयम का विस्फोट मानकर जीवन प्रांगण में बढ़ा। मैट्रिक इण्टर बी० ए० एम० ए०

५ भवरजाल—पृष्ठ ६५

६ वही—पृष्ठ १३५

और फिर रिसच। पर यह सब कर उसे क्या मिला ? हरिद्वार से काशी और अन्त में काशी से इलाहबाद की यात्रा जीवन के नये नये रहस्य और अनबूझी पहेलियां ही उसके सामने रखते गए। निशि का रहस्यमय जीवन द्रष्टव्य होता गया, विधि की अन्तर्लीलाएं खेलने लगी। निशि अपने को विधि की अन्तर्लीला का खिलौना मानते हुए दार्शनिक शब्दावली में कहता है—'हम अपने जीवन भर का व्यापार क्रम स्वतः निश्चित कर डालते हैं पर इस निश्चय के मद में यह भूल जाते हैं कि इस सृष्टि के विधाता का उद्देश्य हमारे उद्देश्य से भिन्न हुआ तो क्या हमारी सीमित शक्ति और दुर्बल इच्छा उसकी असीमित शक्ति और अविफल इच्छा पर विजय पा सकेगी। आज के युग में ऐसी बात कहना परम पराक्रमी महा महिम मानव की अवमानना है। कुछ भी हो जब सभी सम्भव साधनों के सुलभ रहते हुए भी सिद्धि दुर्लभ हो जाती है तो बली अदृश्य की सत्ता मान ही लेनी पड़ती है।[७] निशि की समस्त कहानी इस दार्शनिक प्रतीक का वाहन है।

भवरजाल की प्रतीकात्मकता असंदिग्ध है। तीन पुरुष पात्र ही कथा का केन्द्र है और तीनों रजोगुण तथा सतोगुण का क्रमशः प्रतिनिधित्व करते हैं। रही कथानक से अप्रासंगिक होने की बात (डा० सुषमा का आरोप) इसके उत्तर में मेरा निवेदन यही है कि मेरे मतानुसार कथाकार का लक्ष्य एक शृंखलाबद्ध कथा प्रधान उपन्यास लिखना था ही नहीं वह तो एक दार्शनिक प्रतीकात्मक गाथा रचना चाहता था जिस प्रतीकात्मक शिल्प विधि में रचने के कारण वह अपने लक्ष्य में पूर्ण सफल हुआ है। उसने व्यक्ति की विभिन्न मानसिक अवस्था के स्त्री पुरुषों का चयन करके उनके रहन सहन और गति विधि का इतिवृत्त नहीं दिया—यह तो वर्णनात्मक शिल्प विधि की रचना में ही सम्भव है वह तो कथा के सूक्ष्म सूत्रों का चरित्र के प्रतीक पक्षों को दार्शनिक विचारणा के परिपार्श्व एवं दृष्टिकोण से पात्रों द्वारा ही अनगिनत रूप चित्रों को एकत्र कर एक चित्र प्रदर्शनी सी उपस्थित कर गया है, जिसे जो भाए सजो ले न भाए छोड़ जाए। उपन्यास में निशि के साथ-साथ बलराज, वारुणी हमीदा और रूपा के चरित्र में एक विचित्र-सी दुर्बलता पर आकर्षण है। ये सभी पात्र प्रतीक हैं जीवन के नाना चित्रों के प्रतीक और वाहक भी है जीवन के दार्शनिक पक्ष के वाहक। इस उपन्यास का हर पात्र किसी ऐसे सत्य की खोज में संलग्न है जो उसके जीवन को उल्लसित कर दे, पूर्ण कर दे। कथाकार ने इन पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को भी मार्मिकता प्रदान की है पर यह वह अन्तर्द्वन्द्व नहीं है जो मनोविश्लेषणात्मक शिल्प विधि के द्वारा प्रस्तुत होता है।

शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'

रुद्र की ख्याति का एकमात्र कारण नूतन शिल्प प्रयोग है। अपने एक मात्र उपन्यास 'बहती गंगा' में आपने उपन्यास शिल्प पर एक प्रश्न चिह्न लगाया है। इस लघुकाय उपन्यास में आप दो सौ वर्षों का इतिहास दे देते हैं मगर यह इतिहास वर्णित नहीं सांकेतिक है, अतएव प्रतीकात्मक शिल्प विधि के अन्तर्गत विवेचित होगा।

---

७ भवरजाल —पृष्ठ १३६

बहती गगा—१९५२

बहती गगा म कथ्य बहुत लम्बा व्यापक और विस्तत है और इस कथा बार सत्रह अध्यायो म सजाता है मगर वह इसे वणनात्मकता और इतिवत्तात्मकता स अलग रखता हुआ प्रतीकात्मक रूपाकार (Form) जुटाता है। अध्यायो के शीषक प्रतीकात्मक है यथा— गाइए गणपति जगबदन (१७५०) घोड प हौदा और हाथी प जीन (१७८०) नागर नया जाला काले पनिया रे हरी (१८००), आये आय, आये' (१८१०) अल्लाह तेरी महजिद अवल बनी' (१८५८) शिवनाथ बहादुरसिह वीर का खून बना गेडा' (१८८०), एहीठया भुलनी हेरानी हो राम (१९२१) नारी तुम केवल श्रद्धा हो' आदि अध्याय कथ्य को साकेतिक शब्दावली म शृखलित करते है। इन सत्रह अध्याया म स मात्र सात कहानिया यथा १ से ६ ८ ९ ही ऐतिहासिकता प्रधान है। इस उपन्यास की ऐतिहासिकता पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए डा० रघुवश लिखते है— बहती गगा का स्वर बहुत कुछ ऐतिहासिक-सा जान पडता है पर उसकी अपील सामाजिक है। इस बदलते हुए युग म जिन नये मूल्या की ओर सकेत किया गया है व सामाजिक चेतना क परिणाम है।[1]

उपन्यास की प्रतीकात्मकता क सबध म लेखक स्वय आश्वस्त है। वह लिखता है— प्रस्तुत उपन्यास का नाम बहती गगा अकारण नही है। बहती गगा म सत्रह तरग है—एक दूसरे स अलग परस्पर स्वत त्र। परन्तु धारा और तरग न्याय स आपस म बधा हुइ भी है।[2] बहती गगा की तरगे ही कहानिया है जो काशी नगरी की जीवन धारा को बनाती बिगाडती उभरी गिरी है। विभिन्न कथाओ म पात्रो की आवत्ति होती है जस पहली कथा की प्रमुख पात्रा राजमाता पन्ना दूसरी म दूसरी कहानी का पात्र नागर तीसरी कहानी म नायक बनकर आता है। इस दष्टि स यह सूरज का सातवा घोडा क पटन पर रचा गया उपन्यास है। विभिन्न कथाओ के पथक पथक विन्यास म एक सूत्र द्वारा शृखला लाने का शिल्प प्रयास नवीन ही माना जाएगा जबकि कथा म सूरज का सातवा घोडा क नायक माणिक मुल्ला की भाति कोई एक नायक नही है। माना काशी ही नायक हो गगा ही उसका जीवन। पष्ठ ७५ पर तो लेखक न काशी का प्रतीकात्मक परिचय भी द दिया है।

इस उपन्यास म सहज जटिल स्थिर गतिशील सभी प्रकार क पात्र उपलब्ध है। आधुनिकता क बढ्त चरणो न ज्यो ज्यो जीवनगत जटिलता बढाई काशी म जटिल दुरूह रहस्यमय और असाधारण प्रतीकात्मक पात्रो का जन्म हुआ। कुसुम और सुधा इसक ज्वलन्त उदाहरण है। सुधा का सठ क सिर पर गुलाबपान मारना और फिर मध्यवग की तरगिणी बनकर उस रूप रग गध का रखवार बनाना वस्तुत उपन्यास का असाधारण घटना ही नही आधुनिक जीवन म मध्यवग की दुर्गति स्थिति का और पूजीवादी विडम्बना का प्रतीक भी है। यहा स्पष्ट आधुनिकता की चुनौती को स्वीकार गए है और

---

1 आलोचना (८)—पष्ठ ११०
2 बहती गगा सर्वनिका—पृष्ठ १०

अपने प्रतीकात्मक उपन्यास म नाना स्तरा पर अभिव्यक्त कर गए हैं।

नरेश मेहता

नरेश मेहता मूलत एक कवि हैं। शिल्प के प्रति विशेष आग्रह आपकी नई कवितामा, कहानियां और उपन्यासा म उपलब्ध होता है। पात्रा और वातावरण के चयन मे आप सिद्धहस्त है। साधारण जीवन से पात्र चुनकर उन्हे अति असाधारण वातावरण के परिप्रेक्ष्य म घुमाते हुए पाठक को सन्न कर देने की कला आप खूब जानते हैं। अपने उपन्यासा म मेहता आधुनिकता की सवेदना को स्वर देते हुए आधुनिकाओ को एक ऐसे परिवेश म घुमाते हैं जहा उनका शरीर बिकता है उनकी आत्मा को कोई नही पहचानता। नारी का मौन, शील सहनशीलता प्रेम और पुरुष की बबर पशुवृत्ति का शिकार हुआ है इसका प्रतीकात्मक चित्रण कथाकार अपने कथा साहित्य म करता है। काल-सीमा और पात्र सकुचन का निबन्धन मेहता की शिल्प विधि का दूसरा सोपान है। परन्तु इस काल सीमा और पात्र सकुचन म भी मेहता व्यग्यमयी शली म पात्र द्वारा समाज पर आघात करने स नही चूकते। जसे—"मुझे कुल्टा चरित्रहीन, नीच समझते हो—और मैं हू भी चरित्रहीन परन्तु मैं अकेली ही नही, तुम जिस समाज म बठे हुए हो वह पूरा का पूरा वेश्या का समाज है दुगन्ध दे रहा है ।[1] भारतीय परिवेश म नारी का यह हाहाकार रजना के शब्दा मे सार्थक माना जाएगा। अपने कथा साहित्य म मेहता व्यक्ति को प्रतीकात्मक शिल्प विधि द्वारा जकड कर उससे सम्बद्ध समाज की घुटन, कुण्ठा ग्रन्थि तथा सत्रास का चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

डूबते मस्तूल—१९५४

डूबते मस्तूल नरेश मेहता द्वारा रचित एक लघु उपन्यास है जिसम प्रतीक योजना का सफल निर्वाह हुआ है। समस्त कथा आत्मकथात्मक शली म कही गई है। कथा की अवधि कुल अठारह घट है। नायक स्वामीनाथन अपने मित्र पुरी से मिलने के निमित्त दक्षिण से लखनऊ पहुचता है। चारबाग स्टेशन पर दिन के साढे बजे हैं। वह पुरी के बगले नाथ एवन्यू पर पहुचता है जहा उसे मित्र के स्थान पर रजना नाम की एक अपरिचित आधुनिका मिलती है। रजना उपन्यास की नायिका है जो एक असाधारण प्रतीक का सृष्टि करके अपनी कथा स्वामीनाथन को सुनाकर १८ घटे पश्चात उस विदा देकर स्वय इस विश्व से विदा लेती है।

रजना जानती है कि स्वामीनाथन पुरी का मित्र है उसका प्रमी अकलक नही किन्तु वह एक असाधारण प्रतीक योजना करके स्वामीनाथन को अपना प्रमी अकलक कहती है। इस प्रतीक योजना के पीछे उसका दलित विगत और पीडित व्यक्तित्व है। उस विश्वास है कि अपरिचित का परिचित का रूप देकर वह जो कह पाएगी वह उस पूर्ण ग्राह्य होगा और उससे उसकी पीडा भी कम हो जाएगी यदि अपरिचित को अधिक

---

१ डूबते मस्तूल—पृष्ठ ६०

अपरिचित क रूप म ग्रहण किया गया तो परिस्थिति भयावह सिद्ध हो सकता है बात
अधूरी रह सकती है। अकलक रजना की कोमल भावनाओं स्वप्निल आशाओं और मृदुल
सवदनाओं का प्रतीक रहा है। अब वह उसके जीवन के डूबते मस्तूल का प्रतिबिम्ब है।
एक बार उसे सबल देकर जीवन की बीच धारा म एकाकी निस्सहाय एव निरुपाय छो
गया है। अकलक की स्मृति ही उसके जीवन का एकमात्र सहारा है। अपने पडोसी पु
के घर टगा हुआ स्वामीनाथन का चित्र उस चित्र म अकित उसके घुघराले बाल लम्ब
पतली आख और हल्के मोटे होठ उसे झकझोर डालते हैं। उस हृदय म एक मधुर पुल
कन की अनुभूति तथा पुन अकलक के साक्षात्कार की आशा जागत हो उठती है। वह
जीवन के प्रत्यक क्षण म उस क्षण की प्रतीक्षा करती है जब अकलक उसके समक्ष होगा।
वह क्षण आ जाता है। वही उसके जीवन का मधुर क्षण बन जाता है वही उसके लिए
चरम सत्य है। उस वह दृढ हाथो के साथ पकड लेती है।

स्वामीनाथन का अकलक बन जाना एक इम्प्रशनिस्टिक सिम्बली (प्रभाववादी
प्रतीक) है। वह न न करता हुआ भी अकलक बनकर सारी कथा एकाग्र मन के साथ
सुनता रहता है। रजना के कमरे म टगे हुए चित्र साकेतिक भाषा म उसके मन की रेखाओ
को चित्रित कर रहे है। उनम कुछ नारी के द्वारा तिरस्कृत पुरुष के रौद्र रूप को अभिव्य
क्त कर रहे है तो कुछ ताम्रमूर्ति म दार्शनिक मूर्तिकार की हृदयगत वदना को साका
र कर रहे है। स्वामीनाथन के निकट जो प्रतीक है रजना के लिए जीवन का ध्रुव
सत्य है। नायक के लिए जो पहेली है रजना के लिए जीवन का कटु सत्य है। रजना भावा
को अभिव्यक्ति नहीं देती है किन्तु वह अभिव्यक्ति सहज परिवेश म न आने वाली साकेतिक
प्रतीकात्मक अनुभूतियो वाणी है वह अकलक (स्वामीनाथन) के चारो ओर एक मकडी
का जाला बुन देता है जिसम भाग निकलना रजना की इच्छा के विरुद्ध उसके लिए न
सम्भव हो रहा न सभव ही।

रजना एक विलक्षण नारी है। समाज के एक पशु वर्ग की प्रतीक है। उसकी
अन्यमनस्कता निरर्थकता, पीडा और करुणा सघर्ष और यातना प्रेम और प्रवचना उप
न्यास के एक-एक शब्द म निमग्न हुई है। वचना का एक प्रकार उदाहरण हेतु प्रस्तुत है—
अकलक। न जानना चाहो तो बात दूसरी है किन्तु तुम अनायास ऋतु की भाति चल
गए, यह अच्छा नहीं हुआ। मैंने मन ही मन कितना चाहा कि तुम एक क्षण को लौट
आओ थोडे क्षण उधार हो होता पूरे जीवन के बदले। और आज तुम लौटे भी तो
अनजान बनकर। आज मैं तुम्हे पाकर नाच सकती थी किन्तु आज को रुदन म पाना और
खोना—खोना हो गए जिस अर्थहीन से कम नहीं है। 'पाना और खोना अर्थहीन इसलिए
है कि रजना वचिता नारी है जो सुलभ अधिकारो से वचित स्नेहयुक्त मानकर ग
र्वित वह जानती है अकलक रहा है किन्तु मानती नहीं। यदि मान ले तो क्या म कहा
को स्वयं कष्ट न दें आज प्रकार को पूरा निबाह कम हो ? वह तो प्रारम्भ से मन ही मन
स्वीकार करती है कि स्वामीनाथन ही अकलक है उसकी मधुर भावनाओ का प्रतीक

---

१ नरेश मेहता डूबते मस्तूल—पृष्ठ ४१

वचनाम्रा का कारण, ग्रादाओ का केन्द्र ग्रौर लालसाग्रा का स्वप्न। रजना की कथा सुनते-सुनते पाठक को वर्णनात्मकता की गध भले ही ग्राए, किन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को उसम प्रतीकों के ग्रम्बार ही हाथ लगे हैं। रजना का प्रथम प्यार उसके संचित स्नेह का प्रतीक है जो मर्चेन्ट के प्रति ग्रात्मसमर्पण करने पर सौगात स्वरूप पाए रूमाल को प्रेम का ग्रमित रूप मानकर जीवन भर साथ देता है। रजना की ग्रहवादिता, स्पष्टवादिता ग्रौर विद्रोह भावना ग्राधुनिक नारी की नव जागृत चेतना की प्रतीक हैं। जो समझौता करने म नहीं ग्रपने स्वतत्र ग्रस्तित्व ग्रौर व्यक्तित्व के स्वतत्र विकास म पूर्ण विश्वास रखती है। वह तेजमयी वाणी म कहती है—'ग्रक्लक ! तुम्हारे इस समाज म व्यक्ति पैदा करने की क्षमता शक्ति ग्रब शेष नहीं है। जिसे तुम व्यक्ति कहते हो वह एक पोस्ट ग्राफिस का टिकट मात्र है जिसके साचे बने हुए है। ग्रपनी शक्ति के ग्रनुसार तुम उन्हें बडे छोटे साचे म ढालते हो व्यक्ति बनाया तभी जा सकता है जब वह पैदा हो। जाने कितने सस्कार, समाज रूप म, उसके चारो ग्रोर खडे कर देते हो कि उसम का वह व्यक्ति ही नष्ट हो जाता है। तुम्हारी शिक्षा दीक्षा से विद्रोह कर यदि कोई व्यक्ति बनना चाहता है तो उसे तुम पथभ्रष्ट ग्रनागरिक, चरित्रहीन कहकर बहिष्कृत कर देते हो। क्योंकि वह तुमम की एक भेड नहीं है।'[2]

प्रस्तुत रचना म रजना के कल्पना पख नय प्रतीको की खोज म सलग्न है। उसे गैल की समस्त कविताए ग्रपने विरह मे लिखी गई प्रतीत होती हैं। उसे ग्रपना मुख हजारो जलयानो का सचरण कराता लगता है उसे हजारो मस्तूल जल रहे भासित होते है। रजना नारी मन की वह उन्मुक्तता है जिसे कोई भी पुरुष बाध नहीं पाया वह स्त्री के मन की वह धडकन है जिसे कोई भी पुरुष ग्रनुभव न कर पाया। उसे वान निकोलस भी स्वीकाय नहीं क्योंकि वह मानव से ग्रधिक देवता है ग्रौर उस देवता नहीं मानव चाहिए। मानव न मिलने के कारण उसे उपेक्षा मिली, जो नागिन की भाति उसे डस कर नीला कर देती है। प्रस्तुत रचना म हमे ग्राधुनिक वचित नारी के जीवन की ग्रन्तर्यात्रा प्रतीकात्मक शिल्प विधि द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप म उपलब्ध हो गई है।

गिरिधर गोपाल

मध्यवर्गीय वस्तुस्थिति तथा चेतना के ह्रासोन्मुखी रूप को प्रतीकात्मक शिल्प विधि के रूपाकार (Form) म ग्राबद्ध करने वाले कुशल कथाकार हैं गिरिधर गोपाल। इन्होंने ग्राधुनिक भारत (स्वतन्त्रोत्तर भारत) के मध्यवर्गीय व्यक्ति को 'चान्दनी के खडहर म' एक रूपक के ग्राधार पर व्यष्टि सत्य के सभी स्तरो पर विश्लेषित किया है। कविता के क्षेत्र म भावुक कलाकार गिरिधर बाबू उपन्यास म ग्रवतरित होकर बौद्धिक परिवेश को ग्रपनाते हुए भारत के मध्यवर्गीय व्यक्ति की कुण्ठा घुटन ग्राशका भय निराशा ग्रौर सत्रास का मार्मिक रूप से ग्रभिव्यक्त करते है। कथाकार ने व्यक्ति की कुण्ठा के उत्स को पहचाना है। इनके पात्र प्रेम के भोग पक्ष को न भोग उसके यातना पक्ष के भोक्ता हैं,

---

२ डूबते मस्तूल—पृष्ठ ६३

चुके है। फर्नीचर टूट चुका है। पुस्तकें फट चुकी हैं।

यथार्थ स्थिति यह है कि सभी चौपट हो चुका है। ऐसे वातावरण में उसे एक जाला लटकता हुआ दृष्टिगोचर होता है जो उसे अपने तंतु जाल में लपेट रहा है। उसके घर के टूटे खंडहर तथा जाना उसकी पारिवारिक तथा मानसिक अवस्था की जीर्ण दशा के प्रतीक हैं। वह इस तंतु जाल से जितना ही अपने को बाहर निकालने की चेष्टा करता है उतना ही अधिक वह अपने को उसमें फंसा हुआ अनुभव करता है। और भी—उसे टूटी दीवारों पर कांपती परछाइयां दीख पड़ती हैं। ये प्रतिबिम्ब उसके मन पर पड़े रुग्ण बहन और भ्राता के प्रतीक हैं। यह स्वप्न एक स्वप्न ही नहीं है अपितु बसंत के जीवन से संबंधित यथार्थ परिस्थितियां एवं वातावरण का रूपक है।

बसंत को जो टूटी फूटी और कराहती हुई आवाजें सुनाई देती हैं वे उसकी आत्मा पर घर के दारिद्रय को देखकर पड़े प्रभाव की प्रतिध्वनि मात्र है। वह चाहता है कि ये आवाज बन्द हो जाएं क्योंकि इनके कारण उसका दम घुट रहा है, किन्तु ये आवाजें बन्द नहीं हो रही बार-बार उसके कानों को फाड़ रही हैं। इसके फलस्वरूप बसंत अपने-आपको धिक्कारता है और अपने परिवार के अन्य सदस्यों की हत्या का जिम्मेदार अपने को ठहराता है। अन्त में वह खंडहर में प्रतिध्वनित होने वाली आवाज को अपनी ही आत्मा से निकली हुई (Echo) मान लेता है, उसमें पुनः आशा साहस और तेज का आविर्भाव होता है। वह उस महामोह मग्न निराशा के प्रतीक अंधकार के अट्टहास से भी होड़ लेता है। उसमें भी तीव्र स्वर में ठहाका लगाता है।

'हा हा हा हा हा हा हा हा।

कहां चले जा रहे हो? मैदान छोड़कर भाग रहे हो मिस्टर अंधेर?

कायर! नपुंसक! तुम हार गए। मैं जीत गया।

हा हा हा हा हा हा हा हा।

मैं जीत गया। अम्मा बाबू मैं जीत गया। भैया भाभी बन्नो बीना मैं जीत गया। राजू मीना कुंवर मैं जीत गया। मैं जीत गया।

हा हा हा हा हा हा हा हा हा हा हा हा।'[1]

उपन्यास के अन्त में दिया गया यह प्रतीक उपन्यासकार के विशिष्ट दृष्टिकोण का परिचायक है। इसकी योजना उपन्यास को प्रसादान्त बनाने के लिए ही नहीं, पाठक के मन पर एक स्वस्थ प्रभाव डालने के लिए की गई है।

इलाचन्द्र जोशी ने इस उपन्यास की भूमिका लिखकर स्पष्ट कर दिया है कि चांदनी के खंडहर एक नई कोटि का उपन्यास है। वे लिखते हैं— 'चांदनी के खंडहर' में हम सब कुछ नया पाते हैं। थीम नई है पात्र नए हैं शैली नई है और कला कौशल नया है। यह सब कुछ होने पर भी उसमें अंकित सारे पात्र और उसमें वर्णित सारी घटनाएं सहज स्वाभाविक लगती हैं। पुराने पाठकों को उसकी दुनिया एकदम भिन्न और अपरिचित लगने पर भी अकृत्रिम और वास्तविक बोध होती हैं।"[2] इस उपन्यास में कथानक

१ चांदनी के खंडहर—पृष्ठ १२

२ इलाचन्द्र जोशी 'चांदनी के खंडहर' भूमिका—पृष्ठ ५

अति संक्षिप्त है। समस्त कथा बसन्त के सोचने के ढंग में सीमित है। और अन्य मुख्य घटना में कही गई है। उपन्यास में प्रारम्भ विश्लेषणात्मक प्रणाली का प्रतिपादन है। इस उपन्यास का नायक बसंत अपने घर आने पर जिस पात्र से भी बात करता है जिस परिस्थिति को भी देखता है उसका विश्लेषण कर डालता है। इसमें भावुकता का पक्ष भी दार्शनिक मात्रा में मिलता है। भावुकता की सम्मोहित अवस्था में वह अपने कमरे से बातें करने लगता है। यह अन्तश्चेतना के प्रतीकात्मक निर्वाह का परिचायक है।

बसन्त ने कमरे को सम्बोधित करके जो बातें की हैं उसमें प्रतीक योजना के द्वारा एक पात्र का विश्लेषणात्मक चरित्र चित्रण प्रस्तुत हुआ है। उपन्यास में प्रस्तुत कमरा एक निर्जीव जड़ ईंट पत्थर और सीमेंट का ढेर मात्र नहीं है। अपितु एक सहचर साथी का प्रतीक है। जो अपने सहचर की रहस्यमयी बातों से भी परिचित होता है। तभी तो वह उसे अपने विश्वास (Confidence) में लेकर कहता है—"हलो मिस्टर कमरे गुड मार्निंग। हाऊ डू यू डू? क्या हाल चाल है। कैसे रहे? इन पाँच सालों में क्या किया था? कौन-कौन आया तुमसे मिलने? कोई भी आई थी? कै बार आई थी? क्या कहा थी? कुछ मेरे बारे में? बताओ ना यार? तुम तो जानते ही हो कि उसके बारे में कुछ भी सुनने के लिए मैं क्या और कितना उत्सुक रहता हूँ? मुझे क्या मालूम क्या से? अब तुम मुझसे कहला ही लेना चाहते हो? शरम लगती है। अच्छा तो सुनो—मुझे क्यों से बहुत शरम लगती है? हँसते क्या हो? अपनी यह हँसी बन्द करो नहीं तो रजाई में मुँह छिपा लूँगा। यह हँसी-मजाक का समय नहीं है। बिगड़ो नहीं? सो बताया न! कैसी आई थी? सचमुच आई थी? वाह बड़ी अच्छी थी वह। क्या पहन थी? नीली साड़ी सुनहला ब्लाउज? हाय रे मैं न हुआ! बालों में फूल और आँखों में काजल भी लगाए थी? सुन्दर लगती रही होगी। दुबली पतली छरहरे बदन की। कुदनी रंग बदन बदन से फूटी पड़ती सी लाली। लम्बे बाल चौड़े माथे पर सितारोंवाली टिकुली लगाती है। पाउडर घमाचम। बड़ी बड़ी अधखुली आँखें जो लाज भार से झुकी सी रहती है। और कभी कभी तो ऐसी अनुचित तिरछी आँखों से देखती है कि मैं क्या परमेश्वर उसके पैरों पर लोटने लगे।[3] इस कथन में प्रतीकात्मक विधि द्वारा कमरे को सहचर का प्रतीक बनाकर बसन्त की मनोभावनाओं को उँडेल दिया गया है।

प्रतीकात्मक शिल्प विधि की इस रचना में यथार्थ घटना और संघर्षमयी वास्तविकता चित्रात्मक वर्णन और सांकेतिक विश्लेषण द्वारा उभरकर सामने आती हैं। चाँदनी के खंडहर में बसन्त के परिवार की समस्त घटनाएँ उसकी भाभी तारा द्वारा चित्रात्मक ढंग से कही गई है। बसन्त के बहुत जोर देने पर भी तारा कथा को इतिवृत्तात्मक ढंग से नहीं बताती क्योंकि वह समझती है कि यह कोई रोमांटिक किस्सा कहानी नहीं है जिसे आदि से अन्त तक सुनाया जा सके। सुमत की संग्रहणी वीणा की प्लुरिसी आदि वर्णन चित्रात्मक ढंग से प्रस्तुत हुए है। सब सुन लेने पर बसन्त के मन का द्वन्द्व भी सांकेतिक विश्लेषण द्वारा प्रकट हुआ है। उस बीना अब गुलाब सी प्रफुल्ल-दृष्टिगोचर नहीं होती

---

३ चाँदनी के खंडहर—पृष्ठ २६

अपितु फुटपाथ पर पडी पीली पत्ती समान लगती है। वह अनेक बार कहता है— अगर मैं यही रहता तो बीना का यह हाल न होता भैया के कंधे का कम से कम आधा बोझ अपने कंधे पर उठा लेता तो भाभी का यह हाल न होता तो बाबू का यह हाल न होता अगर मैं यही रहता तो अम्मा को व दिन न देखने पडते जिन्होंने उन्हें ऐसा बना दिया है। अगर मैं लन्दन न जाता, यही रहता तो इन बच्चो को वह सुख सुविधाए मिलती जो इनका हक है। अगर मैं यही रहता तो क्तो की पढाई छुडा दी जाने पर उसे खुद पढाता उसे यह मनहूस बीमारी न होती।[४] संक्षेप मे कहा जा सकता है कि चांदनी के खण्डहर मध्यवर्ग की घुटन तडपन, बिलबिलाहट और आशा निराशा की वह कथा है जिसमे इस वर्ग के पारिवारिक जीवन की नाना उमगें प्रतीकात्मक शिल्प विधि द्वारा सयोजित की गई हैं। भारतीय मध्यवर्गीय परिवार की करुण स्थितियो का विनियोग इस रचना मे है।

'चांदनी के खण्डहर' मे गिरिधर गोपाल की उपन्यास कला रूढि जर्जर निम्न मध्यवर्गीय समाज की नि सत्त्व मान्यताओ की अवहेलना करती हुई द्रुत गति से बढ रही सामाजिक, आर्थिक संघर्ष प्रश्नावली के मध्य घूमती दर्शायी गई है। यह भी प्रतीक योजना द्वारा सभव हुआ। पाच वर्ष पश्चात घर लौटा मध्यवर्गीय नायक वसन्त तो जर्जर मध्यवर्ग के प्रतीक जोडता ही है तारा की स्वीकारोक्ति मे भी मध्यवर्गीय धडकनें अनुगुंजित हुई हैं। द्रुत गति से मध्यवर्गीय पतित अवस्था का विश्लेषण वह इन शब्दो मे करता है—"मुझे भी यही कभी-कभी लगता है कि हम सभी बदल से गए है। हर घडी बदल से रहे हैं। हम बदल गए हैं यह ठीक है और मालूम है किन्तु हम क्या बदल? कब से हमारा बदलना शुरू हुआ? कितने दिनो मे और कितना हम बदले? यह पता नही।[५] रूढि जर्जर मध्यवर्ग के सभी पात्रो के चरित्र चित्रण मे कथाकार उनके सहज सरल आचार-व्यवहार द्वारा वार्ता द्वारा स्वप्नो द्वारा जीवन की गहराई संवेदना और महत्त्वाकांक्षा को जिस सूक्ष्मता के स्तर पर अभिव्यक्त कर गया है वह उसके सफल प्रतीक शिल्प की पकड का ज्वलन्त उदाहरण है। इन पात्रो के चरित्र तथा व्यक्तित्व की प्रथम रेखाए भले ही धुधली अस्पष्ट या काल्पनिक लगें किन्तु लेखक शीघ्र ही प्रतीक बोध द्वारा धुधलापन मिटा देता है अस्पष्टता धो देता है—जैसे जब बसन्त लौटती बार तांगेवाले से गाने के लिए आग्रह करता है तब तांगेवाला एक प्रतीक गीत सुनाता है जिसमे अधुनातम जीवन के यथार्थ पक्ष का उद्घाटन हो जाता है। दिन प्रतिदिन बढ रही महगाई, घर की टूटती जर्जर दशा का स्पष्ट बोध पाठक को हो जाता है। बदलते परिप्रेक्ष्य मे मध्यवर्गीय पात्रो का व्यक्तित्व किस घुटन आशंका और संत्रास की स्थिति से होकर गुजर रहा है इसका एक सूक्ष्म और प्रतीकात्मक अध्ययन हम 'चांदनी के खण्डहर' मे पढने को मिल जाता है।

---

४ चांदनी के खण्डहर—पृष्ठ १०६, १०८, १११, ११३, ११५, ११८, ११६

५ वही—पृष्ठ ४६

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना हिंदी ससार म एक नये कहानीकार और कवि के रूप म आए। आधुनिका नारी का चरित्र चित्रण करन की कला म आप सिद्धहस्त हैं। आधुनिकाओं की वितर्क-बुद्धि, आत्म प्रवचना पर पुरुष गमन कर उनके साथ दावता म, सर-सपाटा म, शराब म नत्य म खुलकर भाग लेने की प्रवत्ति का आपने यथार्थपरक चित्रण किया है। आधुनिकाओं की कोरी भावुकता और पुरुष वर्ग की जड बुद्धिवादिता पर आप कलात्मक ढग से प्रकाश डालते है। बडी प्रयोगात्मक कहानी और लघु कविता तथा उपन्यास लिखना आपकी विशेष प्रवत्ति है। लघु उपन्यासा म जीवन के सूक्ष्म पर प्रतीकात्मक बोध से पाठक को परिचित कराने ही हैं। अति भावुक हृदय पर बुद्धि का अकुश न रखना व मत्यु त्रास इन दो यथार्थ प्रवृत्तिया को प्रतीकात्मक शिल्प म प्रस्तुत कर आप आधुनिक व्यक्ति के तीव्र तनाओं और अन्तर्द्वन्द्वा का विश्लेषण कर गए हैं।

सोया हुआ जल—१९५५

सोया हुआ जल सम्भवत हिंदी का सबस लघु उपन्याम माना जाए। इसकी पृष्ठ सख्या कुल पचास है। इसका न केवल शीर्षक ही प्रतीकात्मक है अपितु विषय-वस्तु तथा चरित्र भी प्रतीकात्मक है। एक अर्थ म ये व्यक्ति के अचेतन चेतन मन के प्रतीक है। अन्तश्चेतना का प्रतीकात्मक निर्वाह इस रचना म उसी मात्रा म मिलता है। जिस मात्रा म नदी के द्वीप या बूद और समुद्र म पर एक अन्तर के साथ वह यह कि इसका फलक अति सीमित रखा गया है। सोया हुआ जल के नवीन रूप शिल्प ने प्राय सभी आधुनिक लेखका तथा शीर्षस्थ आलोचका का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। इस सबध म कतिपय लेखका के मन्तव्य नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

सोया हुआ जल बहुत ही मौलिक और महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।[1]

सूरज म आधुनिकतम कई उपन्यास कोई निष्कर्षवादी नही होते। आशयवादी आलोचक उपन्यास ही नहीं है कहकर छुट्टी पाते हैं। पर क्या 'सूरज का सातवा घोडा' या सोया हुआ जल सामाजिक चेतना से विरहित हैं?[2]

यह वार्तालाप-शैली म लिखित एक प्रतीकात्मक दृश्य रूपक है।[3]

किन्तु वास्तव म नवीन रूप शिल्प प्रयोग की आकाक्षा ही इस कृति की मूल प्रेरक वृत्ति है। बहुत थोडे से अवकाश म अनेक पात्रा के चित्र सकेत द्वारा तथा छायाओं और स्वप्ना के सहारे कुछ बातें व्यजित की गई हैं जिनम कोई वैचारिक नवीनता नहा है। किसी पात्र का व्यक्तित्व उभरकर सामने आया भी नहा है। यदि कृति को उपन्यास कहा जाए तो उपन्यासा का नया वर्गीकरण करना होगा और सभव है कभी

---

१ ब्रजविलास श्रीवास्तव आलोचना (१७)—पृष्ठ ४३

२ डा० प्रभाकर माचवे हिंदी उपन्यास—सिद्धान्त और विवेचन म सकलित आधुनिक उपन्यास की समस्याए लेख से—पृष्ठ १२०

३ गिरिजाकुमार माथुर आलोचना (१७)—पृष्ठ १३४

नाटकों को भी उसी के अन्तर्गत समेट लिया जाए।[4]

"यह लम्बी रूप-कथा या लघु उपन्यास है।[5]

इन मन्तव्यों का पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास छपने के तुरन्त बाद हिन्दी के आलोचकों की चर्चा-परिचर्चा का विषय बना और कुछ ने इसकी औपन्यासिकता पर ही प्रश्न चिह्न लगाया तो कतिपय इसे नवीन शिल्प प्रकार मानकर अति सन्तुष्ट हुए। सीमित काल अवधि में खण्ड जीवन का चित्रण प्रतीकात्मक शिल्प विधि के उपन्यास साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। इस विधि में बृहद उपन्यास भी रचे गए लघु भी। लघु उपन्यास खण्ड जीवन चित्रण तथा एकोन्मुखी विषयपरक कथा के साथी रहे हैं। सोया हुआ जल भी तद नुकूल बन पड़ा।

अधिकतर आलोचक 'सोया हुआ जल' के दृश्य विधान पर मुग्ध होकर इस दृश्य रूपक मान बैठे और डा० श्रीवास्तव ने तो इसे उपन्यास मानना ही अस्वीकार कर दिया। उन्होंने इसकी आलोचना के प्रारम्भ में लिखा—'सोया हुआ जल सिनेरियो शिल्प में लिखा नवीन कथा प्रयोग है।'[6] अपनी ही आलोचना में डा० श्रीवास्तव दो बात कह गए। एक ओर इसे नवीन कथा प्रयोग कहा तो दूसरी ओर कह दिया कि यदि कृति को उपन्यास कहा जाए तो उपन्यासों का नया वर्गीकरण करना होगा। अपने कथन में अपने मत ... को इस प्रकार उलझा देना समीचीन नहीं है। वस्तु स्थिति यही है कि यह रचना एकदम प्रतीकात्मक शिल्प विधि की अनुपम उपलब्धि है और इसका शीर्षक विषय वस्तु तथा पात्र प्रतीकों के द्वारा उभरे हैं। कथा वस्तु अन्तर्मुखी है पात्रों की जीवन लीला बहिर्जीवन की अपेक्षा अन्तर्जीवन पर आधारित है और लेखक उनकी मनोग्रन्थियों, आकांक्षाओं अतृप्तियों, मनोभावों के नाना रूपों का परिचय प्रतीक योजना द्वारा देता है।

समस्त उपन्यास की कथा एक रात की घटना है। किसी तालाब के तट पर एक पान्थशाला के अलग अलग कमरों में अलग अलग रुचि के व्यक्ति ठहरे हैं, जिनमें दाम्पत्यरत पति पत्नी, दाम्पत्य सूत्र में जुड़ने को आतुर भागे हुए प्रेमी प्रेमिका और मचान वाला आवारा, ब्रिज खेलने वाले जुआरी विभिन्न मतावलम्बी राजनीतिज्ञ भी हैं। एक बूढ़ा पहरेदार स्वप्न विश्लेषक बनकर इनकी बातें सुनता है। यह पात्र आधुनिक संवेदना की मूर्ति है। वह जब जिस ओर पहरा देने घूमता है उधर कमरे में होने वाली बातें उसके मस्तिष्क की रगों को विस्फोटात्मक उत्तेजना से भर तान्ने बिखेरने और कुरेदने लगती हैं। कथा इस प्रकार के शीर्षकों में विभाजित है—जैसे कमरा नम्बर दो, कमरा नम्बर ग्यारह सीढ़ियों पर, हरी रोशनी, बूढ़ा पहरेदार, पहली झपकी स्वप्न दृश्य आदि। लेखक इस पान्थशाला को ही एक प्रतीक मानता है। यह है संसार की प्रतीक। सब यात्री विश्व के वे प्राणी हैं जो कुछ समय के लिए यहां भटकने को आ जाते हैं। ये सभी अतृप्त आत्माएं हैं। पहरेदार, संवेदनशील जागृत आत्मा का प्रतीक है। वह सब

४ डा० शिवनारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ ४३१
५ अज्ञेय काठ की घंटियां भूमिका—पृष्ठ ५
६ हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ ४३०

को जगाने (गुपारन) के प्रयाग म संयान है मगर गव ना। (भ्रम।) म निठ लाना ि । उत्पाग िन्न बन्ना। चरित्र म
यिन है। पहरेमार को हम भान मा या गुपार ना (Sup r Ego) का प्रतार भा
वह मरन है। पहरेमार की मृत्यु भी प्रतीकात्मक है। क्योंकि म उसा नाम भ्रि
ग्रस्त समाज म सम्पुरा सम्प्रयाता की मृत्यु का सूचक है। पहरेमार स्वप्ना म प्रानाराम
को स्वप्नद्रष्टा के मराना द्वारा प्रस्तुत करना है। राजन विभा विनार रता प्रताप
रत्ना निरोप स्वप्न प्रसग उपन्यास की प्रतीकात्मक शिल्प विधि म प्रमाण है। राजन
विभा एक छन म नीच प्रतिष्ठित लगे है मगर शरीर म थ कितने निकट है मा म
उतन ही दूर। आधुनिकाम भी शरीर पति को मिली है मगर मन अभी भी। रत्न
विनार का अविवाहित जावन धार्मिक और मध्यवर्गीय वजनाम्रा का प्रतार है। निना
कार से रागवी होते हुए भी भीतर से स्मानस्पार है।

सोया हुआ जल म एक उपलब्धि सगर की यह भी मानी जाएगी कि इसकी
मन्वति तथा प्रभाव धनत्व म हम समय स्थान काय की एकता नाम्बाय नाननत्र क
कला-कौशल की प्रतीक लगती है। समय सीमित (६ घण्टे) स्थान सकुचित (पान्थ
शाला) और काय क नाम पर कुछ वार्तालाप ही सब कुछ है। कथानक म शृंखला भल
ही दृष्टिगोचर न हो मगर कथावस्तु रहित होन पर भी प्रतीकात्मक है। पात्रा की
अन्तश्चेतना का प्रतीकात्मक निर्वाह इस लघु उपन्यास की सफलता का सूचक है।

बया का घोंसला और सांप—१९५३

बया का घोसला और साप प्रतीकात्मक शिल्प विधि की रचना है। स्मरणताह
वृक्षा पर भूलने हुए बया क सूने घोसले एक विशेष सकेत क परिचायक है। पक्षी शून्य
ये नीड समाज रूपी अजगर स भयभीत हुए खाली पड है। प्रस्तुत उपन्यास म आरम्भिक
वातावरण—आगण की घूमती छाया आकाश के मघा की फटी चूनरी प्रतीक योजना
के उदाहरण हैं। आनन्द आगन के अधकार म एक डोलती हुई छाया को देखता है वह
छाया जो लगडा लगडा कर चल रही थी। वह एक दूसरी छाया को भी देखता है जो
हाथ म बास की छड़ी लेकर पहली छाया का पीछा करती दृष्टिगोचर होती है। समस्त
उपन्यास पढ़ जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह छाया और कोई नहीं आनन्द क मन
की वह विचार धारा है जो उपन्यास की समस्त घटनाम्रा का विश्लेषण कर रही है। ये
छायाए निरीह निष्कलक सुभागी और उसके सतीत्व पर आघात करने वाले तहसील
दार कामता प्रसाद की छायाए हैं।

ग्राम्य जीवन की झांकी वस्तु की आत्मा का चित्रण और नागरिक जीवन का
दृश्य भी स्पष्ट बोध कर किया गया है और यह रूपक भी आनन्द की मन स्थिति के
अनुकूल इन शब्दों म रखा गया है— उसकी दृष्टि म गाव की आत्मा उसकी सस्कृति
एक ऐसी शकुतला है जो ऋषि कन्या है फिर भी शापित है किसी की दुल्हन और
प्रेमिका है लेकिन उपेक्षिता है। फिर भी इसका पथ जीवन है। मरू नहीं इसम विश्वास
तपस्या और श्रद्धा है मृत्यु की पराजय और क्षुद्रता नहीं। ठीक इसके विरुद्ध दूसरी सीमा
पर शहर की आत्मा और सस्कृति है—एक ऐसी स्वतन्त्र कुमारी की भाति जो अपन

व्यक्तित्व म अपने को सम्पूण समझती है। वह सब की है सब उसके ह लेकिन कोई किसी का नही है। इसलिए उसमे विकास है कही गतिरोध नही, सुख है, उपयोग है, लेकिन शान्ति नही। इन दाना के बीच म है कस्बे की आत्मा उसकी सस्कृति यह चौके की राड की तरह है—एक एसी जवान विधवा की तरह जो बिना गौने गए हुए ही एकाएक राड हो गई हो और उसके आग पीछे तमाम अगुलिया उठ रही हा, फुसफुसाहट हो रही हो। उसका अपना कोई व्यक्तित्व नही है, क्याकि उसका मुह शहर की तरफ है और पीछा गाव की ओर।"[1]

प्रस्तुत रचना की कथा काई लम्बी कथा नही है। कथा म दुभाग्य की शिकार सुभागी उसका बीमार पति रामानन्द और कामुक कामता प्रसाद है जिनका चित्रण साकेतिक भाषा मे किया गया है। उपन्यास म दो-तीन स्थला पर प्रतीकात्मक स्वप्न दिए गए हैं। वास्तव म स्वप्न हात ही प्रतीकात्मक है। ये स्वप्न हमारी दिनचर्या या जीवन की किमी मार्मिक घटना से सबधित हात है—सुभागी स्वप्न म एक पालकी देखती है जिसमे दुल्हन का कोई भी स्त्री आहार नही करती। यह दुल्हन वास्तव म वह स्वय है। आगन म बठी स्त्रिया की उदासीनता समाज की उपेक्षा का प्रतीक है। रामानन्द का दुराग्रह (बीमारी की अवस्था म हट धारण करना और कुण्ड की दलदल म स्नान कर कोढी हो जाना) भारतीय पुरुष वग की हट वादिता का प्रतीक है। सुभागी और रामानन्द के चरित्र की तुलना कितने सुदर शब्दा म दी गई है—'वह विकृत पुरुष और स्वस्थ सरूपा। वह कोढी पति, वह सुहागन। वह राख, वह आग, वह मत्यु का भयावह पथ, वह जीवन की स्मित रेखा। एक सन्नाटा, एक गीत।'[2] इसके साथ साथ उपन्यास मे भारतीय ललना के कुछ अधविश्वासा की ओर भी सकेत किया गया है। आदमी क्या कोढी हाता है? जब वह किसी की फसल म आग लगा देता है—सुभागी की भावुक कल्पना और विश्वास है।

प्रस्तुत उपन्यास के सबध म एक आलोचक का यह कथन—'सीमाओ के बाव जूद पात्रा की रेखाए काफी स्पष्ट ह। ताड के पेड पर बया के घोसल जिनमे पक्षी न थ प्रतीकात्मक ढग से समाज एव भाग्य के अजगरा द्वारा बया जसी निरीह एव निष्कलक सुभागी के सुहाग के लुटने का सकेत दते है'[3] अक्षरश यथाथ है। सुभागी विवश ही नही विपल सप की वास्तविक शिकार है और यह विशेषता साप स्वय कामता प्रसाद है जो उसका हितषी बनन का ढाग रचकर समाज म अपने पद और सत्ता क कारण पूण यश पा रहा है। सुभागी इस व्यक्ति का सप के रूप मे स्वप्न म देखती है। वह इसे *मारना भी चाहती है किन्तु न वह मरता है न सुभागी को* (उसके तज और दर्ता के कारण) डसता हो है। इसी स्वप्न म वह एक राजकुमार को दखती है जो उस बचाता है। यह राजकुमार आनन्द ही है। उपन्यास का अत भी प्रतीकात्मक स्वप्न के साथ साथ होता है।

---

१ लक्ष्मी नारायण लाल बया का घोंसला और साप—पष्ठ ३६
२ वही—पष्ठ १३६
३ डा० शिवनारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास—पष्ठ ४१०

काले फूल का पौधा—१९५५

हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग

'काले फूल का पौधा' उपन्यास शिल्प के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग है। इसमें कला पूर्ण प्रयोग है। व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिकता के साथ-साथ सामाजिकता के विकास क्रम में यह एक मॉडर्न सेटायर का जानदार उदाहरण है। आधुनिक सामाजिकता का प्रोटोटाइप दोनों में ऊपर उठाकर प्रस्तुत किया गया है। यह कहीं सामान्य है तो कहीं विशेष प्रतीक मात्र है। प्रस्तुत उपन्यास में गीता सम्पूर्ण भारतीय नारीत्व का प्रतिनिधित्व करती है। वह अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते हुए अपने समय में निरन्तर वर्तमान रहते हुए सांस्कारिक शरीरी तत्त्व में युक्त हो गई है और मध्यवर्गीय रूढ़िवादी निश्चित पत्नी वर्ग की भावनाओं एवं सिद्धान्तों की प्रतीक बन गई है। भारतीय नारी आज निश्चित है अथवा अनिश्चित कुछ दुर्बलताओं और आस्थाओं का प्रतीक है। उसकी ये दुर्बलताएँ और आस्थाएँ सामाजिक कम और मानसिक अधिक हैं समय के साथ-साथ समाज में परिवर्तन हो रहे हैं। जिससे फलस्वरूप नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व की सुविधाएँ बढ़ गई हैं किन्तु उसके मानसिक संस्कार अभी नहीं बदला है इसी विषय को सुन्दर ढंग से विधान में संयोजित 'काले फूल का पौधा' हमारे सामने मानोविनोद प्रस्तुत है।

प्रस्तुत रचना एक भारतीय दाम्पत्य जीवन की प्रतीकात्मक गाथा है। पति है—देवेन एक उच्च मध्यवर्गीय उच्च शिक्षित पर बसी सभ्यता का प्रचारक और उसी संस्कृति की ओर उन्मुख प्यासे पंछी के समान जीवन के दूरस्थ स्वप्नों तक उड़ान भरने का आतुर और पत्नी है गीता—भारतीय संस्कृति की उपासक धार्मिक भावनाओं की प्रवर्तक नवनीत-सी कोमल और कमल सी मोहक इन दो पात्रों के अतिरिक्त ग्राम और चित्रा नाम के दो अन्य पात्र भी लिए गए हैं जो नागरिक जीवन की स्वच्छन्दता की अनन्त आकांक्षाओं के प्रतीक है इन चार पात्रों की स्थिति और गति उपन्यास में नाना प्रकार के द्वन्द्व और चिन्तन को प्रेरित करते दीख पड़ते हैं विवाह उपरान्त भी देवेन का झुकाव चित्रा की ओर पूर्ववत चलता है यही उपन्यास की भयंकर स्थिति है जिसका चित्रण कहीं स्पष्ट और कहीं सांकेतिक भाषा में किया गया है। इसी स्थिति के कारण गीता की गति अत्यन्त दयनीय हो गई है। उसके मन की सब क्रियाएँ शरीर की सब क्रियायें केवल एक स्थल पर केन्द्रीभूत हो जाती हैं। देवेन और चित्रा। क्या दोनों का अलगाव सम्भव है आवश्यक है? उसके मतानुसार वह आवश्यक तो है किन्तु सम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। उसे अपना समस्त भविष्य अन्धकारमय और संदिग्ध प्रतीत होता है। जब ग्रोम ने उसकी ओर कामुक दृष्टि से निहारा तब स्थिति अति भयावह तथा अनियन्त्रित दीख पड़ी। बाह्य घटनाओं का अभाव और मन स्थितियों का प्रतीकात्मक निर्वाह सर्वत्र उपलब्ध होता है।

प्रस्तुत उपन्यास का शीर्षक ही प्रतीकात्मक नहीं है अपितु समस्त कथावस्तु सारे पात्र और वातावरण प्रतीक भरे है काले फूल का पौधा तुलसी का पौधा है। तुलसी के पौधे के प्रति एक विशेष महत्त्व की भावना भारतीय नारी के मन में शैशव से ही घर कर लेती है। काशी के एक धार्मिक परिवार में पली गीता अपने आंगन में नित्य प्रति इस बिरवे को जल देकर बड़ी हुई है अत उसके मन में इसके प्रति असीम अनुराग तो है ही आस्था

ी है। उसे डी देवन का वह भव्य पनट विन विरव के शून्य प्रतीत होता है। पलँट म रखे
ए सूखी मिट्टी से भरे गमल पर दृष्टि पडती है। उसके मन में एक भाव उठा और उसने
क लोटा पानी लेकर सारा जल उसम उडेल दिया। मिट्टी म सनसनाहट हुई और मिट्टी
ी प्यास को नारी का प्रतीक बनाकर लखक ने लिख दिया—'यह गमला समाज है इसकी
यासी मिट्टी औरत है इसम डाला हुआ पानी पुरुष है। इसकी सनसनाहट इसका पकना
दरत है और इसके मिटन बनने बुलबुल इस समूची गति की सतान है।'[1] कितना
यगमय रूपक है 'प्यासी मिट्टी औरत हैं क्या? क्या इसीलिए नही कि वह सब महन
रती है निराशा चिन्ता घुटन उपेक्षा और कुण्ठा। फिर भी जीवित रहती है। पति और
रिवार को आदर दती है। प्रेम दती है अपनी चिर सचित पूजी देती है, और फिर
याग, तप और सवा स अपन व्यक्तित्व का हनन करके भी समाज को गति देती है गीता
ने क्या यह सब नही है? अवश्य है तभी तो वह अपने जीवन की आस्थाओ और भावनाओ
पर दृढतापूवक टिक रहन क निमित्त एक आश्रय चाहती है एक प्ररण चाहती है—एक
पौदे की प्रेरणा—कितना भव्य प्रतीक है तुलसी का बिरवा ही मानो उसके जीवन का
एक मात्र सबल हो उसके उठने गिरन भावद्वन्द्वो की तुला (Balance) हो। गमले को पाकर
उसकी मन वाटिका म हरियाली आन वाली नही वह तो गरु म राम नाम अकित वाले
धम्ब की बात सोचती है, धब्बे से गमल (काशी से लखनऊ) तक ही मानो उसका जीवन
श्रम का यात्रा भरी गाथा साकतिक भाषा म दे दी गई है गमल की सस्कृति म उसका
मानस हस मल नही खा रहा लखनऊ के सार वातावरण से उसे घृणा है तभी तो वह
उससे असम्पृक्त रहती है। उपन्यास के अत म वह अकेली अपन धुरु क पास काशी
लौट जाती है। और देवन को भी उस सस्कृति को अपनाने पर विवश कर दती है तभी तो
वह भी उसका अनुचर बन काशी की ओर उन्मुख होता है।

प्रस्तुत कृति मे हमे दो पात्रो का, दो नगरो का, दो सस्कृतियो का परिचय तुलना
त्मक साकेतिक शब्दो मे पढने को मिलता है। ये पात्र हैं—गीता और चित्रा, नगर है—
काशी और लखनऊ, सस्कृतिया है - पूर्वी और पाश्चात्य गीता भारतीयता की प्रतीक
है—*धमभीरु गम्भीर, और मर्यादामयी, चित्रा चचल ता है ही वाचाल भी है* और
उच्छृखल भी आत्म प्रवचना स पीडित होकर आत्म विश्लेषण करते हुए वह अपना और
गीता का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत करती है— मैं औरत कहा हू उसकी छाया हू। इस
मैंने तब जाना जब मैंने गीता को देखा। गीता सत्य मैं छाया। वह पत्नी। मैं रामास।
पत्नीत्व म रामास न जोडा देवन। वह बाधगी, मैं तोडूगी फिर अन्त क्या होगा? शून्य
अपरूप, घण्य। आप मुझे कभी भी त्याग देगा। हम म आधार नही है *तुम-गीता अलग*
नही हो सकने, क्योकि गीता जो है वह भूमि है भाव है आत्मा है पाथय है।[2] यह तुलना
त्मक चरित्र चित्रण विधि प्रतीकात्मक शिल्प विधि की आधार शिला है। बिना तुलना के
प्रतीक अधूरे से सकेत हल्के स और रूपक नियजित रह जात हैं। वास्तव म चित्रा छाया

---

१ काले फूल का पौदा—पृष्ठ ३२
२ वही—पृष्ठ १७१ ७२

मात्र है आधारहीन निर्द्देश्य निथक नि सीम पथ का भ्रात पथिका जिसम रोमास है तप्ति नही आकाक्षा है पाथेय नही, उ मुक्तता है विश्राम नही अतएव नियत गति भी नही। गीता म आधार है लक्ष्य है धम है जीवन की मदुता है अतएव उसकी गति निश्चित है। तुलसी के बिरवे म फूल आ जाने पर वह खिल उठती है। पति का सामीप्य उस इतना ही सुखद और मधुर लगता है जितना तुलसी के पौदे को जल किन्तु मन मुटाव के कारण देवन की उपेक्षा भी उसे इतनी ही खलती है जितनी तुलसी के पौधे को सूय की प्रखर गर्मी। देवन के वियोग म वह यही सोचती है कि तुलसी के काले-काले फूल अपने भीतर फल है और अनेक पौधे हैं। ये फूल अपनी सत्ता मिटा कर दूसरी सत्ता देते हैं—तभी झुके है तभी काले है—वह भी झुकती है किन्तु सिद्धात पर उसी भाति अडिग रहती है जिस भाति पुष्प की सुग ध। पुष्प मिट तो जाता है किन्तु समस्त वातावरण को सुगन्धित एव मादक बनाए देता है।

देवन लखनऊ नगरी का प्रशसक ही नही वह तो पाश्चात्य सस्कृति पर मनोमुग्ध और पाश्चात्य सभ्यता म रगी इस नगरी का पूरा दीवाना है। उसके मतानुसार बनारस की छोटी पिछडी और तग दिल की दुनिया है जब कि लखनऊ बडी व्यापक रगीला और आधुनिकता की प्रतीक नगरी है जो विद्युत की शक्ति से और विद्युत तुल्य रमणिया (जो कभी चमकती है कभी लोप हो जाती है) की जगमगाहट से परी लोक को भी मातकर रही है। जब कुछ क्षणा को विद्युत प्रकाश लुप्त होता है तो उसे लगता है—दुनिया एक ही क्षण म असख्य वर्षों पीछे चली गई और प्रकाश आते ही वह वही आ पहुची जहा से लौटकर पीछे गई थी। लखक न फ्लटा की नगरी लखनऊ के साथ साथ इन फ्लटो म रहने वाले मध्यवर्गीय प्राणियो की मार्मिक दशा पर भी दष्टिपात किया है जो सीधे स नौकर रख नही पाते पट काटकर तो अपनी बीबियो के लिए रोज नई से नई साडिया खरीदते हैं और किसी भी नए अतिथि के आ जाने पर नाक भी सिकोडने लगते है। एक ही फ्लट के तीन खण्डो म रहने वाले तीन परिवारो का जीवन नितान्त असम्पक्त है। पाश्चात्य सभ्यता की नकल को फशन समझा जाता है और पूर्वी सस्कृति की दुहाई देने वाला को दुराग्रही। फ्लटा की निवासी औरतें पहले साहब लोगो से मेल मुलाकात कराने म अपना सौभाग्य और शिष्टाचार समझती है फिर उनको औरतो स या तो ईर्ष्या और या कलह मान लेना है। पाश्चात्य सस्कृति के अनुसार कलब नाच घर और सिनमा स दूरस्थ दम्पति मूढ और नव सभ्यता के घर म आने के अयोग्य घोषित कर दी जाती है।

प्रतिकात्मक शिल्प विधि की रचना म घटना इतिवत्तात्मक रूप धारण नही करती पात्र का ब्योरेवार चित्रण नही होता अपितु समस्त दश्य साकेतिक विश्लेषण द्वारा उभर कर सामने आ जाते हैं। लेखक को अपनी ओर स अधिक कहने का अवसर ही नही मिलता पात्र स्वय सामने आकर एक चित्र-सा प्रस्तुत कर देते हैं जिसम कुछ रेखाए होती हैं रग होते हैं गहरे होते हैं। गीता के काशी लौट जाने की कथा को कोई विस्तार नही दिया गया। देवन की मानसिक स्थिति के लम्बे चौडे विवरण अथवा विश्लेषण प्रस्तुत न कर सिर्फ एक वाक्य से न मकान था मकान म एक प्रकार जाकर गया वह लिया— मैं क दरवा जा ध्यान म था घबरा कर बाहर आ निकला हूं। ही है किन शान है। न

बेवी, न गीता न कालाहन। बस मैं और मेरा शरीर। शरीर में बाधा नहीं, क्योंकि मैं उसमें से निकल आया हूँ। मेरे किनारे का वातावरण ठीक उस शांत तालाब जैसा है जिसपर अभी अभी सध्या का सूर्य डूबा है। तब उसके नीर तल पर एक धागा निकला है—अपनी खाल से भी बाहर जैसे एक ही सत्ता के दो रूप यह क्या हो गया ? विवत में एक तिनका आ गया था। था तो तिनका पर विवत को ही ताड गया खुद न टूटा उसे ही बहा ले गया।"[३] इन शब्दों चित्रों में हम देवन की उदासीनता घुटन बिलबिलाहट और अस्त-व्यस्तता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस सबंध में एक आलोचक का मत दिया जाता है—

'काले फूल का पौदा' का शीर्षक अत्यन्त प्रतीकात्मक है और इस प्रतीक का निवाह उपन्यास में पूरी सफलता के साथ हुआ है। "प्रस्तुत रचना में भारतीय मध्यवर्ग के बुद्धिवादी व्यक्ति की दुविधा का पाश्चात्य सभ्यता से अनुरंजित प्राणी का जीवन के नये मूल्यों को अपनाने वाली नारी का और अतीत के आदर्शों से चिपके ठिठुरकर चलने वाली रमणी का चित्र प्रतीक के क्रम में मढ़ा हुआ देखने को मिलता है।[४]

तन्तुजाल—१९५८

तन्तुजाल प्रधान रूप से प्रतीकात्मक शिल्प विधि का उपन्यास है। इसमें वस्तु के स्थान पर शिल्प ही महत्त्वपूर्ण है। कथा वस्तु के नाम पर नायक और नायिका की जीवनगत स्मृतियों और कुछ अनुभूतियों का सकेतमात्र है। एक व्यक्ति दिल्ली से जयपुर तक रेल यात्रा के आठ घण्टों में जो सोचता है याद करता है वह मधुर है, अथवा कटु बस वही वस्तु है जो सगठित भी नहीं अधिक रोचक भी नहीं कही जा सकती किन्तु इस समय बीच नायक द्वारा कतिपय विचारधाराओं एव स्मृतियों का विश्लेषण तथा लेखक की प्रतीक योजना अवश्य ही शिल्पगत महत्त्व की बातें हैं जिनका विचार करना प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के उद्देश्य को पूर्ण करना होगा।

'तन्तुजाल' के शीर्षक को देखते ही पाठक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है—कैसे तन्तु ? कैसा जाल ? शीर्षक ही प्रतीकात्मक नहीं है अपितु इस विचार प्रधान रचना की एक एक पंक्ति उस एक एक पंक्ति का विश्लेषण और अन्वेषण जीवनगत उलझनों समस्याओं विचारधाराओं सिद्धान्तों और कतिपय तथ्यों का प्रतीक है। प्रतीक के रूप को स्पष्ट रूप से अंकित करने के लिए लेखक एक पीपल के पत्ते का उदाहरण देता है जिसके दो रूप (एक हरा भरा चचल और जीवन से स्पन्दित दूसरा सूखा नीरस और मात्र नसों का जाल) प्रस्तुत किए गए हैं—ये दोनों रूप जीवन के दो रूपों के प्रतीक हैं। पहले में जीवन की कोमलता मधुरता और मांसलता तथा दूसरे में जीवन का शोषण नैराश्य एव शुष्कता परिलक्षित होता है। इस प्रतीक की अभिव्यक्ति लेखक के इन शब्दों में हुई है—"मैं देखता रहता उन तन्तुओं को बारीक से बारीक तन्तु न जाने कितने

---

[३] काले फूल का पौदा—पृष्ठ १८१

[४] डा० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ २७७

घुमाव और पेड़ों के साथ पत्तों में फँसा हुआ है और सारे पत्तों में रस और हरियाली का संचरण इन्हीं तन्तुओं के माध्यम से हो रहा है और जब इन तन्तुओं में धीरे-धीरे जड़ता आती जाती है, पत्तों में कोई ऐसा कीड़ा लगता है जो उनके इन्हीं तन्तुओं को धीरे-धीरे सुखाने लगता है और तन्तुओं के सूखते ही पत्तों का रंग-रूप मुरझाता जाता है। उसका सारा बाह्य नष्ट हो जाता है और रह जाता है केवल उन्हीं सूखी नसों का तन्तुजाल।'[1]

तन्तुओं में आई जड़ता का कारण मानव कीड़ा है। यह कीड़ा जीवन में जड़ता लाने वाली वे परिस्थितियाँ हैं जो मनुष्य के सत्व को, उसके माधुर्य को, उसकी कोमल स्निग्ध भावनाओं और तीव्र विचार धाराओं को कुण्ठित प्राय कर देता है। ये परिस्थितियाँ ही उसकी कोमल भावनात्मक प्रवृत्तियों को नोच-नोच कर नष्ट-भ्रष्ट कर देती हैं। जड़ता, शून्यता और भावशून्यता की दशा में व्यक्ति को ले आती है। तन्तुजाल में यात्रा नायक की मानसिक अशान्ति, असंताप, निराशा और आत्म-लीनता को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। पर्वतीय शृंखलाओं को देखकर वह कहता है— जीवन ऐसा ही विशृंखलित ऐसा ही रहस्यमय है, जिसमें न जाने कितने आकर्षण हैं, कितने विकर्षण हैं।'[2] किन्तु उसके जीवन में आकर्षण कम है, विकर्षण ही अधिक हैं—नीरा की बीमारी और अनवरत बीमारी के कारण वह उद्दीप्त है, निराश है, मानसिक रूप से अशान्त है।

यात्रा के लिए यात्रा के आनन्द की अनुभूति का तो प्रश्न ही नहीं उठता। प्रतिक्षण उस नीरा की, उसके वह वाक्यों की स्मृति ही उद्वेलित करती रहती है। कम्पार्टमेंट में कौन आता है, कौन चला जाता है, उसके लिए महत्त्वहीन बातें हैं। वह अपने अन्तर्मन में विचरण करता है। उसके अन्तर्मन की स्थिति के लिए भी लेखक ने प्रतीक जुटाए हैं। वह लिखता है— युवक के मन में समतल उजाड़ मैदान कागज़ के पन्नों के समान फैल फैल जाता है और बीच में पहाड़ियों के छोटे-छोटे खण्ड आ जाते हैं। उसके मन पर भी रेखाएँ उभर आती हैं, रेखाएँ उभरकर तरंगों के रूप में उठती जाती हैं। तरल तरंगें कठोर होने लगती हैं और रेत के विस्तार में ठोस पर्वत शृंखला के रूप में फैलकर टकराने लगती हैं। युवक अपने आप में उलझा है—तन्तु कुछ टूट रहा है। क्या है वह? नीरा बीमार है।'[3] नीरा ही उसके जीवन की सबसे बड़ी उलझन है, उसके नैराश्य, चिंता और मनन का सूत्र है।

तन्तुजाल प्रतीकात्मक शिल्प विधि की वह रचना है जिसमें अन्तश्चेतना का प्रतीकात्मक प्रयोग मिलता है। यात्रा के संस्मरण घटना प्रधान अथवा वर्णन प्रधान नहीं हैं। वे विचार प्रधान और विश्लेषण प्रक्रिया से ओत-प्रोत हैं। नरेश और नीरा के मानसिक द्वन्द्व, नरेश के विचारों का चेतना प्रवाह लेखक की अन्तर्दृष्टि और सूक्ष्म चित्रण के परिचायक हैं। नरेश और नीरा दोनों ही पूर्ण रूप से आत्मकेन्द्रित और अन्तर्मुखी पात्र हैं। दोनों ही एक-दूसरे का जीवन में सबसे अधिक चाहते हैं किन्तु पाते नहीं हैं—यदि पाते हैं

---

१ रघुवंश : तन्तुजाल—पृष्ठ ३८२, ३८३

२ वही—पृष्ठ ३८३

३ वही—पृष्ठ ६

ता व हैं, क्षणिक सौहाद एव साहचय क मधुर क्षणा की मधुर स्मृति जा उनके चेतना प्रवाह का एक अविभाज्य अग बन गई है। रल की यात्रा के समय चेतना प्रवाह म बहता हुआ नरेश कहता है—' यह कौन सा सूत्र है कौन-सा त तु है जा दा प्राणिया को इस प्रकार अभिन बना दता है जीवन क्या इस तन्तु स ही बना हुआ है और य त तु हैं कि जीवन को कसकर बाधे हुए हैं ? *लगता है कि जिस दिन य त तु ढीले पडे, या इनका ताना-बाना* ढीला पडा उसी दिन सारा जीवन बिखर जाएगा, फल जाएगा निश्चय ही आदमी क जीवन म कोई अपनेपन का तन्तु रहता ही है जा उसक जीवन को रस देता है अथ देता है। 'यह एक मधुर प्रसग है लखनऊ म नरश और नीरा के एक साथ बीते कुछ मादक क्षणा की स्मृति है जो नरेश का आम विस्मृत किए है। नरेश का अस्तित्व ट्रन की गति के साथ नहीं प्रकृति के दश्या क साथ भी नहीं, अपितु कतिपय क्षणा के साथ चलता है। व क्षण जा मूल्यवान हैं, इसलिए कि उनका अपना निजी यक्तित्व है। क्षणा के यक्तित्व की धारणा अस्तित्ववादी विचारका की मौलिक दन है। जिसका प्रयोग सुचारु रूप स 'त तुजाल' म हुआ है। केवल नरेश ही नहीं नारा भी क्षण के महत्त्व को स्वीकार करती है। वह एक मधुर क्षण की कल्पना कर निराशा चिन्ता और यातना क अनगणित क्षण हसकर काट दती है। एक आशा, एक आकाक्षा और एक मधुर क्षण की कल्पना (नरेश साक्षात्कार की कल्पना) उसे शक्ति देती है। वह शक्ति जो उसके अस्तित्व और चेतना का त तुजाल से लपटे है। यह त तुजाल प्रम माधुय और रहस्यपूण बधन का प्रतीक सूत्र है जा दो शरीरा को ही नहीं दा आत्माआ का सदव निकट अति निकट बाधकर रखता है। *नरेश का नीरा और नारा का नरेश का अनुभूति प्रतिक्षण मधुर लगती है।* नरेश क जयपुर पहुचने पर लेखक न नीरा की अनुभूति का इन शब्दा म अभिव्यक्त किया है— उसके अस्तित्व क त तुआ की लपट म जस कोई आ गया है और वह उस सघनता स जकडती जाती है उसके त तुओ म इतनी लाच आ गई है कि व अब फलन म जसे टूट सकत ही नहा। ' इस उदात्त प्रम का प्रतीक न मानें तो क्या यह सूझ की कमी नहीं हागी ? यही ता जीवन को सचालित करने वाली शक्ति है।

रोडे और पत्थर—१९५८

'राड और पत्थर डा० देवराज का प्रतीकात्मक शिल्प विधि म रचा गया एक लघु उपन्यास है यह एक मध्यवर्गीय यक्ति की महत्त्वाकाक्षी भावनाआ की प्रतीकात्मक गाथा है जीविका से क्लर्क, किन्तु रुचि स स्कालर हरीश का मन एक ओर इतिहास म डूबकर उसकी नव व्याख्या करने का स्वप्न देखता है दूसरी आर अपनी छाटी-सी गहस्थी क लिए छाटा सा घर बनाने की चि ता म निमग्न है प्राइवेट एम० ए० पास करके प्रथम स्थान पान पर भी सामाजिक विषमता और धाधली के कारण मन चाही नौकरी न पाने के कारण उसका मन अपनी क्षुद्रता की चेतना से सहचरित उदासी का अनुभव करता है।

---

३ त तुजाल—पृष्ठ २९८

४ वही—पृष्ठ ४४६

सब सामग्री विद्यमान रहता है जिसे कथाकार रचना का प्रयोगात्मक तथा सार्वत्रिकता के लिए आवश्यक मानता है। उपन्यासकार की इस सम्भावना उस नाटककार की सामान्यता में मान ली गई है और उपन्यासकार ने नाटकीय उपन्यासकार बनने की चाह में नाटक के मात्र प्रधान गुण नाटकीयता को ग्रहण कर अपने कथासूत्र में या कथा में नाटकीय शिल्प विधि का संयोजन कर लिया।

नाटकीय शिल्प विधि का कथाकार प्रत्येक कथ्य को वार्ता प्रमुख बनाकर घटना और पात्र में उत्तरोत्तर संघात उत्पन्न करता हुआ अधिक से अधिक मात्रा में प्रभावात्मक बनाता जाता है। इस शिल्प विधि को अपनाने वाले कथाकारों ने अपनी घटनाओं को ऐसे चयनित क्रमित किया है कि उनका प्रवेग (Tempo) पाठक के मन में गहन स्थगनानुभूति (Feeling of Suspense) करता गया। कथाकारों ने इस विधि को अपनाते हुए अपनी रचना भी करनी और मृगनयनी में रमा ने तथा चित्रलेखा तथा गुनाहों का देवता के रचनाकार ने दृश्य विधान शैली (Scene Style) अपनाया—ये कथाकार अपने उपन्यासों में सीमित अभिव्यक्ति सीमित दृष्टिकोण सीमित स्थान और सीमित समय लेते हैं।

चित्रलेखा—१९३४

चित्रलेखा परिस्थिति घटना और चरित्र को एक-दूसरे के संवादों में उद्घाटित करने वाला हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। भगवतीचरण वर्मा द्वारा रचित नाटकीय शिल्प विधि की इस रचना को पढ़ते ही पाठक का ध्यान प्रत्येक परिस्थिति और घटना के साथ साथ पात्रों की वार्ता पर केन्द्रित हो जाता है। चित्रलेखा के वस्तु विन्यास का गठन पात्रों के कथोपकथन पर आधारित है तथा कथावस्तु और पात्रों के कार्य व्यापार में अद्भुत समन्वय हुआ है। इस उपन्यास का समारम्भ नाटकीय है। संवादों का लघु विस्तारी रूप स्थिति की गम्भीरता उद्घाटित करता है। उपन्यास की उपक्रमणिका में श्वेतांक द्वारा उठाई गई समस्या— और पाप नाटकीय प्रभाव रखती है। उपक्रमणिका में गुरु रत्नाम्बर और उनके दो शिष्य श्वेतांक तथा विशालदेव वार्तालाप द्वारा परिस्थिति और पृष्ठभूमि की ओर संकेत कर देते हैं। श्वेतांक और विशालदेव को मंच पर खड़ा करके रत्नाम्बर और उपन्यासकार दोनों परोक्ष में खड़े हो जाते हैं। श्वेतांक को बीजगुप्त और विशालदेव को कुमारगिरि के परिवेश में डालकर जिज्ञासा और कुतूहल का विकास होने लगता है।

प्रस्तुत उपन्यास के संबंध में आलोचकों का मत अस्पष्ट असंगत और भ्रमात्मक रहा है। एक आलोचक इसे वर्णनात्मक शैली की रचना मानते हुए लिखते हैं— इतने पूर्व-कथन के पश्चात वर्णनात्मक शैली में लिखे गए इस उपन्यास की कथा का व्यावहारिक रूप से प्रारम्भ होता है—सामंत बीजगुप्त और नर्तकी चित्रलेखा की विलास क्रीडा से।[1] एक अन्य आलोचक इस मत का खंडन करते हुए इस नाटकीय शैली की रचना तो मान

---

१ डा० प्रतापनारायण टंडन हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास—पृष्ठ ३५२

लते हैं किन्तु उन्हें पात्रों के वाद विवाद और कथावस्तु के गठन पर आपत्ति है। उन्होंने लिखा है— पाप और पुण्य की समस्या को नाटकीय शैली में उपस्थित किया गया है उपन्यास में पात्रों के वाद विवाद कथानक को रसहीन तथा गतिहीन बनाते हैं।'[२] प्रस्तुत प्रबंध के लेखक मतानुसार दोनों धारणाएं बीच-बीच में अस्पष्ट और असंगत हैं। 'चित्रलेखा' अवश्यमेव नाटकीय शिल्प विधि की रचना है। इसका आरम्भ ही नहीं मध्य और अन्त भी परम नाटकीय एवं प्रभावपूर्ण है। उपन्यास आद्योपान्त नाटकीय शैली में रचा गया है। इसमें वर्णनात्मकता या विश्लेषणात्मकता की गंध तक नहीं मिलती। पात्रों के कथोपकथन कहीं भी विस्तृत या नीरस नहीं हुए। ये संक्षिप्त, नाटकीय प्रभाव रखने वाले परिस्थिति को स्पष्ट करने वाले परम आकर्षक एवं रुचिकर हैं। वास्तव में इन्हें चित्रलेखा का प्राण तत्त्व कहा जा सकता है। पात्र उपन्यास के पृष्ठों में आकर ऐसे वार्ता करते हैं जैसे नाटक में मंच पर अभिनेता। पहले परिच्छेद में ही छलकते हुए मदिरा पात्र को चित्रलेखा के मुख से लगाते हुए बीजगुप्त कहता है— चित्रलेखा! जानती हो जीवन का सुख क्या है?' उसके अधरों ने बीजगुप्त के अधरों में मौन वार्ता कर धीरे से कह डाला 'मस्ती'।[३] आगे चलकर जब वे वार्ता करते हुए कहते हैं— 'तुम मेरी मादकता हो'— और तुम मेरे उन्माद'[४] तो पाठकीय आकर्षण द्विगुणित हो जाती है। ऐसे मधुर संलापों से उपन्यास भरा पड़ा है। ये वार्ताएं उपन्यास की प्रत्येक गति विधि का संचालन करती हैं। इन्हें कथानक को रसहीन बनाने वाला तत्त्व कदापि नहीं कहा जा सकता। इनके द्वारा कथानक में गति और प्राण दोनों तत्त्वों का संचार हुआ है। इनके द्वारा ही उपन्यास नाटकीय शिल्प विधि का बन पड़ा है। इनके द्वारा कथा का विस्तार भार हल्का हो गया है।

चित्रलेखा के कथानक में नाटकीय स्थितियों की प्रचुरता है। इसे पढ़कर चन्द्रगुप्त मौर्य के समय का भारत हमारे सामने चित्ररूप में प्रस्तुत हो जाता है। महायज्ञ के अभिमन्त्रित धूम्र से सुवासित राज प्रासाद का विशाल प्रांगण, अतिथि, मन्त्री और नर्तकी चित्रलेखा तथा विद्वमण्डली तत्कालीन समाज और राजनैतिक अवस्था के परिचायक हैं। चाणक्य और कुमारगिरि वाद विवाद, चित्रलेखा का नृत्य और श्वेताङ्क नृत्य के बीच कुमारगिरि का देदीप्यमान रूप धारण कर ईश्वर का निर्वाण की बात कहना और उसे दिखाना नाटकीय घटनाएं हैं। एक आलोचक 'चित्रलेखा' को अनातोल फ्रांस के प्रसिद्ध उपन्यास थाया की छाया बताते हुए लिखते हैं— कथानक में फ्रांस के प्रसिद्ध कलाकार अनातोल के उपन्यास थाया की कुछ प्रच्छन्न छाया दिखाई पड़ती है, किन्तु मूल आधार इस उपन्यास का भारतीय उपनिषद से निर्मित है।'[५] आलोचक ने तो मूल आधार का पता लगाने की चेष्टा भर की है किन्तु स्वयं उपन्यासकार ने इस असंगति के निराकरण हेतु लिखा है—'मेरी चित्रलेखा और अनातोल फ्रांस की थाया में उतना ही अन्तर है जितना

---

२ डा० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ १७ १८

३ चित्रलेखा—पृष्ठ ६

४ वही—पृष्ठ

५ गंगाप्रसाद पाण्डेय हिन्दी कथा साहित्य—पृष्ठ १६६

मुझ म और अनातोल फ्रास म। चित्रलेखा म एक समस्या है मानवी जीवन के तथा उसकी अच्छाइयो और बुराइयो के देखने का मेरा अपना दृष्टिकोण है और मेरी आत्मा का अपना सगीत भी है।[6] मैं उपन्यासकार के कथन स सहमत हू। 'चित्रलेखा म इतिहास केवल पष्ठभूमि का काम करता है। शेष कथानक कल्पना के आश्रय सम्पादित हुआ है और यह कल्पना अनातोल फ्रास से उधार ली गई कल्पना नहा है लेखक की पक्ति म उसकी आत्मा के सगीत का झकार है। एक एक पात्र के व्यक्तित्व म उसके भावा और विचारा का सगम है।

चित्रलेखा कुमारगिरि और बीजगुप्त म हम मानव हृदय की समस्त भावनाए— जसे राग द्वेष ईर्ष्या प्रेम मोह साहस त्याग घृणा क्रोध निष्ठा भक्ति आदि दिखाई देते हैं। श्वेताक जसे ब्रह्मचारी यौवन के स्पन्दन को अनुभव करने लगते हैं। वह वासना को पाप समझता है किन्तु चित्रलेखा उसे नया पाठ पढ़ाती है— श्वेताक तुम भूल करते हो। जिसे तुम साधना कहते हो वह आत्मा का हनन है। मैंने तुम्हे केवल इतना दिखलाया है कि मादकता जीवन का प्रधान अग है। रही तुम्हारे हृदय म ज्वाला उत्पन्न करन की बात मैंने तुम्हे केवल जीवन का वास्तविक महत्त्व दिखलाया है।[7] श्वेताक कुमारगिरि बीजगुप्त और चित्रलेखा मानसिक रूप स उद्विग्न हैं किन्तु फिर भी उपन्यासकार इनकी मन प्रकृति का विश्लेषक नही बनता वह केवल निर्देशक है और उसके निर्देश म ये पात्र वार्ता द्वारा एक-दूसरे की परिस्थिति और मानसिक स्थिति का अन्वेषण प्रस्तुत करते है विश्लेषण या वर्णन नही करते। पात्रो के चारित्रिक उत्थान-पतन सवादात्मक विधि द्वारा सम्पन्न हुए हैं। चित्रलेखा बीजगुप्त प्रणय मैत्री की विकास-सूचिका दोना की प्रेमवार्ता या स्वगत कथन के व स्थल है जिनम नाटकीयता है। यशोधरा के प्रसग की उदभावना बीजगुप्त के पावन प्रेम का मापदण्ड है। चित्रलेखा उपन्यास की सबसे सशक्त पात्र है जो अपनी शक्ति का परिचय अपने सबल सवादो क द्वारा देती है। कुमारगिरि के यह कहने पर कि स्त्री अधकार है मोह है माया है और वासना है वह प्रतिकार स्वरूप कहती है— रही स्त्री क अधकार तथा माया होने की बात योगी वहा भी तुम भूलते हो। स्त्री शक्ति है। वह सृष्टि है यदि उसे सचालित करन वाला व्यक्ति योग्य है वह विनाश है यदि उसे सचालित करन वाला व्यक्ति अयोग्य है। इसलिए जो मनुष्य स्त्री स भय खाता है वह या तो अयोग्य है या कायर। अयोग्य और कायर दोना ही व्यक्ति अपूर्ण है।[8]

वर्णनात्मक शिल्प विधि के उपन्यासकार की भाति पात्रो का चरित्राकन करन म पृष्ठ क पृष्ठ नही रगे गए। नाटकीय विधि द्वारा उपन्यासकार तुलनात्मक चरित्र चित्रण करता है— कुमारगिरि और चित्रलेखा दोना ही अहभाव स भरे महत्त्वाकाक्षा क दास है और दोना हा ममत्व की तुष्टि पर विश्वास करते हैं। पर दोना क साधन विपरीत हैं। एक साधना का शरण लता है दूसरा न आत्म विश्वास की। इसी भाति चित्रलेखा तथा

६ उपन्यासकार का दृष्टिकोण भूमिका से अवतरित
७ चित्रलेखा—पृष्ठ २६
८ वही—पृष्ठ ५३
९ वही—पृष्ठ ५६

यशोधरा के चरित्र की तुलना की गई है। कुमारगिरि और बीजगुप्त जीवन के दो कोण हैं। दोनों की परिस्थितियां भी भिन्न हैं। बीजगुप्त को उपन्यासकार की पूर्ण सहानुभूति मिली है। इस सबंध में एक आलोचक लिखते हैं—"वर्मा जी जीवन को कर्मक्षेत्र मानते हैं और उससे विमुखता अकर्मण्यता। आपकी योगी कुमारगिरि के प्रति सहानुभूति नहीं और उसका पतन आपने कुछ द्वेष भाव से दिखाया है। 'चित्रलेखा' का निष्कर्ष यह निकलता है मुक्ति तृप्ति है और शान्ति अकर्मण्यता। पर जीवन अविकल कर्म है, न बुझने वाली पिपासा है। जीवन हलचल है परिवर्तन है और हलचल तथा परिवर्तन में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं।"[10]

'चित्रलेखा' में प्रेम और विवाह दुख और सुख नारी और पुरुष, परिस्थिति और व्यक्ति, पाप और पुण्य आदि गुरु गम्भीर समस्याओं का विवेचन नूतन नाटकीय शिल्प विधि द्वारा प्रस्तुत हुआ है। दृश्य विधान कथानक और विचार पर छाया रहता है। पात्र स्वयं उपन्यास मंच पर आ आकर अपने मनोद्वेगों की विवृत्ति अपने संवादों द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। व्यंग्यपूर्ण भावात्मक संवाद द्वारा चित्रलेखा प्रेम और वासना का अंतर स्पष्ट करती है—'वासना के कीड़े! तुम प्रेम क्या जानो? तुम अपने लिए जीवित हो ममत्व ही तुम्हारा केन्द्र है—तुम प्रेम करना क्या जानो? प्रेम बलिदान है, आत्म त्याग है ममत्व का विस्मरण है।'[11] बीजगुप्त के मतानुसार स्त्री-पुरुष का चिर स्थायी संबंध ही विवाह है।[12] उसका दृष्टिकोण है—मनुष्य अनुभव प्राप्त नहीं करता, परिस्थितियां मनुष्य को अनुभव प्राप्त कराती हैं।[13] वह अपने बारे में मनन करता हुआ इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि मनुष्य परतंत्र है परिस्थितियों का दास है लक्ष्यहीन है। एक अज्ञात शक्ति प्रत्येक व्यक्ति को चलाती है। मनुष्य की इच्छा का कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य स्वावलम्बी नहीं है वह कर्त्ता भी नहीं है साधन मात्र है।[14] इन्हीं परिस्थितियों के आवर्त में कुमारगिरि का संयम स्खलित होता है और इन्हीं के परिवेश में बीजगुप्त महान त्यागी और उदारचेता बनता है। लेखक ने पात्र द्वारा पाप पुण्य की व्याख्या भी करा दी है। उपन्यास के अन्त में पाप की व्याख्या करते हुए महाप्रभु रत्नाम्बर कहते हैं—'संसार में पाप कुछ भी नहीं है वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। जो कुछ मनुष्य करता है वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है वह परिस्थितियों का दास है विवश है। वह कर्त्ता नहीं, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा? संसार में इसलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी—और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं जो हम करना पड़ता है।'[15] परिस्थिति नियति और प्रकृति के

---

१० प्रकाशचन्द्र गुप्त नया हिन्दी साहित्य एक दृष्टि—पृष्ठ १७५
११ चित्रलेखा—पृष्ठ १७३
१२ वही—पृष्ठ ८६
१३ वही—पृष्ठ १०६
१४ वही—पृष्ठ १५७
१५ वही—पृष्ठ १६२

भाग मनुष्य कितना निरुपाय एव असहाय है यह सब चित्रलेखा द्वारा नाटकीय ढग से पाठक क सामन प्रस्तुत है। उपन्यास का प्रारम्भ जितना नाटकीय है अन्त उतना ही प्रभावशाली। प्रत्यक परिच्छेद की प्रस्तावना नई नई परिस्थितियों तथा दृश्यों क साथ हुई है जसे रगमच पर नय प्रकरण क साथ नय दृश्य विधान परिवर्तित होत चलते है। सवादों द्वारा नाटकीय शिल्प विधि की सौन्दर्य वृद्धि हुई है।

दिव्या—१९४५

दिव्या म यशपाल न वर्णनात्मक शिल्प विधि का आश्रय न लकर नाटकीय शिल्प विधि का प्रश्रय लिया है। इस उपन्यास म कथानक और चरित्र चित्रण म सतुलन है। समस्त कथा का विकास नाटकीय विधि क साथ हुआ है। एक एक घटना एक एक चरित्र का पूरी तरह प्रभावित करती चलती है। प्रत्यक चरित्र नए दृश्य की योजना म गत्यात्मक योग देता है। नाटकीय शिल्प विधि की रचना शली क कारण दिव्या की एकसूत्रता म व्यवधान नहा आने पाया। प्रस्तुत उपन्यास एतिहासिक नहा है इतिहास आश्रित है। इस तथ्य की स्वीकृति म उपन्यासकार लिखता है— दिव्या इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना-मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है। कला के प्रति अनुराग स लखक ने काल्पनिक चित्र म ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथाथ का रग दन का प्रयत्न किया है।[1] उपन्यासकार का यह कथन तथ्यपरक है। दिव्या का कथानक पूर्णरूपण एतिहासिक नहा है पात्र भी कल्पित हैं किन्तु इसम बौद्धयुगीन समाज का यथाथ चित्र प्रस्तुत हुआ है। पात्र भी प्राक्कथन म यशपाल ने एक और बात भी कही है जिसका सबध उनक मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी जीवन दर्शन स है। व लिखते हैं— मनुष्य केवल परिस्थितियों का सुलझाता ही नहीं वह परिस्थितियों का निर्माण भी करता है। वह प्राकृतिक और भौतिक परिस्थितियों म परिवतन करता है सामाजिक परिस्थितियों का वह स्रष्टा है।[2] उपरोक्त दृष्टिकोण भगवतीचरण वर्मा के नाटकीय उपन्यास चित्रलेखा म प्रस्तुत दृष्टिकोण मनुष्य परिस्थितियों का दास है वह कर्ता नहीं[3] स विपरीत पडता है। किन्तु इसका निर्वाह यशपाल द्वारा सम्पन्न नहीं हुआ। दिव्या क पात्र भी चित्रलेखा क पात्रों की भाति परिस्थितियों के आग सघष करने के पश्चात आत्म समपण कर देते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का समारम्भ नाटकीय प्रभाव रखता है। आरम्भ का अन्त ही पाठक का ध्यान दिव्या और उससे सबधित घटनाओं की ओर आकृष्ट हो जाता है। समस्त कथा का विभाजन मधुपव धमस्थ का प्रसाद दिव्या आदि तेरह अध्यायों म किया गया है। य अध्याय नाटक म नियोजित अकों की भाति हैं। इनम शीषक अनुरूप कथा प्राप्य है। मधुपव म तत्कालीन उत्सवों का रीति-नीति और धार्मिक अनुष्ठानों

---

१ यशपाल दिव्या—प्राक्कथन—पष्ठ ५
२ वही—पष्ठ ५
३ भगवतीचरण वर्मा चित्रलेखा—पष्ठ १९२

का नाटकीय चित्र उपलब्ध है। उनकी वेश भूषा तक को एक नाटककार की बारीकी के साथ चित्रित किया गया है — अभिजात पुरुष और कुल स्त्रियां पद के योग्य वस्त्र आभूषण अपने वर्ण और वंश स्थिति के अनुकूल धारण किए थे। ब्राह्मण स्वर्ण के तार से कढ़ लाल रेशम के उष्णीष से सिर के केशों को बांधे थे। उसके मस्तक और भुजा पर श्वेत चन्दन का सौर था। श्मश्रु मुण्डे हुए। उनके कण्ठ की मुक्ता मालाओं में कृष्ण रुद्राक्ष शोभित थे। कन्धों से लहराते उत्तरीय के नीचे अस्पष्ट झलकती रसा कटि से नीचे स्वच्छ अन्तरवासक पर पीले यज्ञोपवीत में प्रकट हो रही थी। क्षत्रिय स्वर्ण खचित शुभ्र वस्त्र धारण किये थे उनके कानों, कंठ भुजा और कलाइयों पर रत्न-जटित आभूषण थे। श्रेष्ठियों के वस्त्र बहुमूल्य किन्तु ढीले ढाले। गण परिषद के सदस्य कंधों पर अजानुकेशरी कंचुक धारण किए थे।'[४]

चित्रलेखा की भांति दिव्या की नाटकीयता भी असंदिग्ध है। कथानक का विकास आकर्षक संवादों तथा रोचक नाटकीय स्थितियों द्वारा सम्पन्न हुआ है। भाव परिवर्तन के समस्त दृश्य स्वाभाविक एवं नाटकीय हैं। विजयगामी पृथुसेन अपनी प्रियतमा दिव्या को विस्मृत कर देते हैं। यहीं से उपन्यास में कथा की मार्मिकता बढ़ जाती है। पृथुसेन की नई प्रियतमा और भावी पत्नी सीरो उसके द्वारा उठाए दिव्या संबंधी कोमल भावों को अभिनयात्मक विधि द्वारा परिवर्तित करती है। उसमें दृढ़ता है। वह निश्चयात्मक रूप से कहती है — 'आर्यों में स्त्री केवल भोग्या और दासी है। वह अपने प्रियतम के हृदय की एकछत्र रानी अन्त पुर की एकमात्र स्वामिनी बनेगी।'[५] किन्तु अन्त में वह मात्र भोग्या बनकर रह जाती है। यह सब नाटकीय विधि द्वारा प्रदर्शित होता है। घटनाचक्र दिव्या को घर छोड़ने पर विवश करता है। वह पग पग पर परिस्थितियों द्वारा प्रताड़ित होकर यह कहने पर विवश होती है—'धीर रुद्रधीर कोमल पृथुसेन अभद्र मारिश और मातुल वक नारी के लिए सब समान है। जो भोग्या बनने के लिए उत्पन्न हुई है, उसके लिए अन्यत्र शरण कहां ? उसका सब भाग्य ही।'[६] कथा में दिव्या को भोग्या रूप प्रतुल द्वारा बच जाने के पश्चात भूधर और चक्रधर के घर दासी रूप में अपनी अन्तिम दुर्दम्य अवस्था को प्राप्त होता है। उसे अपनी ही संतान को पूरा दूध पिलाने का अधिकार नहीं। ये दृश्य घटनाएं कम और भाव प्रदर्शन अधिक संयोजित करते हैं। नारी की असहाय अवस्था का प्रदर्शक यह नाटकीय उपन्यास पाठक के हृदय में एक हलचल पैदा करता है। इसीलिए एक आलोचक इसके संबंध में लिखते हैं— एक विशेष दृष्टिकोण से लिखा जाकर भी यह उपन्यास बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है। कहानी में कृत्रिमता नहीं आने पाई है। प्रवाह सहज है संवाद पात्रानुकूल है वातावरण वर्ग विन्यास राजनीति, सभी के अंकन में सतर्कता है। आरम्भ और अन्त दोनों में ही हृदय पर प्रभाव डालने की शक्ति है। आरम्भ में दिव्या की मरालो नृत्य और अन्त में जीवन के अनुभवों से त्रस्त दिव्या का

---

४ दिव्या—पृष्ठ १० ११
५ वही—पृष्ठ १२६
६ वही—पृष्ठ १४४

चाहे फलाकर मारिश की ओर बढना दानो म ही नाटकीयता है ।'[७]

न्यिया के पात्रा म पयाप्त नाटकीयता है । आत्मगत पर गव करन वाला आचाय स्थूलधीर अनक स्थला पर अपन तेज का परिचय देता है । उन्मुक्त प्रकृति वाला पयुसन समाज की घणा विद्वेष और वितष्णा का पात्र बनता है । मारिश केवल अनीश्वर वादी ही नही है लखक के भौतिकवादी जीवन दशन का यारयाता भी है । भाग्य उसकी दृष्टि म मनुष्य की विवशता का दूसरा नाम है । कमवाद का खण्डन वह साम्यवादी शक्ति के साथ करता है । कला को उपकरण और नारी का सष्टि का साधन मात्र कहकर उसने यह दिखा दिया है कि कथाकार चरित्र को अपने प्रतिपादन के अतगत विशेषवाद के रूप म प्रस्तुत कर रहा है । और यह वाद भोगता है । इसके सबध म एक आलोचक लिखत है— जिस भोगवाद का समथन मारिश करता है उस काल म उसकी गध तक नही थी । जितन भी तत्कालीन दाशनिक सिद्धात थ सभी मोक्ष को प्रधान स्थान देते थ । जीवन की स्थिरता की ओर लोगो का कुछ भी आकषण नहा था चाहे वह बुद्धि का निर्वाण हो चाहे वणनाश्रम का मोक्ष । हा चारवाक ने उसके पूव भोगवाद के सिद्धात का प्रतिपादन किया था जो उसम कुछ भिन्न न था । उपन्यासकार का तो दावा है कि मारिश 'चारवाक' ही है । 'मारिश का चारवाक का रूपातर बनाना ऐतिहासिक दृष्टिकोण स भल ही असगत हो नाटकीय विधा पर यह पूरा उतरता है । किसी पात्र द्वारा दूसरे पात्र का सफल चरित्राकन अभिनय त्रिविध के उपन्यासा म ही सभव हुआ है ।

न्यिया सीरा अमता आदि नारी पात्रा का व्यक्तित्व भी निखरा हुआ है । न्यिया की उपस्थिति मात्र उपन्यास का नाटकीय बना रही है । उपन्यासकार ने उसे प्रत्येक परि स्थिति म नाटकीय रूप म प्रस्तुत किया है । उसका चरित्रगत परिवतन परिस्थितिगत विषमता का परिणाम है । उसका परिवार उसके सबधी उसके परिवेश म आने वाल समाज का प्रत्यक प्राणी उसके साथ जो व्यवहार करते हैं वह पूण अभिनयात्मक है । परिस्थितिया पट की भाति परिवर्तित होकर न्यिया को पहले दासी फिर गणिका बनाती है और फिर अशुमाली । रत्नप्रभा के अक स निकलन के बाद जब न्यिया पुन सागल आकर मल्लिका द्वारा उसकी उत्तराधिकारिणी घोषित होती है तब उसके प्रेम द्वार का याचक कठोर और भाग्यहीन भिखारी स्थूलधीर ही उसे अधिक अपमानित करता है । इस प्रसग म कितनी मार्मिकता और नाटकीयता भरी है । अत म भी उसका प्रताडित उत्पीडित, चित्रित रूप पाठक को प्रत्यक्ष रूप म व्यथित और प्रभावित करता है । न्यिया के व्यक्तित्व के सबध म एक आलोचक यह मन्तव्य प्रकट करते हैं— नारी पात्रा म न्यिया जो करुणा की प्रतिमा है उपन्यास का केन्द्रबिन्दु है । उसकी कला प्रियता उभरता हुआ यौवन कामलता इत्यादि उसके व्यक्तित्व को दिव्य बनान म योग देता है ।'[८] न्यिया के प्रतिबिम्बित रूपा के द्वारा भी उपन्यास म नाटकीयता आता है । उसम जीवन का मार्मा

---

७ डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ ३३६ ३३७

८ डॉ० त्रिभुवनसिंह हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद—पृष्ठ २०६

९ डॉ० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ ३८४

है उल्लास है और उच्छ खलता है।

दिव्या में उपन्यासकार ने एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। अतीत केवल मुग्धकारी और अलौकिक नहीं था। तत्कालीन समाज का व्यक्ति भी आज के व्यक्ति की भांति प्रेम, करुणा, भय ईर्ष्या क्रोध प्रपंच आदि मनोभावनाओं से ग्रस्त था। उपन्यास में प्रस्तुत वर्णन, संवाद स्थितियां इस प्रकार से संयोजित हुई हैं कि मानव के ये मनोविकार नाटकीय प्रभाव के साथ फूट पड़े हैं। धार्मिक आडम्बर, वर्णभेद दास प्रथा आदि समस्याओं का विस्तृत वर्णन नहीं, सूक्ष्म एवं मार्मिक दिग्दर्शन कराया गया है। दार्शनिकता से बोझिल प्रसंगों को भी यौन संबंधी आचरणों के साथ मिश्रित करके प्रभावात्मक एवं नाटकीय बना दिया गया है। उपन्यास की नाटकीयता के विषय में एक आलोचक लिखते हैं—'जान पड़ता है दिव्या प्रसादजी की नाटकीय परम्परा की एक कड़ी है। 'दिव्या' के द्वारा यशपाल जी ने सिद्ध कर दिया कि वर्तमान जीवन की उथल पुथल में भी वह अपने अतीत का सर्वथा विस्मरण नहीं करना चाहते।'' प्रसाद के उपन्यासों में नाटकीयता के संबंध में इस मत में प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को विश्वास नहीं है किन्तु दिव्या को वह पूर्णरूपेण नाटकीय शिल्प विधि की रचना मानता है। इस रचना में उपन्यासकार ने ऐतिहासिक तथ्यों, यथार्थ अथवा कल्पना प्रधान स्थितियों तथा सामाजिक मान्यताओं को नाटकीयता प्रदान की है।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई—१९४६

नाटकीय शिल्प विधि की रचना में संघर्ष दो प्रकार से अभिव्यक्त होता है। यदि उपन्यास सामाजिक, ऐतिहासिक या आंचलिक प्रवृत्ति को लेकर चलता है तो पात्रों के बहिर्जगत में संघर्ष प्रस्तुत होता है और यदि उपन्यास मनोवैज्ञानिक या दार्शनिक प्रवृत्ति का उद्घाटक होता है तो एक या दो पात्रों के अंतर्जगत का द्वन्द्व अभिव्यक्ति पाता है। 'चित्रलेखा' में इसी प्रकार के द्वन्द्व का अन्वेषण किया जा चुका है। अब 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' और मृगनयनी आदि उपन्यासों में चित्रित संघर्ष और उसकी प्रभावाभिव्यक्ति का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का अध्ययन मैंने अनेक बार एक लेखक की तरह किया पर थीसिस की मूल प्रति में इसे सम्मिलित न कर सका। मेरे दोनों परीक्षक डा० केसरी नारायण शुक्ल तथा (स्वर्गीय) आचार्य वाजपेयीजी को यह बात अखरी और उन्होंने साक्षात्कार के समय यह बात कही कि यह तो डा० वर्मा की एक क्लासिक रचना है इसके अध्ययन और अन्वेषण के बिना थीसिस उखड़ा उखड़ा रह जाएगा। मैंने साभार इस सम्मति को स्वीकार किया और इसके अध्ययन में जुट गया। उपन्यास पढ़कर ही मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि यह ऐतिहासिक रस प्रधान नाटकीय शिल्प विधि की कृति है।

डा० वर्मा ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम देखा, सुना और आत्मसात किया है।

---

१० गंगाप्रसाद पांडेय हिन्दी कथा साहित्य—पृष्ठ २०५

अपने स्वर्णिम इतिहास से उन्होंने स्फूर्ति ग्रहण कर पद दलित भारतीय समाज में नई चेतना जगाने के निमित्त झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई लिखा है। इतिहास के विषय में डा० वर्मा की मान्यता प्रसिद्ध नाटककार और कथा शिल्पी श्री जयशंकरप्रसाद से मेल खाती है। प्रसाद विशाख की भूमिका में लिख गए कि इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक है। डा० वर्मा कचनार की भूमिका में लिख गए कि आजकल के भारतीय राजनैतिक विकास में गोंड कोई विशेष भाग लेते हुए नहीं जान पड़ते, यद्यपि मध्यभारत में उनके कई राज्य हैं। परन्तु एक समय वे अपने सहज सरल स्वाभाविक और प्रमोदमय जीवन द्वारा भारतीय संस्कृति को अपने दृढ़ और पुष्ट हाथों की अंजलियाँ भेंट किया करते थे। वे क्या फिर ऐसा नहीं कर सकते? मुझको तो आशा है। और इस आशा के आधार पर ही उन्होंने पहले झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई—१९४६ और आगे चलकर मृगनयनी—१९५० की रचना की।

डा० वर्मा प्रेमचन्द के पश्चात सबसे विशाल जीवन फलक लेकर लिखनेवाले उपन्यासकार हैं। अपने गढ़कुंडार और विराटा की पद्मिनी में उन्होंने विस्तृत जीवन फलक के आधार पर वर्णनात्मक शिल्प विधि को अपनाया। ठीक उसी प्रकार जैसे प्रसाद ने अपने नाटक चन्द्रगुप्त में काश्मीर से मगध और मालव तक के जन जीवन को प्रतिध्वनित किया। परन्तु झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और मृगनयनी में वर्माजी का क्षेत्र कुछ संकलित-सा होकर झाँसी और ग्वालियर तक सीमित हो गया है।

डा० वर्मा के उपन्यास ऐतिहासिक अनुसंधान एवं किंवदन्तियों के परिणाम हैं। झाँसी की रानी की गौरव कथा उन्होंने अपनी परदादी से सुनी। पुस्तक के परिचय का आरम्भ करते हुए उन्होंने स्वीकारोक्ति के रूप में लिखा— "दीवान आनन्दराय मेरे परदादा थे रानी लक्ष्मीबाई की ओर से लड़ते लड़ते सन १८५८ में मऊ की लड़ाई में मारे गए थे। जब मैं ८-९ वर्ष का था तब मेरी परदादी का देहान्त हुआ। परदादी से रानी के विषय में बहुत-सी कहानियाँ सुना करता था। उन्होंने रानी को देखा था।"[1] डा० वर्मा ने इन सुनी कथाओं को अपने कथा-साहित्य द्वारा वाणी दी। ठीक वैसे ही जैसे स्काट कहते हैं— "मुझे एक पुराना गढ़ अथवा युद्ध क्षेत्र दिखला दो तो मेरे आनन्द का ठिकाना न रहे।"[2] डा० वर्मा पुराने खण्डहर, किलों, मठों, समाधियों, मन्दिरों को देख सुनकर भाव विभोर हो उठते हैं और पाठक को एक वर्णनात्मक अथवा नाटकीय शिल्प विधि का उपन्यास मिल जाता है।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम से सम्बद्ध एक नाटकीय कथा है इसमें परिस्थितिजनित स्वाभाविकता लड़ी गई जनरल रोज प्रमुख पात्र कई सरदारों का मन कल्पित न ... । वर्माजी की कल्पना ऐतिहासिक तथ्यों को छान कर इधर उधर न ... रानी सभी ... बाबू या हरिनारायण ...

---

१ परिचय झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई—पृष्ठ ३

2 Show me an old Castle and a field of battle and I am at home at once

का नव उदभावनाम्रा के स्थान पर ऐतिहासिक तथ्या की प्रमाणिकता पुष्ट प्रमगा का ही आधिक्य है। इस रचना मे पात्रा के चित्रण का अनुमघरिसु इतिहासकार के प्रामाणिक साक्ष्या की नीव मिली है। तभी तो यह रचना उप यास से अधिक जीवनी और जीवनी से अधिक इतिहास लगती है। मगर पाठक का यह कदापि नही भूलना चाहिए कि यह रचना है एक उप यास ही और इसमे औपन्यासिकता लान का श्रेय पात्रो और वस्तु म नाटकीय सतुलन को दिया जाएगा। लगभग सभी पात्र और समस्त घटनाए इतिहास सम्मत हैं। परिचय म आपने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि १९३२ से अपन अथक अनु सधान के बल पर एक उपन्यास रचना ही उन्ह इष्ट रहा है इतिहास की सजना करना नहीं। एक ऐसा उपन्यास रचना चाहा जो इतिहास के ककाल म मास और रक्त का सचार कर सके। इस रक्त मास वाल प्रसग म कही कही कल्पना आई तो भले आई जसे लक्ष्मी बाई की सहेलियो क रूप म सुन्दर, मुदर और जूही म से हम एक या दो या फिर तीना को काल्पनिक पात्र मान लें तो मान लें, परतु य तीना पात्र भी उपन्यास म नाटकीयता लाने का दायित्व निभाते है और रानी की सगठन एव जासूसी शक्ति का परिचय दते हैं।

भासा की रानी लक्ष्मीबाइ' म कौतूहलवधक और नाटकीय प्रमगा की अवतारना हुई है। 'प्रस्तावना' म महाराजा गगाधरराव के अभिय प्रम तथा मोतीबाई आदि पात्रा का परिचय तथा खुदाबख्श मोती प्रेम प्रमग पाठकीय आकषण एव नाटकीयता के परि चायक हैं। खुदाबख्श का दरबार स अलग कर दिया जाना और भासी स निकाल दिए जाने पर भी छुप-छुपे भासी म ही रहना और मोती स प्रेम डोर बढाना पाठक के मन म जिज्ञासा और गुदगुदी मचानेवाले प्रमग है। उपन्यास का सही आरम्भ उदय शीषक अध्याय से मानें तो बेहतर होगा। उदय वाले भाग म लक्ष्मीबाई की किशोरावस्था, जीवनवत्त, राजा गगाधर स विवाह पुत्रोत्पत्ति पुन मरण दत्तक पुत्र के गाद लिए जाने की गाथा है। इस उपन्यास की मुख्य विशेषता यह है कि इसम कहा भी अधिकारिक और प्रासगिक कथा की होड का प्रसग नही आता। समस्त कथा भासी की रानी लक्ष्मीबाई का केन्द्रस्थ रखकर घूमती है। अत कथा सूत्र म केन्द्रीयता आ जाने के कारण अधिक नाटकीयता के लिए माग प्रशस्त हो गया है। लक्ष्मीबाई का कथा का चरम बिन्दु 'उदय भाग के अन्तगत राजा गगाधर के मरणोपरान्त रानी के दृढ सकल्प म निहित है। मध्याह्न भाग मे लक्ष्मीबाई तथा भासी की जनता का अग्रेजा के प्रति व्यापक रोष, तथा सन सत्तावन की चिर स्मरणीय क्राति की भूमिका तयार निमित्त विविध याजनाए तयार करना महत्त्वपूण है। खुदाबख्श का क्षमा दकर अपनी ओर मिला लेना पीरअली और बहराम पठान मार्तो तथा जूही एव भलकारी सपेरिन स सबधित घटनाए नाटकीय चमत्कार का वातावरण उत्पन्न करती हैं। भासा जीतकर एक बार पुन उसपर राष्ट्रीय ध्वजा फहराना तथा सुशासन स्थापित कर स्वाभिमान की चेतना जाग्रत करना और समूचे राष्ट का स्वाधीनता के पथ पर अग्रसर हान के लिए प्रेरणा दना लक्ष्मीबाइ तथा तात्या टोप की विविध योजनाग्रा के नाना पहलुग्रा पर पर्याप्त प्रकाश डालनवाल दृश्य है। और 'अस्त म नाटकीयता अपने उच्चतम सोपान पर है। रानी के जीवन का अव

सान एव वीरोचित त्याग का निदर्शन है जो पाठक के मन में करुणा से अधिक गौरव के भाव भर देता है।

लक्ष्मीबाई के जीवन का सघर्ष उनके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। उनकी कर्तव्यनिष्ठा शासन नीति राज्य सचालन विधि विपरीत परिस्थितियों में बुद्धि सन्तुलन तथा सरल जीवन रोज के सघर्ष आदि ने ही उन्हें और सघर्ष और अनन्य कमनीयता इस भारतीय इतिहास और उपन्यास साहित्य का एक अमर पात्र बनाने वाले गुण है। स्वाधीनता के विषय में उनकी लगन निष्ठा और कार्य पठनीय है। उपन्यास में रानी सहेलियों से वह कहती है— यदि हिन्दुस्तान में बाद भी उस (स्वराज्य प्राप्ति के) पवित्र काम को अपने हाथ में न ले तो भी मैंने अपने कृष्ण के सामने अपनी आत्मा के भीतर उसका बीड़ा उठाया है। करूगी और फिर करूगी। राज भर पाऊ या हान के लिए हाथ भर भूमि हो क्या न रह जाए। मान लो मैं सफल न हो पाई तो भी जिस स्वराज्य के लिए आगे बढ़ा जाऊगी वह अक्षय रहेगी।[३] वस्तुत हमने आज जो स्वतन्त्रता प्राप्त की है उसमें राणाप्रताप गुरु गोविन्दसिंह और छत्रपति शिवाजी के साथ-साथ रानी लक्ष्मीबाई के वचनों और कर्मों का भी पूर्ण योगदान है। उनका चरित्र एक नारकीय परिवर्तन का उदाहरण है। विवाह से पूर्व की सामन्ती प्रवृत्ति की नायिका पति मरण पश्चात जन आन्दोलन की प्रतीक बनकर एक चारित्रिक परिवर्तन का उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस ओर सकेत करते हुए डा० वर्मा लिखते है— झांसी का राज्य उसके लिए सुरपुर न था—किंतु जिस सुरपुर को पाने की उसके मन में लालसा थी झांसी उसकी सीढ़ी मात्र थी। पति के देहान्त के बाद रानी की दिनचर्या इस प्रकार हो गई—वह नित्य प्रात काल चार बजे स्नान करके आठ बजे तक महादेव का पूजन करती। फिर ग्यारह बजे तक महल के समीपवर्ती खुले आगन में घोड़े की सवारी तारागढ़ी तेज चलाना दौड़ते हुए घोड़े पर चढ़ना दांतों से लगाम पकड़कर दोनों हाथों से तलवार भाजना बन्दूक से निशाना लगाना मलखम्भ कुश्ती इत्यादि। ग्यारह बजे के उपरान्त रानी फिर स्नान करती है और भूखों को खिलाकर तथा कुछ दान धर्म करके तब भोजन करती। भोजन के उपरान्त थोड़ा सा विश्राम। फिर तीन बजे तक ग्यारह सौ राम नाम लिखकर आटे की गोलियां मछलियों को खिलाती तीन बजे के उपरान्त फिर व्यायाम। सध्या के उपरान्त आठ बजे तक कथा वार्ता पुराण भगवद्गीता का अठारहवां अध्याय इसके बाद आगन्तुकों को भेंट के लिए बुला लिया जाता वे समय की बहुत पाबन्द थी।[४] भगवान कृष्ण के उपदेश कर्म करने के अधिकार की वे कायल थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी खरीति का अस्वीकृत हो जाने पर उनका शान्त रहना है। पर यह शान्ति क्षणिक है। मन में स्वाधीनता आन्दोलन की चाह अत अशान्ति है। वे स्वराज्य के आन्दोलन को जन मन में फूंकने के लिए दृढ़ सकल्प है। दो अगस्त १८५४ को झांसी अग्रेजी राज्य में मिला और उनकी कार्य पद्धति में द्रुतगति से तेज का सचार हुआ। वह स्वाधीनता सग्राम

---

३ झांसी की रानी लक्ष्मीबाई—पृष्ठ १७३
४ वही—पृष्ठ १३६

की सचालिका बनी। इस पुनीत काय म उसे तात्या, नाना और जनता का अपार सहयोग मिला और जून १८५७ म पुन लक्ष्मीबाइ का झासी पर अधिकार हो गया। इस युद्ध म भी रानी ने आदशवादी नारी विषयक कोमलता का परिचय ही अधिक दिया। उसने अपने शत्रु गाडन का यह सवाद पाकर कि उनकी स्त्रिया भूखे मर जाएगी अपनी सहे लिया मु दर मु दर के हाथो दो मन रोटिया किले म भिजवा दी। उसका यह काय राज नतिक दृष्टि से अदूरदर्शिता का परिचय भले ही दे पर यह उसके मानवतावादी दृष्टि कोण का परिचायक भी है। यहा नाटकीयता के उदभव के साथ-साथ मानवीय तत्व उभर आया है। रानी म उत्कट जीवनानुभूति का उत्स है। उसका चरित्र जीवन, गतिशील और परम नाटकीय बन जाता है। प्रारम्भ की मनू न लक्ष्मीबाई बनने पर भी अपनी तेजस्विता का स्थायी रूप म बनाए रखा। इस पात्र म कही भी अ तद्वन्द्व नही है। जीवन क बहिसघष न इसमे असाधारणता तथा तीव्रता का सचार किया है। इसकी इच्छा और क्रिया म कही अ तर्विरोध नही, गतिरोध नही। वह अपनी जनता के लिए अत्यधिक साधक और मूल्यवान हो उठती है। यहा तक कि उसकी मृत्यु भी अधिक मूल्यवान सिद्ध होती है। इस सबध म उसके सेनानी गुलमुहम्मद मन म कहता है—'ओ ! कभी नहीं। वो मरा नही। वो कबी न मरगा। वो मुर्दो का जान बनाता रहेगा।'[५]

झासी की रानी लक्ष्मीबाइ म डा० वर्मा के टिप्पण प्रेम और विवाह दुख सुख, नारी और पुरुष आदि सामाजिक एव वयक्तिक विषया का विवचन प्रस्तुत करने क निमित्त प्रस्तुत नही हुए। उ होने इस रचना म भारतीय राजनीति एव अग्रेजो की शोषण रीति तथा भारतीय जनता की दासता विरुद्ध विचारणा को नाटकीय शिल्प विधि से मुखरित किया है जिसम लक्ष्मीबाइ के व्यक्तित्व की छाप ही यत्र-तत्र उभर आई है। रण नीति का स्पष्टीकरण करती हुइ रानी लक्ष्मीबाइ कहती है हमारी लडाई अग्रेज पुरुषो स है। उनके बाल बच्चो से नहा। यदि मैंने सिपाहिया का नियत्रण न कर पाया तो उनका ततत्व क्या करूगी ? कह दो गाडन स कि स्त्रिया और बच्चो को तुरन्त महल भेज द।[६]

'झासी की रानी लक्ष्मीबाई म डॉ० वर्मा स्वय बहुत कम बोल है। व पात्रो को सामाजिक राजनैतिक विचारो और विश्वासो पर टिप्पणी करने का अधिकार देते हुए इस रचना म अधिक नाटकीयता ले आन है—यथा जन शक्ति और जन सगठना सत्ता क सबध म वे रानी लक्ष्मीबाई स कहलवाते है— जनता अमनी शक्ति है। मुझको विश्वास है कि वह अक्षय है। छत्रपति ने जनता क भरोसे ही इतने बडे दिल्ला सम्राट को ललकारा था। राजाओ के भरोसे नही। मावल कुणभी किसान थे और अब भी ह। उनके हृदयो का मूठ म स्वराज्य और स्वतत्रता की लालसा बनी रहती है। यहा की जनता को भी मैं ऐसा ही समझती हू। रानी मात्र यह कहकर मौन नही हो जाती। वह नाना तथा

५ झासी की रानी लक्ष्मीबाई—पृष्ठ ५०७
६ वही—पृष्ठ २३५
७ वही—पृष्ठ १५०

तात्या को निर्देश देता है कि देश के कोने कोने में जाकर जन चेतना जागृत करें। वह क्रांति प्रेरित होकर झांसी के लोगों में नई आस्था जगाती है। वह हर क्षण आक्रमणात्मक कार्यवाही नहीं चाहती युद्ध और नीति में समन्वय चाहती है जिसके अभाव में सन १८५७ की क्रांति विफल हुई।

झांसी की रानी लक्ष्मी बाई में मात्र राजनीति और रणनीति सबधित विचार ही प्रस्तुत नहीं किए गए वरन हिन्दू मुस्लिम एवम नारी समस्या और पचायतो जैसे सामाजिक और आर्थिक विषयों पर भी विचार किया गया है। राजा गगाधरराव की राज सभा तथा नाट्यशाला में मुसलमान वीरो तथा अभिनेताओ को हिन्दू कलाकारो के समान आदर मिला है। राहतगढ़ से आए पाच सौ पठान रानी पर सर्वस्व न्यौछावर करने को कटिबद्ध हैं। गुलाम गौस खुदाबख्श और गुलमुहम्मद की गाथा इतिहास में स्वर्णिम अक्षरो में लिखी गई है। अमीरखा और वजीरखा नामी उस्ताद रानी के कसरती अखाड़े के सिरमौर बने। झांसी की रक्षा के लिए अमीरअली व पीरअली को छोड़कर शेष सभी मुसलमानो का त्याग प्रशसनीय है। बरहामुद्दीन के बलिदान पर तो एक नया उपन्यास ही लिखा जा सकता है। मरणासन्न अवस्था में भी भारत का जयनाद और अल्लाह पर अडिग आस्था उसके देश प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण है। रानी द्वारा उस सैनिक सम्मान के साथ दफनाए जाने की आज्ञा उनके हिन्दू मुसलमान स्नेह की द्योतक बात है।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई में नारी एक समस्या के रूप में न आकर समस्या समाधान रूप में चित्रित हुई है। उपन्यास की कोई भी नारी पात्र अपनी व्यक्तिगत समस्या को राष्ट्रीय समस्या के सामने उभरने नहीं देती—जैसे मोतीबाई खुदाबख्श से प्रेम अवश्य करती है परन्तु राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम की एक कुशल योद्धा बनते ही वह सुन्दर बख्श को सन्मार्ग पर ले आती है और युद्ध नीति का उसे भी एक योद्धा बना देती है। अंग्रेजी आक्रमण के समय वह जिस वीरता के साथ लड़ी वह इन शब्दों में चित्रित है—चलते हुए गोलों की चादर के नीचे गोरी पलटन सगीनी बन्दूकें लिए दीमक की तरह चली। खुदाबख्श और दूल्हाजू ने उसको बढ़ने दिया।। जब मार के काफी भीतर आ गए तब उन्होंने कट्टर का मानो उड़ा दिया। गोरी पलटन धरती में बिछ गई और फिर खुदाबख्श ने टट के तोपखाने को अपना लक्ष्य बनाया।

एक नर्तकी मोतीबाई से प्रेरणा पाकर खुदाबख्श ने स्वतन्त्रता संग्राम में बलिदान दिया। प्रस्तुत उपन्यास का प्रत्येक नारी पात्र स्वतन्त्रता संग्राम की प्रहरी बन सामने आई है। वह ललित कलाओं की पोषक भी है और युद्धकालीन स्थिति में देश रक्षिका भी। रानी स्वयं तो वारांगना है ही उसकी सहेलियां सुन्दर मुन्दर जूही और मोतीबाई भी अपने गौरवपूर्ण कार्यों से हम प्रभावित करती हैं। रानी स्वयं स्त्री स्वतन्त्रता की समर्थक है। जब तात्या में यह ज्ञान होता है कि पजाब में स्त्रियों को पूर्ण स्वाधीनता है तब बड़ी प्रसन्नता होती है किन्तु जब यह पता चलता है कि मुसलमान स्त्रियों में स्वतन्त्रता का अभाव है तो उन्हें दुःख होता है और वे ऐसा प्रयत्न कराती हैं कि उनमें भी

८ झांसी की रानी लक्ष्मीबाई—पृष्ठ ४१४

स्वाधीनता के प्रति विचारणा जगे। लक्ष्मीबाई तो कोई अवसर जाने ही नहीं देती जिसमें वह स्त्री जाति में स्वगौरव और नवचेतना के बीज न फेंके। वह हर अवसर पर स्त्रियों को एकत्रित कर उनसे एक ही भीख मांगती है कि अपने को पुष्ट करो। राष्ट्र को स्वाधीन बनाने में योग दो। वह शिकार को जाती तो सहेलियों सहित अश्वारोहण करती और उन्हें कहती कि उन्हें अपने शरीर को फौलाद बनाना है। पुष्ट शरीर में ही महान आत्मा का वास होगा। उसकी सब विश्वसनीय सहेलियां पुष्ट भी हैं और कुशल जासूस भी। नाना, राव और बहादुरशाह दांतों तले अंगुली दबा लेते हैं, जब उन्हें यह पता चलता है कि रानी की सेना में अधिकतर स्त्रियां हैं।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की नारी स्वतन्त्रचेता नारी है। वह आत्मरत, भीरु और आत्मविश्लेषक नारी नहीं है समाज सेविका है। राष्ट्र नायिका है उन्नायिका है। दृढ संकल्प करने हो रानी लक्ष्मीबाई कह उठती है— यदि अकेले ही स्वराज्य की लड़ाई लड़ना पड़े तो लड़ी जाएगी। आगे चलकर वर्माजी इस नारी पात्र को नारी स्वाभिमान का प्रतीक बनाते हुए लिख गए— वे अपने युग के उपकरण और साधन काम में लाती थीं। जिस समाज में उनका जन्म हुआ था, उसीमें होकर उनको काम करना था, परन्तु उस समाज की हथकड़ियों और बेड़ियों की उन्होंने पूजा नहीं की। वे अपने युग से आगे निकल गई थीं किन्तु उन्होंने अपने युग और समाज को साथ ले चलने का भरसक प्रयत्न किया। झांसी में विशेषतः और विन्ध्यखण्ड में साधारणतया स्त्री की अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता और नारी की स्वस्थता लक्ष्मीबाई के नाम के साथ बहुत सम्बद्ध है।'[६] इस उपन्यास के नारी पात्रों का प्रेरक तत्त्व प्रेम नहीं राष्ट्र प्रेम है। विवाहोपरान्त लक्ष्मीबाई सांसारिक विलासिता के मोह में जीवन की इतिश्री नहीं करती राष्ट्र प्रेम की प्रतीक बनकर स्वतन्त्रता संग्राम की कुशल संचालिका बन गीता दलाव। का पाठ करते हुए अंग्रेजों का विनाश करती हुई वीर गति पाती है। इसी से प्रेरणा पाकर रघुनाथ मुंदर तात्या जूही, खुदाबख्श मोतीबाई, गौसखां मुंदर के प्रेम भाव राष्ट्र प्रेम में परिणति पाते हैं। इन पात्रों में भावना पर बुद्धि और विचारणा का अंकुश है।

जिस प्रकार प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यास में ग्राम चित्रण के क्षेत्र में अपना सानी नहीं रखते वैसे ही डा० वर्मा युद्ध और शिकार के कुशल चितेरे हैं। 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' में कुल मिलाकर बारह से अधिक छोटी बड़ी लड़ाइयों का चित्रण हुआ है। छः मई को मेरठ में हुए विस्फोट और अम्बाला लखनऊ, कानपुर आदि युद्धों का तो संकेत भर दिया गया है किन्तु झांसी के किले में हुए दो भीषण युद्धों का विवरण ऐतिहासिक प्रसंगों की टिप्पणियों तथा मुंदर, मुन्दर और जूही के नाटकीय हाथों के साथ चित्रित हुआ है। इसी के अन्तर्गत नवाब अलीबहादुर व पीरअली की जासूसी तथा खुदाबख्श के अमर बलिदान का दृश्य विधान भी प्रस्तुत किया गया है। रानी द्वारा मानवीय दृष्टिकोण अपनाकर अंग्रेजों को रसद सप्लाई कर हृष्ट-पुष्ट बनाकर युद्ध से लड़वाना भारतीय संस्कृति के अनुरूप है किन्तु इसी भूल के कारण वह दूसरी बार झांसी को विना हारती है क्योंकि

---

६ झांसी की रानी लक्ष्मीबाई—पृष्ठ ३३१

मार्टिन पहले ही किले के गुप्त मार्ग का ज्ञान जाता है और प्रागरा चला जाता है। गाडन का उत्तरी फाटक में ताला मारकर निशाना लगाना, रमान का भयभीत हो जाना, गुलाम गौसखा का तोपो को व्यवस्थित कर युद्ध के लिए तैयार करना ऐसे दृश्य हैं जो ऐसा लगता है युद्ध से लौटकर आए सेनापति की कलम से लिखे गए है। रानी का मच संचालन (गुलाम गौस और उसके साथियों का समझाना—ऐसा बाढ़ें जल्दी जल्दी दाग दो और चुप हो जाओ वैरी समझेगा कि तोप बन्द कर दी वढेगा बस तभी दीवार के छेदों मे से बन्दूकों की बाढ़ दागो जाए) अभूतपूर्व है। वह सुन्दर मुन्दर काशीबाई आदि को आवश्यक निर्देश देती है। दूल्हाजू के पारमनी के विश्वासघात पर भी विचलित न होती, वीरतापूर्वक लड़ती और मरती है। इस सग्राम में हिन्दू और मुसलमान कधे से कधा लगाकर लड़ते है और गोरो का सामना करते हैं। रानी की संगठन शक्ति और युद्ध नीति वस्तुत नाटकीय प्रभावान्विति का सृजन करते है। अग्रेजो की जीत इतनी प्रभावशाली नहीं जितनी रानी की हार। जब उपन्यास के अन्त मे घोडा आग बढ़ने से इन्कार कर देता है और रानी की जघा मे गोली लगती है फिर भी वह तलवार चलाए जाती है तब पाठक का हृदय धक धक करने लगता है परन्तु जब गुलमुहम्मद आकर अग्रेजो का सफाया करता है तब उसके पीड़ित मन मे शाति और आनन्द का सृजन होता है।

वस्तुत रानी का नाटकीय वृत्तान्त पढ़ पाठक अपने मन और मस्तिष्क मे एक उत्तेजना की अनुभूति करता है। देश की स्वाधीनता के लिए किए गए सग्राम के नाटकीय दृश्यों मे परिपूर्ण यह उपन्यास लक्ष्मीबाई के साथ साथ सुन्दर, मुन्दर जूही तात्या टोपे वस्त्र के चरित्र की एक अमिट छाप भी पाठक के मानस पर छोड़ जाता है। तात्या एक कुशल नट की भाँति उपन्यास मच पर भ्रमण करता है और जयपुर जोधपुर बीकानेर दिल्ली लखनऊ कानपुर ग्वालियर काश्मीर पजाब बगाल दूरवर्ती नगरो और राज्यो के सवाद रानी तक पहुचाता है। उसकी योजना और वाक् पटुता पर मुग्ध हो कर रानी कहती है— तात्या तुम बहुत चतुर हो। तात्या ने देश के जन मन की नब्ज पकडी है उसके मतानुसार जनता मे स्वाधीनता की चाहना है पर वह नेतृत्वविहीन असहाय है। रानी उन्हें नेतृत्व दे सकती है। भासी से बाहर गए झासी के निवासी के मन मे भी रानी के प्रति अगाध श्रद्धा व आस्था है। छोटी-नारायण इसके प्रमाण है।

कलात्मकता पाठकीय आकर्षण शिल्प प्रौढ़ता इस उपन्यास की जानी पहचानी बातें हैं। वस्तु चरित्र वातावरण और उद्देश्य मे डा० वर्मा एक अद्भुत समन्वय एव सतुलन प्रस्तुत कर इस रचना को गढ़ कुडार विराटा की पद्मिनी तथा 'मुसाहिबजु से कही ऊचा उठा गए।

मृगनयनी—१९५०

नाटकीय शिल्प विधि की रचना मे सबसे अधिक ध्यान प्रभावान्विति की ओर दिया जाता है। इस दृष्टि से वृन्दावनलाल रचित मृगनयनी नाटकीय शिल्प विधि की रचना है। इस उपन्यास की कथावस्तु और चरित्र चित्रण मे अद्भुत समन्वय है। पात्रो की गति विधि घटनाओ पर यथेष्ट प्रभाव डालती हुई चारित्रिक विकास की ओर बढ़ती

है। प्रथम बार जो लाखी हमारे सामने आती है, वह अपने दृढ़ निश्चय में सन्नद्ध है। हम उसके निर्भीक भावावेग से अभिभूत होते हैं। राष्ट्र की रक्षा में उसने प्राण तक विसर्जित किए हैं किन्तु मरने से पूर्व शत्रु दल के सम्मुख जिस पराक्रम का परिचय दिया है, उससे हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। उपन्यास के आरम्भ की निन्नी और अंत की मृगनयनी में नाटकीय प्रभावाभिव्यक्ति है। एक ही तीर से अरने के मस्तक को चीर डालने वाली अपने पराक्रम के आधार पर ग्रामबाला में राजरानी बननेवाली महलों की संकुचित सीमाओं में सौत डाह से घिरकर भी मानसिंह को कर्तव्य पथ पर आरूढ़ करनेवाली मृगनयनी हमारे चित्त पर पड़ी हुई प्रभाव छापा को निरंतर अपने रंग से गहरा करती चलती है। उपन्यास के अन्त में उस सुमन मोहिनी के पुत्रों के लिए राज्य सिंहासन का अधिकार सौंपने देखते ही हम अपने धर्म के सम्पूर्ण प्रभाव परिणामों से आविष्ट होकर पूर्णतया एक विशेष प्रकार की भावदशा का अनुभव करते हैं। इस उपन्यास की प्रभावाभिव्यक्ति कह सकते हैं।

इस विधि के ऐतिहासिक उपन्यास में स्थिति और वातावरण का निर्माण तथा कथावस्तु और पात्रों का विकास संघर्ष पर आधारित रहता है। इसके लिए दो पक्ष अनिवार्य हो जाते हैं। एक पक्ष सत्य के लिए न्याय के लिए तत्पर रहता, दूसरा मार्ग का अवरोध बनकर संघर्ष के लिए सामग्री जुटाता है। प्रस्तुत उपन्यास में दोनों पक्षों की सुंदर योजना है। निन्नी लाखी अटल और मानसिंह सत्य पक्ष के रक्षक हैं। सिकन्दर गयासुद्दीन आदि मुसलमान आक्रमणकर्त्ता सत्य न्याय और प्रगति पथ के कांटे हैं। उपन्यास की कुछ घटनाएं मुख्य कथा से सबंध नहीं रखती किन्तु नाटकीय प्रभाव रखती हैं। जिस प्रकार प्रेमचन्द की 'रंगभूमि' में विनय की कथा वस्तु है ऐसे ही 'मृगनयनी' में भी हुआ है। 'रंगभूमि' में जसवन्तनगर की कथा मुख्य कथा से दूरवर्ती होती गई ऐसे ही मृगनयनी में बघरा संबंधी कथा की दशा है किन्तु नवाब बघरा का निजी जीवन उसका स्वभाव, उसकी स्थिति उससे संबंधित वातावरण (खान पान रक्त पिपासा आदि) नाटकीय प्रभाव रखता है। तीनों कथानकों में घटनाएं निश्चित क्रम के साथ घटती हुई पात्रों के स्वाभाविक विकास में योग देती हैं। मृगनयनी मानसिंह का विकास अटल व लाखी के शौर्य द्वारा हुआ है। गयासुद्दीन आख्यान की उन्नति नटवग से पागी पिल्ली षडयंत्रों पर निर्भर है।

एक ही उपन्यास में अनेक स्वतंत्र कथाएं देवकीनन्दन खत्री परम्परा की देन रही हैं। प्रेमचन्द इस प्रभाव से मुक्त नहीं रह सका पर भी इसका आंशिक प्रभाव पड़ा है। बजू कला राजसिंह बोधन शास्त्री विजय आदि पात्रों से संबंधित कथाएं किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति कर रही हैं। बजू युद्ध और आकांक्षाओं के वातावरण में भी संगीत कला की अभिवृद्धि में संलग्न है। कला ग्वालियर में रहकर चंदेरी के राजा राजसिंह की दूती का कार्य करती है। बोधन शास्त्री वर्णान्तर प्रथा का प्रचार और हिंदु धर्म की श्रेष्ठता का प्रसार करता फिरता है इसी के लिए प्राण भी दे देता है। विजय आधुनिक समाजवादी सुधारक है।

बमा एक सूत्र के जितने ही घटनाओं का जाल सा बिछा देते हैं। मटका की नदी में नटराज की कार्य दशाओं का पता चल जाता है यही समाचार वह बना चलाकर अपने

समक्ष पिल्ली के प्रलोभन है और देशहित सबधी दायित्व तथा जातीय चक्की। वह देश की प्रमुखता देकर किले से बाहर निकालने के लिए लगी रस्सी काटकर निन्नी गयासुद्दीन आदि की आशाओं पर पानी फेर देती है। पिल्ली का रस्सी से गिरकर मर जाना नाटकीय दृश्य है। गयासुद्दीन का अन्त नाटकीय षडयन्त्र आभासित होता है। सुमन मोहिनी की समस्त नियाएं अजातशत्रु की छलना का स्मरण कराती हैं।

कथानक के अंतिम सोपान में कुछ घटनाएं ठाम दी गई हैं। अटल लाखी का विवाह उपन्यासकार की कल्पना का परिणाम है। गढ कुडार के दिवाकर-तारा और 'विराटा की पद्मिनी' में कुमुद कुंजर समान तत्कालीन जातीय प्रकोप का भाजन न बनकर अंत में वैवाहिक सूत्र में जोड दिए गए हैं अतएव ऐतिहासिक यथार्थ की अवहेलना की गई है। सिकन्दर के अंतिम आक्रमण से पूर्व भूकम्प का दृश्य प्रभावपूर्ण है अवनानिक है इस भूकम्प का क्षेत्र उत्तरी भारत से लेकर पश्चिमी भारत में पभारत तक का प्रदेश है। निहालसिंह कला-वाला का अंश अति संक्षिप्त है अतएव कोई महत्त्व नहीं रखता।

'मृगनयनी के पात्र नाटकीय प्रभाव रखते हैं। मृगनयनी और लाखी इस नाटकीयता के परिचायक हैं। दोनों की वार्ता, दोनों की चारित्रिक दिशाओं की ओर संकेत करती हैं। लाखी महत्वाकांक्षी है, निन्नी देश भक्त और स्वातन्त्र्य प्रिय। विवाहिता मृगनयनी और अविवाहिता निन्नी के चरित्र में आकाश पाताल का अंतर है। ग्वालियार के महलों में आबद्ध होकर मृगनयनी की स्वच्छंदता संयम और सहनशीलता तथा प्रेम और कर्तव्यनिष्ठा में परिवर्तित हो जाती है। मानसिंह उसके चरित्र से हमें परिचित कराता है— वह क्षत्रिय कन्या है। सबको एक दिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आप देखना वह पढ लिखकर और विविध कलाओं में पारंगत होकर, हमारी आपकी सबकी, कीर्ति ध्वजा को ऊंचा फहरावेगी।'[२]

महलों की संकुचित सीमाओं से घिरी मृगनयनी सौतिया डाह का भी द्वेष भाव से नहीं अपनाती असमर्यादित आचरण नहीं करती अपितु निरन्तर कर्तव्यनिष्ठ रहकर मानसिंह को कर्तव्य और कला में सतुलन बनाए रखने की प्रेरणा देती है। उत्तेजित अवस्था में वह मनोभावनाओं को उडेल डालती है— वीणा ही बजाते-बजाते, काम पड़ने पर यदि तुरन्त तलवार न उठ पाई सामने सेज पर मान-सान सरट आन पर यदि तुरंत ही उछलकर कमर न कसी ध्रुवपद का गान गाते गाते शत्रु के सामने आ खड़े होने पर यदि तुरन्त गरजकर चुनौती न दे पाए जिन कानों में मीठे स्वरों की रसधार बह-बहकर जा रही थी उन्हीं कानों में यदि रणवाद्यों और कड़खा की धुन न समा पाई तो फिर वीणा, मृदंग और ध्रुवपद की तानों का काम क्या ?[३]

मृगनयनी की संयम शीलता से मानसिंह प्रभावित हो जाता है— 'तुम संयम से प्रेम को पवित्र बनाती हो और मैं अपने विकार में उसको चंचल कर रहा हूं। संयम के आधार वाला प्रेम ही आगे भी टिके रहने की क्षमता रखता है।' 'यह संयम का हो

२ मृगनयनी—पृष्ठ २५२

३ वही—पृष्ठ ३४७

४ वही—पृष्ठ ३८७

चमत्कार है कि सुमन मालिनी द्वारा विष दिए जाने पर भी वह उदासीन बना रहता है, प्रतिक्रियात्मक राय नहीं करती। ... उसका आचरण ... इस प्रक्रिया में आ जाता है— कला वतन का गजरा ... भावना ... दिए रहे, मनोबल और धारणा एक-दूसरे का हाथ पकड़े रहें। ५ आलोचक का मत तथ्य परक है। वास्तव में मृगनयनी विवेकशील, अनुभूतिमयी ... और कर्मशील, वीर नायिका है। संगीत, वीणा नृत्य और चित्रकारी उसकी ... के प्रमाण हैं। तीर बर्छी चलानेवाली निन्नी और संगीतज्ञ मृगनयनी के चरित्र में जो अन्तर पड़ गया है— वह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है।

शौर्य का गुण लाखी और निन्नी दोनों में ही रखा गया है किन्तु औपन्यासिक घटनाएं निन्नी की अपेक्षा लाखी को इनमें प्रधान का अधिक अवसर प्रदान करती हैं। इसी कारण यह पाठक के मन पर अपना अस्तित्व बनाए रखती है। ... मुसलमान घुड़सवारों के आ धमकने पर वह निष्कम्प ऊंचे और घन स्वर में ... ललकारकर कहती है— कहां चले तुम्हारे साथ (पृष्ठ १/३)। पिल्ली द्वारा चिकनी चुपड़ी बातें सुनकर वह शीघ्र ही अपना कर्तव्य निश्चित कर लेती है और योजना बनाकर बड़ी सफाई के साथ पिल्ली का काम तमाम कर डालती है। नरवर की विजय का श्रेय इसी को प्राप्त होता है।

लाखी के हृदय में प्रेम का अटूट स्रोत भर रहा है। जातीय रूढ़ियों के प्रति विद्रोह भावना इसमें कूट कूटकर भरी है। स्वाभिमान की तो वह साक्षात मूर्ति है। अपनी सखी निन्नी के विवाह हो जाने पर उसकी आश्रिता होकर रहना नहीं चाहती ... से ... में कहती है— कोई मुझको यदि किसी का चेरा कहे चाहे वह मेरी निन्नी ननद ही क्या न हो तो मैं नहीं सह सकूंगी और न यह सह सकूंगी कि तुमको राजा का दास या रोटियारा कहे। हम लोगों को भगवान ने भुजाओं में बल दिया है और काम करने की लगन। कुछ करके ही ग्वालियर जावेंगे। ६ ऐसा ही होता है—लाखी नरवर को जीत कराकर ही ग्वालियर जाती है।

मानसिंह की रूपरेखा उपन्यासकार ने स्वयं प्रस्तुत की है— राजा मानसिंह युवा अवस्था के आगे जा चुका था। बड़ी काली आंख भरी भौंह सीधी लम्बी नाक, चेहरा भरा हुआ कुछ लम्बा। ठोडी दृढ़ होंठ सहज मुस्कान युक्त। सारा शरीर जैसे अनवरत व्यायाम से तपाया और कसा गया हो। कद लम्बा और छाती चौड़ी। घनी नोकदार मूंछ। ७ इस आकृति के अनुरूप ही मानसिंह का चरित्र उभारा गया है।

कर्म और सतत कर्म यही उसका जीवन दर्शन है— ये बैठे ठाले के वाक्-युद्ध व्यर्थ हैं। कर्म मुख्य है। जो इससे बचते हैं वे ही टाए-टोए की पगडंडियां ढूंढते हैं कुछ काम करिए और आगे की तैयारी में लग जाइए ... चलकर एक अन्य स्थल पर वह

---

५ डा० शशिभूषण सिंघल उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा—पृष्ठ १८५

६ मृगनयनी—पृष्ठ २१५

७ वही—पृष्ठ ४२

कहता है। जीवन में कायक काम—ही सब कुछ है। एक काम से मन उचटे तो दूसरा करने लगे।'[८]

मानसिंह की कर्म प्रियता को उपन्यासकार इन शब्दों में अंकित करता है—"दोपहर के समय को छोड़कर दिन में राजा मानसिंह किसी न किसी काम में व्यस्त रहता था। लोगों से मिलने का समय नौ बजे से बारह बजे तक। न्याय का शासन तीसरे पहर की अंतिम घड़ियों में। चौथे पहर के आध भाग में सेना की तैयारी और अन्वारोहण, दिन के पहले पहर की तरह। रात के पहले पहर में भोजन और राज्य व्यवस्था की चर्चा, दूसरे पहर में संगीत।"[९]

वर्मा ने मानसिंह में एक आदर्श राजा के अनेक गुण प्रतिष्ठित किए हैं। जाति बाद की संकीर्णता, कट्टरपन और रूढ़िवादिता से उन्हें घृणा है। तभी मानसिंह कहते हैं— "हे भगवान, क्या हमारे समाज के इन अंधे-बहरों को कभी सूझता सुनता करोगे। या हम सबको डुबोकर ही रहोगे?" ये शब्द बोधन को सुनाने के पश्चात वे मृगनयनी से कहते हैं— 'अवश्य। उस युद्ध के बाद ही जात पात के इस युद्ध को भी लड़ूंगा।' राजा इस निश्चय को क्रियात्मक रूप दे डालता है—लाखी अटल का विवाह करा डालता है।

जनता के प्रति उसके हृदय में अपार प्रेम है। प्रच्छन्न वेश में रात के समय उनकी स्थिति देखने के लिए भ्रमण करता है। उसके विश्वासानुसार 'राज्य के किसानों की खेती पाती अपनी खेती पाती के ही समान तो है।' राजा होते हुए वह जनता के अधिकारों उनकी सुविधाओं के प्रति सजग रहता हुआ कहता है— धिक्कार।

गुनाहों का देवता—१९४९

डा० धर्मवीर भारती का प्रथम उपन्यास 'गुनाहों का देवता' नाटकीय शिल्प विधि का उपन्यास है। जिस प्रकार भगवती प्रसाद न अपनी चित्रलेखा में पाप और पुण्य की मूल समस्या को वस्तु विन्यास और चरित्र विकास के पारस्परिक संघात द्वारा नाटकीय रूप प्रदान करने की चेष्टा की वैसे ही डा० भारती इस रचना में वासना के अन्तर्द्वन्द्व को नाटकीय रूपाकार (Form) देने का प्रयास करते हैं। हिंदी के नाटकीय शिल्प विधि के उपन्यास के रूप में इसका योगदान अविस्मरणीय है। आधुनिक युग चेतना के बहु-स्तरीय जटिल यथार्थ को प्रेम और वासना के परिप्रेक्ष्य में नाटकीय प्रभाव के साथ संप्रेषित करने की कला में भारती सिद्धहस्त है।

गुनाहों का देवता की अधिकांश कथा संवादों द्वारा अभिव्यंजित हुई है। सुघर सुन्दर संवाद ही कथा के वाहक है। इनकी वार्ता में सहज स्नेह मधुर व्यंग्य अन्तर्द्वन्द्व का बहिर्मुखी प्रवाह वासना की गंध प्रेम का संघर्षात्मक संघात, जीवन का आदर्श, आस्था

---

८ मृगनयनी—पृष्ठ २०६
९ वही—पृष्ठ १६६
१० वही—पृष्ठ २६०
११ वही—पृष्ठ २६१

के प्रश्न और नाना शाश्वत समस्याएं सम्प्रेषित होकर सामने आई है। नायक चन्दर प्रयाग विश्वविद्यालय का रिसर्च स्कालर है और अपने गुरु डा० शुक्ला की लडकी सुधा से आत्मा से प्यार करता है मगर डा० शुक्ला उसका विवाह अपनी ही जाति के एक लडके से करना चाहते है और इसके लिए चन्दर को ही डप्यूट करते हैं कि वह सुधा को ही इस विवाह के लिए तयार करे। चन्दर सुधा के पास पहुचता है उस सुधा के जो शिशु अवस्था में चन्दर को देखकर छिप जाया करती थी मगर यौवन के आने ही अपनी सभी कोमलतम भावनाओं को उसकी ओर केन्द्रित कर देती है। मूक भावनाए तीखे प्रहार बन वाचाल हो उठी। यहीं से नाटकीय स्थिति उत्पन्न हुई जो सुधा चन्दर वार्ता में सन्निहित है। यथा—

उसने सुधा की अंगुलियां अपनी पलकों से लगाते हुए कहा— सुधी मेरी। तुम उस लड़के से विवाह कर लो।

क्या ? सुधा चोट खाई नागिन की तरह तड़प उठी— इस लड़के से! यही शक्ल है इसकी मुझसे ब्याह करने की। चन्दर हम ऐसा मजाक नापसन्द करते हैं। समझे कि नहीं। इसीलिए कल प्यार से बुला लाए, बड़ा दुलार कर रहे थे।

तुम अभी वायदा कर चुकी हो। चन्दर ने बहुत आजिजी से कहा। धोखा देकर वायदा कराना क्या ? हिम्मत थी तो साफ-साफ कहते हमसे। हमारे मन में आता सो कहते। हम इस तरह से बनाकर मानवीय बलिदान चढ़ा रहे हो ? और सुधा मारे गुस्से के रोने लगी।

चन्दर स्तब्ध। उसने इस दृश्य की कल्पना ही न की थी ... वह गया और रोती हुई सुधा के कंधे पर हाथ रख दिया।

हटो उधर। सुधा ने बहुत रुखाई के साथ हाथ हटा दिया और आंचल से सिर ढकती हुई बोली— मैं ब्याह नहीं करूंगी, कभी नहीं करूंगी किसी से नहीं करूंगी। तुम सभी लोगों ने अगर मिलकर मुझे मार डालने की ठानी है तो मैं अभी सिर पटककर मर जाऊंगी।

मैं जाऊंगी पापा के पास। मैं कहूंगी उनसे ... मैं उससे शादी नहीं करूंगी। और वह उठकर पापा के कमरे की ओर चली।

खबरदार जो कदम बढ़ाया। चन्दर ने डाटकर कहा। बैठो इधर।

मैं नहीं रुकूंगी। सुधा ने अकड़कर कहा।

नहीं रुकोगी।

नहीं रुकूंगी।

और चन्दर का हाथ तैश में उठा और एक भरपूर तमाचा सुधा के गाल पर पड़ा।[1]

और सुधा चन्दर वार्ता का यह प्रसंग नाटकीय प्रभाव ही नहीं रखता उपन्यास को नाटकीय चित्र प्रस्तुत करने वाली विधा का मूर्तिमान बनाता है।

---

१ गुनाहों का देवता—पृष्ठ ४७ ४८

कथाकार की दृष्टि और दृष्टिकेन्द्र नाटकीय परिवर्तन के भाव सूत्र को अनेक सूत्रों तथा आयामों में सम्प्रेषित करता है। जहाँ एक ओर पाठक यह समझ बैठा कि चन्दर के अप्पन और सुधा के आँसू दोनों को एक सूत्र में बाँध देंगे जहाँ 'गुनाहों का देवता' का कथाकार कथा विन्यास और पात्रों के घात प्रतिघात से नाटकीय परिवर्तन प्रस्तुत करके दोनों पात्रों को आदर्शवाद के आश्रय में ले जाकर स्वर्गिम प्रेम की ओर अग्रसर करता है। चन्दर के प्रेम वचनों में अमृत की धारा है। वह सुधा से विनती करता है कि उन दोनों का प्रेम एक-दूसरे को कमजोर बनाने के लिए नहीं है, अपितु दृढ़ बनाने के लिए है। अपने तर्कों द्वारा वह सुधा को उसी की जाति के लड़के के साथ विवाह के लिए तैयार करने में सफल हो जाता है। मगर यहीं एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या चन्दर सुधा को मानसिक रूप से इस विवाह के लिए तैयार कर सका? शायद नहीं। तभी तो भारती पात्रों के भाव स्तर में अन्तर्द्वन्द्वात्मक नाटकीय प्रभावपूर्ण स्थिति उत्पन्न करते हैं।

सुधा विवाह उपन्यास को नाटकीयता के रंग में रंगने का प्रधान सूत्र तो है यह आधुनिक मध्यवर्गीय दाम्पत्य जीवन पर भी एक भारी प्रश्नचिह्न है। दाम्पत्य को नये परिवेश में नाटकीय आयाम पर खड़ा करने में भारती ने अपूर्व कला-कौशल का परिचय दिया है। भारतीय नारी होने के कारण भारती ने सुधा में एक के पश्चात् एक भाव स्तर को उभारकर प्रेम और वासना के द्वन्द्व की एक विचित्र सी करुण एवं तटस्थ दृष्टि का प्रदर्शन किया है। अनचाहे व्यक्ति से विवाह और चाहे व्यक्ति (चन्दर) से सतत प्रेम के कारण वह आत्म पीड़ित अवस्था में अपना जीवन-यापन करती है। वह मन से अपने पति से रागात्मक तादात्म्य स्थापित करना चाहती है किन्तु उसकी आत्मा उसे बार बार चन्दर की ओर खींच कर ले जाती है। उन क्षणों में अपने मन की कड़ुवाहट तमतमाहट और भुँझलाहट को नाटकीय शब्दों में अभिव्यंजित करते हुए सुधा एक पत्र में लिखती है—'मेरी आत्मा सिर्फ तुम्हारे लिए बनी थी। उसके रेशे में वह तत्त्व हैं जो तुम्हारी ही पूजा के लिए थे। तुमने मुझे बहुत दूर फेंक दिया लेकिन इस दूरी के अन्दर में भी जन्म जन्मान्तर तक मैं भटकती हुई सिर्फ तुम्हीं को ढूँढूँगी इतना याद रखना। सोचो चन्दर कि इस अनादि काल के प्रवाह में सिर्फ एक बार मैंने अपनी आत्मा का सत्य ढूँढ़ पाया था और अब अनादि काल के लिए उसे खो दिया। अगर पुनर्जन्म नहीं है तो बताओ मेरे देवता फिर क्या होगा? कि अब थककर जल्दी ही गिर जाऊँगी।'[2]

सुधा-कैलाश विवाह आधुनिक स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध पर एक प्रश्नचिह्न है। यह अनमेल विवाह प्रेमचन्द द्वारा रचित 'निर्मला' जैसी समस्या का चित्रण नहीं करता वरन् अधुनातन व्यक्तिवादी नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के चाह की राह में बनी दीवार को प्रस्तुत करता है जिससे टकरा टकरा कर नारी को एक अनिवार्य गहरे अवसाद में से गुजरना पड़ता है और पुरुष विस्फोटात्मक परिस्थितियों का पथिक बनता है। सुधा भुनती है और टूटती है। चन्दर का चरित्र और व्यक्तित्व बिखरने लगता है। चन्दर का पवित्र प्रेम सिद्धांत एक प्रश्नचिह्न बनकर रह जाता है, जब वह एक फिल्मी टूटे हृदय नायक की

---

२ गुनाहों का देवता—पृष्ठ २६० ६१

तरह पम्मी से दाम्पत्य का अभिनय करता है। सात्विक प्रेम ध्वंस के मार्ग पर है। चन्दर के हृदय का एक रस प्रेम कल्पना धूमिल पड़ चुकी है। पम्मी को देखकर अब उसके मन में एक ज्वालामुखी सी उठती है। उपन्यास ने एक ओर नाटकीय प्रभाव देकर सुधा कैलाश के मध्य उभर रहा मानसिक व्यवधान प्रस्तुत किया है, दूसरी ओर चन्दर पम्मी मुक्त यौन आचरण को तीव्रतापूर्ण और गहन स्तर पर स्थापित किया है। यह उद्धरण दिया जा रहा है जो स्त्री-पुरुष संबंधों के मुक्ताचरण रूप को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। वही चन्दर जो कल्पना में सुधा ही सुधा का रहता था पम्मी को गलबाँह में बाँध करते हुए इन शब्दों में चित्रित हुआ है— सात चाँद की रानी ने आखिर अपनी निगाहों के जादू से सन्नाटे के प्रेत को जीत लिया। स्पर्शों के सुकुमार रेशमी तारों ने नरक की आग को शबनम से सींच दिया। ऊबड़ खाबड़ खण्डहर को जगा के गुलाब की पंखुड़ियों से ढक दिया और पाप के अँधियारे को मोतिया पलकों से झरनेवाली दूधिया चाँदनी से धो दिया। एक संगीत की लय थी जिसमें स्वर्ग भ्रष्ट देवता खो गया, संगीत की लय थी या उद्दाम यौवन का उभरा हुआ ज्वार था जो चन्दर को एक मासूम फूल की तरह बहा ले गया, जहाँ पूजा-दीप बुझ गया था वहाँ तरुणाई की साँसों की इन्द्रधनुषी शमा झिलमिला उठी, जहाँ फूल मुरझा कर धूल में मिल गए थे वहाँ गुलराजी स्पर्शों के सुकुमार हरसिंगार झर पड़े, आकाश के चाँद के लिए जिन्दगी के आँगन में मचलता हुआ कन्हैया थाली के प्रतिबिम्ब तक ही भूल गया, चन्दर की शाम पम्मी के अनन्य रूप की छाँह में मुस्करा उठी।[1] इस प्रसंग में मात्र काव्यात्मकता ही नहीं है इसमें पर्याप्त नाटकीयता भी है। यहीं चन्दर-सुधा प्रेम की भावना अब समाप्त होती है। सुधा की मानसिक स्थिति का तनाव बढ़ने के साथ-साथ पुरुष चन्दर की वासना अब भड़कती है। एक ओर प्रणय में वंचित सुधा के मन का हाहाकार है तो दूसरी ओर चन्दर की वासना।

सुधा प्रेम और चन्दर वासना द्वन्द्व ही उपन्यास की नाटकीयता में श्रीवृद्धि करने वाले तत्त्व हैं। वासना की विघटनकारी विध्वंसात्मक शक्ति पुरुष की चिन्तना पर कुठाराघात करती है। एक कालेज का प्राध्यापक बनकर दूसरों को शिक्षा देनेवाला व्यक्ति भी काम प्रवंचक बन सकता है, जीवन की कितनी बड़ी विडम्बना है। चन्दर के मन में द्वन्द्व भी है, उसने सुधा के सहज प्रेम को ठुकराया, बिनती की श्रद्धा का तिरस्कार किया, पम्मी की पवित्रता में विनाश का, क्या यह उसके जीवन की विडम्बना नहीं। एक ओर तो वह सुधा को वचन देता है कि वह अपने को टूटने नहीं देगा, उसका प्यार सच्चा, उसके साथ रहेगा, दूसरी ओर पम्मी के साथ मुक्त यौनाचार, उसकी नैतिक मान्यताओं पर प्रहार कर तीक्ष्ण पक्षपात का सूचक बन जाता है।

सुधा-चन्दर के प्रणय की असफलता का मूल तत्त्व पति-पत्नी संबंध स्थापित होने में पूर्व (और पश्चात भी) सुधा का चन्दर के प्रति मानसिक रूप से अतिरेक के साथ वासनिक संबंध निर्वाह है। भारतीय स्थिति के प्रांगण में नाटकीयता और आत्म

[1] गुनाहों का देवता—पृष्ठ २६७

बान्ति सजा रन है। नाटकीयता सुधा के कारण और आदर्शवादिता बैलाग के कारण प्रस्तुत हुई। पति प्रेमी और सुधा का प्रम त्रिकोण क्या वस्तुत वाइस इम करेट का प्रणय साना है या चौन्ह करेट की वासनात्मक पालिस वाली धातु कसे ? कनाग एक सीमा तक शुद्ध भना पति है जो चन्दर के प्रति श्रद्धा ही रखता है पर प्रेमी चन्दर—वह तो वह नही रह गया। उसका पतन काल्पनिक नही, यथार्थपरक और मनोवैज्ञानिक है। लौह पुरुष भी तो उसम वतमान है जो प्रम के कमनीय दीप के ऊपर वासना की ज्वालामुखी भर लाता है। जब कलाश सुधा को मायके छोडकर कायवश देश से बाहर चला जाता है तब चन्दर की वासना आहत ग्रह के कारण आत्मवादी रूप ग्रहण कर उपन्यास म अति नाटकीय स्थिति ल आती है जो सुधा चन्दर वार्ता द्वारा सम्प्रेषित हुई। वार्ता का एक अंश हम अपने मत की पुष्टि के लिए देते हैं—

मुधा न एक मृगा हार उठाया और चन्दर पर फेंककर कहा चन्दर क्या हमेशा मुझे इसी भयानक नरक म रखोगे। क्या सचमुच हमेशा के लिए तुम्हारा प्यार खो दिया मैंने ?'

'मेरा प्यार?' चन्दर हसा उसकी हसी सन्नाटे से भी ज्यादा भयकर थी मैं आज प्यार म विश्वास नहीं करता '

फिर ?

'फिर क्या उस समय मेरे मन म प्यार का मतलब था त्याग कल्पना, आदर्श। आज मैं समझ रहा हू कि यह सब झूठी बात है, खोखले सपने ह।

तब ?'

तब ? आज मैं विश्वास करता हू कि प्यार के मानी सिर्फ एक है, शरीर का सबध ! कम से कम औरत के लिए ! औरत बड़ी बातें करेगी आत्मा पुनजन्म, परलोक मिलन लेकिन उसकी सिद्धि सिर्फ शरीर म है और वह अपने प्यार की मजिलें पारकर पुरुष को अन्त म एक ही चीज देनी है—अपना शरीर। मैं तो अब यह विश्वास करता हू सुधा कि वही औरत मुझे प्यार करती है जो मुझे शरीर द सकती है। बस इसके अलावा प्यार का कोई रूप अब मेरे भाग्य म नही है।

मुधा उठी और चन्दर के पास खडी हो गई— चन्दर तुम भी एक दिन ऐसे हो जाओगे इसकी मुझे कभी उम्मीद नही थी। काश कि तुम समझ पाते कि " सुधा न दद भरे स्वर म कहा।

स्नेह है। चन्दर ठठाकर हस पडा—और उसने कहा—"अगर मैं उस स्नेह का प्रमाण मागू तो ! सुधा। दात पीसकर चन्दर बोला— अगर तुमसे तुम्हारा शरीर मागू तो ?

चन्दर !'' सुधा चीखकर पीछे हट गई।

भारती द्वारा प्रस्तुत चन्दर सुधा वार्ता का यह प्रसग अधुनातम प्रम त्रिकोण की अवनति पर एक प्रश्न चिह्न है जिसके आरम्भ में आदर्शवादिता सिद्धान्त और आस्था क

---

४ गुनाहों के देवता—पृष्ठ ३१४

स्वर गूजते हैं किन्तु अन्त म परिस्थितिमूलक आकस्मिक रूप परिवर्तन सामने आता है। चन्दर का वासना के प्रतिक्रिया रूप म देख सुधा मन रह गई और यदि चन्दर साहित्य प्रेम का चोला पहनकर सामने न हाता ता शायद सुधा स्वय समर्पिता होने का उपक्रम रचती। त्रिकोण प्रेम प्रसंग म प्रेम और वासना की यह प्रतिक्रिया निष्ठा की प्रतिक्रिया परिणति है। एक म प्रेम दूसरे म घृणा और तीसरे म वासना का प्रसार ही इसम प्रति फलित होता है। अन्त म यह त्रिकोण सुधा की मृत्यु के साथ टूटता है।

प्रेम और वासना की विध्वसकारी सघर्ष गाथा की नाटकीयता का सूत्र आद्य स्थलो पर पात्रो को सभालने पर भी उपन्यासकार पात्र प्रतिनिधान एव नाटककार की भांति परोक्ष म नही चला जाता। पहले जो सूत्र वह पात्रो को देता है उसका दर्शन कीजिए। सुधा द्वारा नकारात्मक उत्तर पाकर आत्मप्रवचक चन्दर घर लौटते ही शीशे के सामने जाता है तब शीशे को उसका प्रतिबिम्ब उससे कहता है — और अभी क्या पागलो सा कम है तू। अहकारी पशु। तू वहीं से भी गया गुजरा है। वहीं पागल था लेकिन पागल कुत्ता की तरह काटना नही जानता था। तू काटना भी जानता है और अपने भयानक पागलपन को साधना और त्याग भी साबित करता रहता था। दम्भी।

बस करो अब तुम सीमा लाघ रहे हो। चन्दर ने मुट्ठिया कसकर जवाब दिया।

क्या गुस्सा हो गए मेरे दोस्त। अहवादी इतने बड़ हो और अपनी तस्वीर देख कर नाराज होते हो

ठहरो गालिया मत दो मुझे समझाओ न कि मेरे जीवन दर्शन म कहा पर गलती रही है।

अच्छा समझो। देखो। मैं यह नही कहता कि तुम ईमानदार नही हो तुम शक्तिशाली नही हो। लेकिन तुम अन्तमुखी रहे यानी व्यक्तिवादी रहे अहकार ग्रस्त रहे। अपने मन की विकृतियो को भी तुमने अपनी ताकत समझने की कोशिश की? बाद भी जीवन दर्शन सफल नही होता अगर उसमे बाह्य यथार्थ और व्यापक सत्य धूप छाह की तरह न मिला हो। मैं मानता हू कि तूने सुधा के साथ ऊचाई निभाई लेकिन अगर तेरे व्यक्तित्व का तेरे मन को जरा-सी ठेस पहुचती तो तू गुमराह हो गया होता। तूने सुधा के स्नेह का निषेध कर दिया। तूने विनती की श्रद्धा का तिरस्कार किया तूने पम्मी की पवित्रता भ्रष्ट की—और इस अपनी साधना समझा।[१]

चान्दनी के खण्डहर म नायक वसन्त कमरे से वार्ता करता है गुनाहो का देवता म चन्दर प्रतिबिम्ब से बात कर मानसिक विश्लेषण ही नही करता परिस्थिति और चरित्र के सघात म अपने व्यक्तित्व के उतार चढाव का नाटकीय प्रभावात्मक चित्र भी प्रस्तुत करता है। इसी बात म आगे प्रतिबिम्ब उसे दार्शनिक परिवेश को दिया म ले जाते हुए बताता है कि सत्य उसे मिलता है जिसकी आत्मा शान्त और गहरी होती है समुद्र के अन्तराल की तरह समुद्र की ऊपरी सतह की तरह जो विक्षुब्ध और तूफानी होता है उसके

---

१ चदर की अपने प्रतिबिम्ब से वार्ता—गुनाहो का देवता—पृष्ठ ३१७

अन्तर्द्वन्द्व में चाहे कितनी गरज हो लेकिन सत्य की शांत ग्रमतमयी आवाज़ नहीं होती।

नायिका सुधा परम्परागत नारी की प्रतीक है तो चन्दर अधुनातम और परम्परा गत पुरुष का अद्भुत मिश्रण लिए है। सुधा की मृत्यु 'गोदान' के होरी की मृत्यु से कम करुणाजनक नहीं। इसकी मृत्यु पर चन्दर तो चुप रहा मगर लेखक मौन न रह सका उसने एक टिप्पणी प्रस्तुत की— "जिन्दगी का यन्त्रणा-चक्र एक वृत्त पूरा कर चुका था। सितारे एक क्षितिज से उठकर, आसमान पारकर दूसरे क्षितिज तक पहुँच चुके थे। साल डेढ़ साल पहले सहसा जिन्दगी की लहरों में उथल पुथल मच गई थी और विक्षुब्ध महासागर की तरह भूखी लहरों की बाहें पसारकर वह किसी को दबोच लेने के लिए हुंकार उठी थी। अपनी भयानक लहरों के शिकंजे में सभी को भकझोरकर सभी के विश्वासों और भावनाओं को चकनाचूर कर अन्त में सबसे प्यारे सबसे मासूम और सबसे सुकुमार व्यक्तित्व को निगलकर अब धरातल शांत हो गया था—तूफान थम गया था बादल खुल गए थे और सितारे फिर आसमान के घोसलों से भयभीत विहग शावकों की तरह झांक रहे थे।"[६]

'गुनाहों का देवता' को नाटकीय शिल्प शिल्प की संरचना के आवृत में लाने का पूर्ण श्रेय संवादों को है जिनके विषय में डा० शिवनारायण श्रीवास्तव लिखते हैं— "संवाद बड़े ही सरस, प्रभविष्णु एवं भावाभिव्यंजन में समर्थ हैं। वस्तुतः ये संवाद उत्कट तीव्रता के कारण उपन्यास में जगह जगह नाटकीयता का समावेश कर देते हैं। ये संवाद कहीं गम्भीर तो कहीं व्यंग्यात्मक शैली में अभिव्यक्त हुए हैं जैसे—"[७]

"बहुत मुझे ताज्जुब है कि तन्दुरुस्ती के लिए तुमने क्या किया तीन महीने तक!"

"नफरत मिस्टर कपूर! औरतों से नफरत। उससे अच्छा टानिक तन्दुरुस्ती के लिए कोई नहीं है।"[८]

'गुनाहों का देवता' में भारती ने अपनी दृष्टि नये विषय नये रूप की ओर केन्द्रित की। विषय की दृष्टि से उन्होंने भारतीय मध्य वर्ग के शिक्षित सुसंस्कृत व्यक्ति की विचारणा सिद्धान्त और यथार्थ जीवन के अन्तराल को नाटकीय शिल्प में रूपायित किया है। भारती वर्णनात्मक शिल्पविधि के कथाकार की भांति आधुनिक पुरुष द्वारा नारी पर अनगिनत अत्याचारों का विवरण नहीं देते। एक पुरुष द्वारा तीन नारियों (चन्दर द्वारा सुधा, बिनती और पम्मी) पर किए गए अत्याचार और क्रूरता का नाटकीय प्रभाव सम्प्रेषित करते हैं। वे चन्दर की भावुकतापरक आदर्शवादिता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। सुधा के असन्तोष की लहरों को गिनाते हैं, बिनती के सफल विद्रोह का मूल्यांकन करते हैं और पम्मी के रूप में आधुनिकाओं की नग्न वासना के पर्त खोलते हैं। उन्होंने प्रेम और विवाह जैसी शाश्वत समस्याओं का आधुनिक विडम्बना का चित्र भी खींचा है। नायक

६ गुनाहों का देवता—पृष्ठ ३७६
७ हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ ३६२
८ गुनाहों का देवता—पृष्ठ २२७

सातवाँ अध्याय

समन्वित शिल्प-विधि के उपन्यास

प्रेमचन्द युग में ही अनेक उपन्यासकारों ने प्रेमचन्द स्कूल के प्रति विद्रोह करके नवीन शिल्प के प्रति मोह अभिव्यक्त किया था। प्रेमचन्दोत्तर युग में समग्र रूप में शिल्प के क्षेत्र में नये प्रयोग करने की प्रवृत्ति ने जोर पकड़ा। इस पक्ष की विस्तृत चर्चा पिछले अध्यायों में हो चुकी है। प्रस्तुत अध्याय में उन उपन्यासों की चर्चा होगी जिन्हें स्वतन्त्र रूप से किसी एक शिल्प विधि के अन्तर्गत नहीं रखा गया। वस्तुतः एक समय ऐसा और सीमा ऐसी आती है जब किसी उपन्यास में एक साथ एक से अधिक शिल्प समन्वित हो जाते हैं जब उपन्यासकार अपनी रचना में एक साथ समाज का वर्णन और व्यक्ति का विश्लेषण करता है तब उसकी रचना में शिल्प समन्वय स्वाभाविक धर्म बन जाता है।

हिन्दी में भी कतिपय उपन्यासकार भाववस्तु को ऊपरी स्तर पर वर्णित न करके उसके सूक्ष्म पक्षों का विश्लेषण करने में समर्थ हुए हैं। ऐसे उपन्यास जो दृष्टि के ऊपर से शिथिल बिखरे और आकारहीन दृष्टिगोचर होते हैं प्रायः शिल्प विहीन नहीं होते अपितु वे समन्वित शिल्प विधि की रचना होते हैं। हिन्दी के शीर्षस्थ उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी का 'जहाज का पंछी' नवीनतम उपलब्धियों के होते हुए भी अनेक आलोचकों को बिखरा बिखरा लगा। मगर मुझे उसका अनुभूति पक्ष तीव्र नज़र आया। इसका नायक और मूल विषय दोनों विश्लेषणों मुखी हैं, जब कि समस्या और समाज वर्णनात्मक। कथाकार ने भाववस्तु में विशिष्टता तथा तीक्ष्णता लाने के लिए नये शिल्प प्रयोग को अपनाया। वस्तुतः समन्वित शिल्प विधि का यह अन्वेषण जोशी की सूक्ष्म अनुभूति और आत्मसत्य के अन्वेषण का ही सशक्त पक्ष है, जिसके कारण 'जहाज का पंछी' हिन्दी के कतिपय सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में गिना जाने लगा।

'चलते चलते' का कथाकार वाजपेयी भी अपने पात्रों की यन्त्रणा की व्याख्या हुआ उन्हें समन्वित शिल्प विधि के परिवेश में घुमाता है और बदलते परिप्रेक्ष्य में उन्हें चित्रित करता है। वाजपेयी भारतीय समाज व्यवस्था की आलोचना वर्णनात्मक होकर और अपने पात्रों का विश्लेषण व्यक्तिपरक पात्रों की अन्तश्चेतना में उभरी समस्याओं पर प्रश्नचिह्न लगाकर करते हैं। 'चलते चलते' में लेखक कभी प्रत्यक्ष रूप से पात्रों की वेश भूषा और कार्यकलाप की आलोचना एवं वर्णनात्मक शिल्प अपनाकर करता है तो कभी लिखित आत्म उद्धरण विधि द्वारा पात्रों का विश्लेषण करता है। जैसे—छोटी भाभी नायक की विचित्र ढंग से पात्र में पत्रों को किसी के कथा उद्धरण के रूप में स्थापित कर अपनी

उस इच्छा का अभिव्यक्त करता है जो प्रत्यक्ष कथा रूप में कहने में कठिन होता।

हिन्दी के दूसरे उपन्यासकार भी हैं जिन्होंने समन्वित शिल्प विधि का प्रयोग अपने अपने उपन्यासों में किया है। उन्होंने अपनी अपनी रचनाओं में वर्णन, विश्लेषण, चिंतन, संवाद और प्रतीकों का नक्शा बनाकर या उनसे अधिक को अपनाकर रचना के कलात्मक प्रभाव को तीव्र तथा प्रभावशाली बनाने का स्तुत्य कार्य किया है। समन्वित शिल्प विधि की रचनाओं में कहीं संवाद लम्बे हो गए हैं कहीं वर्णनात्मकता है तो कहीं विश्लेषण की तीक्ष्णता परन्तु इसकी प्रभावात्मकता असंदिग्ध है।

जहाज का पक्षी'—१९५५

संस्था के प्रशिक्षण द्वारा वैयक्तिक और सामाजिक कल्याण के विषय का समन्वित शिल्प की प्रसिद्ध रचना जहाज का पंछी में सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है। अब तक की उपलब्ध रचनाओं में यह इलाचन्द्र जोशी की अंतिम कृति है। शिल्प की दृष्टि से जोशी ने सब से पहिले विश्लेषणात्मक फिर वर्णनात्मक और अब अंतिम रचना में समन्वित शिल्प विधि का प्रयोग किया है।

जहाज का पंछी आत्म कथात्मक शैली में रचा गया है। उपन्यास का नायक आत्म कथा के रूप में अपनी जीवनी के यौवन खण्ड के एक छोटे भाग का वर्णन करता है किन्तु अवसर मिलते ही जीवन की विशिष्ट स्थिति का विश्लेषण भी करता चलता है। साधारणतया ऐसा हुआ है कि जब जब उसे किसी घटना, व्यक्ति या समाज ने अधिक आंदोलित किया तभी वह अन्तर्मुखी होकर अन्तर्प्रेक्षण विधि (Introspection) द्वारा अपनी मन स्थिति की छान बीन करता हुआ दृष्टिगोचर हुआ है। कथा के आरम्भ में ही नायक ने अपनी अस्त व्यस्त जीवनी निराश्रित अवस्था और दीन दशा का वर्णन किया है इसके अनन्तर विश्लेषण भी प्रस्तुत हुआ है जिसकी कुछ पंक्तियां उदाहरण स्वरूप दी जाती है—

मेरे सिर के रूखे सूखे अस्त व्यस्त बाल घनी घास से भरी क्यारियों की तरह दो गलमुच्छे और उन गलमुच्छों के अगल बगल और नीचे फैले हुए एक हफ्ते से न छीले गए फसल कटने के बाद शेष रह जाने वाले सूखे खूंटों की तरह छितराए हुए दाढ़ी के कड़े बाल क्षय रोग के रोगियों की तरह मुरझाया हुआ मेरा दुबला पतला धुले हुए कपड़ों की तरह रक्तहीन सफेद चेहरा धंसी हुई (और सम्भवत अप्राकृतिक प्रकार से चमकती हुई) आगे गड़े हुए गाल और गालों की ठुड्डी की उभरी हुई नुकीली हड्डियां तिस पर कई दिनों से धुलने की सुविधा न होने से कुर्ता और मैली ही धोती—ये सब उपकरण देखकर कोई व्यक्ति स्वभावत मुझसे सावधान रहना चाहेगा यह मैं पहले ही जानता था। एक पंक्ति में दुर्दशा का इतना वर्णन करने के पश्चात इसकी प्रतिक्रिया सूचक पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं—

एक और प्रतिक्रिया मेरे मन पर अपना प्रभाव छोड़ने लगी जिसकी कल्पना मात्र से मैं बाद में आतंकित हो उठता। जब मेरा हुलिया देखकर मेरी बगल में बैठने वाले एक एक करके प्राय सभी व्यक्ति मुझ पर पेशेवर गुण्डा या गिरहकट होने का संदेह करने

लगा तब अपनी उस हुनान स्थिति मे उन लोगो के मन की भावना का छुवहा प्रभाव मुझ पर इस रूप म पडने लगा कि बीच बीच म कुछ क्षणो के लिए मैं सचमुच तिरछी दृष्टि से (हाथ से नही) पास वाले व्यक्ति की जेब की जाच करने लगता।"[१]

इस उपन्यास म कथानक वर्णनात्मक शिल्प विधि द्वारा सयोजित हुआ है। मूल विषय नायक की वैयक्तिक स्थिति है जो सदैव विश्लेषण के लिए तत्पर रहती है किन्तु इस विषय से सबधित वस्तु विधान विवरणात्मक है इतिवृत्तात्मक है। कथा सगठित नही है, किन्तु कथा तत्त्व का नितान्त अभाव भी नही है। विशृखल कथा विस्तृत घटनाओ द्वारा उदभासित हुई है। नायक की सचित अनुभूतिया ही कथा की सामग्री हैं उसम वर्णित घटनायें ही कथानक के स्तम्भ है। कलकत्ता नगरी की बडी और भीडी गलिया पार्क अस्पताल सागर तट और जहाज हवालात अदालत करीम चाचा का अखाडा, भादुडी महाशय की कोठी, प्यारे की लाइरी मिस साइमन द्वारा सचालित वेश्यालय लीला भवन और राची का मानसिक अस्पताल केवल नायक के भ्रमण व रहन स्थल ही नही है, वस्तुत य कथानक की भीतिया हैं। इनका विस्तृत विवरण और सूक्ष्म निरीक्षण इस उपन्यास म वर्णनात्मक शिल्प विधि का आभास देता है।

कथावस्तु को वर्णनात्मक बनाने वाला सब से बडा तत्त्व है उपन्यास मे सयोजित लम्बे लम्बे भाषणो की तादाद। कुल मिला कर नौ महत्त्वपूर्ण भाषण विभिन्न अवसरो पर दिलाये गए हैं।[२] ये भाषण पात्रो के ग्रह की अवस्था के परिचायक हैं। कुछ साहित्यिक सामाजिक आर्थिक, धार्मिक सास्कृतिक या राजनतिक विषयो पर प्रकाश डालने के लिये सयोजित किए गए है। एक दो भाषण दूसरे पात्रो के मन म उत्पन्न जिज्ञासा को शान्त करने के लिए भावावेग की अवस्था का परिचय देते हैं। नायक द्वारा दिए गए

---

१ जहाज का पछी—पृष्ठ ११ १२

२ (क) अस्पताल से चलते समय डाक्टर को लक्ष्य करके नायक के द्वारा दिया गया भाषण—पृष्ठ ४३ से ४५

(ख) जहाज स पुलिसमन के साथ चलने से पूर्व अमेरिकन के सम्मुख नायक का सक्षिप्त भाषण—पृष्ठ ८५

(ग) नायक के सम्मुख करीम चाचा का भाषण—पृष्ठ १४५ से १४७

(घ) नायक को लक्ष्य कर करीम चाचा का भाषण—पृष्ठ १८६ से १९०

(ङ) भादुडी महाशय के घर रवीन्द्रनाथ के जन्म दिवस पर गोष्ठी म दिया गया नायक का भाषण—पृष्ठ २२८ से २३२

(च) मिस साइमन के अड्डे पर पुलिस कर्मचारी को लक्ष्य कर नायक द्वारा लम्बा वक्तव्य—पृष्ठ ३५१ से ३५२

(छ) नारी सघ मे आदरणीया [अध्यक्ष] द्वारा दिया गया लम्बा भाषण—पृष्ठ ४२३ से ४२८

(ज) लीला से वार्ता होने पर उसकी जिज्ञासा शान्तिहित दिया गया नायक का भाषण—पृष्ठ ४४४ से ४४६

(झ) स्वामी जी द्वारा आत्म कथात्मक परिचायक भाषण—पृष्ठ ५२३ से ५३५

भाषण केवल उसके अहं के परिचायक ही नहीं है अपितु सामाजिक अवस्था तथा समाज के विशिष्ट व्यक्तियों के रहस्यों का उदघाटन भी करते है। अस्पताल का डाक्टर, केबिन वाला अमरिकन तथा भादुडरी के घर एकत्रित सभा और पुलिस अफसर एक बार को इन भाषणो द्वारा स्तब्ध ही नही हुये है परिवर्तित भी हुये है। एक दूसरा डाक्टर सहानुभूति एवं करुणा की भावना से द्रवित होकर नायक की सहायतार्थ कुछ दे डालता है भादुडी के घर के लोगो पर अजीब सी प्रतिक्रिया होती है क्योंकि रहस्य भरी गम्भीर दृष्टि से नायक को देखती है मालकिन पुलक प्रसारित दृष्टि से उनका स्वागत करती है सुरेन्द्र नरेन्द्र आदि की दृष्टि मे स्मिति और जिज्ञासा किन्तु भादुडी महाशय को विश्वास ही नही आता कि एक रसोइया भी साहित्यिक व्यक्ति हो सकता है व उसे प्रच्छन्न कम्युनिस्ट तक कह देते है। पुलिस के अफसर तो भाषण सुनते ही नौ दो ग्यारह होने का यत्न करते हैं। भाषणो के पश्चात की स्थिति वर्णनात्मक न होकर विश्लेषणात्मक है।

कथा-वस्तु की वर्णनात्मकता का परिचायक दूसरा तत्त्व नायक की बहिर्मुखी प्रवृत्ति की ओर झुकाव है। लज्जा' सन्यासी आदि विश्लेषणात्मक उपन्यासो मे जोशी का ध्यान पात्रो की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की ओर ही केन्द्रित रहा घटना बाहर तो बहुत ही कम घटित हुई है जो भी प्रसिद्ध घटना है पात्र के मन की घटना है। मन का ही विश्लेषण है मन की ही विचारधारा है। मुक्तिपथ से लेकर जहाज़ का पछी तक की कृतियो मे जोशी ने के द्रस्थ प्रवृत्ति को बदला इन उपन्यासो की कथावस्तु मे बहिर्मुखी प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। जहाज़ का पछी के नायक को तो खुलेआम बहिर्जगत मे विचरण करने के लिए छोड दिया गया है। पार्क और गलियो मे ही वह शिक्षित अर्धशिक्षित विक्षिप्त अर्ध विक्षिप्त सतप्त अथवा धूर्त व्यक्तियो के सम्पर्क मे आता है उनसे दो क्षण बाते करके उनकी दारुण अवस्था से परिचित होता है। पार्क मे कालेज के छात्र होटल मे बनावटी सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर सडक पर आवारा फिर रही बहकी लडकी फ्लोरा और रस कारस का शौकीन युवक बहिर्मुखी होने पर ही उसके सम्पर्क मे आते हैं और उसकी अनुभूतियो को बढाते है।

बहिर्घटित घटनाओ का विश्लेषण नायक ने अन्तर्मुखी होकर किया है और यह उसकी चरित्रगत प्रवृत्ति है। बाह्य घटनाओ का वर्णन जितना व्यापक और तीक्ष्ण हुआ है, मनोविश्लेषण की प्रक्रिया भी उतनी ही गहन और सूक्ष्म रही है। विश्लेषण द्वारा उपलब्ध परिणामो के कारण घटनाचक्र परिवर्तित हुआ है। कराम चाचा के ठिकाने की घटनाओ का ही ले। इसमे हरिप्रसन्न-भी की उपकथा का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है साथ ही इस कथा की तादृशता नायक को अन्तर्मुखी होकर कुछ मनन करने का अवसर भी देती है हरिप्रसन्न के साथियो की प्रत्यक्ष क्रिया तथा यान की प्रतिक्रिया का प्रभाव नायक के अन्तर्मन पर पडा है और तब इन्हीं उसने तत्कालीन स्थिति का विश्लेषण भी किया है जिसकी कुछ पक्तियाँ उदाहरण स्वरूप दी जाती हैं — इस प्रकार की बातें सुन-सुनकर मुझे ऐसा लगा जैसे स्वयं मैं आ गया मैं हूँ—भगिनी और उसके साथी कह दें कर का प्रभाव-सी स्थिति लगातार मेरे स्वयं अपने प्रति घृणा की-सी भावना मन में उत्पन्न होने लगी

फल यह हुआ कि वह सारा वातावरण ही मुझे विजातीय सा लगने लगा।"

बेला नायक तथा लीला नायक सम्पर्क की सारी स्थिति समन्वित शिल्प विधि का उत्कृष्ट उदाहरण है। बेला, विधवा बेला की जीवनी का विवरण केवल कथा नहीं है अपितु विषम सामाजिक स्थिति का विश्लेषण भी है। बेला, भावुक, संतप्त दमित काम वासना से वशीभूत बेला नायक को पाकर अपने सभी अधूरे स्वप्नों की पूर्ति करने के लिए लालायित है।

"तेरे बिना छलिया रे

बाजे ना मुरलिया रे ' आदि गीत उसकी अतप्त काम वासना के प्रतीक है जिन को सुनकर नायक मनन और विश्लेषण करने पर विवश हो जाता है। गीत की ध्वनि सुनते ही वह विश्लेषण करता है—'साधारण स्थिति में मुझे बेला की इस तरह की बचकानी भावुकता पर हंसी आती। पर मैं प्रारम्भ से ही जानता था कि बेला के सारे बचकानेपन के भीतर ही भीतर एक ममपोशी रुद्र रोदन बाहर निकलने का रास्ता न पाने के कारण फफक फफक कर घुट रहा है। उसके विगत संक्षिप्त परिचय एक दिन प्यारे ने मुझे दिया था "

बेला के सारे विगत जीवन की प्रगति और दुर्गति के द्वन्द्वात्मक इतिहास से परिचित होने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि बेला उस चिर तन विद्रोह के बीज की उपज है। जिसे प्रकृति किसी पुरानी परम्परा जातिगत या सामाजिक लोक में एक नया परिवर्तन लाने के उद्देश्य से, अज्ञात उपायों से और रहस्यमय तरीकों से किसी इच्छित समाज के बीच में सहसा बिखेर देती है

"पर नये विकास का वह नया बीज तत्व क्या सदा के लिए कुण्ठित होकर रह जाएगा? "

'पर मैं जानता था कि आज के युग में जीवन का जैसा रवैया समाज में चल रहा है उसमें मुझ जैसे व्यक्ति को स्थिरता पाने की कोई सुविधा कहीं किसी भी रूप में प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए प्रारम्भ ही से बेला के उत्साह को ठंडा करते रहने की नीति अख्तियार किए हुए था।।'[४]

लीला नायक प्रणय परिणति तक नाना घटनाओं का वर्णन तथा अनेक स्थितियों का विश्लेषण किया गया है। लीला के बाह्य आप का वर्णन उनके घर का विवरण उसकी सहेलियों तथा नारी संघ का परिचय विस्तारपूर्वक दिया गया है साथ ही लीला तथा नायक के अन्तर्मन की गांठ को मनोविश्लेषण द्वारा खोला गया है। लीला असुन्दर है अतएव हीनता की ग्रन्थि उसके चेतन को आन्दोलित रखती है। उसने सम्पन्न होने पर भी विवाह क्यों नहीं किया इस तथ्य का रहस्योद्घाटन विश्लेषण द्वारा नायक के सम्मुख प्रकट किया है— इस देश की जैसी गिरी हालत है उसे देखते हुए लगता तो यही है कि बहुत कम युवक एक निर्धन लड़की से विवाह करने को राजी होते हैं। आपके जैसा गुण का पारखी कोई बिरला ही मिल पाता ।

---

३ जहाज का पंछी—पृष्ठ १८७

४ वही—पृष्ठ २६१ से २६६

'मुझमें कुछ ऐसे विशेष गुण भी नहीं हैं इसलिए एक भी न मिलता, यह मैं जानती हूँ पर आज मेरी सम्पन्न और स्वतन्त्र स्थिति देखकर कई युवक मुझसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अपनी उत्सुकता जता चुके हैं और बहुतेरे आज भी तैयार हैं। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि मुझ जैसी असुन्दर और गुणहीन नारी से जो विवाह करने को राजी होगा वह मुझसे नहीं बल्कि मेरी सम्पत्ति से विवाह करना चाहेगा। इसलिए मैं अभी तक अनब्याही और अकेली हूँ।'[५]

सांस्कृतिक कला केन्द्र जिसका संचालन लीला कर रही है, मारवाड़ी, गुजराती और बंगाली संस्कृत प्रेमी लोगों की संस्था है इसका परिचय भी समन्वित शिल्प का उदाहरण है। इसमें कला के विकास और उसके महत्व का रहस्य बताया गया है। अलौकिक आनन्द की अनुभूति के उद्देश्य की केवल मात्र व्याख्या ही नहीं हुई सूक्ष्म विश्लेषण भी प्रस्तुत हुआ है। एक स्थल पर इसी का विश्लेषण करता हुआ नायक लीला से कहता है— यही है कलात्मक सौन्दर्य जनित अलौकिक आनन्द'। यह अकारण ही हँसता है अकारण ही रुलाता है और अकारण ही क्षण में उत्पन्न होकर अकारण ही दूसरे ही क्षण गायब भी हो जाता है। और रोने का विशिष्ट महत्व है—उस पर प्रकाश डालते हुए आगे कुछ पंक्तियों में वह कहता है—"आँसुओं का निकलना अच्छा है। हम लोग इस युग के स्त्री पुरुष सब ऐसे जड़ और निश्चेष्ट हो गए हैं कि कठोर-से-कठोर परिस्थितियों में भी रो नहीं पाते केवल पत्थर के आँसू निकाल कर ही रह जाते हैं। इसलिए अगर किसी उपाय से भावोच्छ्वास उमड़कर आँखों से आँसू निकल आवें तो इससे मन के निखार में सहायता मिलती है।"[६]

लीला और नायक दोनों ही सास्कृतिक व्यक्ति हैं। उनके तर्क वितर्क जहाँ वर्णनात्मक हैं वहाँ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करते हैं। महात्मा बुद्ध के वैराग्य के विषय पर हुई उनकी वार्ता वर्णनात्मक तो है ही मनोवैज्ञानिक भी है। वार्ता के पश्चात नायक द्वारा किया गया विश्लेषण प्रस्तुत है— लीला के मुँह के भाव से लगता था कि मेरे विचारों से पूरी तरह सहमत न होने पर भी वह स्तम्भित चकित और किसी हद तक पुलकित हो रही थी।[७] लीला-नायक प्रणय की पेंग बड़ी ऊँची उड़ान लेती है। नायक के मुँह से लीजिए के स्थान पर लो निकल जाने पर और लीला के मुख से आप बड़े वहमी हैं, बड़े दुष्ट हो तुम, आदि छोटे छोटे वाक्य एक प्रभावात्मक संसार की सृष्टि कर देते हैं। नीरजा प्रसंग इस कथानक में कहीं भी फिट नहीं बैठा है।

'जहाज का पंछी' में वैयक्तिक पात्रों की उद्भावना हुई है। नायक बेला और लीला वैयक्तिक प्रकृति वाले चरित्र हैं किन्तु साथ ही सामाजिक समस्याओं के उद्घाटक पात्रों के रूप में भादुड़ी महोदय मिस साइमन अमला जुलना और सुजाता आदि चरित्रों को प्रस्तुत किया गया है। नायक के रूप में एक ऐसा व्यक्ति उपस्थित हुआ है जो वैयक्तिक

---

५ जहाज का पंछी—पृष्ठ ३७६
६ वही—पृष्ठ ३८७
७ वही—पृष्ठ ३८८

और सामाजिक चरित्रों और समस्याओं की पूरी पूरी छान बीन करता है। उसने समाज के व्यापक रूप का वर्णन मात्र ही नहीं किया है अपितु विशिष्ट व्यक्तियों के व्यक्तित्व का सूक्ष्म अन्वेषण भी किया है।

नायक का चरित्र गत्यात्मक (Dynamic) है। उसने परिस्थिति के अनुसार रहकर भी अपने को परिस्थिति से ऊपर उठाकर जीवन यापन किया है। इस उपन्यास की सबसे विशिष्ट चरित्रगत प्रवृत्ति है पात्रों की द्वन्द्वात्मक स्थिति। नायक कला और लीला के मन का द्वन्द्व अपूर्व है। नायक तो इसी द्वन्द्व की प्रतिक्रिया स्वरूप कहीं भी स्थिर नहीं रहता। लीला के घर को सबसे अधिक आकर्षक पाकर भी उसकी मन स्थिति डावाडोल रहती है। अनेक बार उसके मन में उस भवन को छोड़कर भाग जाने के लिए तैयार हुआ है।[८] भावुकता के क्षणों में वह उस घर का त्याग कर राची पहुच जाता है।

'जहाज का पछी' का नायक जोशी के पहले उपन्यासों के नायकों की अपेक्षा अधिक बौद्धिक, अधिक भावुक और अधिक विश्लेषक है। उसमें घन अर्जित कर, यश कमाने वाली बौद्धिकता न सही किन्तु व्यक्ति, समाज, राजनीति, धर्म और राष्ट्र का विश्लेषण करने की प्रतिभा है। भावुकता के क्षणों में उसका बहाव उसके अहकार ही एक रूप है। नायक का अह 'सन्यासी' के नन्दकिशोर और 'प्रेत और छाया' के पारसनाथ वाला उच्चतर अह (Super ego) नहीं है स्वाभिमान का परिचायक अह है जो अनेक स्थलों पर उसकी शक्ति की सीमाओं का परिचय देता है। एक दो स्थलों पर जहा उसका अह विस्फोटक सिद्ध हुआ है वहीं उसने विश्लेषिक प्रक्रिया द्वारा उसकी स्वीकृति दी है जैसे—

'सोचते-सोचते जो पहली बात मेरे मन में जमी वह थी कि सभा से घर लौटने पर लीला को मैंने भाषण की तरह जो बातें सुनाई थी उसकी कोई आवश्यकता नहीं थी और वह केवल मेरे अह का असामयिक विस्फोट था। क्या आवश्यकता थी लीला को यह बताने की कि मेरी रहस्यात्मक चेतना अत्यधिक विकसित रही है और मैं कला और संस्कृति का जन्मजात प्रेमी रहा हू, पर अब जीवन के कठोर अनुभवों के स्तूप ने मेरी उस प्रवृत्ति का झकझोरन, उसे तल से सतह तक मथन अपने प्रति उसकी श्रद्धा और सहानुभूति जमाने और उसकी अपरिपक्व भावात्मक चेतना को डावाडोल करके उसे बरगलाने के अतिरिक्त मेरी उस तरह की बातों का और क्या उद्देश्य हो सकता था केवल अपने अज्ञात में अपने मूर्खतापूर्ण अह की तृप्ति मैंने की और उस तृप्ति के लिए एक ऐसी नारी को मैंने अपने मनोजाल में उलझाया जो बौद्धिकता के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ी हुई न होने पर भी मन के क्षेत्र में अपेक्षाकृत शान्त और स्वस्थ जीवन बिता रही थी। उसके भीतर असतोष और अशान्ति के कीटाणु प्रविष्ट कराके मैं उसे किस मझधार में घसीट कर छोड़ देना चाहता हू।'[९]

नायक का पीड़ित अतमन अवसर और सुपात्र पाते ही बाध तोड़कर बरबस फूट पड़ता है। कभी भाषण कभी वक्तव्य, कभी तर्क वितर्क और कभी विश्लेपण की क्रिया

८ जहाज का पछी—पृष्ठ ४१६, ४५४, ४५८

९ वही—पृष्ठ ४५२

प्रतिक्रिया द्वारा उसे अभिव्यक्ति मिली है। लीला के सम्मुख ता उसने अपने अन्तर्मन में छिपी सभी अनुभूतियों स्मृतियों, विचारों एव भाव भगिमाओं को खोलकर रख दिया है। उसमें आत्म करुणा की भावना जाग्रत करके वह उसे सदा के लिए अपने अनुकूल बना लेता है। राची में मानसिक चिकित्सालय में नायक ने नाना पात्रों के सवगों का अध्ययन किया है इससे उसके अपने सवेगों में सतुलन स्थापित हो गया। नायक के अनुभव उसे दृढ तथा सम्पन्न बना देते हैं।

जहाज का पछी' शिल्प और कला की दृष्टि से जोशी की पूर्ववर्ती कृतियों से बढ़ चढ़कर है। इसमें परिस्थितिनुकूल पात्रों की योजना की गई है अवसर अनुकूल सभाषण दिए गए हैं। अत मैं एक आलोचक के इस कथन से बिल्कुल सहमत नहीं हूँ जिसमें उन्होंने कहा है कि जहाज का पछी जोशी जी के सम्पूर्ण उपन्यासों में विकास की सीढ़ी में जीवन दर्शन से हीन है। नायक केवल अपने कार्यों में निष्क्रिय प्रतीत नहीं होता वरन् उसमें अस्वाभाविक गुणों का भी उल्लेख कर दिया है।

डा० रागेय राघव

डा० रागेय राघव बड़े प्रतिभा सम्पन्न लेखक हैं इन्होंने नाटक कहानी निबन्ध आलोचना के साथ-साथ उपन्यास का सजन किया है। परन्तु इनकी रुचि अधिकतर उपन्यास की ओर उन्मुख रही यद्यपि उन्होंने आलोचना और उपन्यास भी लिखे, तथापि उपन्यास लेखन में उनकी जो प्रतिभा प्रगट हुई वह अन्यत्र नहीं उपन्यास में भी ऐतिहासिक उपन्यासकार के नाते ही हिन्दी जगत में वर्मा जी की अधिक ख्याति प्राप्त हुई। रागेय राघव के उपन्यास सामाजिक चेतना और ऐतिहासिक अन्वेषण का परिणाम है। 'घरौंदे' सर्वप्रथम प्रकाशित उपन्यास है जिसका प्रकाशन सन १९४१ में हुआ। इस उपन्यास में प्रकरणों की भरमार है। इस रचना में उपन्यासकार भारतीय कालिजों के विद्यार्थियों के जीवन पर प्रकाश डालता है उपन्यास वर्णनात्मक शिल्प द्वारा भगवती नाम के छात्र के जीवन के विवरण प्रस्तुत करता है।

मुर्दों का टीला—१९४८

मुर्दों का टीला रागेयराघव का सर्वप्रसिद्ध उपन्यास है जो ऐतिहासिक होते हुए भी वर्णनात्मक शिल्प के बजाय समन्वित शिल्पविधि में रचा गया है। इस उपन्यास के छपते ही हिन्दी आलोचकों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ और एक आलोचक ने इसके विषय में कहा— मुर्दों का टीला सम्भवत रागेयराघव का अब तक का सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसमें उन्होंने मोहन-जोदड़ो के समय के अज्ञात सामाजिक सांस्कृतिक जीवन की कल्पना जन्य कहानी कही है। इस प्रागैतिहासिक सभ्यता पर साहित्यिक कल्पना का यह हिन्दी में पहला उपन्यास है।[1]

मुर्दों का टीला एक ऐतिहासिक ही नहीं प्रागैतिहासिक कालीन उपन्यास है।

---

1 शिवदानसिंह चौहान हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष—पृष्ठ १७०

इसमें कथाकार ने 'मोहन जोदडो' की प्रागैतिहासिक घटना का द्रविड दृष्टिकोण से विजित किया है। वातावरण विनियोग कथा घटनाप्रवाह, बहिर्मुखी होने के कारण वर्णनात्मक है। जबकि पात्रों को प्राचीन परिवेश में रखकर उनका विश्लेषण भी किया ही गया है। साथ ही प्रागैतिहासिक युग की समस्याओं का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। वर्णन विश्लेषण के विनियोग के कारण यह रचना समन्वित शिल्प विधि की रचना बन गई है। इसमें अधिनायकवाद एवं राजतन्त्र के स्थान पर प्रजातन्त्र के प्रति आग्रह साम्राज्य के प्रति घृणा आभिजात्य वर्ग के दम्भ पर प्रहारवादी स्वतन्त्रता की पुकार और मानवता के सिद्धान्तों की वकालत अवश्य की गई है, किन्तु यह वकालत मार्क्सवादी उपन्यासकारों के प्रचार की भांति मुखरित नहीं हुई है। मुर्दों का टीला का कथानक शृंखलाबद्ध है। इसमें 'मनिबन्ध' की ऐसी जीवनगाथा है, जिसमें विवरणों की भरमार है। समन्वित शिल्प विधि का समायोजन करने के लिए कथानक को प्रागैतिहासिक और समाज परक बनाते हुए वर्णनात्मकता का परिचय देता है। वहीं वह आधुनिक मनोवैज्ञानिक साधना का प्रयोग करता हुआ प्रमुख पात्रों का मनोविश्लेषण भी प्रस्तुत करता है। लेखक का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए हम उपन्यास के प्रमुख पात्र मणिबन्ध' के चरित्र विश्लेषण का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं— पिछले दिनों की वर्षों पूर्व की बात एक एक करके आंखों के सामने गुजर गई, और उन स्मृतियों ने समय पर ऐसे अमिट चिह्न छोड़े जो गर्म घाव लेकर मांस के मांगन पर जिन बातों को मनुष्य भूल जाना चाहता है, वही उसे बार-बार क्या याद आती हैं। क्या मनुष्य का अतीत वह भयानक पिशाच है जो उसके भविष्य में वर्तमान का पत्थर बनकर पड़ा रहता ?[2] इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास में संयोजित विश्लेषण अति स्वाभाविक है।

'मुर्दों का टीला' का कथानक अत्यधिक चमत्कारपूर्ण है और इसका घटनाचक्र कुतूहलवर्द्धक रोमांचकारी कल्पना से प्राणप्राप्त है। उपन्यास की रोमांचकारिता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि इस उपन्यास में अनेक पात्रों की हत्या दिखाई गई है अथवा कुछ पात्रों की हत्या के असफल प्रयास भी दिखाए गए हैं। हत्या कार्य में पुरुष पात्रों के साथ साथ स्त्री पात्र भी तत्पर दिखाए गए हैं। कथा की गति पहले मन्द उत्तरोत्तर द्रुत होती गई है। कथाकार की वर्णन विवरण रुचि के कारण कथानक अनेक स्थलों पर वर्णन आधिक्य के कारण कथानक की रोचकता भी कम हुई है किन्तु नाटकीय प्रसंगों के कारण मार्मिकता की श्री वृद्धि हुई है।

'मुर्दों का टीला' एक पात्र बहुल उपन्यास है। ये पात्र दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं। एक प्रगतिगामी प्रतिक्रियावादी, 'मणिबन्ध आमानगावराह आदि' पात्र नागरिक जीवन की महान आकांक्षाओं के दम्भ से परिपूर्ण हैं जबकि विश्वजीत व विल्नी मित्तूर हेकानास मानवीय अधिकारों के प्रबल समर्थक हैं। मनिबन्ध' विश्वजीत का पुत्र था भी कि नहीं इस सम्बन्ध में उपन्यासकार एक प्रकार की आशंका का वातावरण उत्पन्न करता है जिसे दो शब्दों में विज्ञापित किया गया है—' मानवन्धु विश्वजीत का

२ मुर्दों का टीला—पृष्ठ १७६

पुत्र था आज तक स्नेह था आज वह पूरा हो गया। अब कोई संशय बाकी नहीं। किन्तु कुलीन, रक्त की कुलीनता का यह दम्भ कितना भीषण दुराचार है। इस आतुर मनुष्य का जो अपने आपको त्याग देने का प्रयत्न करता है? फिर कानों में गूंज उठा— कुलीन!!! और विरजित मन ही मन हंसा कुलीन! वह स्वयं ही कुलीन नहीं था।'[3] कुलीनता के दम्भ का यह विश्लेषण अति गम्भीर पर प्रभावात्मक है। कुलीनता के दम्भ पर लगाया गया यह प्रश्नचिह्न कथाकार के चिन्तन कौशल और समन्वित शिल्प विधि का प्रमाणपत्र बनकर सामने आया है। इसी प्रकार से कथाकार दासों के दारुण शोषण का विश्लेषण करते हुए प्राचीन समाज में वर्तमान पात्रों में संवेदना जागृत करता है। हेना और नीलूफर दोनों दासी हैं। पर दोनों अपने चातुर्य से जीवन की विषमता से त्राण पाती हैं। नीलूफर तो अपने सौन्दर्य तथा कुशलता से मणिबन्ध की प्रेयसी बन जाती है और स्वामिनी बनते ही वह दूसरी दासियों और दास पात्रों के साथ दुर्व्यवहार करने लगती है। परन्तु जब एक दूसरी औरत उसे मणिबन्ध द्वारा अपमानित करवा देती है तब उसका जीवन की करुण धरती सोंधी गन्ध के समान पाठक को मोह लेती है। यही उपन्यासकार ने नारी जीवन की करुणा को सामाजिक चेतना की संवेदना के स्तर पर निरूपित किया है।

रांगेय राघव की पात्र संयोजना अति आकर्षक है। एक ही पात्र में जीवन की नाना स्थितियों का वर्णन, विश्लेषण और नाटकीय संकेत कथाकार की समन्वित शिल्प विधि की उपलब्धि मानी जायगी। नीलूफर में क्रीत दासी का सारा रूप वर्णनात्मक है और उसका मणिबन्ध से संबंध पूर्णरूप से विश्लेषणात्मक है। अन्त में उसका विद्रोह नाटकीय सांकेतिकता रखता है। मणिबन्ध नगर सेठ पुरुष के रूप में हमारे सामने आता है। धीरे धीरे उसके चरित्र में एक परिवर्तन आया और ग्यारहवें परिच्छेद में तो वह आत्मग्लानि से परिपूर्ण होकर आत्मविश्लेषण भी करने लगता है। जैसे— 'मणिबन्ध? जो स्वर्ण से भी मूल्य मणियों का बन्धन है यदि वह सब त्याग दे तो उसकी जगह वह अनेक कुत्ते लगे जो मणिबन्ध बनने के लिए जीभ निकालकर हांफते हुए भाग रहे हैं। तो क्या मणिबन्धत्व इसी प्रकार समाप्त हो जायगा?'[4] इस विश्लेषण में एक ओर मनोविश्लेषण है तो दूसरी ओर प्रतीकात्मकता भी है। उपन्यासकार मणिबन्ध को संपत्तिशाली के सांकेतिक रूप में चित्रित करता है। इसका पहला नाम सिन्धुदत्त था वह भी प्रतीकात्मक है क्योंकि उसे सिन्धु ने देख लिया था। उसे अनेक बार नीलूफर की याद हो आती है और वह भी कमल को देखकर क्योंकि नीलूफर का अर्थ ही कमल है।

कथाकार ने कहीं वर्णनात्मक तो कहीं विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का आश्रय लेते हुए पूर्व कथाओं का वर्णन किया है और पात्रों का विश्लेषण किया है। उपन्यास के ग्यारहवें अध्याय में तो वह कहीं स्वप्नविधि द्वारा कहीं चेतना प्रवाहवादी विधि द्वारा अपने पात्रों के अचेतन मन की अन्तर्द्वन्द्वात्मक स्थिति का विश्लेषण कर गया है। नीलूफर बड़े प्रयास

---

३ मुर्दों का टीला—पृष्ठ ४२७
४ वही—पृष्ठ २८३

के पश्चात गायक का प्रेम और विश्वास पाती है, किन्तु उसके अचेतन मन में यह भय बना रहता है कि यों ही मनिबन्ध और वेणी के कारण गायक को भी खो दे, पृष्ठ २८८ पर उसने जो स्वप्न देखा है वह उसकी अन्तश्चेतना की आशंकाशालिता का प्रतीक है।

डा० रांगेय राघव ने इस उपन्यास के पात्रों के चरित्र चित्रण में समन्वित शिल्प विधि का सहारा लेते हुए वर्णन और विश्लेषण के साथ साथ संवादों को भी परम्परा दी है—एक दास की हत्या हो जाने पर एक अन्य दास इस हत्याकाण्ड की सूचना देने के लिए आता है और संवाद इस प्रकार से संयोजित हुआ है—

"महाप्रभु !" दास से हाँफते हुए कहा।

'क्या है?' मनिबन्ध व्याघात से क्रुद्ध गया। वणी (प्रेयसी) सामने बैठी थी।

"महाप्रभु !" दास ने हाँफते स्वर में फिर कहा।

'क्या है? कहो न !" मनिबन्ध ने झुंझलाकर कहा— मूर्ख ! कहता कुछ नहीं, बस महाप्रभु ! महाप्रभु।'

दास काँप रहा था। भय से उसके मुँह से फिर निकल गया—महाप्रभु।

'दास !" मनिबन्ध गरज उठा। 'लगता है आज तेरा सिर तेरे कन्धों पर बहुत भारी हो गया है?'

दास नीचे लोट गया। मनिबन्ध को उसकी यह अवस्था देखकर विस्मय हुआ। उसने देखा वह अत्यन्त डरा हुआ था। उसने संयत होकर सान्त्वना देते हुए कहा—

'क्या है दास? क्या बात है?'

'मुझे अभय दीजिए प्रभु ! अभय दीजिए।" दास ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

वणी ने कहा— 'निर्भीक होकर कह दास। क्या कहना है तुझे?'

स्वामिनी ! मैंने देखा है। अभी देखकर आया हूँ '

'क्या देखकर आया है?'

प्रभु ! रक्त "

रक्त? वणी ने पूछा कैसे निकला?'

नहीं देवी ! हत्या !'

मनिबन्ध ने सुना और हठात् उठकर खड़ा हो गया।

हत्या !!" मनिबन्ध ने गम्भीर गर्जन किया— कैसी हत्या ! किसकी हत्या !! उसने फिर कहा—दास ! शीघ्र कह !"

'प्रभु ! दास कक्ष के प्रांगण में अमय प्रधान "

'अक्षय प्रधान?

'कहने दीजिए प्रभु !' वेणी ने कहा—"मूर्ख डर गया है।'

मनिबन्ध ने चुप होकर देखा। दास ने फिर कहा— अवश्य प्रधान की हत्या हो गई है। उसका सिर फट गया है और रक्त से पक्का प्रांगण भीग गया है "

'सच कह रहा है तू। मनिबन्ध ने फिर पूछा।

'देव मैं निरपराध हूँ। दास की गिड़गिड़ाहट से मनिबन्ध को घृणा हो गई।

वणी चौक उठी ''५ इस सवाद द्वारा पात्रा का मन स्थिति ता प्रकाश म आई ही कथा की गत्यात्मकता म भी अभिवद्धि हुई और एक अश म नाटकीयता आ गइ । मनिबन्ध क साथ पाठक का आत्मीय सबध स्थापित कराने म इस प्रकार के सवाद पूण सफल हुए हैं। इस दष्टि से इस उपन्यास की शिल्प विधि प्रेमचद या इलाचन्द्र जाशी या डा० धमवीर भारती की शिल्प विधि स भिन्न है। एक आर इसम खण्ड चित्रा को सकलित कर अन्वितियो म एकात्मकता स्थापित हुई है दूसरी ओर प्रागतिहासिक युग की जीवन गाथा की सरचना म कथाकार युगीन समस्याओ तथा विचारणाओ को मुखरित कर गया है। एक आर सामन्तशाही का प्रागतिहासिक सफल चित्रण है, दूसरी आर दास प्रथा आदि की कडी आलोचना जा लेखक के जनवादी दृष्टिकाण की परिचायक है।

मुर्दों का टीला की भूमिका म रागेय राघव न एतिहासिक परिप्रेक्ष्य तटस्थता और वज्ञानिकता का पक्ष लेत हुए कहा भी था— मिश्र और एलाम सुमर और माहन जाण्डा के दाशनिक तत्वा की झलक देन का मैंन प्रयत्न किया है। उसम मैंन विशेष ध्यान रखा है कि उस काल के अनुसार ही सबका वणन किया जाए। आजकल हिन्दी म ऐस बहुत स उपन्यास निकल रहे है जिनम अदभुत बात साबित कर दी जाती है एस अनक उदाहरण है। खेद है आपका यहा दास दासा की सी बात करता मिलेगा। उसकी परिस्थिति प्रकट है। वह उस काल क दाशनिका की सी शिक्षित बहस नही कर सकता न वह वज्ञानिक भौतिकवाद मानता है न द्वद्वात्मक एतिहासिक व्याख्या ही। मैं समझता हू इतिहास को इतिहास की सफल झलक करके देना ठीक है न कि अपन आपको पात्र बनाकर किए-कराए पर पानी फेर देना। श्री भगवतशरण उपाध्याय एकमात्र ऐसे लेखक है जिनम यह दोष नहा है। मुझे उनस काफी सहायता मिली है किन्तु उनम पौराणिकता काफी है। ६ रागय राघव यह लिखकर अपना दष्टिकोण स्पष्ट कर गए है। उन्हान अपन इस उपन्यास म यशपाल या राहुल की तरह मार्क्सवादी अथवा वगवादी दष्टिकोण का प्रचार किए बिना मानवतावाद और आधुनिक सवेदना को एतिहासिक परिप्रेक्ष्य म चित्रित कर दिया है वह भी समन्वित शिल्प विधि द्वारा अधिक कहने की चाहना वणनात्मक शिल्पी के रूप म मानसिक ऊहापोह एव विश्लेषणात्मक शिल्पी बनकर और नाटकीयता का रग एक नाटकीय शिल्पकार का रूप धारण कर ये मुर्दों का टीला म अवतरित हुए।

'मुर्दों का टीला' म विश्लेषण प्रक्रिया भी और सवाद सौन्दय भी है, इस बात की पर्याप्त चचा हा चुकी। अब इनकी भाषा और शली पर भी विचार कर ल। इनकी भाषा सरल है और शली विषय अनुकूल जिसके कारण इनके शिल्प म स्वत स्फूर्ति की दीप्ति आ गई है। जा निम्नलिखित उद्धरण स स्पष्ट हा जायगा— प्रकाष्ठ म फिर दो ही रह गए—सुन्दर युवती —और मनिबन्ध —।

'तुम कौन हा ? मनिबन्ध न अचरज स पूछा—'तुम कोइ दासी ता नहा

---

५ मुर्दों का टीला—पृष्ठ ३३६ ३७

६ वही—भूमिका से अवतरित

लगती।"

"आपकी दासी ही हूं।"

मनिबन्ध निरुत्तर हो गया। उसने पूछा—

'तुम किस देश की रहने वाली हो?"

स्त्री ने कहा—"देश आपका है। मैं आपकी प्रजा हूं। अधीर यौवन का भुजपाश उठ गया, जैसे ललकते साप हो। मनिबन्ध ने देखा। पर नहीं देखा, नहीं देखा और फिर मनिबन्ध ने देखा वह मादक तन्द्रा सी छवि-वटिनी और इन्द्रजाल-सी रात, और तूफान के व सम्सरात भोंके जिनके विक्षोभ मे सम्राट की वाहिनी की विजय घोषणा हो रही है और वह टिमटिमाते, अधियारे म कापते दीपक और वह पागल कर देनेवाली वक्ष घाप करती सम्राट की जयध्वनि और सामने यह एक रहस्यमयी स्त्री "

मनिबन्ध का सिर फटने लगा। साम्राज्य की शक्ति और सम्राट क गौरव की पहली रात। स्त्री जब चषक म मदिरा ढाल रही है। सर्वश्रेष्ठ, सुगंधित, लाल, चमकती मदिरा पीकर जिस मनुष्य झूम उठे उसके जीवन की युग-युग की तन्द्रा एक घूट म सफल हो जाए। इस प्रकार उठे कि मादक यौवन बूद बूद बनकर फूट नहो रस बनकर भवर मार काप उठे।

'आधी की डरावनी आवाज गज रही थी। कहीं दूर अब शख ध्वनि हो रही है कही दूर अब नगर म कोलाहल हो रहा है। और रात बाहु फैला आवत जस इस युवती के यह घने घुघराले बाल और वह तूफान जैसे उसके मादक श्वास निश्वास और वह भुजपाश वह साम्राज्य का विराट अभिमान तूफान जय के गीत गा उठा। मनिबन्ध उस सुन रहा है और यह घाडे उसका विरोध करेंगे।

चषक होठो पर लगा है। आखें अलग रूप सुधा पी रही है आनन्द विभोर आनन्द उधर धरती रक्त पी रही है रक्त का उन्माद युवती के आभूषणो से मजु क्वणान हो रहा है, उधर सेना के शस्त्र खडखडा रहे हैं। प्रेम और विजय आनन्द और अधिकार स्त्री और पुरुष, गुलाम और साम्राज्य ।

तूफान गरज रहा है

हृदय बज रहा है। धमनियो म रक्त के स्थान पर मदिरा काप रही है।

और प्रबल थपेड मारता वह आकाश को हिलाता हुआ शब्द सम्राट मनिबन्ध की जय!

और वह सहस्र नगरवासियो का क्रन्दन

मनिबन्ध चिल्ला उठा—एक चषक और सुन्दरी

एक चषक और

सुन्दरी खिल खिलाकर हसने लगी।'"[७]

उपर्युक्त उद्धरण इस तथ्य का परिचायक है कि डॉ० रागेय राघव का भाषा पर पूर्ण अधिकार है, उनकी शैली मे मार्दवपन है। उनके शिल्प और कथ्य म सतुलन है। वस्तु

---

७ मुर्दो का टीला—पृष्ठ ३२३ ३२८

स्वय विवाह रचकर सब गुड-गोबर कर देते हैं। सत्येन्द्र नीलम सबध, सुनील शशि प्रणय, सरला का विवाह से पूर्व घर से भाग जाना नरेश-शीला विवाह मानवीय दुर्बलता के परिचायक हैं। इन पात्रों के मन म विद्रोही भाव उभरते हैं मगर दूध के उफान के समान बैठ जाते हैं। विवाह के पश्चात न शशि का व्यक्तित्व उभरा, न सरला का, हालांकि इन दोनों ने अपनी इच्छा से विवाह से पूर्व प्रेम का वरण किया है। प्रश्न है—भारतीय समाज म विवाह पूर्व प्रेम की असफलता का। विष्णु प्रभाकर जिस द्रुत गति के साथ भारत के मध्यवर्गीय युवक युवतियों के प्रेम शाप का चित्रण करना चाहते हैं फलक उनका साथ नहीं देता। यदि उपन्यासकार इसी विषय को समन्वित शिल्प विधि की अपेक्षा कम पात्र लेकर विश्लेषणात्मक या प्रतीकात्मक शिल्प विधि की रचना बनाता तो अवश्य सफल होता।

नीलम को एक सशक्त पात्र बनाने का लेखक का प्रयास विफल रहा। जब वह रतिया के विवाह प्रस्ताव को नकार देती है और अस्पताल म पडी विचारती है तभी उसके कान गूजने लगते हैं—"याद रख नीलम, तुझे जीना है। ससार से जूझकर जीना है। जब तक शरीर म प्राण है, तब तक तुझे जीवन का सम्मान करना है। बेशक तुझे भीख मागनी पडे, दर दर की खाक छाननी पडे, पर सदा यही समझना वह भीख मातृ देवता की भीख है। वह खाक, मातृभूमि की खाक है।[२] पत्रों म भी नीलम अपनी मनोदशा वर्णित करती है, मगर वह सब प्रभावशून्य की परिचायक है। कभी उसके कान गूजते है —"विवाह से डरती हो ? न सही विवाह। नारी का पुरुष चाहिए। पुरुष बिना नारी अपूर्ण है। पति प्रेमी, कामी, लालुपी व्यभिचारी, साथी, सखा मित्र ये सभी पुरुष हैं।[३] यह सुन वह आत्महत्या का निश्चय करती है। पर कहा कर पाई वह मृत्यु ?

शीला की मृत्यु के प्रसग म जो नाटकीयता आरम्भ हुई वह भी अस्थायी रही। ललिता महेन्द्र रोमास भी मन पर स्थायी प्रभाव नहीं छोडता। ललिता और उसके पिता रामनाथ के पत्र उपन्यास का आकार ही बढाते हैं। वस्तुत उपन्यासकार पात्रों की अन्त श्चेतना की आग को सुलगा कर स्वय ही अपने निर्बल शिल्प के हस्त द्वारा उन पर बेकार के बोझिल विचारों और विशृखल घटनाओं की राख डालकर उस अन्तर्दाह को दबा कर रख देता है। 'निशिकान्त का सफल लेखक तट के बधन म बुरी तरह असफल होता है।

चलते चलते—१९५१

आत्म निरीक्षण एव समाज परीक्षण का कार्य सफल समन्वित शिल्प विधि द्वारा अधिक सरल हो गया। अन चलते-चलते' की रचना इस विधि अनुसार हुई है। उपन्यास का मूल विषय स्त्री-पुरुष की स्वच्छन्द प्रेम लीला है। कथाकार ने इस विषय के आधार पर जो कथा-वस्तु जुटाई है वह वर्णनात्मक है किन्तु मूल विषय विश्लेषणात्मक है। वाजपेयी से पूर्व इसी विषय पर अनेक उपन्यास लिखे गये हैं जिनम प्रसाद कृत 'ककाल

---

२ तट के बन्धन—पृष्ठ ११४

३ वही—पृष्ठ ११९

विश्लेषण की यह प्रक्रिया व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रही है समन्वित शिल्प विधि के अन्तर्गत आ जाने के कारण 'चलते चलते' मे समाज, राष्ट्र, राजनीति और धर्म आदि विषय भी इसकी परिधि मे आ गये है। मनोज ने आत्मघात क्यो किया जमुना पागल क्यो हुई बडे भैया वंशी ने आत्म हत्या किस लिए की—इन सभी प्रश्नो के उत्तर मे सामाजिक वैषम्य और वैयक्तिक कपट तथा स्वजनो का पूरा पूरा विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास मे बाह्य घटना का वर्णन जितना विरल हुआ है विश्लेषण की प्रक्रिया उतनी ही तीव्र एवं सूक्ष्म होती गई है। इस उपन्यास की आरम्भिक और क्रान्तिकारी बाह्य घटना राजेन्द्र के पिता की मृत्यु और शव का लुप्त हो जाना है। माधवी के विवाह अवसर पर भी राजेन्द्र को इस घटना की बहुत याद आती है। विवाह के पश्चात उसका मन यह स्वीकार ही नही करता कि उसके पिता मृत हैं। इस घटना को वह अशुभ कल्पना के रूप मे मानसिक रोग समझ बैठता है और शव की दुर्गति मे विषय को लेकर चिंतन करने लगता है। नाना प्रश्न विभिन्न समस्याए और अनेक शकायें उसके कोमल मन को जडीभूत कर देती हैं। इसी स्थिति मे वह मानव हृदय की एक घडी की मशीन से तुलना करता है और इस परिणाम पर पहुचता है कि उसके पिता सशरीर सप्राण जीवित हैं और यह चिन्तन सत्य मे परिणित हो जाता है।

समन्वित शिल्प विधि के उपन्यास मे किसी भी सामाजिक घटना राजनैतिक कार्य, धार्मिक परम्परा या आर्थिक समस्या का विस्तृत वर्णन मात्र नही होती अपितु उसका कारण परिणाम तथा उसकी सीमा का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया जाया करता है। चलते चलते उपन्यास की घटनाओ को लें तो इन्ह सख्या मे सीमित पाएग किन्तु इनका वर्णन विवरणात्मक है और इनके घटित होने का कारण तथा प्रभाव सूक्ष्मतापूर्वक विश्लेषणात्मक विधि द्वारा उदघाटित किया गया है। राजेन्द्र के पिता की अद्भुत मृत्यु और पुनर्जीवन माधवी का विवाह, राजेन्द्र की चाची का मकान बेचना और विधवा पुत्री लाली का जेवर चुरा कर तीर्थ यात्रा के बहाने दिल्ली प्रवास और पाडेय जी (राजेन्द्र के पिता) के साथ मुक्त मिलन, लाला सावरे की दुहिता जमुना का राजेन्द्र के मित्र मुरलीमनोहर उर्फ राजहस के साथ बम्बई भाग जाना फिर उसके व्यवहार से तग आकर उसे चलती गाडी से धक्का देकर स्वय पागल हो जाना रामलाल की विमला (वशी की बडी बहू) के साथ अवैध सबध स्थापित कर वशी को धोखा देकर बीस हजार का चक भुना लेना—ये पाच घटनाए ही उपन्यास की कथावस्तु का आधार हैं। इनकी योजना वर्णनात्मक शिल्प विधि अनुसार हुई है किन्तु इनके घटित होने की खोज-बीन के लिए विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का आश्रय लिया गया है।

'चलते-चलते' उपन्यास की प्रत्येक घटना के मूल मे स्त्री-पुरुष के यौन की अनप्त काम वासना कार्य कर रही है। यह परिणाम प्रत्येक घटना का विवरण पढ़कर मालूम नही पडता अपितु नायक राजेन्द्र द्वारा किए गए विश्लेषण द्वारा ज्ञात होता है। उपन्यास मे पाच जोडो का अवैध सबध दिखाया गया है—

इनका सबध द्वि-पक्षीय है।

(१) पांडेय चाची अवैध सबध

(२) रामलाल विमला अवध सबध
(३) जमुना मुरली अवध सबध
(४) लाली-वशी अवध सबध
(५) अचना वशी अवैध सबध

इनके अतिरिक्त एक पक्षीय अवैध सबध स्थापित करन का जो प्रयास हुआ है उसमे छोटी भाभी राजेद्र सबध, लाली राजेद्र सबध तथा कमाली राजेद्र सबध द्रष्टव्य है। इस ओर राजद्र के प्रति आदशवादी होने का कारण ये सबध मन तक अवध होकर रह गए है। दैहिकता का नाश इनके द्वारा नही हो पाया है। इस प्रकार क सबधो का मूल कारण अतप्त काम वासना है। लाली-वशी के अवध सबध की बात सुनकर राजद्र हतप्रभ रह जाता है। उसे विश्वास ही नही होता कि ऐसा कुछ घटित हो सकता है सम्भाव्य है। मन स्थिति का विश्लेषण करन क साथ-साथ वह इस अनहोनी घटना के मूल का कारण खोज निकालता है। समाज की अन्त सलिल अतर्वाहिनी स्रोतस्विनी वत्ति कामवत्ति है, इसकी अतृप्ति ही मन को कुण्ठित कर देती है। इसकी पूर्तिहित कुछ भी अवाछनीय दष्टि गोचर नही होता। और फिर पिता क मिल जान पर उसे जो प्रसन्नता प्राप्त होती है उनके तथा चाची क अवध सबध की कथा जानकर जो कड़ुवाहट अनुभव होती है उसका वणन क्या इन शब्दो म सगृहीत नही हो गया—'मरा हृदय उमड उठना चाहता है। उस उफान की तरह, जो उबलती दाल म पहली बार उठा करता है। मैं नही जानता मैं इस विषाद कहू या हष। हष इससे अधिक क्या होगा कि पिता जी जीवित है और विषाद भी इसस अधिक क्या होगा कि उन्होन फिर अपने वधानिक परिवार म आना भी स्वीकार नही किया। उन्होने मेरे और मा के साथ इतना छल—उनका इतना तिरस्कार किया। लेकिन क्या यह अवसर इस बात पर रोने धोन और बहस करन का है? जिसको मैंने अब तक चाची शब्द से सबोधित किया है क्या अभी इसी समय उनके मुह पर फटाफट यह कथन जड दू कि तुम हो तुम से तो बात करने म भी मुझे शम आ रही है' लेकिन अगर ऐसा कहू तो फिर अपने पूज्य पिताजी को किन शब्दो म याद करू? हे प्रभु तेरी इच्छा पूण हो। तेरी वह रचना पूण हो जिसम अनतिकता का इतना महत्त्व है।'[३] इसके पश्चात् अवध सबध का विश्लेषण हुआ है।

जमुना के पागल हो जान पर उसकी विक्षिप्त अवस्था के वणन के साथ साथ राजद्र ने जमुना की अतप्त काम वासना की दशा का विश्लेषण भी कर डाला है— मरे मन म आया—क्या यह किसीको खोज रही है? क्या जीवन पथ म चलते चलते किसीने इसका साथ छोड दिया है? फिर राय चद्रनाथ का स्मरण आ गया। उनके रहते हुए यह नारी अन्य किसी व्यक्ति की ओर दष्टि ही क्या डालती है? फिर उनका कथन कि मैं जहर खा सकता हू, पर यह नही बता सकता कि मेरे इस जगह नासूर है। क्या इसका यह स्पष्ट अभिप्राय नहा कि व जमुना की यौन लिप्सा शान्त करन म सवथा असमथ रहे हैं।'[४]

३ चलते चलते—पृष्ठ ४२१
४ वही—पृष्ठ ४५८

'चलते चलते' उपन्यास में वैयक्तिक ही नहीं सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओं तथा समस्याओं का विश्लेषण भी हुआ है। एक रिक्शे पर बैठकर राजेन्द्र के मस्तिष्क में उसकी दयनीय स्थिति के प्रति करुणा ही नहीं उमडी है अपितु समस्त समाज और अर्थ व्यवस्था के प्रति क्रान्तिकारी विचारधारा बह गई है। वह इस स्थिति का विश्लेषण इन शब्दों में करता है—"आज की इस सभ्यता ने मनुष्य को कुत्ता बना डाला है! पैसे की माँग पैसे की पुकार और पैसे की भूख! पैसा! हाय पैसा!! यह कैसी चिल्लाहट है? उफ! बिलकुल वैसी ही आवाजें हैं जैसा भौंकने पर होती हैं।"[५] इसी प्रकार एक उदाहरण इलाचन्द्र जोशी के प्रसिद्ध उपन्यास 'जहाज का पंछी' से दिया जाता है। जिस समय नायक घुड़ दौड़ का मुकाबला देखता है तब उसका मन कहीं और की ही दौड़ लगा आता है—

'मैं इस विचार में मग्न हो गया था कि यदि वे हजारों दर्शक पूर्णत पागल नहीं है तो पागलपन किसे कहते हैं—रुपया! रुपया! हाय रुपया! मुझे मिल जाए रुपया! दूसरों की पाकेट खाली करके केवल मेरे पास आ जाए रुपया! प्यारा रुपया! दिलदार रुपया! भाग्य का विधायक रुपया! आ जा रुपये! जिला जा रुपया! छाती ठंडी कर जा रुपया! भुजा भर भेंट कर जा रुपया! हाय रुपया! हाय रुपया मेरे घोड़े! जीत! जीत! जीत! मैं हूँ पागल! मैं मैं मैं मैं! अरे घोड़े! बढ़ जा बढ़ जा बढ़ जा बढ़ जा बढ़ जा। यह महा रागिनी घोड़ों की टापों के ताल में प्रत्येक के भीतर उद्दाम स्वर से बज रही थी।'[६]

उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता के साथ साथ समन्वित शिल्प विधि का प्रमाण एक आलोचक की इन पंक्तियों द्वारा उद्घाटित हो जाता है— उपन्यास का नाम 'चलते चलते' बिल्कुल सार्थक है। उसका नायक राजेन्द्र अपने जीवन पथ पर चलते चलते अपने चारों ओर जो कुछ देखता है जो कुछ अनुभव करता है उसका वर्णन करता है विश्लेषण करता है। इस रचना में सामाजिक वैषम्य वैधव्य शोषण आदि दुर्गुणों का विशद वर्णन तो है ही साथ ही यौन कुण्ठा सौन्दर्य आकर्षण आदि शाश्वत जीवन समस्याओं का विश्लेषण भी प्राप्त हो गया है। राजेन्द्र साँवरे लाल और छोटी भाभी आदि पात्र समाज के घृणित व्यक्तियों के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते दिखाए गए हैं।

राजेन्द्र एक वैयक्तिक चरित्र है। द्वन्द्वपूर्ण स्थिति में इसका चारित्रिक उत्थान विश्लेषणात्मक विधि द्वारा दर्शाया गया है। वैयक्तिक आदर्श और पारिवारिक आकर्षण निजी सिद्धान्त और सामाजिक अनैतिकता इसके मानसिक द्वन्द्व को गतिमान रखने हैं। छोटी भाभी की छटपटाहट उसकी मानसिक शान्ति को ग्रस्त व्यस्त करने के लिए पर्याप्त है। लाली का निरावृत वक्ष स्थल इसके आदर्शों को डिगा देता है। भाभी सौन्दर्य इसके संयम

५ चलते चलते—पृष्ठ १००

६ जहाज का पंछी—पृष्ठ २०८

७ डा० ब्रजमोहन गुप्त चलते चलते एक मोहक उपन्यास साहित्यकार प० भगवतीप्रसाद वाजपेयी—पृष्ठ १६७

के सम्मुख वस्तपिक प्रक्रिया द्वारा चितन करके विजय प्राप्त करता है। राजेन्द्र अनुभूति शील, कर्त्तव्यनिष्ठ प्राणी है, वह समझता है कि आत्म के साथ ही उसका जीवन है—आदर्श के बिना मैं—मेरा अस्तित्व—जड है निर्जीव है यही उसका दृष्टिकोण है। वह विनम्र भी है स्पष्ट वक्ता भी। पिता को स्पष्ट कह देता है कि मेरे मुह पर थप्पड मार दीजिए मगर सच्ची बात कहने का मेरा अधिकार मुझसे मत छीनिए। सभ्यता के उन नियत्रणा पर भी उसका विश्वास नहीं है जो जीवन की मानवी दुबलताओ पर पर्दा डाल कर उसके महाप्राण सत्य का गला ही घोट लेना चाहते हैं।

'चलते चलते' म कतिपय पात्रा का व्यक्तित्व बडी सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है। लाली के सबध म चरित्र चित्रण की यह विधि दशनीय है—'सत्रह अठारह वष की लाली। गाय के ताजे मक्खन सा वण है, वसी ही देह यष्टि की चिकनाहट। लावण्य परिपक्व है। मग नयना की नोकदार कोरो की पतली कुशाग्र धार और गदराये यौवन की मत्त चचल मनुहार ऐसा प्रतीत हुआ जस जीवन अगाध के उस पार तक ल जाने को तयार हैं।' इसे हम शब्द चित्र विधि पुकारें तो कसा रहे ? इस प्रकार के शब्द चित्र वशाली, अचना आदि पात्रो के सबध म भी दिए गए हैं। किन्तु यह शब्द चित्र विधि भी समन्वित शिल्प विधि का एक अग बनकर आई है।

राजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादव को समन्वित शिल्प विधि का उपन्यासकार माना जा सकता है। अभी तक (१९५८ तक) आपके दो उपन्यास प्रेत बोलते है (१९५२) तथा उखड हुए लोग प्रकाशित हुए है। इन दोना म कथाकार सामाजिक चित्रण के परिप्रेक्ष्य म व्यक्ति विश्लेपण करते हुए वणनात्मक और विश्लेषणात्मक शिल्प का एक समन्वयात्मक प्रयोग करता है। प्रेत बोलते है म यादव मध्यवर्गीय युवक-युवतियो को वणनात्मक परिप्रेक्ष्य म तालकर उनम से कतिपय पात्रो का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। इसम पूजीपतियो के प्रेत बोलते हैं जिन्ह यदि कथाकार चाहता तो प्रतीकात्मक बनाकर अधिक सशक्त बना सकता था। एक आलोचक न तो लिखा भी है— प्रेत बोलते हैं म निम्न मध्यवग के एक शिक्षित युवक के जीवन की विवशताओ तथा विषमताओ को प्रतीकात्मक शली मे चित्रित करने का प्रयास किया है।[1] यह सही है। इस उपन्यास को प्रतीकात्मक शिल्प और शली म स्थापित करने का कथाकार का प्रथम प्रयास असफल ही माना जाएगा। वस्तु स्थिति यह है कि यादव मात्र एक कुशल कहानीकार है उपन्यास लिखन की कला उन्हे अभी सीखनी पडगी। प्रेत बोलते है म इलाचन्द्र जोशी जसे श्रेष्ठ कलाकार की कृति प्रेत और छाया जसा विश्लेषण हम कही भी पढने को नही मिलता।

उखडे हुए लोग—१९५६

'उखडे हुए लोग मे यादव और भी अधिक उखड गए हैं। समन्वित शिल्प विधि

1 डा० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास—पष्ठ ३२१

को अपना कर जहा श्री इलाचन्द्र जोशी 'जहाज का पंछी' म और श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी चलते चलते म सफलता क उच्चतम सोपान पर पहुचे वही विष्णु प्रभाकर तथा यादव असफल हुए। इन दोनो लेखको ने अपनी रचनाओ म व्यक्ति के मन का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है वह उखडा उखडा है। वणन म भी सजीवता नही है।

एम० पी० देशबधु क चरित्र म आरम्भ म जो गति और आकषण है कथाकार मध्य तक पहुचते पहुचते उसम शिथिलता ले आता है। स्वदेश महल म परकीया माया देवी तथा उसकी लडकी पद्मा के साथ उसन जो खेल खेल वे एक फिल्मी दुनिया की दौड धूप स अधिक प्रभाव पाठक के मन पर नही डालते। ऊपर से मत माने जाने वाले इन नेता जी के वयक्तिक जीवन म जो ऊहा पोह है वह यदि कथाकार द्वारा पूण रूप से विश्लेषित होती तो इसका पाठकीय आकषण बढ जाता। पदमा देशबधु की लोलुप दष्टि से बचती फिरती है मगर बच कहा पाती है? वह उखडी उखडी जीवन रीतती हुई अन्त म आत्महत्या कर लेती है। इधर जया है जो शरद स विवाह के विषय पर तक वितक करती है मगर इसके तर्को म बौद्धिकता का विश्लेषण या वणनात्मकता का प्रभाव नही है। फिल्मी नायक नायिका की भाति शरद और जया भागकर नया घर बसात है। पर इन्हे शरण देशबधु की ही लेनी पडती है। वहा एम० पी० की कुदष्टि जया पर जम जाती है। शरद एम० पी० क लिए लेख लिखता है भाषण तैयार करता है। इस प्रसग म यादव आधुनिक जीवन की विडम्बना चित्रित कर गए है जिसम बुद्धिवादी मध्यवग का शोषण पूजीपति नेता और सरकार सभी करत है। शरद और जया का यह शोषण प्रक्रिया स्वीकाय नही अत व एक बार फिर घर छोडत है उखडे हैं।

उखडे हुए लाग म यथाथ जीवन का जीया हुआ रूप देन का प्रयास यदि लखक न करता तो यह अधिक सशक्त रचना बन सकता था। आज के नय कहानीकार भाग हुए जीवन का चित्र उतारन क लिए उतावल नजर आत हैं यही वे गडबड कर जात है। वस्तुत कहानी म तो भोगा हुआ जीवन अधिक कलात्मक रूप म चित्रित हो सकता है मगर उपन्यास म उसे रूपायित करन क लिए कल्पना कथ्य शली और शिल्प म सतुलन रखत हुए रगाए (नए चित्र रेखाए) उभारना होती है। मायादेवी का अपने पति की हत्याकर एम० पी० स सबध स्थापित करने वाला प्रसग होत। इसम कथाकार अपन कथ्य को स्वाभाविक गद्य शली म विश्लेषणात्मक शिल्प द्वारा सयोजित करता तो हितकर था रचना और रचनाकार दोनो क लिए ही। मायादेवी का फ्लट (Flirt) बन हर पुरुष पर डोरे फेंकना उपन्यास म शिथिलता ही लाता है। उपन्यासकार कही भी जमकर प्रेम त्रिकोण (Love Tringular) का चित्र खीचन म सफल नही होता। पद्मा को अपनी ही माता का परकीया रूप घणित लगा शरद के लिए जया भी प्रश्नचिह्न बनी, देशबधु तो आधुनिक समाज की गिरती नतिक स्थिति का उद्घाटक है ही। इस सबध म डा० घवन न लिखा है— देशबधु क चरित्र चित्रण म लखक न अपनी समस्त शक्ति का उपयोग किया है। उनकी मानवता समाज-सेवा तथा कपटता का सूक्ष्म विश्लेषण कर उनक व्यक्तित्व का उभार है। देशबधु की अनिरिक्त सजगता सम्पन्नता तथा मधुरता भी उनक व्यक्तित्व का अजित करता है। देशबधु क चरित्र क माध्यम स लखक ने पूजी

पतियों के जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है, उनके व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण में परस्पर विरोध दिखाकर उनके कुत्सित तथा विशृंखलित जीवन का अंकित किया है।'[२]

मुझे डा० धवन के कथन का पहला अंश जिसमें उन्होंने कहा कि लेखक ने देशबन्धु की कपटता का सूक्ष्म विश्लेषण किया है मान्य नहीं। यादव किसी भी पात्र का सूक्ष्म अन्वेषण और विश्लेषण करने में सफल नहीं हुए। 'उखड़े हुए लोग' के अधिकांश पात्र उखड़े उखड़े हैं और उनका चारित्रिक वर्णन बिखरा बिखरा है। विपुल के सम्पादक सूरज के चरित्र में कहीं कोई प्रभाव नहीं। शरद जया जगह जगह विचारों का प्रदर्शन करते हैं और विचार भी समाज विद्रोही ही हैं कि विवाह दो व्यक्तियों के मध्य केवल एक सामाजिक अनुबन्ध है, इसमें पावनता का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार के विचारों द्वारा समाज में अनास्था और अनैतिकता फैलने का भय है। हर रात हर पति-हर नई पत्नी के साथ और हर पत्नी-हर नये पति के साथ सहवास करे तो जीवन मात्र विडम्बना न बन जाएगा क्या? उपन्यास का विचार पक्ष सतही होने के कारण भारी लगता है। यादव जब अपनी अनुभूतियों को चिन्तना के चौखट में फिट करना चाहते हैं तो बुरी तरह से असफल होते हैं। इनकी सर्जन शिल्प शैली अवरुद्ध है।

卐

---

२ हिन्दी उपन्यास—पृष्ठ ३२५

आठवाँ अध्याय

उपसंहार

और अब अन्त में। मेरे लिए कथनीय अकथनीय क्या कुछ शेष रहा, शायद नहीं। पर फिर भी।

अपने शोध प्रबन्ध के आरम्भ से अन्त तक की लेखन संबंधी अपनी अक्षमताओं, उपलब्धियों, टिप्पणियों, अन्वेषण और प्रश्न चिह्नों पर समग्र रूप से एक बार अवलोकन करने पर भी कुछ नये प्रश्नों, आशंकाओं और नये मूल्यों से अपने को घिरा पाता हूँ। प्रश्न नये भी हैं पुराने भी हैं।

मुख्य प्रश्न यही है कि शिल्प और शैली में पर्याप्त जो अन्तर वर्तमान है वह किस बिन्दु पर पहुँचकर अलग होता है। दूसरा प्रश्न है कि शिल्प साधन है या साध्य, तीसरा प्रश्न शिल्प संबंधी सर्वेक्षण से संबंधित है इसके अन्तर्गत कथाकार के किसी एक अथवा दूसरे शिल्प को अपनाने समय कथाकार के दृष्टिकोण का प्रश्न उत्पन्न होता है। इन प्रश्नों के आवर्त में घिरा मैं अपने को असमर्थ भी पाता रहा हूँ और इनका समाधान भी पाने के लिए हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकारों से भेंट वार्ता कर उनके शिल्प संबंधी विचार और मान्यताएं जानने को उत्सुक रहा हूँ। किसी भी उपन्यासकार की भाव-वस्तु, भाव-सूत्र, चिन्तना और शिल्प स्तर का अन्वेषण करने के लिए काफी दौड़ धूप करनी पड़ी है पर अमूर्त को पाने के लिए यह सब करना ही पड़ता है। पर क्या मैं अमूर्त को खोज पाया? शायद नहीं।

गत चार दशकों के लगभग १०० उपन्यासों का विवरण व विवेचन शिल्प के स्तर पर मैंने अपने ढंग पर अन्वेषित करने का प्रयत्न किया है। हिन्दी उपन्यास के शिल्पगत विवेचन का पुनरावलोकन करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्रेमचन्द और प्रेमचन्द स्कूल के अधिकांश उपन्यासकार प्रधानतया समाज के चेतन मन के संघर्ष को ही हिन्दी उपन्यास में स्थापित करते रहे हैं। मनुष्य के जीवन में एक समय ऐसा भी आता है जब वह बाह्य संघर्ष से थक कर उससे उत्पन्न अपनी थकान को मिटाने के लिए एकान्त की कामना करता है। इस एकान्त की चाहना के वशीभूत होकर जब मानव ने जीवन की असंगतियों से पलायन कर अवचेतन की दिशा में अन्तःप्रयाण की ओर पग बढ़ाए तो उसने पाया कि बाह्य संघर्ष से भी भयंकर अभ्यन्तरीय जटिलता उसकी अन्तश्चेतना में प्रवेश कर गई। हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने मानव की इस अन्तःप्रयाण प्रवृत्ति का चित्रण करने के लिए नए शिल्प की आवश्यकता अनुभव की और वे अपने उपन्यासों में स्वच्छन्द (शिल्प विषयक) नवाचरण में भी आए। उन्होंने नैतिकता का भी नए आयाम

में हिन्दी उपन्यास में अभिव्यक्त किया। यह नवीनता उपन्यास के कथ्य (Content) का नवीन शिल्प के विभिन्न तत्त्वों के नवीन संयोजन में स्थापित हुई है। प्रेमचन्द की सुधारवादी दृष्टि, प्रेमचन्द स्कूल के कथाकारों की आदर्शवादी विचारधारा की इतिवृत्तात्मकता एवं वर्णनात्मकता की एकरसता तोड़ दी गई, नवीन परम्परा के उपन्यासकारों ने विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यासों में अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का परिचय देते हुए चेतन से अवचेतन की दिशा में अन्तःप्रयाण कर रहे व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व को अतिरिक्त सहानुभूति के साथ चित्रित किया है। इन उपन्यासों में मुझे एक भिन्न स्तर की अन्विति और प्रखरता प्राप्त हुई, जो निश्चय ही परिवर्तित शिल्प का उदाहरण है।

विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के प्रायः सभी उपन्यासों में कथाकार कथा मंच से परे हटकर कथा सूत्रों का भार पात्रों को सौंप देता है। वह कथा का वाचक भी नहीं एवं पात्र का तो वही सब पात्रों का बना देता है। दृष्टिकेन्द्र (Focus) का यह परिवर्तन भावस्तर का परिवर्तन न होकर शिल्पगत परिवर्तन ही तो है जिसमें श्री इलाचन्द्र जोशी जैनेन्द्र, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे प्रभृति उपन्यासकारों ने व्यक्ति के मन को विभिन्न सचरण भूमियों का भावपूर्ण विश्लेषण करके नये सूत्रों में उद्घाटित किया है। विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का लेखक यद्यपि चरित्र का संस्थापक तो है किन्तु वह व्यक्ति की खोज में संलग्न लेखक अवश्य है। इस विधि के चेतनाप्रवाहवादी उपन्यासकारों के मस्तिष्क में एक ही समय में बाह्य भावों और विचारों का उदवलन अपना ही महत्त्व रखता है एक मात्र मापक यन्त्र की भाँति यह उपन्यासकार मानव मस्तिष्क में उभरने वाली लहरों के अहिन विश्व के मूल स्रोतों तक पहुँचने में सफल हुए हैं। यह ठीक है कि विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के कतिपय उपन्यासकारों ने पूर्वाग्रही बनकर मनोविश्लेषण के नाम पर रुग्ण हृदय पात्र-पात्राओं का, दुर्बल और क्षीण मन आधुनिकाओं का विश्लेषण ही अधिक किया है। यह विश्लेषण कहीं अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा कहीं बाह्य निरीक्षण विधि द्वारा तो कहीं पत्र-डायरी के अन स्वप्न पलायन, सना प्रवाह, अप्रवासित बिंब और अनेक नये प्रयोगों द्वारा सामने आए हैं जिसमें इन पर पाश्चात्य उपन्यासकारों का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है। विश्लेषण के सिद्धान्तों के पोषक मानकर इनकी आलोचना कर डालना और इनके महत्त्व को न स्वीकारना नये शिल्प के प्रति अपनी संकुचित दृष्टिकोण का परिचय देना होगा। इस प्रकार के आरोप प्रत्यारोप साहित्य जगत में शोभा नहीं देते मेरे विचारानुसार तो इन प्रयोगों को अपनाकर हिन्दी के उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास के लिए नये मुहावरे की खोजकर एक प्रशंसनीय कार्य ही किया है। जोशी जैनेन्द्र, अज्ञेय, और प्रभाकर माचवे आदि उपन्यासकारों के शिल्प का उत्कर्ष इनके द्वारा प्रस्तुत चरित्रांकन शिल्प में कथा इन पात्रों के व्यक्तित्व निर्माण में निहित है। जहाँ हम लज्जा, शान्ति, जयन्ती निरंजना नन्दकिशोर पारसनाथ, कट्टो, बिहारी, सुनाला, मृणाल, कल्याणी, जयन्त शशि, शेखर, अविनाश और आभा जैसे अति बौद्धिक पात्र उपलब्ध हुए। इन कथाकारों ने घटनाओं की वर्णनात्मकता से प्रयाण कर पात्रों और विचारों के विश्लेषण का प्रस्तुतीकरण किया है।

प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास शिल्प की एक उपलब्धि प्रतीकात्मक शिल्प विधि भी

है। इसमें व्यक्ति ने एक बार पुनः प्रवर्तन में हारकर मन की दिशा में बहिर्प्रयाण किया है। यह बहिर्प्रयाण वर्णनात्मकता के लिए नहीं है। यदि ऐसा होता, तो उपन्यास शिल्प में पुनरावृत्ति की आशंका एक तथ्य बन जाती, ऐसा न होकर ऐसा लगा कि प्रतीकवादी शिल्पी ने दृश्यमान वास्तविकता से अपने को परे ले जाकर व्यक्ति के अन्तर्मन में विद्यमान स्वप्नों और संवेगों का बहिर्प्रयाण की दिशा में सम्प्रसार किया। प्रतीकात्मक शिल्प विधि के उपन्यासकारों ने व्यक्ति के रहस्यमय जीवन को प्रमाण बनाने में कोई कसर नहीं रखी। उन्होंने मध्यवर्गीय स्त्री पुरुषों के संबंधों को वर्णनात्मक या विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के द्वारा वर्णित या विश्लेषित करने के बजाए उनकी दुर्निवार परिस्थितियों, जटिल संभावनाओं और दूरगामी संबंधों को प्रतीकों द्वारा वाणी दी है। रेखा, गौरा और भुवन यह प्रेम त्रिकोण प्रतीकात्मक उपन्यास 'नदी के द्वीप' में हर पात्र में सार्वनिक 'नदी' में अपने अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त करते हैं। प्रतीकात्मकता पर आग्रह के प्रश्न को अभी तक हिन्दी के आलोचकों ने अनबूझा ही बनाए रखा था। मैंने हिन्दी में कुछ ऐसे उपन्यास पाए जिनकी घटनाओं और पात्रों और मानवीय रूपों को प्रतीकों के माध्यम से ही प्रगट किया है। अनय अमृतलाल नागर, गिरिधर गोपाल, डा० रघुवंश, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना प्रभृति उपन्यासकारों ने अपनी अपनी रचनाओं में एक निश्चित प्रतीकात्मक भंगिमा बनाकर अपने पात्रों की यौन वर्जनाओं विकृतियों, यौन कुण्ठाओं का विश्लेषण या वर्णनात्मक विवरण देने की बजाए इन पात्रों की अन्तश्चेतना का प्रतीकात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार ताई भुवन, रेखा, वसंत आदि पात्रों के अन्तर के उद्घाटन में कुछ स्वप्नों, प्रतीकों, संकेतों का उपयोग करते रहे हैं। बया का घोंसला और साँप और चाँदनी के खंडहर में जो स्वप्न हैं सत्यपरक हैं, प्रतीकात्मक हैं। डा० लाल अपने पात्र सुभागी के अचेतन मन की भावनाओं का उद्घाटन करने के लिए स्वप्न सृष्टि का आश्रय लेते हैं। तहसीलदार ही साँप है और मोरमुकुट पहने राजकुमार आनन्द है। इस स्वप्न के लिए उपन्यासकार पात्रों की अन्तश्चेतना को एक विशेष धरातल पर टिकाता हुआ प्रतीकात्मकता का निर्वाह करता है। प्रतीकात्मक शिल्प विधि के उपन्यासों में कथात्मकता संकुचन प्रवृत्ति का आश्रय लेकर कथाकार बहिरंग चित्रण को एकदम स्वल्प किन्तु सार्थक बना देता है।

प्रतीकात्मक शिल्प विधि के उपन्यासकारों ने एक ओर नैतिकता का दार्शनिक विवेचन सीमित किया तो दूसरी ओर परम्परागत नैतिक मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाए। 'नदी के द्वीप' में सामाजिक मान्यता की नदी का जल सूख गया प्रतीत होता है और विभिन्न पात्रों का द्वीप ही-द्वीप दृष्टिगोचर होते हैं। ये द्वीप आधुनिक काल में बढ़ रही व्यक्ति वादिता के प्रतीक हैं व्यक्ति की नई मान्यताओं के संकेत हैं जिनमें परम्परागत नैतिक मूल्यों के प्रति विद्रोह की भावना उभरी है। 'नदी के द्वीप' के व्यक्तिवादी जीवन दर्शन को रेखा के इन शब्दों में देखा परखा जा सकता है— मैं भीतर से मर गई हूँ भुवन, तुम से कह कर फिर मैं कहीं भी बह जा सकती हूँ—किसी भी बुरे-से-बुरे नर पशु के साथ भी रह सकती हूँ। एक तुम्हीं ने मेरी जड़ित आत्मा को जगाया था और उसके बाद उसके फिर जड़ हो जाने पर मैं पतिले से बदतर मृत्यु में सहज ही जा सकती हूँ। इसलिए सोचते

हू क्या वही न ठीक होगा, टूटी हुई रीढ वाली इस देह के लिए एक सहारा—एक छज आत्मा की तो बात अब कौन कहे।"[1] रेखा की दृष्टि पूर्णतया व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि है जो यौन मिलन के क्षण विशेष को ही जीवन की परिपूर्णता मानती है। रेखा ससार रूपी प्रवाहित जलराशि म एक प्रवाहमान द्वीप है, नदी से कभी कटता हुआ, कभी नदी म तरता हुआ मानो जीवन सरिता म कभी डूबता हुआ कभी उद्दाम क्षणो की अनुभूति कर तरता हुआ रसबोध म भीगने को आतुर मानव मन हो। जीवन नदी के अलग अलग द्वीपो के रूप म खडे किए गए रेखा, भुवन, गौरा और चन्द्रमाधव हिन्दी साहित्य की अक्षुण्ण पूजी माने जाएगे। असामाजिकता का आरोप इस उपन्यास की कलात्मक ऊचाई और शिल्प गौरव को नीचा नही दिखा सकता। एकान्त के क्षणो का महत्त्व व्यक्तिवादी पात्रो के जीवन का उल्लास और उनकी समस्याए यत्र-तत्र उपन्यास के नये शिल्प (प्रतीकात्मक शिल्प) म गुथी मणिकाए हैं जिनम हर मणि की अपनी महिमा है। इसम पत्नी का मौन समपण प्रेयसी का उष्णालिगन, परकीया का नवाकपण और स्वकीया के प्रति विरक्ति का रूपक बाधा गया है। 'नदी के द्वीप' वस्तुत हिन्दी उपन्यास शिल्प यात्रा म एक माइल स्टोन है। इसके शिल्प की यह विशेषता है कि इसके हर पात्र का पाठक के सामने आकर प्रतीक जुटाते हुए आत्मान्वेषण करना तथा अन्य पात्रो के जीवन के अन्तस में प्रवेश की चेष्टा करना मानवीय सवेदना को आत्मपरक बना कर रूपायित करने का सफल प्रयास है।

पर नदी के द्वीप को ही प्रतीकात्मक शिल्प विधि की सर्वश्रेष्ठ रचना नही कहा जा सकता। इस प्रकार के निणय देने का दु साहस मैंने कहीं नहीं किया। मेरी दृष्टि सदव हिन्दी उपन्यास शिल्प का बदलते परिप्रेक्ष्य म एक जिज्ञासु अनुसधाता के नाते देखने परखने की रही है। नदी के द्वीप के प्रकाशन के साथ ही साथ एक ही दशक म (सन् ५१ से ६० तक) प्रतीकात्मक उपन्यासो की एक बाढ हिन्दी साहित्य म आई और मुझे यह देखकर आश्चय हुआ कि हिन्दी के एक भी आलोचक ने सन् ६२ तक इस ओर दृष्टि डाल कर इसका मूल्याकन न किया। इसे नये शिल्प या प्रवृत्ति के रूप म स्वीकार ही नही किया। प्रत्येक आलोचक अपने दृष्टिकोण से इन उपन्यासो को नये शिल्प की सज्ञा से अभिहित तो करता गया, मगर यह नयापन क्या है बस आया इसका पयवेक्षण किसी ने न किया। मुझे यह सब देखकर कुछ आश्चय कुछ ग्लानि भी हुई कि हमारे साहित्य म नये शिल्प प्रयोग करने वाले साहित्यकारो का उचित मूल्याकन शून्य के बराबर है। अत मैंने अपने शोध प्रबन्ध के एक भाग म साहित्य के इस अन्धकार पक्ष को शुक्लपक्ष म उद्भासित करने की योजना बना डाली और सन ६० से ६२ तक जो कुछ प्राप्त कर सका उसे अलग अलग अध्यायो म सयोजित कर 'प्रतीकात्मक शिल्प विधि' शीर्षक नये शिल्प का उद्घोष किया। मैं अभी भी समझता हू कि इस शिल्प विधि के उपन्यासो की संख्या अभी बढ रही है और शायद कुछ रचनाए मुझ से अछूती रह गई इस दोष को मैं स्वीकारता हू और आशा करता हू कि अगले सस्करण म रही हुई महान कृतियो का आकलन कर इनका विवेचन करूगा।

1 नदी के द्वीप—पृष्ठ २४३

नाटकीय आकस्मिकता के प्रवेश ने जिस द्रुत गति से हिन्दी उपन्यास शिल्प विधि को झकझोरा उसके विषय में भी किसी को संदेह नहीं करना चाहिए। नाटकीय शिल्प विधि ने उपन्यासों की प्रभावान्विति बढ़ाई है। इसने वर्णनात्मक उपन्यास की अनगढ़ता, विश्लेषणात्मक शिल्प के प्रति मनोवैज्ञानिक रूप विधान और मनोविश्लेषण तथा प्रतीकात्मक शिल्प विधि की दुरूहता से किनारा करते हुए आधुनिक उपन्यास को सुगठ, मनोहर, आकर्षक सुसाध्य बनाने का सुन्दर प्रयास किया है। नाटकीय शिल्प विधि का कथाकार निश्चय ही कथा मंच से बहुत पीछे हट कर मात्र निर्देशक के कार्य को सम्पन्न करने की दिशा में दत्तचित्त रहा है। 'चित्रलेखा', 'दिव्या' और 'गुनाहों का देवता' का रचनाकार एक नये क्षितिज पर एक नवीन उपलब्धि का जयघोष कर रहा है। वह 'गोदान' के प्रेमचंद और 'संन्यासी' के जोशी या 'नदी के द्वीप' के अज्ञेय की भांति सुधारवादी, मनोवैज्ञानिक पूर्वाग्रह और दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादनार्थ घटनाएं नहीं सजाता, चरित्रांकन विधि नहीं बदलता अपितु अपने पात्रों को अधिक प्राणवत्ता बनाकर उन्हें संवाद रटा कर उपन्यास मंच पर उतारता है ताकि वे पाठक के मन में उपन्यास शिल्प की परिवर्तित एवं संवर्द्धित अवस्था की उद्भासना करा सकें। प्रेमचन्द और जोशी स्कूल के कथाकार अधिकतर आदर्शों की ऊहापोह में या यथार्थ की लीक पीटने के कारण वर्णन और विश्लेषण प्रक्रिया में बंध रहे हैं। नाटकीय शिल्प विधि के कथाकार ने अपने पात्रों के संवाद प्रयोग द्वारा अन्तर्भूत सत्य का उद्घाटन किया और वह भी नाटकीय प्रभाव और कौशल के साथ।

पात्रों के अन्तर्मन में तीव्र तनाव की अनुभूति मात्र विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के कथाकारों की विरासत नहीं है। 'चित्रलेखा' और 'दिव्या' के लेखक पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का नया प्रारूपण प्रस्तुत करने में जितने सफल हुए शायद राजेन्द्र यादव जैसे नई पीढ़ी के अनेक लेखक उसका शतांश भी अपनी रचनाओं में प्रस्तुत न कर पाए। नाटकीय शिल्प विधि द्वारा विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण में एक ओर नवीनता आई दूसरी ओर अधिक कलात्मकता। इसमें स्त्री पुरुष संबंधों की टकराहट को नये स्वर, नये स्तर पर उतारा गया। बलात्कार पर नये प्रश्नचिह्न लगाए गए। एक बलात्कार वह है जो शरीर पर किया जाता है मगर 'गुनाहों का देवता' में चन्द्रमाधव द्वारा सुधा के मन पर किया गया बलात्कार क्या कम नहीं माना जाएगा। यौन व्याधि के प्रश्न आधुनिक मध्यवर्गीय पीढ़ी के स्तर नाटकीय शिल्प विधि द्वारा अधिक [illegible] मार्मिक रूप में अनुगुंजित हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे। परिस्थिति की [illegible] आत्मगौरव की पराजितता, मानव की विवशता, नई पीढ़ी का नया उदय, पारिवारिक संबंधों की जटिलता का प्रभावोत्पादक चित्रण का स्वाभाविक रूप का सामर्थ्य शायद नाटकीय शिल्प विधि में सब से अधिक है। पर नाटकीय शिल्प विधि का यह सामर्थ्य शायद नाटक के साथ इसलिए जोड़ा गया है कि नाटक में प्रभाव शक्ति ही होती है। एक स्थाई भंगिमा इस कला [illegible] जाने की विकासोन्मुख प्रश्न सामने आता और इसी के उत्तर में समर्पित हिन्दी कथाकार ने संभावित शिल्प विधि का प्रसार किया।

वस्तुपरकता के विस्तार और विश्लेषणात्मकता की गहनता ने जब विकास रचा

होगा, तभी कुछ समय पश्चात् इनके संगम से समन्वय शील पुत्र जन्मा होगा। समन्वित शिल्प विधि कोई रूपगत नवीनता लिए हुए नहीं है जैसे कि विश्लेषणात्मक या प्रतीकात्मक या प्रतीकात्मक शिल्प विधि। वस्तुतः इसका जन्म किसी भी प्रकार के एक शिल्प की एकरसता को समाप्त करने के लिए ही हुआ। बिखरे हुए विभिन्न शिल्प-सूत्रों को ज्व जोड़ दिया गया रचना समन्वित शिल्प की दोहती कहलाई। इस शिल्प विधि में अपेक्षाकृत अधिक लचकीलापन तथा गत्यात्मकता है। तभी तो श्री इलाचन्द्र जोशी अपनी अन्तिम रचना 'जहाज का पंछी' में अपनी तरह की अनुभूतियों, गहन मनोभावों, जटिल मनःस्थितियों, और अहं के ऐकान्तिक रूप पर वज्रप्रहार कर इस शिल्प द्वारा अपने जीवनादर्शों को स्थापित करने में सफल हुए हैं। इस रचना में जो कदाचित 'समन्वित शिल्प विधि' की प्रतिनिधि रचना है, भोगे हुए अनुभवों के अलावा नायक के देखे सुने अनुभवों की संख्या अधिक है। उद्देश्य व्यंजना की दृष्टि से अलग अलग पात्र अलग अलग किस्से सुनाते हैं— जैसे वनवारी की अकेले पुलिस वालों को मार भगाने की कथा और अन्त में धोखे से आकर स्वयं मर जाने की दास्ता, अनाथ मजीद की कथा, पचानों का पूर्ववत्त कायदे वाले मिस्टर ब्राउन की कुण्ठित कहानी और शारीरिक मानसिक नैतिक सामाजिक तथा आर्थिक शोषण की शिकार चस्मानशी अभागिन युवती की करुण कहानी। इस साहित्य कथा का सविस्तार पुनः देने के लिए वर्णनात्मक शिल्प का प्रयोग करने के पश्चात अनमेल विवाह एवं रूढ़िवादी समाज द्वारा बहिष्कृत दमित काम वासना की शिकार लीला के अन्तर्द्वन्द्व को मूर्तरूप देने के लिए विश्लेषणात्मक शिल्प का सहारा लेकर लेखक इस समन्वित शिल्प को स्पाकार दे देता है। इस शिल्प के प्रयोग के कारण ही कथा अधिक विश्वसनीय एवं यथार्थपरक लगी है।

आधुनिक परिस्थिति प्रसूत यह नूतन प्रयोग हमें 'चलते चलते' और 'उखड़े हुए लोग' आदि रचनाओं में भी उपलब्ध होता है। इन उपन्यासों में प्रदर्शित आस्था और भोगे हुए यथार्थ के अन्तर्गत यौन तृप्ति, अनैतिक सम्बन्धों के चित्रण को ही कथाधारा ने अपना प्रतिपाद्य चुना। इन उपन्यासों में घटनाएँ अतिरंजित रूप में दिखाई गई हैं और यह सब नव प्रयोग की आड़ में हुआ है। जहाँ विश्लेषणात्मक प्रतीकात्मक और नाटकीय शिल्प विधि की रचनाओं में कथानक स्वल्प होता गया था, वहाँ समन्वित शिल्प में पुनः एक बार वह उत्तरोत्तर स्थूल व्यापक और अतिरंजक रूप में स्थापित हुआ है। तब तो इसे जमीन गाते हैं का उदाहरण मानना होगा। अर्थात् उपन्यासकार का मन घूम फिर कर फिर कथानक के चक्रव्यूह में जा फँसा। वह पात्रों की आकृति, प्रवृत्ति का विवेचन करने के मोह को न त्याग सका। वह प्रत्येक घटना के कारण और परिणाम से स्वयं हमें परिचित कराने का सुविधा का पाने के साधन जुटाने लगा। एक बार उसे फिर खुलकर भाषण देने भाषणों की व्याख्या करने सिद्धान्तों का विवेचन करने की पात्रों के चरित्र सम्बन्धी तथ्यों के विवरण देने की राह निकालनी पड़ी। वह पहले प्रत्यक्ष में परोक्ष की ओर और अब अन्त में प्रत्यक्ष की ओर पुनर्विलोकन करने लगा। मुखर चिन्तन भी इस विधि की रचनाओं में मुखर हुआ है। समन्वित शिल्पी व्यक्ति का चरित्र भी अंकित करता है और मनोवैज्ञानिक विश्लेषक बन पात्रों के व्यक्तित्व का तारतम्ययुक्त चित्र भी पेश करता है। 'चलते चलते

म विधवा लाली का विश्लेषण व्यक्तित्व उद्घाटन के धरातल पर हुआ है। बहु-कथा प्रसार की चाहना और अन्तरंग तथा बहिरंग दोनो प्रकार के चित्रण पर समानाधिकार की भावना न ही समन्वित शिल्प विधि की रचनाए जुटाई है।

हिन्दी उपन्यास —आविर्भाव तथा उद्गम कालीन परिस्थितिया पर अब तनिक विचार करना भी समीचीन होगा।

हिन्दी उपन्यास का आगमन उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्ध म होता है। यह वह शुभ काल था जिसम पद्य के साथ साथ गद्य भी साहित्यिक क्षेत्र म प्रतिष्ठित हो रहा था। हिन्दी के युगान्तकारी कलाकार बाबू हरिश्चन्द्र ने जोर शोर के साथ पद्य के साथ साथ गद्य का प्रयोग और प्रचार किया। उन्होन हिन्दी गद्य को नइ भाषा और नई शली प्रदान की। अपने भावा को नय रूपो म बाधने की योजनाय जुटाइ। निबध, नाटक और पत्र पत्रिकाओ के क्षेत्र म तो धूम मचा ही दी कथा के क्षेत्र म भी पदार्पण किया। उन्होन पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' नामक सामाजिक उपन्यास लिखा जिसम भारतीय नारी की समस्याओ को अकित किया। पर इस उपन्यास की औपन्यासिकता सन्दिग्ध है।

पंडित राम चन्द्र शुक्ल स लेकर आचाय न ददुलारे वाजपेयी तक प्राय हिन्दी के सभी प्रसिद्ध आलोचको ने श्रीनिवासदास कृत परीक्षा गुरु को हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना है और इसका प्रकाशन काल सन १८८२ लिखा है जो विचारणीय है। किन्तु इधर आचाय हजारी प्रसाद तथा डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा यह कहा गया है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार थे और उन्होने कुछ पूर्ण तो कुछ अपूर्ण उपन्यास लिखे। राजसिंह एक कहानी कुछ आप बीती तो कुछ जग बीती, इनके अपूर्ण उपन्यास हैं। पूर्णप्रकाश और चन्द्रप्रभा पूर्ण रूपातरित उपन्यास है। इसका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस बाकीपुर द्वारा सन १८८६ म हुआ। डा० कृष्णलाल न इन सभा के मत का खडन करके हिन्दी म उपन्यास के साहित्यिक रूप के विकास का काल बीसवी शताब्दी माना है। वे लिखते हैं— हिन्दी का प्रथम साहित्यिक उपन्यास देवकी नन्दन खत्री का चन्द्रकान्ता है जो सन १८९१ म प्रकाशित हुआ। इसके बाद उपन्यास का विकास बड वेग से हुआ और धीरे धीरे कविता और नाटक स भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर वह आधुनिक साहित्य का सब स अधिक लोक प्रिय अग बन गए।[२]

डा० कृष्णलाल द्वारा अपनाय मत स हम सहमत नही है। उपन्यास गद्य साहित्य का एक प्रधान स्वरूप है और इसका जन्म गद्य के विकास के साथ साथ होता तो केवल कुछ वर्षो के ही पश्चात होगा न कि पूरी अध शताब्दी के बाद जसा कि डा० साहब न लिखा है। और फिर वे अपनी ही समृद्ध लखनी द्वारा अपने ही मत का खडन भी कर गये हैं शायद उन्हे पता भी नहीं चला। पहिले म लिखते है— हिन्दी म उपन्यास के साहित्यिक रूप का विकास बीसवी शताब्दी म हुआ।[३] और दूसरी ही पक्ति म लिखते हैं कि चन्द्रकान्ता हिन्दी का प्रथम साहित्यिक उपन्यास है। इतनी बडी चूक इतने बडे

---

२ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पाचवा अध्याय उपन्यास से

३ वही—

सरस की, यह तो वही जाने, हम ता यही निवदन करना है कि यह उन्ह शाभा नही दनी। चन्द्रकान्ता से पूर्व लिखे गय उपन्यासा का उन्हाने वणन ता किया है किन्तु उनम से कुछ का प्रकाशन बीसवी शताब्दी म माना है। और कुछ का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं किया। जबकि अन्य साहित्यकारा ने अपने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहासा तथा अन्य निबधा म 'चन्द्रकान्ता से पूर्व छप अनेक उपन्यासा का वणन किया है जिनम श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षागुरु' (१८८२) प० किशारीलाल गोस्वामी रचित प्रणयिनी प्रणय पद्धित बालकृष्ण भट्ट रचित 'नूतन ब्रह्मचारी (१८८६) तथा सौ सुजान एक अजान' और राधाकृष्ण दास द्वारा रचित 'निस्सहाय हिन्दू बहुत प्रसिद्ध हुए है।

हिन्दी उपन्यास के जन्म के बारे म एक निश्चित धारणा बनाने से पूर्व हम आगे नही बढ सकते। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा प्रस्तित 'पूर्णप्रभा चन्द्रप्रकाश को अधिकतर आलोचको न मराठी से अनुवादित कृति माना है किन्तु 'परीक्षा गुरु के बारे म अधिक वाद विवाद अब नही रहा है और इस मुक्त कण्ठ स हिन्दी उपन्यास साहित्य की प्रथम कृति मान लिया गया है जिसका प्रकाशन सन् १८८२ म हुआ। सन १८८२ स १९१७ तक के ३५ वर्षों म इसन अपनी पहली यात्रा पूरी की जिसम सविधानात्मक याजनाओ का अभाव है। हिन्दी उपन्यास के इस शैशव काल म शिल्पगत गठन के अभाव का कारण तत्कालीन परिस्थितिया हैं जिनपर विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है।

उद्गमकालीन परिस्थितिया

राजनतिक परिस्थिति

अपनी आरम्भिक अनगढ अवस्था के समय हिन्दी उपन्यास तत्कालीन राजनतिक सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक एव साहित्यिक गतिविधि की ओर भाक रहा था। राजनीतिक दृष्टि म भारतवर्ष म अग्रेजा का एकछत्र राज्य स्थापित हा चुका था। १८५७ के युद्ध म भारतीयो के सामूहिक प्रयत्न का विफल बनाने के पश्चात व निश्चिन्त नही बठ अपितु भविष्य म उठन वाल सकटा का आशका को सदव के लिए दूर हटाने के लिए उन्हाने अनेक राजनतिक दाव पच खेल। इस दिशा म उन्हान सबस पहिला कदम यह उठाया कि भारतीया की एकता का अप्रत्यक्ष उपाया द्वारा विघटित किया। साम्राज्य भावना उनकी रग रग म प्रवश कर चुकी थी अतएव इसे स्थायी बनाये रखने के लिए उन्हान दूसरी योजना यह अपनायी कि भारतीया की सास्कृतिक परम्पराओ को परिवर्तित करने के लिए ईसाई मिशनरी भेज। जो यहा की जनता की भाषा और भावो को बदलने लगे। इनके अतिरिक्त अधिक से अधिक अग्रेजी ढग के स्कूल और कालेज खोल गए जिनम शिक्षा प्राप्त युवक भारतीयता और भारतीय साहित्य के नाम तक स नाक भौं सिकोडने लगे। वे अग्रेजी सीखने और बोलने ही म अपनी शान समझने लगे और अग्रेज अपनी कूटनीति म सफल होकर मौज के साथ शासन करने लगे। भेद नीति पर अवलम्बित उनकी राजनीति शतप्रतिशत सफल रही।

सामाजिक परिस्थिति

अग्रेजो की राजनतिक दूरदर्शिता के फलस्वरूप भारतीय समाज की अवस्था भी

गाचणीय हो गई। वर्ण व्यवस्था ने अति रुद्र रूप धारण कर लिया था। प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेज भारतीय समाज के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करते थे किन्तु अप्रत्यक्ष उपायों द्वारा वे उसे भीतर से खोखला बना रहे थे। हिन्दू समाज को अंधविश्वासों व परम्परागत रूढ़ियों ने जकड़ रखा था। वृद्ध विवाह बाल विवाह अनमेल विवाह सती प्रथा देवदासी प्रथा विधवाओं की शोचनीय दशा छूत अछूत आदि सामाजिक समस्यायें भयंकर रूप धारण कर चुकी थीं। मुसलमानों के भीतर हीनता की भावना घर कर चुकी थी। राजनीति के दाव पर सब कुछ हार जाने के पश्चात वे उदासीन हो चले थे। उन्होंने एक लम्बे समय तक अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य का बहिष्कार किए रखा और बीसवीं शताब्दी से पहले वे सामूहिक रूप से पिछड़े ही रहे।

समाज में योग्यतम व्यक्तियों का अभाव रहा हो ऐसी बात नहीं है किन्तु अधिकांश शिक्षित वर्ग और जनसाधारण में एक रेखा खिंच गई थी और शिक्षित समाज जनता की उपेक्षा करके अंग्रेजों का पिछलग्गू बन गया था। कतिपय लोगों के स्वार्थ हित के लिए अधिकांश लोगों के अधिकारों पर छुरी चलाई जा रही थी। हिन्दुओं में पढ़े लोग तथा ज्योतिषी मनमानी कर रहे थे और मुसलमानों में काज़ी मुल्ला अपना हुक्का आराम से पा रहे थे। जीवन विशृंखल हो चला था। अंग्रेजों द्वारा आयोजित प्रत्येक सुधार को जनसाधारण द्वारा मोह आशा और चाह से देखा जाने लगा। रेल प्रेस और पोस्ट आफिस की सुविधाओं की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की जाने लगी और समाज निष्प्रभ मध्ययुग में अकर्मण्यता बनी।

धार्मिक परिस्थिति

एक ओर तो इस प्रकार की स्थिति चल रही थी। दूसरी ओर कुछ लोग समाज सुधार और धर्म में नवजागरण करने की आवश्यकता अनुभव करने लगे थे। बंगाल में ब्रह्म समाज की स्थापना और मध्य भारत में आर्य समाज का आन्दोलन उन्नीसवीं शताब्दी की दो युगान्तरकारी घटनाएं हैं। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा विघटित तथा समाज भावना को संगठित करने का प्रारम्भिक पथ तैयार किया तथा पश्चिमी विचारों के बढ़ते हुए प्रभाव को क्षीण करने में विशेष योग दिया। ये दोनों आन्दोलन सामाजिक होते हुए भी मूलतः धार्मिक थे।

ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज को जन्म १८७५ में दिया। ठीक उसी समय हिन्दी उपन्यास जन्म ले रहा था। दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में धर्म के खोखले स्वरूप की खूब निन्दा की और उसके यथार्थ लक्ष्य की ओर हिन्दुओं का ध्यान आकर्षित किया। जिससे जहां एक ओर यह उपकार हुआ कि ईसाई पादरियों के प्रचार का क्षेत्र सीमित हो गया वहां दूसरी ओर धार्मिक उत्तेजना बढ़ी सनातन धर्म और आर्यसमाज में एक होड़ लग गई और विभिन्न गोस्वामी सन्त कट्टर पंथी नागा में नये गुसाइयों का और ... अंग्रेजों और मुसलमानों में ... प्रचलित था अतएव हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को ... पहुंचाना था। श्री रामकृष्ण आदि ... भावना में परिवर्तन ...।

र्थिक परिस्थिति

आर्थिक दृष्टि से दो वग स्थापित हो चुके थे। एक जमीदार अथवा शोपक वग र दूसरा सवहारा अर्थात शोपित किसान वग। धन और अन्न की उपजा वाले कृपको हाथ से भूमि छिन चुकी थी और गिने चुन भूधरो को सौंप दी गई थी। य बडे-बडे भूधर प्रजा की शापण नीति का समथन करते थे और उनका सारा शोपण इसी वग के द्वारा रहा था। गरीब अधिक से अधिक गरीब हाते चल जा रहे थे और अमीर अधिक अधिक अमीर। इन दो वर्गों के बीच एक तीसरा वग भी जन्म ले चुका था जिसे मध्य ग के नाम से पुकारा जाने लगा। इस वग की आर्थिक स्थिति और नैतिक सिद्धान्तो परिचय हिन्दी उपन्यास के प्रथम चरण म मिल जाता है। आर्थिक शापण का एक र उपाय अग्रेजी ढग की अदालते भी इसी युग म सामने आइ। समग्र रूप स अग्रेजो न टकर हमारा शोषण किया। इस युग की अग्रेजो की आर्थिक नीति की आलोचना रते हुए डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय लिखते है— अग्रेजो की आर्थिक नीति के कारण यदि क ओर भारतवर्ष की कृषि सम्पत्ति का ह्रास हुआ तो दूसरी ओर उद्योग धन्धे और णिज्य व्यवसाय पूर्ण रूप से नष्ट हो गए। उद्योग धन्धो के नष्ट हो जाने पर राष्ट्रीय म्पत्ति के एकमात्र साधन कृषि के ह्रास से भी अधिक भयावह परिणाम हुआ। शासको ी नीति के कारण भारतवर्ष कृषि प्रधान देश रह गया था।[४]

मैं आपके मत से पूर्णत सहमत हू। इस देश की उन्नति मन स अग्रेजो ने न तो ाही था है और न ही वह उनके लिए हितकर ही सिद्ध होती। वे हम आर्थिक, नतिक ौर सास्कृतिक तथा वज्ञानिक तौर पर पिछडे हुए रखना चाहते थ। हमारे ही द्वारा त्पादित कच्चे माल को ले जाकर वापस हम पर ही ठोंस देते थे और इस प्रकार कराडो ा लाभ उठाते थे। इससे जनसाधारण की निधनता बढता ही गई। हमारी राष्ट्रीय ाय म कोई वद्धि न हुई। हम उच्च स्तर पर सोचने और बढ़ने का समय ही न मिला।

ांस्कृतिक परिस्थिति

सामाजिक अराजकता और आर्थिक विपमता का सीधा प्रभाव हमारे सास्कृतिक ीवन पर पडा। रेल का यातायात प्रेस की सुविधाए और उच्च शिक्षा का याग केवल उच्च वग के लागो तक ही सीमित रहा। इस प्रकार अग्रेज न दुहरी चाल चलकर हमारी ास्कृतिक परम्पराओ का नष्ट भ्रष्ट किया। एक ओर तो उन्होने उच्च वग को अग्रेज यत के नशे म चर रखा और जन साधारण का अशिक्षित बनाए रखा। परीक्षा गुरु के ुख्य पात्र मदनमोहन मदन हजारो ही नहीं लाखो नवयुवक झूठी सम्मान भावना, कमण्यता तथा अग्रेजो की नकल आदि दुव तियो के शिकार हो चल। व अपनी संस्कृति ा मजाक उडाने लग। दूसरी ओर ईसाई मिशनरियो द्वारा पाश्चात्य संस्कृति और भ्यता का प्रचार किया जाने लगा इसका मुख्य उद्देश्य धर्म प्रसार था। और भारतीया

---

४ आधुनिक हिन्दी साहित्य (भूमिका से) पृष्ठ ८४

का नवीन शिक्षा द्वारा नए संस्कार डालना था।[५] इससे व हमारे भाषा, भाव और विचारों पर छाते चल गए। हम उनके मस्तिष्क से सोचने और उनके मुख से बोलने लगे। किशोरीलाल गोस्वामी राधाकृष्ण दास आदि को यह बन्ता हुआ सांस्कृतिक दासत्व असह्य लगा और इसके फलस्वरूप उन्होंने स्वतन्त्र भारतीय दृष्टिकोण को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए उपन्यास रचना की।

साहित्यिक गतिविधि

उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध में जबकि हिन्दी उपन्यास पनपने लगा था साहित्य को गोष्ठी साहित्य की सीमाओं से बाहर निकालकर जन-साधारण के निकट लाने का सुप्रयत्न होने लगा था। प्रेस का प्रसार हो गया था अतः पत्र पत्रिकाओं की धूम मच गई। श्री श्यामसुन्दर दास जी ने सन् १८६५ में नागरी प्रचारिणी पत्रिका की स्थापना की और श्री किशोरीलाल गोस्वामी जी ने १८९८ में 'उपन्यास' नामक मासिक पत्र निकाला जिसमें उनके छोटे बड़े कुल ६५ उपन्यास प्रकाशित हुए।

विकास की दिशा

इस शताब्दी में लिखे गए उपन्यास साहित्य का पर्यवेक्षण करने पर एक बात स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है वह है उसमें उपलब्ध परिवर्तित भारतीय समाज की रूपरेखा। इस पथ पर हम कोई विशिष्ट शिल्प मिले या न मिले किन्तु भावनाओं का अपूर्व स्रोत बहता हुआ अवश्य मिलता है। श्रीनिवासदास से लेकर किशोरीलाल गोस्वामी तक सभी उपन्यासकारों के मन में भारतीय समाज का एक विशिष्ट रूप घर किए बैठा था जिसे उन्होंने अपने साहित्य में चित्रित किया है।

वैचित्र्यपूर्ण घटनाओं की ओर जनता अधिक मोह रखती थी। उसकी कौतूहल तृप्ति हित देवकीनन्दन खत्री गोपालराम गहमरी और ब्रजनन्दन सहाय अवतरित हुए। इनमें से देवकीनन्दनखत्री ने विशेष प्रसिद्धि पाई। इन्होंने हिन्दी जनता का एक कभी न भूलने वाला उपकार किया। हिन्दी के प्रति भारतीय जनता को आकृष्ट कर उन्होंने हिन्दी पाठकों की जन-संख्या बढ़ाई।

अब संक्षेप में हिन्दी उपन्यास के विभिन्न धरातलों पर मनन करें।

धरातल से हमारा तात्पर्य वे विषय हैं जिनकी आधार भूमि पर उपन्यास रूपी भवन तैयार होता है। ये क्रमशः इस प्रकार हैं—

---

५ ईसाई मिशनरियों का प्रधान उद्देश्य तो ईसाई धर्म का प्रचार करना था, लेकिन भारत जैसे प्राचीन देश में विचार शैली परिवर्तित किए बिना केवल धर्म का प्रचार करना दुस्तर कार्य था इसलिए नवीन शिक्षा प्रणाली प्रचलित करने की पूरी कोशिश की। आधुनिक हिन्दी साहित्य

डा० वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य—पृष्ठ ९५

हिन्दी उपन्यास—विविध धरातल

समाज

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतवर्ष में एक नये समाज (मध्यवर्गीय समाज) का उदय हुआ। आगे चलकर यह वर्ग जहां एक ओर समाज और राष्ट्र की रीढ़ बना वहां दूसरी ओर अपने आरम्भिक रूप से ही साहित्य के लिए उपयोगी धरातल भी सिद्ध हुआ। हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' इसी धरातल पर निर्मित हुआ। इसका नायक मदनमोहन मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं में उलझा हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस समाज की प्रमुख समस्या दिखावा और आर्थिक विवशता है। जर्जर तन पर सफेद ठाठ किए बिना इसे चैन नहीं मिलता। भले ही ऋण लेना पड़े या गबन करना पड़े।

उन्नीसवीं शताब्दी के अधिकांश उपन्यासकारों ने अपने पात्रों का चुनाव इसी वर्ग से किया है। किशोरीलाल गोस्वामी, मेहता लज्जाराम आदि उपन्यासकारों ने इस वर्ग की रोमांटिक भावनाओं का सफल चित्रण किया है। निम्न मध्य वर्ग तथा किसान मजदूरों की ओर इन उपन्यासकारों की दृष्टि नहीं पड़ी। एक और बात द्रष्टव्य है। इन उपसकारों ने इस वर्ग की भावनाओं का चित्रण भर किया है, प्रेमचन्द और जोशी की भांति इन्होंने इनकी समस्याओं का विशद वर्णन या सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया। यही कारण है कि मध्य वर्ग की अवस्था डावांडोल रही और इनके पात्र और घटनाएं उपन्यास साहित्य को कोई निश्चित स्वरूप प्रदान न कर पाए। इनका साहित्य कोरी कल्पना लिए होता था, जीवन की तीव्र अनुभूति और स्मृति लिए नहीं। न ही इनके सामने कोई शिल्पगत परम्परा थी और न ही ये भाषा और शैली को भावानुकूल अभिव्यक्त करना चाहते थे। उपन्यास लिखना इनका ध्येय ही नहीं था। अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उनके मतानुसार गोस्वामीजी ही उस युग के एकाकी मौलिक उपन्यासकार थे।[६]

परिवार

पारिवारिक उपन्यासों का प्रचलन प्रेमचन्द के 'निर्मला' के साथ हुआ। चतुरसेन शास्त्री कृत 'हृदय की परख', यदुदत्त रचित 'परिवार' और जैनेन्द्र रचित 'सुनीता' आदि उपन्यास मानव की समस्याओं का चित्रण करने के लिए लिखे गए हैं।

व्यक्ति

व्यक्ति को ही सर्वस्व मानकर उसकी वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं को

---

६ 'इस द्वितीय उत्थान काल के भीतर उपन्यासकार इन्हीं को कह सकते हैं। और लोगों ने भी मौलिक उपन्यास लिखे पर व वास्तव में उपन्यासकार न थे और चीजें लिखते लिखते वे उपन्यास की ओर भी जा पड़ते थे। पर गोस्वामीजी वहीं घर करके बैठ गए। हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृष्ठ संख्या ५००— हिन्दी साहित्य का इतिहास

चित्रित करनेवाले उपन्यासों का सूत्रपात जोशी द्वारा किया गया है। जैनेन्द्र और अज्ञेय ने इस क्षेत्र में पर्याप्त सहयोग दिया।

धर्म और नीति

समाज और परिवार के साथ साथ धर्म और नीति भी उपन्यासों के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने लगे। इनकी आधारशिला पर कुछ ऐसे उपन्यास भी लिखे गए, जिनमें से अधिकांश का नाम भी कोई नहीं जानता और जो खोज के विषय हैं किन्तु मेरे शोध क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आते। उपलब्ध उपन्यासों में पं० बालकृष्ण भट्ट कृत 'नूतन ब्रह्मचारी' (१८८६) तथा श्री राधाकृष्णदास रचित 'निस्सहाय हिन्दू' (१८९०) प्रसिद्ध रचनाएँ हैं परन्तु मेरे विषय की सीमा रेखा से बाहर होने के कारण ये विस्तारपूर्वक विवेचित नहीं हुए।

'नूतन ब्रह्मचारी' कुल ४७ पृष्ठों में लिखा गया एक लघु उपन्यास है। उपन्यास के नायक विनायक की नैतिक विजय में ही इसका महत्त्व दृष्टिगोचर होता है अन्यथा घटना चक्र अस्वाभाविकताओं से परिपूर्ण है। 'निस्सहाय हिन्दू' गोवध निवारण के धार्मिक विषय को लेकर लिखा गया उपन्यास है। इसका कथानक भी ऊबड़ खाबड़ है और कथा का अन्त अपरिपक्व है।

धर्म और नीति के साथ प्रेम प्रधान आख्यान लेकर रचा गया एक उल्लेखनीय रचना 'नूतन चरित्र' भी है। इसके लेखक श्री रत्नचन्द्र प्लीडर ने इसमें जगह जगह नीति वाक्यों की बौछार ही लगा दी है। उर्दू फारसी किस्से कहानी की शैली पर लिखे गए इस उपन्यास में नवाबों की विलासिता और अय्यारियों की विचित्र लीलाएँ पढ़ने को मिलती हैं। मनोरंजक होने पर भी एक विशिष्ट स्वरूप न रखने के कारण हम इसका अभिनन्दन नहीं कर सकते।

प्रेम

प्रेम एक ऐसा स्थायी भाव है जिसका स्रोत अविच्छिन्न रूप से मानव मन में बहता रहता है। इसके किसी न किसी स्वरूप का चित्रण प्रत्येक कृति में हुआ करता है। विश्व का आधे से अधिक साहित्य इस उदात्त भावना की आधार शिला पर टिका है, फिर भला हिन्दी उपन्यास ही इससे अछूता क्यों रहता। संस्कृत की कथा के विविध विधि विधानों में घूमता हुआ यह भाव चलकर हिन्दी उपन्यास के तत्कालीन स्वरूप में प्रतिष्ठित हुआ। ठाकुर जगमोहनसिंह द्वारा 'श्यामा स्वप्न' (सन् १८८०) में इसका सफल चित्रण हुआ। आप मध्यप्रदेश में स्थित राघवगढ़ के राजकुमार थे और भारतेन्दु बाबू की मण्डली के एक रंगीन सदस्य थे। संस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों साहित्यों का आपने संतुलित अध्ययन किया था। इसके पश्चात् 'श्यामा स्वप्न' लिखा। इसके संबंध में श्री विजयशंकर मल्ल लिखते हैं— "श्यामा स्वप्न स्वच्छन्द प्रेम की कहानी है विभिन्न अवतरण रीतिकालीन प्रेम प्रसंगों में एकत्र किए गए हैं। इसमें नायक श्यामा, दूती, विरह मिलन आदि के वर्णन शास्त्रसम्मत परिपाटी के हैं पर इस कथा में स्वच्छन्द प्रेम और गान्धर्व विवाह का औचित्य

प्रतिपादन, क्षत्रिय कुमार का ब्राह्मण कुमारी स प्रेम और विवाह का प्रस्ताव–इन सबकी जा योजना की गई है वह ऐसे ढग की है कि प्रेम और विवाह के सबध मे कठोर सामाजिक रूढिया के प्रति तत्कालीन शिक्षिता म व्याप्त असतोष भली भाति व्यक्त हा जाता है। यह रचना यद्यपि गद्य प्रधान है पर अपने प्राचीन काव्य सस्कारा के कारण इसम अलकृत और चित्रात्मक वणना की भरमार है और साथ ही सरस शृगारी कविताओ का भी बाहुल्य है।'[७] इनके अतिरिक्त पडित रामचन्द्र शुक्ल जी ने भी इस उपन्यास के रम्य स्थलो की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है।

इतिहास

कतिपय उपन्यासकारा ने समाज के साथ साथ इतिहास के धरातल पर अपन उपन्यास खडे किए। किशोरीलाल गोस्वामी हिन्दी के पहले ऐतिहासिक उपन्यासकार है, परन्तु आपके ऐतिहासिक उपन्यासा म काल दोष स्पष्ट दिखाई देता है। युग विशेष के आचार-व्यवहार, वष भूषा और भाषा तथा भावो को अभिव्यक्त करने मे आप सफल नही हा पाए। मुगल युगीन चित्रण कल्पना प्रधान अधिक हैं। ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि उन्होने इतिहास का गम्भीर अध्ययन किए बिना ही उपन्यास लिख डाले हैं। तभी तो अकबर के दरबार म पेचवानी (हुक्का) दिखाया गया है जबकि उस समय तम्बाकू का प्रचलन नही हुआ था।

तारा, चपला, तरुण तपस्विनी रजिया बेगम लीलावती राजकुमारी लवग लता १८६० हृदयहारिणी १८६०, हीराबाई लखनऊ की कब्र आदि इनके एतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिक भूलो से परे पडे हैं। इनम स प्रथम तारा विशेषत वणन करने याग्य है। इसकी नायिका तारा है जो कि राठौर कुल म उत्पन्न महाराणा अमर सिंह की पुत्री है। *आगरे म शाहजहा का राजभवन काम क्रीडाओ की रगस्थली के रूप म* चित्रित किया गया है। एतिहासिक पात्रो की दुदशा विचारणीय है। तारा सदृश कुलीन भारतीय विदुषी म उच्छृखलता और कामुकता का प्रदशन अवश्यमव निन्दनीय है। तारा के ऐतिहासिक और सास्कृतिक जीवन को एक अजीब से तिलस्मी और एयारी वातावरण म प्रस्तुत किया गया है जिसकी भत्सना प्राय हिन्दी के सभी प्रतिष्ठित आलोचको द्वारा हुई है।

तारा म चमत्कारपूण घटनाओं को पढकर ऐयारी की गन्ध आन लगती है और गोस्वामीजी के लिए यह कोई नई बात नही है। उन्होने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासा के अतिरिक्त जासूसी, तिलस्मी और एयारी उपन्यास भी लिख इसलिए एतिहासिक उपन्यासा म भी तिलस्मी तथा ऐयारी चक्र घुमाए हैं। मुसलमान पात्रा की अपेक्षा हिन्दू पात्रा के साथ अधिक सहानुभूति दिखाने के कारण उन्होने दारा जस पात्रा के मुख पर कालिख पुतवा दी है।

---

७ आलोचना के उपन्यास विशेषांक के 'उदय काल प्रेमचन्द के आगमन तक' नामक लेख से—पृष्ठ ७०

तिलिस्म एवं ऐय्यारी

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम और बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में हिन्दी उपन्यास का प्रमुख आधार तिलिस्म और एय्यार बने। सन् १८ १ में देवकीनन्दन खत्री द्वारा रचित 'चन्द्रकान्ता' प्रकाशित हुआ और इसके शीघ्र बाद 'चन्द्रकान्ता संतति' छपी। 'चन्द्रकान्ता' चार भागों में और 'चन्द्रकान्ता संतति' (२४) भागों में छपी। इनका छपना हिन्दी संसार में एक धमाका सिद्ध हुआ।

भारतेन्दु कालीन गोष्ठी साहित्य से जनता का मन ऊब चुका था। अत्यधिक सुधारवादी रचनाएं पढ़ते-पढ़ते लोग थक गए थे। उन्होंने मनोरंजन प्रधान साहित्य की आवश्यकता अनुभव की। इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास साहित्य का जन्म हुआ।

प्रश्न उठता है तिलिस्म एवं ऐय्यारी किस अर्थ में उपयुक्त होते हैं। तिलिस्म फारसी का शब्द है जिसका अर्थ है जादू का घर। एय्यार का मतलब है—चालाक। पहले पहल तिलिस्म को आधार बनाकर अकबर के प्रसिद्ध कवि फ़ैज़ी ने तिलिस्म होशरूबा नामक बीस हजार पृष्ठों की पुस्तक लिखी। यह मूल रूप में फारसी में लिखी गई थी फिर उर्दू भाषा में इसका अनुवाद हुआ। हिन्दी के उपन्यास साहित्य में तिलिस्म को प्रवेश कराने का श्रेय देवकीनन्दन खत्री जी को दिया गया है। मुंशी प्रेमचन्द जी के मतानुसार इन उपन्यासों का बीजांकुर इन्हें फ़ैज़ी की रचना 'तिलिस्म होशरूबा' से प्राप्त हुआ।[८] मुंशी जी के मत से हम पूर्णतः सहमत नहीं हैं। वास्तव में चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता संतति मौलिक रचनाएं हैं। खत्री जी की कल्पना शक्ति बहुत उर्वर थी। उन्होंने तिलिस्म शब्द भले ही फ़ैज़ी की प्रेरणा से लिया हो किन्तु एक बार इस विषय पर कलम उठाकर अपने तरीके से उसका निर्वाह अपने ढंग से किया है। उनके काल्पनिक तिलिस्म अनन्त धन राशि का भण्डार हैं जिनका पता हर ऐरे-गैरे व्यक्ति को नहीं है केवल गिने-चुने एय्यार (छटे हुए चालाक) लोगों को है जो हवा की तरह कहीं से कहीं उड़ सकते हैं पल भर में वेश बदल लेते हैं और देखते-देखते आंखों में धूल झोंक डालते हैं। अपने बटुए और कमन्द के द्वारा वे किसी को भी वशीभूत करके तिलिस्म की कैद में डाल देते हैं। वहां से छुटकारा दुर्लभ ही नहीं असम्भव लगता है क्योंकि तिलिस्म के द्वार जादू के बने हुए हैं उनमें माया के ताले लगे रहते हैं और भीतर की सभी कोठरियां रहस्यपूर्ण हैं।

तिलिस्म के खुलते ही बहिश्त (स्वर्ग) का नजारा (दृश्य) सामने आ जाता है। एक ओर नन्दन वन है तो दूसरी ओर कल्पतरु। कहीं मीठे पानी का झरना फूट पड़ा है तो कहीं मान चांदी हीरे जवाहरात का ढेर लगा है। इस तक पहुंचना अतुल साहस एवं धैर्य का काम है। और फिर इस खजाने का भेद भी किसी को ज्ञात नहीं। वह किसी पुस्तक में लिखा गया है और पुस्तक भी गायब कर (छुपा) दी गई है। तिलिस्म का टूटना जिस भाग्यवान के मस्तक पर लिखा होगा वही उस पुस्तक को पा सकेगा। इस प्रकार की अविश्वसनीय असाधारण घटनाओं से परिपूर्ण यह परम्परा हिन्दी उपन्यास की दृष्टि से

---

८ कुछ विचार—पृष्ठ ३०

रचना सामग्री भी बदली और रचना विधि भी। इस परिवर्तन को ओर दृष्टिपात करते हुए एक आलोचक लिखते हैं— प्रेमचन्द के पूर्व उपन्यासों में हम हाथ, पैर और आंख की ही करामात अधिक मिलती है। हां आधुनिक यथार्थवादी उपन्यासों में बाह्य इन्द्रियों की कम परन्तु मन की करामात ही अधिक मिलती है। मन की जादूगरी से आधुनिक उपन्यासों में आभ्यान्तरिकता की जो एक झलक आ जाती है उससे चरित्रों के प्रति पाठकों का विश्वास जम जाता है।[11]

एक ओर सुधारवादी उपन्यासकार ने अपने हाथ-पैर और विचार फैला कर उपन्यास को कथात्मक विस्तार देकर इसे महद् आकार दिया तो दूसरी ओर युगधर्मी उपन्यास का निरंतर यथार्थोन्मुखता ने स्थूल चित्रण से त्राण पाकर, अपने हाथों को खींच कर कथात्मक सघुचन प्रविधि का परिचय दिया। आधुनिक काल में प्रेमचन्द से लेकर राजेन्द्र यादव तक जो कथा प्रयोग होते रहे या हो रहे हैं उनमें गद्य शैली में भी परिवर्तन आया। एक ओर सज्जित शैली (Ornate style) से गर्भित रचनाएं सामने आई, जिनमें जोशी रचित से यासी अज्ञेय रचित नदी के द्वीप तथा प्रभाकर माचवे रचित 'परन्तु' ही प्रमुख हैं तो दूसरी ओर सरल शैली (Plain style) की रचनाएं—यथा 'गोदान', 'सुनीता', 'चित्रलेखा' और 'दबदबा' प्रस्तुत हुई। पहले वर्ग के कथाकारों की शैली प्रधानतः प्रयगर्भित एवं विश्लेषणपरक है तो दूसरी श्रेणी के कथाकारों की शैली मुख्यतः सहज, वर्णनात्मक है। पहले स्कूल के कथाकार अ तमन में डुबकियां लगाकर व्यक्ति के अहं की ऐकान्तिकता पर डटकर प्रहार करते हैं, जबकि दूसरी परम्परा के कथाकार मानव को बाह्य जगत में घुमा फिरा कर उनकी बाह्यलीलाओं व बहिर्द्वन्द्व को सीधे सहज ढंग से कुला पूना कर वर्णित कर गए हैं। सुधारवादी उपन्यासकारों का ध्यान चरित्र निर्माण रहा है। यथार्थवादी कथाकारों का व्यक्तित्व निर्देशन। प्रेमचन्द ने होरी जैसे आदर्श चरित्र का निर्माण किया है तो विश्लेषणात्मक कथाकार जोशी नन्दकिशोर के व्यक्तित्व की ऊंचाई पर पहुंच हैं। शान्ति नन्दकिशोर पारसनाथ शेखर, शशि भुवन, रेखा के व्यक्तित्व की उपलब्धि का श्रेय किसको? उपन्यासकार की बौद्धिक एवं अनुभूतिगत तजस्विता को अथवा पात्रों को नये परिवेश में ले आने वाले नये शिल्प को? यदि नया शिल्प (विश्लेषणात्मक या प्रतीकात्मक) प्रकाश में न आता तो क्या इन पात्रों की तजस्विता स्वतः स्पृहीनता के गह्वर में विलीन न हो जाती। प्रश्न जटिल है। यदि उपन्यासकार की उद्देश्यप्रिय प्रवृत्ति वही बनी रहती यदि वह पात्रों में चारित्रिकता के निर्माण कार्य में जुटा रहता, तो अवश्य ही उसका वर्णनात्मकता से पिंड छुड़ाना दु साध्य होता और हिन्दी कथा साहित्य को सुमन निर्मला होरी तारा दिवाकर डा० प्रशान्त जैसे पात्र ही मिलते, नन्दकिशोर शान्ति रेखा, या ताई जैसे व्यक्तित्व की ऊंचाइयों को छू लेने पात्र उपलब्ध न होते।

हिन्दी उपन्यास शिल्प के बदलते परिप्रेक्ष्य में क्या जीवन की गतिशीलता स्थापित हुई है? जीवन की निरंतरता को नये स्तर पर रूपांतर किया गया है? एक विचारणीय

---

११ हिन्दी उपन्यास और यथार्थ (प्रथम संस्करण) भूमिका डॉ० श्रीकृष्ण लाल —पृष्ठ ५

परिशिष्ट (१)

(क) सहायक ग्रन्थ-सूची हिन्दी

संख्या	नाम	प्रकाशन काल	शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त पृष्ठ
	अज्ञेय		
१	आत्मनेपद	१९६०	२४८ २४९
	डा० इन्द्रनाथ मदान		
२	प्रेमचन्द चिंतन और कला	१९५४	८, १०८, १०५
३	प्रेमचन्द एक विवेचन	१९५१	२६, ३७, ६८, ७०, ७१
	इलाचन्द्र जोशी		
४	विश्लेषण	१९५४	२१६, २१५
५	विवेचना	१९५५	५०
६	साहित्य चिन्तन	१९५५	२१५
७	देखा-परखा	१९५७	५१, ५५
	गंगा प्रसाद पांडेय		
८	हिन्दी कथा साहित्य	१९५०	६६ ८३, १०४, १२२, १२३ १३३, १८८, १९१, ३३३ ३३६
	जैनेन्द्रकुमार		
९	साहित्य का श्रेय और प्रेय	१९५३	१२, १८, २८, २२३ २३७
	डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा		
१०	हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास	१९५४	२७२
	डा० त्रिभुवन सिंह		
११	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	१९६१	३५ १४६, १६५ २०६ ३३८ ३८९
	डा० देवराज उपाध्याय		
१२	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान	१९५६	४७ ६८, ६६, २३८, २४२, २५७ २६१, २६३
१३	कथा के तत्त्व	१९५७	१४४
१४	विचार के प्रवाह	१९५८	२४४
१५	साहित्य चिन्ता	१९६६	२३३

संख्या	नाम	प्रकाशन काल	शोध प्रबन्ध मे प्रयुक्त पृष्ठ
	डा० नामवर सिंह		
१६	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तिया	१९५६	१६७
	डॉ० नगेन्द्र		
१७	विचार और अनुभूति	१९४९	२४३, २५०
१८	विचार और विश्लेषण	१९५५	२४८
	आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी		
१९	आधुनिक साहित्य	१९५०	१५, १०४, १८९ २४९
२०	नया साहित्य नये प्रश्न	१९५५	२७, २४२ २७२
२१	प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन	१९५६	६८, ७१, ९७, १०४, १०८
	प्रकाश चन्द गुप्त		
२२	नया हिन्दी साहित्य एक दृष्टि	१९४६	३३५
	पदम लाल पन्नालाल बख्शी		
२३	हिन्दी कथा साहित्य	१९५५	२१६
	डा० प्रेम नारायण टंडन		
२४	प्रेमचन्द कला और कृतित्व	१९५०	९६
	प्रेमचन्द		
२५	कुछ विचार	१९२०	२०, २३, ६३, ६४, ३६६
	डॉ० प्रताप नारायण टंडन		
२	हिन्दी उपन्यास म कथा शिल्प का विकास	१९५९	३५ ३७, ११४, १४९ ३३२
	बलदेव शास्त्री		
२७	प्रेमचन्द और उनका योगदान	१९५६	११४
	बलभद्र तिवाडी		
२८	इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास	१९५९	२१६, २१७
	मन्मथनाथ गुप्त		
२९	कथाकार प्रेमचन्द	१९४७	८१, ९९, १००
	महेन्द्र भटनागर		
३०	समस्यामूलक उपन्यास कार प्रेमचन्द	१९५७	१०४
	रघुनाथ शरण भालानी		
३१	जनेन्द्र और उनके उपन्यास	१९५६	१३६, २४६
	डा० रामअवध द्विवेदी		
३२	हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा	१९५६	२३२, २४८

संख्या	नाम	प्रकाशन काल	शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त पृष्ठ
	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल		
३३	हिन्दी साहित्य का इतिहास	छठा संस्करण	६१, ६६, १८८
	डॉ० रामदरश सिंह		
३४	ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा	१९४७	११४
	डा० रामरतन भटनागर		
३५	जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा	१९५८	१६, २३४, २३६
३६	प्रसाद साहित्य और समीक्षा	१९५८	१२०
	डॉ० राम विलास शर्मा		
३७	आस्था और सौन्दर्य	१९६१	२६४, २६८, ३००
	डॉ० राजेश्वर गुरु		
३८	प्रेमचन्द एक अध्ययन	१९५८	८७, १०४, १०५
	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल		
३९	हिन्दी कहानी की शिल्प विधि का विकास	१९६०	२६
	सियारामशरण प्रसाद		
४०	वृन्दावन लाल वर्मा साहित्य और समीक्षा	१९६०	१३७, १३९, १४०,
	डॉ० सुषमा धवन		
४१	हिन्दी उपन्यास	१९६१	११४, ११८, ११८, १९२, २३२, २४७, २६६, २७१, २७६, २८१, २८४, २९४, ३०८, ३२७, ३३२, ३३३, ३३८, ३७२, ३७६, ३८१
	डा० शशिभूषण सिंहल		
४२	उपन्यासकार वृन्दावनलाल	१९६०	१३२, ३५०
	डा० शिवनारायण श्रीवास्तव		
४३	हिन्दी उपन्यास	१९५९	६९, ११७, १२१, १२३, १२४, १२८, १३०, १६३, १८८, २१४, २२३, २८४, २६७, ३२१, ३२२, ३३८, ३४७
	शिवदान सिंह चौहान		
४४	आलोचना के सिद्धान्त	१९५८	५८
४५	हिन्दी साहित्य के ८० वर्ष	१९५९	१६७, ३६६
	सुरेशचन्द्र तिवाड़ी		
४६	यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य	१९५६	१००

संख्या	नाम	प्रकाशन काल	शोध प्रबंध मे प्रयुक्त पृष्ठ
	डॉ० श्री कृष्ण लाल		
४७	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	१९५०	३३१, ३८८
	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी		
४८	आधुनिक हिन्दी साहित्य	१९५५	२१३, ३६७
	हरस्वरूप माथुर		
४९	प्रेमचन्द उपन्यास और शिल्प	१९६०	७१, ८३, १०६,
	डा० प्रेम भटनागर		
५०	सुबह के भूले (परिचय)	१९६०	२१६
५१	निमन्त्रण एक अध्ययन साहित्यकार प० भगवती प्रसाद बाजपेयी अभिनन्दन ग्रन्थ	१९५९	२७३, ३७७

(ख) सहायक ग्रन्थ-सूची अंग्रेजी

Serial No	Name	Year of Publication	Page
1	A A Mendilow Time and the Novel	1952	12 13 331
2	Carl Grabo The Technique of the Novel	1928	203 233
3	Edwin Muir The Structure of the Novel	1949	23 60
4	E M Forster Aspects of Novel	1947	289
5	Two cheers for Democracy	1947	11
6	H W Legget The Idea of Fiction	1934	193
7	J Middleton Murry The Problem of Style	1952	30 31
8	Joseph T Shipley Dictionary of World Literary terms		10,11
9	J Warren Beach The Twentieth Century Novel Studies in Technique	1956	73
10	Leon Edel The Psychological Novel		30
11	Percy Lubbock ' Craft of Fiction	1932	14 27 28 84
12	Ralph Fox The Novel and the people	1954	166
13	Sisir Chattopadhiaya The Technique of the modern English Novel		209
14	Scott James The Making of Literature	1956	11
15	William James Principles of Psychology		56
16	William Van O Conner Forms of Modern Fiction		11
17	Vivan Creative Technique in Fiction		17
18	Selected Prejudices		31
19	Oxford Dictionary of Current English		10

परिशिष्ट (२)

ग्रन्थ में विवेच्य उपन्यास और उपन्यासकार

संख्या	नाम	प्रकाशन काल	शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त पृष्ठ
	अज्ञेय		
१	शेखर एक जीवनी (भाग एक)	१९४०	२४९–२५५
२	शेखर एक जीवनी (भाग दो)	१९४४	२५५–२६०
३	नदी के द्वीप	१९५१	२८९–२९४
	अमृतलाल नागर		
४	सेठ बांकेमल	१९५५	२९४
५	बूंद और समुद्र	१९५६	२९५–३०४
	इलाचन्द्र जोशी		
६	लज्जा	१९२९	२१६–२१८
७	संन्यासी	१९४१	२१८–२२५
८	पर्दे की रानी	१९४१	२२५–२२८
९	प्रेत और छाया	१९४६	२२८–२३२
१०	जहाज़ का पंछी	१९५५	३६०–३६६
	उदय शंकर भट्ट		
११	सागर, लहरें और मनुष्य	१९५५	१६३–१६६
	उपेन्द्रनाथ अश्क		
१२	सितारों का खेल	१९४०	१८९
१३	गिरती दीवारें	१९४७	१८९–१९२
	उषा देवी मित्रा		
१४	वचन का मोल	१९३६	२८५
१५	पिया	१९३७	२८६
१६	जीवन की मुस्कान	१९३९	२८७
१७	सोहिनी	१९४९	२८७
१८	नष्ट-नीड	१९५५	२८७
	कृष्ण चन्द्र शर्मा 'भिक्खु'		
१९	आदमी का बच्चा	१९५०	३०८

सख्या	नाम	प्रकाशन काल	शोध प्रबन्ध मे प्रयुक्त पृष्ठ
२०	सक्राति	१९५१	३०८
२१	घर का बडा	१९५३	३०८
२२	भवरजाल	१९५४	३०८–३११
	गिरिधर गोपाल		
२३	चादनी के खण्डहर	१९५४	३१६–३२०
	गुरुदत्त		
२४	कला	१९५३	१७४–१७७
२५	गुण्ठन	१९५५	१७७–१७६
	चतुरसेन शास्त्री		
२६	वशाली की नगरवधु (भाग एक)	१९४८	१४८–१५०
२७	वशाली की नगरवधु (भाग दो)	१९४९	१५०
	जयशकर प्रसाद		
२८	ककाल	१९२९	१२०–१२२
२९	तितली	१९३४	१२३
	जनेन्द्र कुमार		
३०	परख	१९२९	२३८–२३७
३१	सुनीता	१९३५	२३७–२४१
३२	त्याग-पत्र	१९३६	२४१–२४३
३३	कल्याणी	१९३८	२४३–२४५
३४	व्यतीत	१९५३	२४५–२४७
३५	जयवधन	१९५६	४३–४६
	डा० देवराज		
३६	पथ की खोज (भाग एक)	१९५१	२८२–२८४
३७	पथ की खोज (भाग दो)	१९५२	२८४
३८	रोडे और पत्थर	१९५८	३२९–३३०
	डा० धमवीर भारती		
३९	गुनाहा का देवता	१९४९	३४१–३४८
४०	सूरज का सातवां घाडा	१९५२	३०५–३०७
	नागार्जुन		
४१	बलचनमा	१९५२	१५१–१५३
४२	बाबा बटेसर नाथ	१९५४	१५३–१५५
४३	वरूण क बटे	१९५७	१५५
४४	दुखमोचन	१९५८	१५५–१५६
	नरेश मेहता		
४५	डूबते मस्तूल	१९५४	३१३–३१५

संख्या	नाम	प्रकाशन काल	शोध प्रबन्ध मे प्रयुक्त पष्ठ
	पाडेयबेचन शर्मा उग्र		
४६	चन्द हसीनो के खतूत	१६२६	४३
	प्रताप नारायण श्रीवास्तव		
४७	विदा	१६२८	१२४–१२७
४८	विकास	१६४१	१२७–१२६
४६	विसर्जन	१६५०	१२६–१३०
	डा० प्रभाकर माचवे		
५०	परन्तु	१६४०	२६४–२६७
५१	द्वाभा	१६५५	२६७–२७१
	प्रेमचन्द		
५२	सेवासदन	१६१७	६६–७७
५३	निर्मला	१६२३	७७–८१
५४	रगभूमि (दो भाग)	१६२४	८१–६६
५५	गबन	१६२६	६६–१०३
५६	गोदान	१६३६	१०३–११४
	फणीश्वर रेणु		
५७	मैला आचल	१६५४	१५६–१६०
५८	परती परिकथा	१६५७	१६०–१६३
	भगवती चरण वर्मा		
५६	चित्रलेखा	१६३४	३३२–३३६
६०	आखिरी दाव	१६५०	१७६–१८०
६१	अपने खिलौने	१६५७	१८०–१८२
	भगवती प्रसाद वाजपेयी		
६२	पतिता की साधना	१६३६	२७१
६३	दो बहनें	१६४०	२७१
६४	निमत्रण	१६४२	२७१–२७६
६५	चलते चलते	१६५७	३७३–३७
	मन्मथनाथ गुप्त		
६६	बहता पानी	१६५५	१८५–१८८
	यज्ञदत्त शर्मा		
६७	विचित्र त्याग	१६४०	१६६
६८	नया पहलू	१६४०	१६६
६६	इन्साफ	१६५०	१६६
७०	मुनिया की शादी	१६५२	१६६
७१	परिवार	१६५८	१६६–२०१

संख्या	नाम	प्रकाशन काल	शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त पृष्ठ
७२	रंगशाला	१९५६	१९९
७३	दबदबा	१९५८	२०१–२०४ २०४–२०७
	यशपाल		
७४	दादा कामरेड	१९४१	१६७–१६९
७५	देशद्रोही	१९४३	१६९–१७१
७६	मनुष्य के रूप	१९४९	१७१–१७३
७८	दिव्या	१९५४	३३६–३३९
	डा० रांगेय राघव		
७८	विषाद मठ	१९४६	३६६
७९	मुर्दों का टीला	१९४८	३६६–३७२
	राजेन्द्र शर्मा		
८०	कायर	१९५१	१७७–१७९
८१	हेमा	१९५४	१८३–१८५
	राजेन्द्र यादव		
८२	प्रेत बोलते हैं	१९५२	३७९
८३	उखड़े हुए लोग	१९५६	३७९–३८१
	रामेश्वर शुक्ल अंचल		
८४	चढ़ती धूप	१९४५	२७९
८५	नई इमारत	१९४६	२७९
८६	उल्का	१९४७	२८०–२८१
	डा० रघुवंश		
८७	तंतुजाल	१९५८	३२७–३२९
	डा० लक्ष्मी नारायण लाल		
८८	बया का घोंसला और सांप	१९५०	३२२–३२३
८९	काले फूल का पौधा	१९५५	३२४–३२७
	विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'		
९०	मां	१९२९	११४–११६
९१	भिखारिणी	१९३०	११६–११९
	विष्णु प्रभाकर		
९२	निशिकान्त	१९५५	३७२
९३	तट के बंधन	१९५६	३७२–३७३
	डॉ० वृन्दावन लाल वर्मा		
९४	गढ़ कुंडार	१९२८	१३२–१३६
९५	विराटा की पद्मिनी	१९३३	१३६–१४४

संख्या	नाम	प्रकाशन काल	शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त पृष्ठ
९६	झांसी की रानी लक्ष्मीबाई	१९४६	३३६–३४६
९७	मृगनयनी	१९५०	३४९–३५१
	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना		
९८	सोया हुआ जल	१९५५	३२०–३२२
	शिव प्रसाद मिश्र		
९९	बहती गंगा	१९४६	१४४–१४८
	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी		
१००	बाणभट्ट की आत्मकथा	१९५२	३१२–३१३

(ग) पत्र-पत्रिकाएं (हिन्दी)

१	सारिका	अक्तूबर १९६०	१५०
२	आलोचना उपन्यास विशेषांक (१३)		४० ५३ ७६ १५२ २१४ २६० २८४ २९० ३६५
३	समालोचक सितम्बर १९५८		३०४
४	आलोचना (१७)		३२०
५			

(घ) पत्रिका (अंग्रेजी)

Illustrated Weekly of India—Dated 1 3 1962